

निवेदन

भारतवर्ष के पौराणिक साहित्य की श्रद्धालु बहुत लम्बी है। अठारह पुराणों के दशवात् अठारह उपपुराण और अठारह तन्त्रपुराणों की नामावली भी गुनने में आती हैं। यद्यपि यह साहित्य व्यवस्थित नहीं है, और बाजार में जमीन पर पुस्तक फेंकाकर बेचने वालों के यहाँ पुराणों के नाम पर दो-दो, चार-चार आने की ऐसी छोटी-छोटी पुस्तकें भी बिकती दिखाई पड़ती हैं, जिनकी गिनती कभी प्रामाणिक अथवा पठनीय पुस्तकों में नहीं की जा सकती। ऐसी दुकानों पर हमने "सूर्य पुराण" और "गणेश पुराण" आदि पुस्तकें देखी हैं जिनकी पृष्ठ संख्या बालीस पचास से अधिक नहीं होती। पर वास्तविक ज्ञान ऐसी नहीं है। उन पुराणों में भी "देवी भागवत" और "हरिवंश पुराण" जैसे ग्रन्थ पाये जाते हैं, जो कितने ही महापुराणों में बड़े और विषय विवेचन की दृष्टि से उत्तम हैं।

यह "सूर्य-पुराण" भी काफी बड़ा है, और विषय की समृद्धता तथा भाषा की एक रूपता के कारण कितनी ही पौराणिक रचनाओं की अपेक्षा उच्च श्रेणी का माना जा सकता है। सिद्धान्त की दृष्टि से यह पूर्णतया सही है और हममें हर जगह विद्वानों की महानता का ही वन्दन किया गया है। इसके अनुसार निय ही परब्रह्म हैं और पार्वती उनकी शक्ति। यह दोनों विद्वत् शास्त्रों की दृष्टि स्थिति और प्रत्यक्ष करते हैं। इनके अनिर्विवा प्रज्ञा, विष्णु, इन्द्र आदि देवगण भी हैं, पर वे सब इन्हीं के बनाये और इनकी शक्ति से ही काम करने वाले हैं। अन्य देवता, जो स्वर्ग में निवास करते हैं वे तो मर्त्य द्वारा आश्रित रहते हैं, दुर्गामा दास्य स धनो रक्षा की प्रार्थना किया करते हैं। विष्णु देव-ताओं का पक्ष लड़ता कर दास्यों से मर्त्य करता है, उनका नाम काते है, पर उनकी दृष्ट शक्ति विद्वानों द्वारा ही प्रतीत है। 'सूर्य पुराण' में कहा गया है कि विष्णु अवतार में मत्स्य नाम द्वारा विद्वानों की सृष्टि की और उसकी पूजा करने हुए सब एक समस्त कम पद गया तो धरती

वाँल (कमल रूपी नेत्र) निकालकर चढादी। तब शिवजी ने प्रमत्न होकर उनको सुदृशः चक्र दिया। यह वषा हम एकाग्र अन्य पुराण में भी पढ़ चुके हैं।

पर 'सूर्य पुराण' में सब से अधिक निन्दा की गई है वैष्णवों केचार आचार्यों में से एक 'माध्वाचार्य' की। सम्भवतः उन्होंने शैव सम्प्रदाय का विशेष विरोध किया होगा। इस निम्ने उनको किसी विधवा ब्राह्मणी का व्यवहार से उत्पन्न पुत्र बतलाया है, और उनके जन्म का सम्बन्ध कामदेव के दहन की घटना से जोड़ा है। अर्थात् कामदेव के किसी सहयोगी ने माध्वाचार्य के रूप में जन्म लेकर शिवजी से उस घटना का बदला लिया और उनकी निन्दा फैलाई।

भक्ति-मार्ग प्रायः वैष्णवों से सम्बन्धित माना जाता है। उत्तर भारत में तो सूर, तुलसी, मीरा, चैतन्य आदि जितने भक्तों का आविर्भाव हुआ है, वे सब विष्णु और उनके अवतारों—रामकृष्ण आदि के उपासक थे। पर 'सूर्य पुराण' में वैसा ही वर्णन शिव-भक्ति का किया गया है, और वह भी नारद तथा ब्रह्मा ने सम्वाद के रूप में जैसा वैष्णव पुराणों में किया गया है। नारद के भक्ति विषयक प्रश्न करने पर ब्रह्मा जी ने कहा—“भगवान् दम्भु की भक्ति का योग देहधारियों के लिए बहुत ही दुर्लभ है। यदि किसी प्रकार वह भक्ति प्राप्त करनी गई तो फिर उसके लिए कुछ भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता उस भक्ति के द्वारा ही ईश्वर और विष्णु का पद प्राप्त किया जा सकता है और मुझ ब्रह्मा का दर्जा भी प्राप्त कर लिया जाता है। शिव भाषन द्वारा मोक्ष प्राप्त होने में तो कोई सन्देह ही नहीं। जैसे अग्नि द्वारा ईश्वर भस्म हो जाता है उसी प्रकार अशुभ और शुभ कर्मों की राशि को भगवान् भव की भक्ति भस्म कर देती है। पर जिव में ऐसी मति का स्थिर होना बड़ा कठिन है हे नरद! ससार रूपी सर्प के मुख में स्थित देह धारियों को विमोचन कराने वाला महादेव ही है, ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है। श्री शिवजी के पञ्चाक्षरी मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' की प्रशंसा करते हुए कहा है कि 'शिवजी के मुख से सात करोड़ मन्त्र निकले, पर वे सब

मिल कर भी इस मन्त्र की सोनहवों कला के तुल्य नहीं हो सकते ।”

कलियुग-वर्णन भी पुराणों का एक लक्षण बन गया है । कदाचित् ही कोई ऐसा पुराण होगा जिसमें कलियुगी भ्रष्टाचार, दुराचार आदि का वर्णन हो । “सूर्य पुराण” के लेखक ने भी उस परम्परा का पालन किया है पर अधिक आशेष वैष्णवों पर ही किया है—

“कलियुग पूर्ण रह से व्याप्त हो जाने पर अधम नर मायावाद ही किया करेंगे । ये सत्र योष की निन्दा करने वाले होंगे और अग्निहोत्र का विरोध करने लगेंगे । जो नर पुराणों को वेदान्त शास्त्र के समान कहते हैं वे नरकगामी हैं, केवल देखने में ही मनुष्य हैं । उनसे अच्छे तो बौद्ध जैन और कापासिक ही हैं, जो मुझे तोर पर वेदों को अप्रामाण्य कहते हैं, और हम भी उनको अहकारी समझकर उपेक्षा की दृष्टि में देखते हैं । वे तो वैदिक मतानुगामी ही नहीं । पर जो वेदों को प्रमाण मानते हैं और साथ ही अनीश्वरवादियों का सा व्यवहार करते हैं घोर पापी तो वे ही हैं ऐसे लोग सन्यासी का वेप धारण करने पर भी जीविका के लिए तरह-तरह के धर्म किया करते हैं । इनमें कितने ही प्रच्छन्न बौद्ध (यामगादी) भी होते हैं । वे किसी सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों को नहीं जानते, केवल दाग नूतन के लिए ठाड़ी दृष्टि में अग्नय मय देवता हेय (व्यर्थ) ही हैं तो वे बड़े बेशी को पढ़ते हैं और बड़ों उन पर तर्क करते हैं । कलियुग में तेम कितनी भी जाति के व्यक्ति को गर मुड़ाकर और कापाय (भगवा) बन्धा पहिनाकर मठों का अधिपति बना दिया जायगा । इन “इन तत्त्ववादियों” में केवल पाँच ही गुण होंगे — मठों का स्वामी बनना, सेवा करना, धन-सम्पत्, शक्तियों में गमन और ईर्ष्या-भावना “ये तत्त्ववादी क्या करने हैं कि यह ममार ही परम तत्त्व है, क्योंकि वे शुद्ध तत्त्व को तो जानते ही नहीं । त्रिग मन्त्र कलियुग में पापों की उत्पत्ति होगी उस समय लोग इसी प्रकार दम्भ का भाव रखकर वैष्णव बन जायेंगे ।”

‘सूर्य पुराण’ की सबसे मुख्य विशेषता मन्त्रों के अन्वय में विवेचना है, त्रिग के महत्त्व में अग्नय के आरम्भ में ही मन्त्रों के द्वारा यह

गया है—“यह पुराण सभी वेदों के अर्थों की एक सग्रह स्वरूप है। शूली भगवान् शम्भु का रूप ही परम तत्त्व है। उसके द्वारा ही यह समस्त विश्व व्याप्त है और किसी के द्वारा नहीं—ऐसा श्रुति ने बतलाया है। वही समस्त भूतो की आत्मा हैं और जगदम्बा उमा के साथ एक साथ चैतन्य स्वरूप बाने हैं। केवल वे एक जिव ही अपनी लीला से बहुत रूपों में शोभित हुआ करते हैं। वही स्वयं ब्रह्मा विष्णु के रूप में देवों के मध्य विराजमान दिखाई दिया करते हैं। एक बार ब्रह्मा आदि देवों द्वारा भगवान् शंकर से पूछा गया कि हे देव ! आप कौन हैं ? उस समय उन्होंने कहा कि मैं एक ही हूँ और अन्य कोई भी नहीं है।” आदि भूत और लीला विग्रह महादेव से ही आदि-सर्ग-काल में ब्रह्मा विष्णु की उत्पत्ति हुई थी। उन्हीं एक आदि कर्ता—ईश्वर परमात्मा को उनका ज्ञान रखने वाले बहुत प्रकार का कहते हैं। उन्हीं को इन्द्र तथा मित्र भी कहा जाता है—ऐसी श्रुति है।”

इस वर्णन में प्रकट होता है कि ‘सूर्य पुराण’ के रचियता ने आधार को ग्रहण किया है जो भारतीय सत्त्वज्ञान के मूल आधार उपनिषदों और गीता आदि में वर्णित है। उन्होंने केवल राम या कृष्ण के बजाय शंकर या नामोल्लेख कर दिया है। पर इस देश के मनीषी तो पहले ही कह चुके हैं कि कोई मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही नहीं यदि ईसा, मूना, मुहम्मद का नाम लेकर भी त्याग, तपस्या, परोपकार का सच्चा धार्मिक जीवन व्यतीत करेगा तो वह अन्न में उस परमात्मा के निकट ही पहुँचेगा, जल जानि, धर्म और नाम का कोई भेदभाव छोड़ नहीं रहता। यह विभिन्न देवताओं अथवा धर्म गुरुओं का नाम लेना तो देश, काल और मनुष्यों की वम या अधिभू विवर्तित मनोवृत्ति से कारण होता है। इसलिये “सूर्य पुराण” के लेखक ने भगवान् शिव को प्रधानता दी तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं है। शिवजी तो हमारे महा त्याग, तपस्या और समता के गुणों से प्रतीक हैं, उनकी महिमा के सम्मुख कौन नतमस्तक न होगा।

विषय सूची

१. नैमिषारण्य प्रससादि कथन	६
२. शिव महिमा वर्णन	१७
३. सुद्युम्नाख्यान	२८
४. वाराणसी महिम-कलियुग वर्णन	...	३७
५. महादेव वर-प्रदान	४२
६. वाराणसी लिंग महिम वर्णन	४८
७. दक्षोद्वर माहात्म्य	५५
८. त्रिलोचन माहात्म्य	६५
९. शिव भक्त महिमा	..	६९
१०. सात्विक-राजस विघ्नादि कथन	७८
११. हरोत्पत्त्यादि कथन	...	८३
१२. ब्रह्म पद्मयोनिस्त्वादि कथन	९२
१३. गोरी पृथक् शरीरत्वादि कथन	१०५
१४. सुराधुर सृष्ट्यादि कथन	११०
१५. हिरण्याक्ष वधादिक कथन	११९
१६. प्रह्लाद राज्यारोहण तथा इक्ष्वाकु वध कथन	१२५
१७. शिव महिमा कथन	१३७
१८. कलि प्रवेशादि कथन	१५२
१९. महेश-विष्णु तुल्यत्व करणादि कथन	१५२
२०. विष्णु चक्र प्राप्त कथन	१७६
२१. शिव पूजा विधि	१६८
२२. दुर्वा गणपति स्नान कथन	२०६
२३. शिवालय करणादि कथन	२१६
२४. सप्तारम् रत्न पाशुपत व्रत कथा	...	२२६

२५. शिव माहात्म्य कथन	२३६
२६. अरुन्धती-सावित्री सम्बाद्	२५०
२७. तुदेव्युपाख्यान	..	२६६
२८. रक्तामुर घट कथन	२७६
२९. पार्वती प्रभाव कथन	३०२
३०. त्रिपिनिर्णयादि कथन	३१६
३१. मदन बहन	...	३२६
३२. महादेव वर प्रदान	..	३३८
३३. महेश्वर ज्ञान कथन	३४१
३४. साम्ब विवाह मउप वर्णन	३४६
३५. कालाग्न्याद्यागमन कथन	३५३
३६. साम्ब विवाह वर्णन (१)	३६६
३७. साम्ब विवाह वर्णन (२)	...	३७३
३८. साम्ब क्रीडादि वर्णन	३८४
३९. पावक स्तुत्यादि कथन	३९६
४०. परमेश्वर-मुर सम्वादादि कथन	४११
४१. नारद-इन्द्र सम्वादादि कथन	४२४
४२. ब्रह्मा नारद सवादादि कथन	४३३
४३. पंचाक्षर मन्त्र प्रभावादि कथन	४४७
४४. शिवार्चन माहात्म्यादि कथन	४६०
४५. महाकाल माहात्म्य कथन	४७२
४६. त्रिपि मुहूर्त निर्णयादि कथन	४७६
४७. देवेन्द्र चरित कथन	४७९
४८. निरयादि प्रतिपादक कथन	४८९
४९. शिवनीय कथन	४९४

सूर्यपुराणं

॥ नैमिषारण्य प्रशंसादिकथन ॥

यस्याऽऽज्ञया जगत्स्रष्टा विरञ्चि पालको हरि ।

सहर्ता कालरुद्रारूपो नमस्तस्मै पिनाकिने ॥१॥

तीर्थानामुत्तम तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ।

मुनीनामाश्रयो नित्य नैमिषारण्यमुत्तमम् ॥२॥

शीनकाद्या महात्मानां शिवमक्ता महोजस ।

दीघसत्र प्रकुर्वन्तस्तन्नेशानस्य तुष्टये ॥३॥

तस्मिन्सत्रे महाभागो मुनीनां भाग्यगौरवात् ।

आजगाम मुनीन्द्रष्टु सूतः पौराणिकात्तम ॥४॥

तं दृष्ट्वा ते महात्मानो नमिषारण्यवामिनः ।

प्रहृष्टा प्रष्टुमुद्युक्ता पप्रच्छु रोमहर्षणम् ॥५॥

वयं भगवता पूर्वमादित्येनाऽऽत्मरूपिणा ।

पुराणं कवितं सौर तप्तो वक्नुमिहाहंसि ॥६॥

वृष्णद्वैपायनात्साक्षात्पूर्वं हि विदितं त्वया ।

त्वत्तो नास्ति परा वक्ता पुराणानां महातपः ॥७॥

जिनजी आज्ञा में ब्रह्माजी इस जगत् का सृजन करने वाले होते हैं भगवान् विष्णु इस जगत् का पालन किया करते हैं तथा कालरुद्र नाम वाले प्रभु सबका महार किया करते हैं उन पिनाकधारी प्रभु के निच नमस्कार है ॥१॥ समस्त तीर्थों से उत्तम तीर्थ सब क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र नैमिषारण्य परम उत्तम बन है जो मुनिगणों का नित्य ही आश्रय स्थान रहा करता है ॥२॥ महान् ओषध में सम्पन्न शीनकादि महारथ भगवान् जिन से परम भक्त थे और वे पर भगवान् दिव

की तुष्टि के लिये दीर्घ सत्र कर रहे थे ॥३॥ उस सत्र में मुनि मण्डल के भाग्य के गौरव से महा भाग और पौराणिकों में अत्युत्तम श्री सूतजी मुनिया ने दर्शन करने के लिये आ गये थे ॥४॥ उन नैमिषारण्य में निवाम करने वाले महात्माजी ने जब श्री सूतजी का दर्शन किया तो परम प्रगल्भ हुए और कुछ पूछने के लिये उत्सुक होकर श्री रोमहर्षण जी उन्हें पूछा ॥५॥ ऋषियों ने कहा—हे भगवान् ! आत्म कपी आदिभ्य भगवान् न पहिले कैसे इस सौर पुराण का वर्णन किया था— इसे आप हम लोगों को बतान के लिये परम योग्य है ॥६॥ आपने तो साक्षात् श्रीकृष्ण द्वैपायन जी से पहिले ही सब कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था । आप तो महान् तपस्वी होने के साथ पुराणों के परम श्रेष्ठ वक्ता भी हैं । आप से अधिक अन्य कोई भी वक्ता नहीं है ॥७॥

सन्त्यन्ये बह्व शिष्या अपि तस्य महात्मनः ।
 तथाऽपि शिष्यवात्सल्यात् पुराणेषु योजित ॥८॥
 यान्यन्यानि पुराणानि त्वयोक्तानि महामुने ।
 अत तं पार्वतीकान्तभवतो भक्तियुत त्विदम् ॥९॥
 न यज्ञेन तपोभिर्वा न दानेन वर्तते स्तथा ।
 शिवभक्तिमृते यस्मान्मुक्तिर्नास्तीति शुश्रुम ॥१०॥
 देवोऽयं भगवान्भानुरन्तर्धामी सनातन ।
 यो ब्रूते सर्ववस्तूनां तत्त्वं ज्ञात्वा नान्यथा ॥११॥
 अत श्रद्धा हि महती श्रोतु त्वद्ब्रह्मामृतम् ।
 अस्माकं वर्तते सूत रोमहर्षण सुप्रत ॥१२॥
 नरवा सूर्य पर धाम श्रग्वज्जु सामरूपिणम् ।
 त्रिसत्य त्रिजगद्योनि त्रिमार्ग च त्रितत्त्वगम् ॥१३॥
 पुराण सप्रवदयामि सौर शिवव्याश्रयम् ।
 यच्छ्रुत्वा मनुज शीघ्र पापवञ्चुकमुत्सृजेत् ॥१४॥

उन महान् आत्मा वाले भगवान् वद व्यास जी ने जब भी बहुत स्तुति है किन्तु तो भी त्रिपथ पर धारित अम होन से उद्धान आगों

हो पुराणो मे योजित किया था ॥८॥ हे महामुने ! यद्यपि अन्य जो भी पुराणों को आप ने कहा है किन्तु वे सब पार्वती के वान्त की भक्ति में समर्थ नहीं हैं और यह सौर पुराण तो उनकी भक्ति से युक्त है ॥९॥ यज्ञ तप दान और धर्मों से बिना भगवान् शिव की भक्ति के जीवों की मुक्ति नहीं हुआ करती है—ऐसा ही हम लोग मुन रहे हैं ॥१०॥ यह भगवान् भानुदेव अन्तर्यामी और सनातन हैं जो कि समस्त वस्तुओं के तत्वों को जानकर ही बोलते हैं और कभी भी अन्यथा नहीं बोलते हैं ॥११॥ इसी कारण से आपने मुझ कमल के द्वारा इस अमृत के श्रवण करने की हे श्री मृत जी ! हे रोमहर्षण जी ! हम लोगों के हृदय में बड़ी भारी श्रद्धा समुत्पन्न हो रही है क्योंकि आप तो गुन्दर प्रती को धारण करने वाले महा पुण्य हैं ॥१२॥ श्री सूत जी ने कहा—

ऋगु-यजु और साम वेद के स्वरूप धारण करने वाले तीनों कालों में सत्य स्वरूप माने—तीनों जगतों के समुत्पन्न करने के कारण-परमधाम-तीनों मार्गों वाले और तीनों तत्वों के ज्ञाता भगवान् सूर्य के नमस्कार करके भगवान् शिव की पद्मा का आश्रय रूप सूर्य पुराण को मैं बतलाऊंगा जिस पुराण का श्रवण करने मनुष्य इस लोक में बहुत ही शीघ्र पापों की वञ्चुनी का परिहाय कर दिया करता है अर्थात् समस्त पापों के आवरण से विमुक्त हो जाता है ॥१३-१४॥

इलोकद्वय पठेद्यत्तु इलोकमेकयापि वा ।

श्रद्धावान्पापकर्माग्निं स गच्छेत्सन्निवृत्तः पदम् ॥१५॥

पौराणी वृत्तिमाश्रित्य य जीवन्ति द्विजातयः ।

तन्मण्डलं विनिर्भिद्य तन्मायुज्यं श्रवन्ति ते ॥१६॥

वक्ता यत्र रवि माहाच्छास्त्रज्ञा तस्य मुक्तो मनुः ।

माहात्म्यं कथ्यते तस्मिन्निर्वर्ण्यमानधिकं द्विजा ॥१७॥

एतद् पुराणं यच्चैव धामिनायाममूयवे ।

द्विजाय श्रद्धाघानाय शिर्वर्ण्यविबुद्धये ॥१८॥

आसीन्मनुः शूद्रान्तो वर्तते यो महानपा ।

तस्मादप्यहमागं तस्मिन्निर्वर्ण्यं यन्मे यमो ॥१९॥

प्रतर्दनस्य नृपतेर्यज्ञे विपुलदक्षिणे ।

तत्त्व विचारयामासुर्मिथो यत्न महर्षय ॥२०॥

अशक्तास्ते महाभागा भृग्वाद्यास्तत्त्वनिर्णये ।

एर स्थितेषु विप्रेषु मायया मोहितात्मसु ॥२१॥

इस सौर पुराण की इतनी बड़ी महिमा है कि जो कोई भी इसके दो श्लोक अथवा केवल एक ही श्लोक का पाठ कर लिया करता है और परम श्रद्धा से युक्त होता है वह भवे ही कितना ही पापों के कर्मों का करने वाला क्यों न हो इसके प्रभाव से सीधा पापों से मुक्त होकर भगवान् सूर्य देव के पद को प्राप्त हो जाया करता है ॥१५॥ जो द्विजाति गण पुराण पाठो एव प्रवचनों की वृत्ति को धारण कर के अपने जीवन का निर्वाह किया करते हैं वे उससे मण्डल का भेदन करके उनके सायुज्य की प्राप्ति किया करते हैं ॥१६॥ हे द्विजो ! जहां पर स्वयं साक्षात् रविदेव यत्ना है और उनके श्रोता उनके सुत मनु हैं उस भगवान् शम्भु के माहात्म्य को कहा जाता है क्योंकि इससे अधिक अन्य कुछ भी नहीं है ॥१७॥ यह पुराण ऐसी उत्तमता और परम गोपनीयता के रखने वाला है कि इसका श्रवण किसी परम धार्मिक और किसी को भी असम्मान करने वाले ऐसे पुरुष को ही कराना चाहिए जो द्विज हो और परम श्रद्धालु एव भगवान् शिव के चरणों में ही अपनी बुद्धि को समर्पित कर देने वाला हो ॥१८॥ मनु भगवान् सूर्य के सुत थे जो महान् तपस्वी हैं । वह महागण किसी समय में कामिना नामक वन में गये थे ॥१९॥ जहां पर विपुल दक्षिणा वाले प्रतर्दन राजा के यज्ञ में महर्षि लोग परस्पर में तत्त्व का विचार कर रहे थे ॥२०॥ वे सब महाभाग भृगु आदि तत्त्व के निर्णय करने में असमर्थ हो रहे थे और बड़ी रू माया में मोहित आत्मा करने वाले सब विप्रगण इसी प्रकार में समय में मग्न स्थित होकर बैठे थे । ॥२१॥

गमयाविष्टचित्तेषु वागभृदशरीरिणी ।

तप बुद्धय विप्रेन्द्रारतपोऽज्ञानाविनिवर्हणम् ॥२२॥

कित्त्विय जाने हो गये हैं ॥२९॥ ये सब भी विश्व के अन्तर्यामी विभु
मुझ परम देव का दर्शन प्राप्त करें ॥२८॥

इति दृष्ट्वा रत्रि साक्षात्प्रत्यक्ष पुरतः स्थितम् ।

मेने कृतायंमात्मानं मनुर्व्वस्वतस्नदा ॥२९॥

आत्मन्यात्मानमाधाय सर्वभावेन स यमी ।

स्तुतिं चकार स मनुमुनिभिः सह सुव्रतः ॥३०॥

नमो नमो वरेण्याय वरदायाशुमालिने ।

ज्योतिमय नमस्तुभ्यमनन्तायाजिताय ते ॥३१॥

त्रिलोकचक्षुषे तुभ्य त्रिगुणायामृताय च ।

नमो धर्माय ह्येसाय जगज्जननहेतवे ॥३२॥

नरनारीशरीराय नमो मीडुष्टमाय ते ।

प्रज्ञानायाल्लिलेशाय सन्धाध्याय क्षिमूर्तये ॥३३॥

नमो व्याहृतिरूपाय त्रिलक्षायाऽऽशुगामिने ।

ह्यंशदाय नमस्तुभ्य नमो हरितवाहवे ॥३४॥

एकलक्षविलक्षाय बहुलक्षाय दण्डिने ।

एकसंस्थाद्विमस्थाय बहुसंस्थाय ते नमः ॥३५॥

श्री सून जी ने कहा—उस समय में वीवस्वत मनु ने इस प्रकार
मे साक्षान् भगवान् रत्रि कह अपने मामने स्थित हुए प्रत्यक्ष रूप से
दर्शन किया तो उन्होंने अपने आपको पूर्णतया कृतायं मान लिया
था ॥२९॥ उन मुचन मनु जो बहुत ही मयमी थे अपनी आत्मा मे
आत्मा का आधान करके सर्वभोग से उन सब मुनियों के साथ सुख्य
भगवान् का स्तवन किया था ॥३०॥ मनुजी ने कहा—वरदान प्रदान
करने वाले—अशु माली और वरेण्य धारके लिये शारम्भार नमस्कार
है । हे ज्योतिर्मय ! अनन्त एव अजित आपकी सेवा मे नमस्कार
है ॥३१॥ तीनो लोकों के चक्षु स्वकृण-त्रिगुण और अमृत आपका
सन्निधि मे प्रणाम गर्वगिन है । दम सम्पूर्ण जगत् के जनन के कारण
धर्म और दम धारके लिये नमस्कार है ॥३२॥ नर और नागे दोनों

के स्वरूप वाले मन्त्रके ईश-प्रज्ञान रूप सात अश्वो वाले-त्रिमूर्ति और भी दुष्टम के लिये हम सबका नमस्कार है ॥३३॥ व्याहृतियों के स्वरूप वाले-आशुगमन करने वाले त्रिलक्ष-हरित बाहुओं वाले और हर्यश्व आपके लिये नमस्कार है ॥३४॥ एक लक्ष विलस बहुलक्ष-दण्डो-एक सस्य द्विसस्य और बहु सस्य आपके लिये नमस्कार है ॥३५॥

शक्तित्रयाय शुभलाय रवये परमेष्ठिने ।

त्व शिवस्त्य हरिर्देव त्व ब्रह्मा त्व दिवस्पति ॥३६॥

त्वमोकारो बगट्कारः स्वधा स्वाहा त्वमेव हि ।

त्वामृते परमात्मान न तत्पव्यामि दैवतम् ॥३७॥

एव स्तुत्या मनु ग्राह भगवन् न त्रयोमयम् ।

मृतिभि सह धर्मात्मा सम्यग्दर्शनकाङ्क्षिभिः ॥३८॥

किं तच्छ्रेयस्कार तत्त्व वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ।

कस्माद्विषयमिदं जातं कस्मिन्वा लयमेप्यनि ॥३९॥

कस्य ब्रह्मादयो देवा यद्येति श्रन्ति सर्वदा ।

तदेकमथवाऽनेकमृभय वा यद प्रभो ॥४०॥

येन वा ज्ञायते सम्यग्मथश्च तृतीतिवत् ।

जाते तस्मिस्तु किं रूपं तस्य ज्ञानं किमात्मकम् ॥४१॥

परितं तस्य किं तात किं तीर्थं तदधिष्ठितम् ।

वेषामनुग्रहस्तस्य नीर्ये निवसना प्रभो ॥४२॥

लक्षणं च पुराणानां यतानां च क्रमो यथा ।

वर्णानामाश्रानां च वर्णाचारविधिः कथम् ॥४३॥

श्राद्धं कथं वा क्रियते प्रायश्चित्तविधिः कथम् ।

एतत्सर्वं हि भगवन्पृष्टं वक्तुमिहार्हंति ॥४४॥

एवं मनोर्वचं श्रुत्वा भगवान्भास्वरो द्विजाः ।

यत्पृष्टं तद्गोपेण वक्तुं समुपचक्रमे ॥४५॥

तीन पतिशो वाले-शुभ-परमेष्ठी और रविदेव के लिये नमस्कार है । हे भगवन् ! आप ही निव है-आप ही हरि हैं-आप ही ब्रह्मा हैं

और आप ही दिवस्पति हैं ॥३६॥ आप ही ओङ्कार हैं वषट्कार है-और आप ही स्वाहा तथा स्वधा हैं । आपके बिना उन परम देवत परमात्मा को नहीं देख पाता हूँ ॥३७॥ इस रीति से मनु देव ने सूर्य देव का स्तवन करने जो कि भगवान् नयीमय हैं भलीभाति दर्शन का आकाङ्क्षा रखने वाले मुनियों के ही साथ में उन भगवान् से कहा-॥३८॥ मनुदेव ने प्रार्थना की—हे भगवन् ! वह कौनसा श्रेय करने वाला तत्त्व है जो कि वेदान्तो में प्रतिष्ठित है ? किस से यह इतना विशाल विश्व समुत्पन्न हुआ है अथवा फिर अन्त में किस में जाकर यह लय को प्राप्त हो आया करता है ? ॥३९॥ ये समस्त ब्रह्मा आदि देवता सर्वदा किस के घटा में स्थित रहा करते हैं । हे प्रभो ! आप हम लोगों को कृपा करके यह बतलाइये कि वह तत्त्व एक है या अनेक या अनेक स्वरूप वाला है अथवा दोनों ही प्रकार का है ? ॥४०॥ यह अर्थ भलीभाति किसके द्वार, जाना जाया करता है और उसका ज्ञान हो जाने पर किस प्रकार का रूप होता है तथा उसका ज्ञान किस स्वरूप वाला है ? ॥४१॥ हे तात ! उसका क्या चरित है और कौनसा तीर्थ उसमें अधिष्ठित है ? हे प्रभो ! और उसके तीर्थ में निवास करने वाले किन के ऊपर उनका अनुग्रह हुआ करता है ? ॥४२॥ पुराणों का व्रक्षण और व्रतो का क्रम तथा वर्णों का और आश्रमों का वर्णाचार विधि किस प्रकार की होती है ? ॥४३॥ हे भगवन् ! श्राद्ध कैसे किया जाता है तथा श्राद्धिचरितों के करने का क्या विधान है ? यह सभी हमारे पूछने का विषय है उन गवता आप वर्णन करने के लिये परम गुणोभ्य महापुरुष है ॥४४॥ हे द्विजो ! इस प्रकार से इस वचन को भगवान् भास्कर ने श्रवण किया था और जो भी बुद्ध उन में पूछा गया था वह सभी वचन करना उन ने आरम्भ कर दिया था ॥४५॥

॥ शिव महिम वर्णन ॥

दृगु पुत्र प्रवक्ष्यामि तत्त्वं यत्र प्रतिष्ठितम् ।
 पुराणेऽस्मिन्महाभाग सर्ववेदार्थसंग्रहे ॥१॥
 तत्तत्त्वं यद्भूगवतो रूपमीशस्य शूलिनः ।
 विश्वं तेनाविल व्याप्तं नान्येनेत्यव्ययीच्छ्रुतिः ॥२॥
 स एवाऽऽत्मा समस्तानां भूतानां मनुर्जाधिर ।
 चैतन्यरूपो भगवान्महादेवः सहोमया ॥३॥
 एकोऽपि बहुधा भाति लीनया वैयलः शिवः ।
 ब्रह्मविष्ण्वादिभिरूपेण देवदेवो महेश्वरः ॥४॥
 पृष्टो ब्रह्मादिभिर्देवैः कस्तत्र द्रव्योऽन शकरः ।
 अग्रवीदहमेवैको नान्यः कश्चिदिति श्रुतिः ॥५॥
 आत्मभूतान्महादेवान्नीत्यादिग्रहस्त्रिणः ।
 आदिसर्गे ममुद्भूतो ब्रह्मविष्णु मुरोत्तमौ ॥६॥
 तमेक परमः समानमादिकर्तृमीश्वरम् ।
 माहुर्यंहुषिध गजशा इन्द्रं गितमिति श्रुतिः ॥७॥

श्री भानुदेव ने कहा—हे पुत्र ! जिसमे जो भी शिव प्रतिष्ठित है
 उसको मैं बताऊंगा तुम गावधान होकर ध्यान करो । यह पुराण
 है महाभाग । सभी वेदों के अर्थों का एक संग्रह स्वल्प है ॥१॥ तुम्हीं
 ईश भगवान् का जो रूप है यही परम तत्त्व है । उसके द्वारा ही मनुजों
 विश्व व्याप्त है अथ विभी के द्वारा नहीं है—तेजा ही श्रुति न
 समझाया है ॥२॥ है मनुजों के व्याप्ति । यह ही मकर भूतों की
 आत्मा है और जगदम्बा उमादेवी के साथ भगवान् महादेव शंकर
 स्वल्प बोले है ॥३॥ केवल के एक ही शिव भवती सीता ने बहुत
 प्रकार के रूपों में लोभित हुआ करने ? । यही स्वयं ब्रह्मा-विष्णु
 मर्दि के स्वल्प के द्वारा देवों के भी देव महेश्वर सर्वत्र विराजमान
 विराट् शिव करने है ॥४॥ यह बात ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा
 भगवान् मनुजों में पूजा कदा का कि हे देव ! शिव शिव है । तुम स्वयं

म उनसे उन्होंने स्वयं ही कहा था कि मैं एक ही हूँ और अन्य कोई भी नहीं है—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ॥५॥ आदि भूत और लीला से विग्रह तथा रूप के धारण करने वाले महादेव से ही जो आत्म भूत हैं, आदि सर्ग काल में सुरु मे उत्तम ब्रह्मा और विष्णु ये दोनों समुत्पन्न हुए थे ॥६॥ उन्हीं एक आदि कर्त्ता ईश्वर परमात्मा को उसके ज्ञान रखने वाले उनको बहुत प्रकार का कहते हैं । उन्हीं को इन्द्र तथा मित्र भी कहा करते हैं—ऐसी श्रुति है ॥७॥

न तस्मादधिक कश्चिन्नाणीयानापि कश्चन ।

तेनेदमखिल पूर्णं शक्रेण महात्मना ॥८॥

मुमुक्षुभिः सदा ध्येयं शिवं एको निरञ्जनः ।

सर्वमन्यपरित्यज्य मुक्त एव विमुच्यते ॥९॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रायणे कारणं परम् ।

शिवभक्तिः सदा सत्यं नान्यत्किञ्चन भूतले ॥१०॥

त्रिलोका सुखकामो यस्तेन पूज्यः सदाशिवः ।

शिवभक्तिमृते मौल्यं कृतं स्यात्तार्यदाहनाम् ॥११॥

शिवभक्त्या धनं विद्यां यशं शत्रुक्षयस्तथा ।

प्राप्यते रिजयं सर्वं सत्यमतत्र सशयं ॥१२॥

रोगक्षयस्तथाऽऽरोग्यं यद्यद्वि मनसेच्छति ।

जनस्तत्सर्वं मानोति वेदस्य वचनं यथा ॥ १३॥

यदा ललाटे धात्रा हि लिखितं सौख्यमुत्तमम् ।

शिवभक्तौ तदा युद्धिर्जायते नान्यथा ध्रुवम् ॥१४॥

उनसे अधिप भी कोई नहीं है और उनसे अणीयान् अर्थात् मूर्ख भी कोई नहीं है । उन्हीं महात्मा भगवान् वाङ्मूर के द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व परिपूर्ण हो रहा है । तात्पर्य यह है कि हम विश्व में जो भी कुछ जड़-चेतन दिग्गसाई देना है वह सभी उन्हीं का स्वरूप है ॥८॥ जो मुनि की अभितापा रत्न छात्र प्राणी हैं उनके द्वारा एक निरञ्जन भगवान् शिव का ही सदा ध्यान करना चाहिये और अन्य सबका त्याग कर देना चाहिये । इससे जो मुक्त होता है वह भी विमुक्त हो जाता है ॥९॥ धर्म अर्थ-काम और मोक्ष के प्रायण में शिव भगवान्

ही परम कारण स्वरूप है । भगवान् शिवजी भक्ति सर्वदा सत्य है और इसके सिवाय भूतल में अन्य कुछ भी नहीं है अर्थात् यही एक परमसार वस्तु है ॥१०॥ जो इस त्रिलोकी में सुख की कामना करने वाला है उसको सदा भगवान् शिव की पूजा करनी ही चाहिए । भगवान् शिव की उपासना के बिना सब देहधारियों को सुख वहाँ पर है अर्थात् सुख ही नहीं सकता है ॥११॥ भगवान् शिव की भक्ति के द्वारा ही धन-विद्या-यश-शत्रु-नाश-विजय सभी कुछ प्राप्त किया जाता है—यत्र सर्वथा सत्य है और इसमें लेशमात्र भी सत्य नहीं है ॥१२॥ रोगों का क्षय आरोग्य आदि जो-जो भी प्राणी मन से चाहा करता है मनुष्य उन सभी को प्राप्त कर लिया करता है—ऐसा ही वेद के वचन के द्वारा प्रतिपादित किया जाता है ॥१३॥ जब ऐसी ही शिव भक्ति की महिमा है तो मनुष्य उसे क्यों नहीं किया करते हैं—इस आश्चर्य का समाधान बताया जाता है कि यदि विधाता ने सलाह में जिस समय में परमोत्तम मुण्य की प्राप्ति का उत्सव कर दिया है तो ही मनुष्यों की बुद्धि में शिव की भक्ति समुत्पन्न हुआ करती है अन्यथा निश्चित रूप से ऐसी बुद्धि ही नहीं हुआ करती है ॥१४॥

न तस्य कर्मकायं वा बन्धमुक्ती महेशितुः ।

आनन्दरूपया गौर्या ऋडति स्म महेश्वरः ॥१५॥

अक्षर परम व्योम शैवं ज्योतिरनामयम् ।

यस्तन्न वेद किं वेदग्राह्यस्य भविष्यति ॥१६॥

नान्यो वेद्यः स्वयं ज्योती रद्र एको निरञ्जनः ।

तस्मिज्जातेऽखिलं जातमित्याहुर्व देवादिनः ॥१७॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शक्रश्चान्ये दिवोकसः ।

अष्टाप्युपायैर्विविधैः शंभोर्दशं नकाङ्क्षिणः ॥१८॥

न दानेनं तपोभिर्वा नाश्वमेयादिभिर्मयै ।

भक्त्यैवानयया राज्ञ्ञायते भगवाञ्जितः ॥१९॥

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा नृ ।

भर्गाद्विश्वस्य भरणाद्विश्वयोनेरुमापते ॥२०॥

तस्य ज्ञानमयी शक्तिरव्यया गिरिजा शिवा ।

तया सह महादेव सृजत्यवति हन्ति च ॥२१॥

उन महेश्वर भगवान् का न तो कर्म करने के योग्य है अर्थात् कोई भी कर्म नहीं करना है और न उनका लक्ष्य तथा मुक्ति ही है । महेश्वर भगवान् आनन्द स्वरूप वाली जगदम्बा गौरी के साथ क्रीड़ा किया करते थे ॥१४॥ भगवान् शिव अक्षर-परम ध्योम अन्तमय जैव ज्योति हैं । जो उनको नहीं जानता है उस ब्राह्मण या वेदों से क्या फलप्राप्त होगा ॥१५॥ इस लोक में अन्य कोई भी जानने के योग्य नहीं है । केवल एक स्वयं ज्योति निरञ्जन रत्न भगवान् ही जानने के योग्य सत्त्व हैं । वेदों के वाद्य करने वाले लोग यही कहते हैं कि उस ज्योति के ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सभी कुछ का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है ॥१७॥ मैं ब्रह्मा-विष्णु इन्द्र तथा अन्य देवगण हूँ । आज भी विविध उपायों के द्वारा प्राणी भगवान् राम्भु के दर्शन की आकाङ्क्षा रखने वाले हैं ॥१८॥ भगवान् शिव का ज्ञान हे राजन् ! केवल एक अनन्य भक्ति द्वारा करता है अन्य कोई भी इसके प्राप्ति करने का नहीं है । दान-तप और अभ्यस्य आदि बड़े-बड़े मय भी इसके साधन नहीं हो सकते हैं ॥१९॥ भर्ग-विश्व के भरण विश्व की मूर्ति और उमा के स्वामी भगवान् शिव का स्थल है जहाँ पर मनके ही गाय बाणी भी विवृत हो जाया करती हैं । अर्थ यह है कि यही मन-बाणी और युक्ति विनी की भी पटुष नहीं है ॥२०॥ उनकी ज्ञानमयी शक्ति अव्यया गिरिजा शिवा ही है । उन्हीं के साथ महादेव जगत् का सृजन-पालन और गहार किया करते हैं । तात्पर्य यह है कि शिव की शक्ति ही की महिमा से सभी कुछ हुआ करता है ॥२१॥

आचक्षते तयोर्भेदमज्ञा न परमार्थतः ।

अभेदं शिवयो- मिद्धो वल्लिदाहययोरिव ॥२२॥

माया मा परमा शक्तिरक्षरा गिरिजाव्यया ।

मायाविद्वात्मनो रश्मिज्जारा लम्बुनी जयेत् ॥२३॥

स्वात्मन्यवस्थितं देवं विश्वस्यापि न भीश्वरम् ।
 भक्त्या परमया राजञ्ज्ञात्वा पार्श्वं विमुच्यते ॥२४॥
 सकलं तस्य भासैव भाति नान्येन श करः ।
 तस्मिन् प्रकाशमाने हि नैव भान्त्यनलादयः ॥२५॥
 तास्मिन् महेश्वरे गूढे विद्याविद्ये क्षराक्षरे ।
 विधातरि जगन्नाथे विश्वं भाति न वस्तुतः ॥२६॥
 तास्मिन् महेश्वरे विश्वमोतं प्रोतं न संशयः ।
 तरिमञ्ज्जातेऽखिलं पार्श्वं मुच्यते मनुजेश्वरः ॥२७॥
 ब्रह्मविष्णवादयो देवा मुनयो मनवस्तथा ।
 सर्वे क्रीडनकास्तस्य देवदेवस्य घूलिनः ॥२८॥

जो अथा पुरुष हैं वे ही उन दोनों का भेद बतलाया करते हैं कि शिव और उमा दो भिन्न शक्तियाँ हैं परमार्थ रूप से शिव और शिवा का भेद नहीं होता है—यह परम सिद्ध सिद्धान्त है जैसे अग्नि और मे कोई भेद नहीं हुआ करता है क्योंकि जो अग्नि है वह दाहक भी है ॥२२॥ उमा साक्षात् माया स्वरूपिणी हैं। वही परमात्मिका है। वह अकारा-अव्यया गिरिजा है। वह माया विद्वद् स्वरूप वाते है। उनका ज्ञान प्राप्त करके प्राणी अमृती हो जाता करता है ॥२३॥ हे राजन् ! अपनी ही आत्मा के अन्दर अन्तर्यामी के स्वरूप से विद्यमान है अर्थात् बहुत ही निकटतम है। विश्व में भी सर्वत्र व्यापी है ऐसे देव ईश्वर है। उनका ज्ञान परमोत्तम भक्ति के ही द्वारा होता है और उसको पाकर यम की पाशों से छुटकारा पा जाता करता है ॥२४॥ उनकी दीप्ति से इस सबका भान होता है अन्य के द्वारा यह भागित नहीं हुआ करता है ऐसे ही भगवान् शङ्कर हैं। उनके प्रपादमान होने पर तेजस्वी भी परम तेजः सम्पन्न अग्नि आदि कुछ भी प्रकाश नहीं दे सकते हैं ? अर्थात् इस तेज के सामने सभी अन्य तेज निर्गन्तु मे हो जाता करते हैं ॥२५॥ उन परम गूढ़-विद्या और अविद्या रण वाते—एक अक्षर ह्य-गिरिजा-जगन् के स्वामी महेश्वर प्रभु मे

वास्तविकता से यह विश्व भान नहीं किया करता है ॥२६॥ उस विश्वेश्वर में महेश्वर में यह सम्पूर्ण विश्व ओन-प्रोत है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है । उन प्रभु का ज्ञान हो जाने पर मनुज समस्त पाशों से विमुक्त हो जाया करता है ॥२७॥ उन्हीं देवों के भी देव भगवान् शूली के ये सब ब्रह्मा-विष्णु आदि समस्त देवगण-मुनिमण्डल तथा मनु प्रभृति सब गिनौने हैं ॥२८॥

स एवँ को न चानेको न द्विरूप कदाचन ।

तस्याऽऽज्ञयाऽखिलं विश्वं वर्तते तन्नियन्त्रितम् ॥२९॥

आदिसर्गे महादेवो ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ।

दक्षिणाङ्गाद्विरूपाक्षं सृष्ट्यर्थं शीलया किल ॥३०॥

तस्मै वेदान्पुराणानि दत्तवानग्रजन्मने ।

वासुदेव जगद्योनि सत्त्व द्रिक्त सनातनम् ॥३१॥

असृजत्पालनार्थं च वामभागान्हेश्वरः ।

हृदयात्काल रुद्रारय जगत्संहारकारकम् ॥३२॥

असृजद्योगिना ध्येयो निर्गुणस्तु स्वयं शिवः ।

विश्वं तस्माद्वि सभूत तस्मिंस्तिष्ठति शक्रे ॥३३॥

लयमप्यति तत्रैव त्रयमेतत्स्वलीलया ।

॥ एवाऽऽश्नोति महादेव सर्वेषामेव देहिनाम् ॥३४॥

ज्ञानेन भवितुं युक्तेन ज्ञाऽऽद्यः परमेश्वरः ।

न पश्यामि महादेवादधिकं देवतान्तरम् ॥३५॥

ये प्रभु सर्वदा एक ही हैं और कभी भी दो रूप वाले नहीं हैं और ये अनेक नहीं हैं । उनकी आज्ञा में यह सम्पूर्ण विश्व उनके ही द्वारा नियन्त्रित रहा करता है । २९॥ मर्ग के आदि काल में प्रभु ने ब्रह्माजी का गृहण किया था । उस समय में विरूपाक्ष प्रभु ने शीला में ही मृष्टि की रचना करने के लिये अपने दाहिने अङ्ग से इनका गृहण किया था ॥३०॥ फिर उनको जो वि अग्रजन्म ये सब वेदों को और पुराणों को प्रभु ने दे दिया था । इनके अनन्तर रचना की हुई मृष्टि के

पालन करने के लिये सत्त्वादित्त जगत् की योनि-सनातन वामुदेव की रचना की थी ॥३१॥ महेश्वर भगवान् ने विष्णु भगवान् की रचना अपने बाये भाग में की थी और अपने हृदय के भाग से काल रुद्र नाम वाले देव की रचना की थी जो इस जगत् के सहार को करने वाले हैं ॥३२॥ योगियों के ध्यान करने के योग्य निर्गुण शिव भगवान् ने स्वयं विश्व का सृजन किया था तथा उन्हीं से यह समुत्पन्न हुआ था उसी में शङ्कर स्थित भी रहा करते हैं ॥३३॥ ये तीनों उनकी ही सीला से उन्हीं में लय को प्राप्त हो जायेंगे । वे ही महादेव सब देहधारियों की आत्मा हैं । वे परमेश्वर भक्ति से युक्त ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य होते हैं । मैं तो महादेव भगवान् से अधिक अन्य किसी भी देवता को नहीं देखता हूँ ॥३४-३५॥

वेदा अपि तमेवार्थमाहुः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।

य प्रपश्यन्ति विद्वांसो योगिनः क्षपिताशयाः ।

नियम्य करणग्रामं स एवाऽऽत्मा महेश्वरः ॥३६॥

ग्रहाविष्ण्वन्द्रचन्द्राद्या यस्य देवस्य विकराः ।

यस्य प्रसादाज्जीवन्ति स देव पार्वतीपति ॥३७॥

न जानन्ति परं भावं यस्य ग्रहादयः सुराः ।

अद्यापि न वयं विश्वं स देवस्त्रिपुरान्तकः ॥३८॥

शृण्वन्तु देवता सर्वा मत्तमस्मद्वचं परम् ।

नास्ति रूद्रान्महादेवादधिकं देवतं परम् ॥३९॥

न यथा ब्रह्मरोमाणि शृङ्गा न शशगस्तवे ।

न यथाऽस्ति वियत्पुण्यं तथा नास्ति हरात्परम् ॥४०॥

शिवमविनमृते यन्तु मुग्धमाप्नुमिहेच्छति ।

अजागलस्तनादेव स दुग्धं पातुमिच्छति ॥४१॥

महादेव विजानीयादहमस्मीति पण्डितः ।

अन्यत्किमस्मादप्यस्ति शतशः सुविहितैवे ॥४२॥

रवाम्भुयः अन्तर में वेद भी उठी की ही जड़ के रूप में बरसाते

हैं। येशों ने कहा था—अपित आशय वाले विद्वान् योगिगण जिसको देखा करते हैं और अपनी सब इन्द्रियो को नियमित कर लिया करते हैं वह ही महेश्वर भगवान् आत्मा हैं ॥३६॥ जिन देवेश्वर प्रभु के ब्रह्मा-विष्णु इन्द्र और चन्द्र प्रभृति समस्त देवगण सिद्ध हैं और जिनके ही प्रसाद से ये सब जीवित रहा करते हैं वह पावन्ती के पति महादेव ही सर्वोपरि देवेश्वर हैं ॥३७॥ ब्रह्मादि देवगण भी जिसके प्रभाव को नहीं जानते हैं और अभी तक भी हम नोः भी उनके स्वप्न को नहीं समझा करते हैं वही देव त्रिपुरामुर के अन्त करने वाले हैं ॥३८॥ सब देवगण अब हमारा यह परम सत्य वचन श्रवण कर लेवें कि महादेव भगवान् रुद्र से अधिक अन्य कोई भी परम देव नहीं है और वही सर्वोपरि विराजमान् देव हैं ॥३९॥ जिस तरह से कर्म के रोम नहीं होते हैं और शश (खरगोध) के भस्त्व में सीग नहीं रहा करते हैं तथा जैसे आकाश में पुष्प नहीं होने हैं तात्पर्य यह है कि ये उपर्युक्त तीनो बातें असम्भव हैं ठीक उसी भाँति यह भी सत्य है कि हर भगवान् से पर कोई देवता नहीं है ॥४०॥ जो पुरुष भगवान् शिव की भक्ति के बिना ही इस लोक में सुख प्राप्त करने की इच्छा किया करता है उसकी यह इच्छा भी इसी तरह से समझना चाहिए जिस तरह से अजा के गले में होने वाले स्तन से कोई दूध पीने की इच्छा किया करते हों क्योंकि गले के स्तन से दूध कभी निकलता नहीं है और ऐसी इच्छा करना निरर्थक ही होती है। वैसे ही शिव भक्ति के बिना सुख भी नहीं पाया जा सकता है ॥४१॥ मैं पण्डित हूँ—अर्थात् ज्ञाता हूँ—इस भावना से महादेव प्रभु का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मुक्ति के लिये इसका ज्ञान करना परमावश्यक है कि अन्य भी कुछ उनके अतिरिक्त है क्या ॥४२॥

ब्राह्मी नारायणी रौद्री पूजयित्वा महेश्वरीम् ।

यत्प्रपश्यन्ति योगीन्द्रास्तद्विद्याच्छाङ्काकरं गदम् ॥४३॥

क्रमाच्चक्राणि चक्रम्य शङ्खिन्यामुपरि स्थितम् ।

यदभिष्यज्यते ज्योतिस्नाद्विद्याच्छाङ्काकरं पदम् ॥४४॥

देवयानपथं हित्वा पितृयाण तथोत्तरम् ।

गगनाद्यो रत्र. मूढमः शकरस्य स वाचकः ॥४५॥

विश्वतश्चक्षुरोक्षानस्त्रिगुली विश्वतोमुखः ।

जनकः सर्वभूतानामेक एव महेश्वरः ॥४६॥

बालाग्रमात्रं हृत्पद्मे स्थित देवमुमापतिम् ।

येऽनुपश्यन्ति विद्वांसरतेषां शान्तिर्हि शाश्वती ॥४७॥

पृथिव्या तिष्ठति विभुः पृथिवी वेत्ति नैव तम् ।

रूपं च पृथिवी यस्य तस्मै भूम्यात्मने नमः ॥४८॥

अप्सु तिष्ठति नैवाऽऽरतं विदुः परमेश्वरम् ।

आपो रूपं च यस्यैव नमस्तस्मै जलात्मने ॥४९॥

ग्राही-नारायणी-रोद्री महेश्वरी शक्ति को पूज करके योगीन्द्र लोग जिसको देखा करते हैं उसी पदको शङ्कर यह जान लेना चाहिए ॥४३॥
राम में चक्र चक्रमण करके शङ्खिनी के ऊपर स्थित जो ज्योति अभिव्यक्त होती है । उसी को शङ्कर भगवान् का पद (स्थान) समझना चाहिए ॥४४॥ देवयान पथ का त्याग करके उत्तर में पितृयाण है । यहा पर गगन से जो मूढम रव होता है वही भगवान् शङ्कर का वाचक है ॥४५॥
विश्व तन्मादा-ईशान-त्रिगुली विश्वतोमुख और समस्त भूतो के जनक एक ही भगवान् महेश्वर हैं ॥४६॥ हृदय रूपी कमल में बालके अवभाग के परिमाण वाले उमापति देव स्थित रहा करते हैं । जो विद्वान लोग उनका दर्शन किया करते हैं उनको शाश्वती शान्ती हुआ करनी है ॥४७॥
विभु इसी पृथ्वी पर स्थित रहा करते हैं किन्तु यह पृथ्वी उनको नहीं जानती है । जिसका यह पृथ्वी रूप है उन भूम्यात्मा के लिये नमस्कार है ॥४८॥
वे जलों में भर गमवास्थित रहा करते हैं किन्तु जो उन परमेश्वर को नहीं पहिचानते हैं । वे आप (जल) त्रिवरा स्वरूप है उन जलात्मा प्रभु के लिये नमस्कार है ॥४९॥

योऽग्नी तिष्ठत्यमेयात्मा न त वेत्ति ब्रह्मचरः ।

अग्नी रूपं भवेत्तरय तरमे यज्ञात्माने नमः ॥५०॥

तिष्ठत्यजस्र यो वायौ न वायुर्वेत्ति तं परम् ।
 वायुयंस्य भवेद्रूप तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥५१॥
 व्योम्नि तिष्ठति यो नित्य व्योम वेत्ति न ते हरम् ।
 व्योम यस्य भवेद्रूप तस्मै व्योमात्मने नमः ॥५२॥
 सूर्ये तिष्ठति यो देवो न सूर्यो वेत्ति शकरम् ।
 यस्य सूर्यो भवेद्रूप तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥५३॥
 यश्चन्द्रे तिष्ठति विभुश्चन्द्रो वेत्ति न शाश्वतम् ।
 चन्द्रो यस्य भवेद्रूप तस्मै चन्द्रात्मने नमः ॥५४॥
 यजमनि तिष्ठति यो न त वेत्ति कदाचन ।
 यजमानोऽपि यद्रूप यजमानात्मने नमः ॥५५॥
 त्वत्तो वयं समुद्भूतास्त्वय्येव विलयस्तथा ।
 प्रमाणपद्मारूढास्त्वत्प्रसादाद्वृषव्वज ॥५६॥
 एव वेदस्तुतिं श्रुत्वा भगवान्गिरिजापति ।
 प्रत्यक्ष समभूतोपा वेदाना मनुजाधिप ॥५७॥
 सूर्यकोटिप्रतीकाशः सहस्राशः सहस्रपात् ।
 सहस्रशीर्षा पुरुष सूर्यसोमाग्निलोचन ॥५८॥
 स्थूलास्थूलतरः स्थूल सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरः परः ।
 वेदानुवाच भगवान्देवदेवो महेश्वर ॥५९॥

जो अभेयात्मा अग्नि में विराजमान रहा करते हैं और वह अग्नि उनका ज्ञान ही नहीं रखता है । उन अग्नि के स्वरूप वाले प्रभु अन्यात्मा के लिये नमस्कार है ॥५०॥ जो निरन्तर वायु में स्थित रहा करते हैं उन परमेश्वर को यह वायु नहीं जानता है । वायु जिनका रूप होता है उन वाय्वात्मा के लिये नमस्कार है ॥५१॥ जो नित्य ही व्योम में रहा करते हैं और उन हरको यह व्योम नहीं जानता है । यह व्योम उनका रूप होता है उन व्योमात्मा प्रभु के लिये नमस्कार है ॥५२॥ जो देवेश्वर सूर्य मण्डल में विद्यमान रहा करते हैं किन्तु सूर्य देव म्यपि उन शङ्कर भगवान् का ज्ञान नहीं रखते हैं । सूर्य जिनका रूप होने हैं उन सूर्यात्मा

प्रभु के लिये नमस्कार है ॥५३॥ जो चन्द्रमा मे स्थित रहते हैं और चन्द्र उन शाश्वत प्रभुको नहीं पहिचानते हैं किन्तु चन्द्रमा जिनका रूप है उन चन्द्रात्मा प्रभु की सेवा मे हमारा प्रणाम है ॥५४॥ वे यजमान ही एक मे भी विराजमान रहा करते हैं किन्तु यजमान की उनकी स्थिति का ज्ञान नहीं होता है वह यजमान भी उनका ही एक स्वरूप होता है अतः उस यजमानात्मा प्रभु के लिये हमारा प्रणाम है ॥५५॥ हे वृष ध्वज ! हम लोग सब आप से समुद्धन हुए हैं और आप मे ही विलय को प्राप्त होंगे । आपके ही प्रसाद मे हम सब प्रमाण पद पर समारूढ हुए हैं ॥५६॥ भगवान् भानु देव ने कहा—इस प्रकार से वेदो के द्वारा की हुई स्तुति का श्रवण करके भगवान् गिरिजा के स्वामी हेमनु जाधिय ! फिर उन वेदो के सामने प्रत्यक्ष हो गये थे ॥५७॥ करोड़ो सूर्यो के साप्ताह दीप्ति वाले—सहस्र नेत्रो से पुष्प-महस्र चरणों से समन्वित-सहस्र शीपों से सम्पन्न पुरुष थे जिनके सूर्य और चन्द्र एव अग्नि लोचन थे ॥५८॥ वे म्यूल से भी अधिक म्यूल थे तथा सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म देवो के भी देव भगवान् महेश्वर वेदो से बोले—॥५९॥

मत्प्रसादाद्भविष्यच्च हे वेदा लोकपूजिताः ।

युष्मानाश्रित्य विप्रेन्द्राः कर्भं कुर्वन्ति नान्यथा ॥६०॥

ये युष्मान्समतिक्रम्य यत्किञ्चित्कर्म कुर्वन्ते ।

निष्फलं तद्भवेत्कर्म तेषां युष्मदेवज्ञया ॥६१॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यन्मोक्षसाधनम् ।

युष्मद्वचो नान्यदिति मत्वा धीरो न शोचन्ति ॥६२॥

ये वै युष्माननाहत्य शास्त्रं कुर्वन्ति मानवाः ।

निरये ते विपश्यन्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥६३॥

अथ ये त्रिषु लोकेषु न वेदादधिकं परम् ।

विद्यते नास्य सदेह इति दत्तो वरो मया ॥६४॥

युष्मत्पुत्रं परं स्तोत्रं ये पठिष्यन्ति वै द्विजाः ।

तेषामध्ययनं पुण्यं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥६५॥

प्रत्यक्ष सर्वभूतानामज्ञाना तद्विपर्यय ।

विद्वद्मायाविधातार द्विष्टादशरूपिणम् ॥३॥

भक्तिग्राह्य महादेव जानीह्यात्मनि सस्थितम् ।

आत्मभूते महादेवे योगिध्येये सनातने ॥४॥

भक्तिमास्थाय परमा वर निर्वाणमाप्नुहि ।

तीर्थयात्रा बहुविधा यज्ञाश्च विविधा कृता ॥५॥

येषा जन्मसहस्रेषु तेषा भक्तिर्भवेच्छिवे ।

अक्षय परमो धर्मो भक्तिलेणेन जायते ॥६॥

नास्ति तस्मात्परो धर्म इत्याहुर्वेदवादिन ।

धर्मो बहुविध प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदशिभि ॥७॥

श्री भानु देव ने कहा— जो यह ईश्वर का तेज है वह सर्वत्र गमन करने वाला है और यदि परम पद प्राप्त करने की इच्छा है तो केवल उनकी ही शरणागति में चले जाओ ॥१॥ वह ही समस्त भूतों में स्थित है । वह ज्ञानमय और तम से परे हैं—अक्षर—निर्गुण—शुद्ध—आनन्द और यह परम अन्यय है ॥२॥ यह ईश्वरीय तेज समस्त भूतों को प्रत्यक्ष है किन्तु जो अज्ञ पुण्य हैं उनको उससे विपर्यय होता है अर्थात् उनकी प्रत्यक्ष नहीं होता है । वे विद्वत् की माया के विधाता और छत्तीस स्वरूप वाले हैं ॥३॥ श्रीमहादेव भक्ति के द्वारा ग्रहण करने के योग्य हैं और उनको अपनी आत्मा में ही सस्थित समझ लेना चाहिए । वह आत्मा के भी आत्म के भी आत्मभूत है और सनातन तथा योगियों के द्वारा ध्यान करने के योग्य महादेव हैं ॥४॥ परम भक्ति में समास्थित होकर परम निर्वाण को प्राप्त करो । अनेक प्रकार की तीर्थों की यात्रा और बहुत तरह के यज्ञ किये हैं ॥५॥ ये जीवजन्म सहस्रों जन्म धारण कर लेते हैं तब नहीं भगवान् शिव के चरणों में भक्ति उत्पन्न हुआ करती है । भगवान् शिव की भक्ति के लेश मात्र में ही परम अक्षय धर्म होता है ॥६॥ वेदों का बचन करने वाले ज्ञाता

पुरुष यही कहते हैं कि शिव से पर कोई भी धर्म नहीं है। तत्त्व दर्शो मुनियो के द्वारा बहुत प्रकार का धर्म बतलाया गया है ॥७॥

सत्राक्षय परो धर्म शिवधर्म सनातन ।

यज्ञात्तीर्थज्जपादानाद्धर्म स्याद्वहुसाधन ॥८॥

साधनप्रार्थनावलेश परसंपत्तिदुःखद ।

य पुन शिवधर्मस्तु न साधनमपेक्षते ॥९॥

सचित जन्मासाहस्रैः पाप मेरूपम यदि ।

करोति भस्मसाच्छक्ति शमोरमिततेजस ॥१०॥

कुर्वन्नपि सदा पाप सकृदेवाचयेच्छिवम् ।

लिप्यते न स पापेन याति माहेश्वर पदम् ॥११॥

ये स्मरन्ति महादेव यदि पापरता अपि ।

ते विज्ञेया महात्मान इति सत्य ब्रवीम्यहम् ॥१२॥

नामानि च महेशस्य गृणस्त्यजानतोऽपि वा ।

तेषामपि शिवो मुक्ति ददाति किमत परम् ॥१३॥

अत्राह सप्रवक्ष्यामि कथा गणप्रणाशनीम् ।

पापकल्पसमुद्भूता ब्रह्मणा समुदीरिताम् ॥१४॥

भगवान् शिवजी भक्ति में अक्षय पर धर्म है और शिवधम्म सनातन अर्थात् सर्वदा चले आने वाला है। यन मे—तीर्थ—से—जय से और दान से बहुत साधनो वाला धर्म होता है ॥८॥ वह धर्म साधनो और प्रार्थनाओ के अवलेश वाला होता है तथा पराई सम्पत्ति के दुःख का देने वाला हुआ करता है। जो यह शिवभक्ति रूप धर्म है वह किसी भी साधन की अपेक्षा नहीं रखता करता है ॥९॥ यदि सहस्रो जन्मो में सेजित किया हुआ पाप मेरु पर्वत के समान है तो उसको भी अपरिमित तेज वाले भगवान् शम्भु की शक्ति भस्म कर दिया करती है ॥१०॥ मनुष्य सदा पापो को करता हुआ भी यदि एक बार भी भगवान् शम्भु की भजना करता है तो वह पाप से कभी भी लिप्त नहीं हुआ करता है शिवाचन की ऐसी ही महिमा है और अन्त में महेश्वर ने पद को प्राप्त

किया करता है ॥११॥ यदि अहर्निश पापो मे रति रखने वाले भी पुरुष हैं वे भी महा देव का स्मरण किया करते हैं तो उनको महान् आत्मा बाने ही समझना चाहिए—यह मैं सर्व पर सत्य कह रहा हूँ ॥१२॥ यदि कोई अज्ञान से भी महेश्वर भगवान् के नामों का कीर्तन करते हैं तो उनको भी परम दयालु भगवान् शिव मुक्ति दे दिया करते हैं—इससे अधिक और क्या हो सकता है ॥१३॥ यहाँ पर मैं एक पापो का विनाश कर देने वाली कथा बतलाऊँगा जो पापकल्प मे समुत्पन्न हुई थी और ब्रह्मा जी द्वारा कही गयी थी ॥१४॥

श्रद्धया परया राजञ्छृणु त्व गदनो मम ।

वक्ष्येऽह त प्रणम्याऽऽदावीश भुवननायकम् ॥१५॥

आसीदाद्ये कृतयुगे सप्तद्वीपैकराड्वली ।

इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो राजा परमधार्मिक ॥१६॥

पूषो महाभाग सुद्युम्न इति विश्रुत ।

ऐश्वर्यैरखिलैर्भाति यथा दिवि शचीपति ॥१७॥

प्रतिष्ठानपुरे रम्ये गङ्गातीरे मनोरमे ।

तत्र स्थित्वाऽखिला पृथ्वी तस्मिन् राजनि शासति ॥१८॥

कदाचित्तत्र भगवास्तृणाबिन्दुर्महामुनि ।

आजगाम स त द्रष्टु सुद्युम्न प्रियदर्शनम् ॥१९॥

तमायान्त मुनि दृष्ट्वा राजा रुद्रार्चने रत ।

उद्वास्यान्ना महाबाहुस्तथा च कृताञ्जलि ॥२०॥

यथावदभिवाद्याथ ददावासनमुत्तमम् ।

यथावन्मधुपर्कादि तस्मै सर्वे न्यवेदयत् ॥२१॥

हे राजन् ! परमाग्रिक् श्रद्धा से उसका आय दास्य करो । मैं उसको बतलाता हूँ । मैं प्रारम्भ मे समस्त भुवनो के नामक ईश उनको प्रणाम करके उस कथा का वर्णन करूँगा ॥१५॥ सबसे आदि मे होने वाला कृत युग मैं सातों दीपो के एक छत्र राजा तथा बलवान् और परम धार्मिक इन्द्र धुम्न नाम वाला राजा प्रसिद्ध हुआ था ॥१६॥

उसका एक पुत्र था जिसका नाम सुद्युम्न प्रसिद्ध था । वह महान् भाग्य-
 धाता सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से दिविलोक में इन्द्र के ही समान शोभित होता
 था ॥१७॥ गङ्गा के तट पर परम मनोरम एवं अत्यधिक सुरम्य प्रति-
 ष्ठान पुर में वह राजा रहा करता था और समस्त पृथ्वी का वही पर-
 स्मिय होकर शासन किया करता था ॥१८॥ वहाँ पर किसी समय में
 महामुनि भगवान् शृणु बिन्दु उस सुद्युम्न से मिलने के लिये समागत
 हुए थे । सुद्युम्न परम प्रिय दशन था ॥१९॥ राजा उस समय में भग-
 वान् वर के अर्चन में निरत था । उस समय में समागत मुनि को देखकर
 महाबाहुओं वाले राजा ने अर्चा को उदासित करके उठ गया और हाथों
 को जोड़कर खड़ा हो गया था ॥२०॥ यथावत् मुनि को अभिवादन
 करके इसके अनन्तर उसने मुनि के बैठने के लिये उत्तम आसन दिया
 था । तथा विभिन्न विधान के साथ मधुपक आदि सभी पूजनीय वार-
 उनकी सेवा में समर्पित किये थे ॥२१॥

अथ धन्य कृतार्थोऽस्मि सफल जीवित मम ।

भगवानागतो यस्मात्मा द्रष्टु मुनिसत्तम ॥२२॥

किमथ मतो ब्रह्मन्कृयकृत्योऽस्मि सुव्रत ।

विशेषाच्छक्रे भक्तो न दुर्लभमिहास्ति ते ॥२३॥

सुद्युम्नस्य वच श्रुत्वा मुनिराह महामना ।

शिवभक्त्यमृतस्वादपरानन्दैकानभर ॥२४॥

राजन्यदुक्त भवन्ता तत्तायेव न सशय ।

तथाऽपि चरित धृत्वा तवाह विस्मयान्वित ॥२५॥

प्रष्ट समागतो राजञ्जन्मनस्तव भौरवम् ।

कथयस्व महाबाहो श्रोतु कोतूहन हि मे ॥२६॥

जन्मन्वहभतीतेऽस्मिन्ब्रह्मोऽह गोमतीतटे ।

देवतानामह द्रेष्टा सर्वेषा प्राणिनामपि ॥२७॥

सुव्याडिरीतनामाऽह स्यातोऽह व्याधाराड्मुनेः ।

न कश्चिद्धर्मलेशोऽस्ति पापकर्मस्वह रत ॥२८॥

राजा ने कहा हे मुनि श्रेष्ठ ! आज मैं परम धन्य एव कृतार्थ होगया हूँ और मेरा यह जीवन भी आज सफल होगया है क्योंकि आप स्वयं कृपा करके मुझे दर्शन देने के लिये मेरे घर पर पधारे हैं ॥२२॥ हे ब्रह्मन् ! आप तो परम सुमुत्त हैं । आप यहाँ किस प्रयोजन से पधारे हैं ? मैं तो परम कृतकृत्य हो गया हूँ । आप तो विशेष रूप से भगवान् शङ्कर के भक्त हैं । आपको इस लोक में कुछ भी दुर्लभ वस्तु नहीं है ॥२३॥ श्री भानुदेव ने कहा—सुद्युम्न राजा के इस वचन का श्रवण करके महामना मुनि ने कहा जो कि मुनि भगवान् शिव की भक्ति रूपी अमृत के आस्वाद में परमाधिक आनन्द में निमग्न हो रहे थे ॥२४॥ तुरण बिन्दु ने कहा—हे राजन् ! आपने जो कुछ भी कहा है वह वस्तुतः वंसा ही है और इसमें कुछ भी सत्य नहीं है तो भी मैंने आपके चरित का श्रवण किया था तो मुझे परम विस्मय हो गया था ॥२५॥ हे राजन् ! मैं आपके जन्म का गौरव पूछने के ही लिये यहाँ पर आया हूँ । हे महाबाहो ! आप उसे मेरे सामने कहिये क्योंकि मेरे हृदय में उसके श्रवण करने का बड़ा भारी कीतुहल उत्पन्न हो रहा है ॥२६॥ राजा सुद्युम्न ने कहा—हे मुनिवर ! मैं अपने प्रथम जन्म में गोमती के तट पर एक व्याध था । मैं सभी देवों का द्वेषी था और सभी प्राणियों के साथ भी सदा द्वेषभाव रखता करता था ॥२७॥ हे मुने ! मेरा नाम 'सुव्याधि' था और मैं व्याधो का राजा प्रतिष्ठित हो रहा था । मेरे अन्दर उस व्याध जीवन में धर्म का तो लेशमात्र भी नहीं था तथा मैं रातदिन पाप पूर्ण कर्मों में ही निरत रहा करता था ॥२८॥

मया ये निहिता मार्गे तेऽसह्या न विद्यते ।

परस्व यदपहृत तत्पाप पर्वतोपमम् ॥२९॥

एव बहुतिथे काले गतेऽह पञ्चता गतः ।

धर्मराजस्य पुरतो नीतोऽह यमकिंकरः ॥३०॥

मा दृष्ट्वाभ्यावबोद्धमश्चित्तगुप्त विचारकम् ।

किमनेन कृतो धर्मलेशोऽस्ति वद सूत्रत ॥३१॥
 अनेन यत्कृतं पुण्य मया वक्तुं न शक्यते ।
 जानाति भगवानेको विश्वव्यापी महेश्वर ॥३२॥
 इदं पुण्यमिति ज्ञात्वा कृतं नानेन यद्यपि ।
 आहर प्रहरेत्यादि नामसंकीर्तनं च यत् ॥३३॥
 करोति तेन पुण्येन दुष्कृतं भस्मसात्कृतम् ।
 पापलेशोऽपि नास्तास्ति इति मे निश्चिता मतिः ॥३४॥

मैंने उस समय मे मार्ग मे जिनका धर्म किया था वे अशक्ति प्राणी
 थे और उनकी सख्या कुछ भी नहीं बतलायी जा सकती है । दूसरो का
 धर्म जो मैंने अपहरण किया था वह पाप भी साधारण नहीं था प्रत्युत
 एक पर्वत के ही समान महान् था ॥३१॥ इस प्रकार तो बहुत-समय
 व्यतीत हो जाने पर मैं मृत्युगत हो गया था । यम के किकरो के द्वारा
 मुझे धर्मराज के समक्ष मे प्राप्त किया गया था ॥३०॥ मुझको देखकर धर्म-
 राज ने पाप-पुण्यो के लेखा-जोखा करने वाले चित्रगुप्त से कहा—
 हे सुब्रत ! यह बनल/ओ कि इसने क्या किया है? क्या इसके जीवन मे धर्म
 का भी थोडा बहुत लेश है ? ॥३१॥ चित्रगुप्त ने कहा—इसने जो
 पुण्य किया है वह ऐसा है कि मेरे द्वारा कहा नहीं जा सकता है ।
 उसको विश्व मे व्याप्त रहने वाले एक भगवान् महेश्वर ही जानते
 हैं ॥३२॥ यद्यपि यह कोई पुण्य का कार्य है—यह जानकर इसने नहीं
 किया था । यह सदा 'आहर'—'प्रहर' इत्यादि नामो का संकीर्तन किया
 करता था । इन दोनो शब्दो के कथन का अर्थ अपहरण करो और
 मार डालो—वही होता था किन्तु उन दोनो शब्दो मे "हर" का नाम
 आता है ॥३३॥ उसी पुण्य से जो भी कुछ इसके जीवन मे दुष्कृत थे
 वे सब भस्म हो गये थे । अब इसमे पाप का लेशमात्र भी शेष नहीं
 रह गया है—मेरे बुद्धि तो यही निश्चय करती है ॥३४॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चित्रगुप्तस्य धीमत ।

सुव्याडि पूजयामास यथावद्विधिपूर्वकम् ॥३५॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमान सार्वकामिकम् ।
 सूर्यायुतप्रतीकाश्च दिव्यस्त्रीभिर्विराजिनम् ॥३६॥
 देवदूतं समानीनमारुह्य मुनिपुंगव ।
 धर्मराजमनुज्ञाप्य गतोऽहममरावतीम् ॥३७॥
 तत्र भुक्त्वा महाभोगान्युगानामयुतं ततः ।
 गतोऽस्मि ब्रह्ममदनं ब्रह्मणाहं प्रपूजितं ॥३८॥
 तथाहं कल्पयन्तं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् ।
 ततस्तु कर्मणोऽपि भोक्तुमत्र महीतले ॥३९॥
 इन्द्रद्युम्नस्य राजपते कुले जातोऽस्मि सुव्रत ।
 स्मरामि पूर्विकां जातिं प्रमादाच्छूलिमो मुने ॥४०॥
 ईश्वरे सहस्रा भवितुं मम त्रिदशपूजिते ।
 जानाति को महेशम्य माहात्म्यं परमात्मनः ॥४१॥
 यस्य नाम्नः फलमिदमज्ञानोच्चारणादपि ।
 ज्ञात्वा यः कीर्तयेच्छ्रमोर्नामान्यमिततेजसः ॥
 मुक्तिं वरतलं तस्य स्थितिं मुनयो जगुः ॥४२॥

राजा सुद्युम्न ने कहा—धीमान् चित्रगुप्त के इस वचन को सुनकर धर्मराज ने उस सुव्यादि का विधि पूर्वक यथावत् पूजन किया था ॥३५॥ इसी बीच में वहाँ पर सब कामनाओं के पूर्ण करने वाला एक विमान आ गया था जो दश हजार सूर्यों के समान दीप्तिमान् और दिव्य स्त्रियों से समन्वित था ॥३६॥ उस विमान को देवदूत वहाँ लाये थे और उनके द्वारा मुझसे कहा गया था कि हे मुनिश्रेष्ठ ! इस पर समारुढ़ होइये । मैं भी मुनि श्रेष्ठ ! उस पर चढ़कर तथा धर्मराज की आज्ञा प्राप्त करके अमरावती में चला गया था ॥३७॥ फिर वहाँ पर दश सहस्र युगों तक मैंने महान् भोगों का उपभोग किया था और इसके उपरान्त मैं ब्रह्माजी के सदन में चला गया जहाँ पर ब्रह्माजी के द्वारा मेरी पूजा की गयी थी ॥३८॥ वहाँ पर मैं एक कल्प तक यथेप्सित भोगों का उपभोग करके इसके पश्चात् शेष कर्म का फल भोगने के लिये इस

महीतल में आगया है ॥३६॥ हे सुप्रत ! यहाँ पर मैं राजर्षि इन्द्र घुम्न के कुल में समुत्पन्न हुआ हूँ । हे मुने ! मैं अभी भी भगवान् शूली के प्रभाव से अपनी पहिली जाति का स्मरण करता हूँ । अर्थात् भगवान् शङ्कर का ही यह प्रभाव है जिससे अपनी प्रथम जन्म की बात अभी तक याद है ॥४०॥ देवों के द्वारा समर्पित ईश्वर ने मेरी सहसा भक्ति है । परमात्मा महेश के माहात्म्य को कौन जानता है । अर्थात् कोई भी नहीं जानता है ॥४१॥ जिन भगवान् शङ्कर के नाम का यह कल है जो कि बिना ही ज्ञान के उच्चारण करने ही प्राप्त हो गया है । जो मनुष्य उनके नाम के माहात्म्य को जानकर अमित तेज वाले शम्भु के नामों का कीर्तन करता है उसके लो हाथ में ही मुक्ति स्थित रहा करती है—ऐसा मुनियों ने बतलाया है ॥४२॥

इति सर्वमशेषेण चरित तस्य धीमत ।

सुद्युम्नस्य मुनि श्रुत्वा विस्मितोऽभूत्पुनः पुन ॥४३॥

समालिङ्ग्य महात्मान सुद्युम्न राजपुंगवम् ।

राजस्त्वमाश्रयद यामीत्युक्त्वा जगाम स ॥४४॥

एतत्तं चरित राजन्सुद्युम्नस्य महात्मन ।

कथितं य पठेद्भक्त्या ब्रह्मलोक स गच्छति ॥४५॥

भानुदेव ने कहा—परम बुद्धिमन् उस सुद्युम्न के सम्पूर्ण चरित को पूर्ण रूप से सुनकर मुनि बारम्बार विस्मित होबये थे ॥४३॥ उस मुनि ने महात्मा श्रेष्ठ राजा सुद्युम्न का भनीभाँति आलिङ्गन किया और फिर कहा—हे राजन् ! अब मैं अपने आश्रम को जाता हूँ—इतना कहकर वह वहाँ से चले गये ॥४४॥ हे राजन् ! यह महान् आत्मा वाले सुद्युम्न का चरित आपको बतला दिया है । जो मनुष्य इसको भक्ति की भावना से पढ़ता है वह सोचा ब्रह्मलोक में गमन किया करता है ॥४५॥

॥ वाराणसी महिम-कलियुग वर्णन ॥

राज्ञः सकाशात्स मुनिर्गत्वा किं कृतवान्पुनः ।
 तस्याऽऽश्रमस्य किं नाम भगवन्ब्रूहि मे प्रभो ॥१॥
 रेवातीरे महन्पुण्य जालेश्वरमिति स्मृतम् ।
 आश्रमं तृणबिन्दोस्सु मुनिसिद्धनिपेविनम् ॥२॥
 गत्वा तत्र मुनिश्रेष्ठो भवभावसमन्वितः ।
 शिवलिङ्गं प्रतिष्ठाप्य तीर्थयात्रा चकार सः ॥३॥
 कानि तीर्थानि गुह्यानि येषु सनिहितः शिवः ।
 ब्रूहि मे तानि भगवन्नन्यान्यपि च तद्वत् ॥४॥
 तीर्थानामुत्तम तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ।
 वाराणसीतिनगरी प्रिया देवस्य शूलिनः ॥५॥
 यत्र विश्वेश्वरो देवः सर्वपापिह देहिनाम् ।
 ददाति तारकं ज्ञानं ससारान्मोचकं परम् ॥६॥
 गङ्गां ब्रह्मययी यस्तु भूतिश्चोत्तरवाहिनी ।
 सहस्रैः सर्वपापानां दृष्टा स्पृष्टा नमस्कृता ॥७॥

मनुजी ने कहा—हे भगवन् ! हे प्रभो ! अब कृपा करके मुझे यह बतलाइये कि वह मुनि उस राजा सुद्युम्न के समीप से जाकर फिर उन्हेनि क्या किया था और उनके आश्रम का क्या नाम है ? ॥१॥ भानुदेव ने कहा—रेवा नदी के तट पर महान् पुण्यमय एवं पवित्र जालेश्वर नाम से कहा गया है वह तृण बिन्दु मुनि का आश्रम है जो मुनियों और सिद्धों के द्वारा सेवित है अर्थात् मुनि और सिद्ध वहाँ पर निवास किया करते हैं ॥२॥ वह मुनियों ने श्रेष्ठ वहाँ पर जाकर भगवान् भव (शङ्कर) के भाव से परिपूर्ण होगया था । और वहाँ पर एक शिव लिङ्ग की प्रतिष्ठा की थी और इसके पश्चात् उसने तीर्थयात्रा की थी ॥३॥ मनुजी ने कहा—वे कौन २ से तीर्थ हैं जिनमें भगवान् शिव सन्निहित रहा करते हैं और जो तीर्थ परमगुह्य हैं । हे भगवन् !

बाप उनको मुझे बतलाइये और जो अन्य तीर्थ हो उनको भी तात्त्विक रूप से बतलाइये ॥४॥ भानुदेव ने कहा—समस्त तीर्थों में उत्तम तीर्थ और सब क्षेत्रों में अत्युत्तम क्षेत्र वाराणसी-इष्ट नाम वाली नगरी है जो भगवान् शूली देव की परम प्रिया है ॥५॥ जहाँ पर विश्वेश्वर देव हैं जो यहाँ पर सभी देहधारियों को मसार से मोचन कराने वाला तात्कालिक तथा ज्ञान प्रदान किया करते हैं ॥६॥ जिसमें ब्रह्ममयी गङ्गा की उत्तर की ओर बहने वाली विद्यमान है जिसका दृष्ट किया जाने पर व्यथा स्पर्श मात्र और नमस्कार की हुई होने पर वह मण्डित मनुष्यों के पापों का संहार करने वाली होती है ॥७॥

नास्ति गङ्गासम तीर्थं वाराणस्या विशेषतः ।
 तत्रापि मणिकर्णार्थं तीर्थं विश्वेश्वरप्रियम् ॥८॥
 तस्मिंस्तोर्ध्वं नरः स्नात्वा पातकी वाऽप्यपातकी ।
 दृष्ट्वा विश्वेश्वरं देव मुक्तिं भाग्यायते नरः ॥९॥
 विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं प्रदुक्तं ब्रह्मसूनुना ।
 तदहं संप्रवक्ष्यामि व्यासायमिततेजसे ॥१०॥
 घोरं कलियुगं प्राप्य कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
 किं तच्छ्रेयस्करमिति हृदि कृत्वा जगाम सः ॥११॥
 नन्दीश्वरस्य यः शिष्यो योगिनामग्रणीः स्वयम् ।
 सनत्कुमारो भगवान्यत्राऽऽरते हिमवन्दिरो ॥१२॥
 नानादेवगणाकीर्णं यक्षगन्धर्वसेविते ।
 सिद्धचारणकूष्माण्डैरप्सरामिश्रं सकुले ॥१३॥
 गङ्गा मन्दार्किनी यत्र राजते दुःखहारिणी ।
 शोभिता हेमकमलैः पुष्पैरन्यैर्मनोहरैः ॥१४॥
 तस्माऽऽश्रममनुप्राप्य पाराशर्यो महामुनिः ।
 अभिवाद्य यथान्यायं तस्याग्रे उपविश्य च ॥१५॥
 व्रतान्जलिपुटो भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥१६॥

भागीरथी गङ्गा के तुल्य अन्य कोई भी तीर्थ नहीं है और विशेष रूप से वाराणसी में तो यह गङ्गा ही सर्वोत्तम तीर्थ है । और उम गङ्गा तट में भी जो मणिकर्ण नाम वाला घाट है वह तो भगवान् विश्वेश्वर का परम प्रिय तीर्थ है ॥८॥ उम तीर्थ में मनुष्य स्नान करके चाहे वह महायात की हो बशो न हो अथवा अयातकी हो भगवान् विश्वेश्वर का दर्शन प्राप्त करके मुक्ति का प्राप्त करने का सच्चा अधिकारी हो जाया करता है अर्थात् उस मनुष्य की निश्चय ही मुक्ति हो जानी है ॥९॥ अपरमित्र त्रेतधारी भगवान् ब्यासजी को ब्रह्माजी के पुत्र में भगवान् विश्वेश्वर का जो महारम्य कहा है उसी को मैं आपकी बतलाऊंगा ॥१०॥ इस महान घोर कलियुग प्राप्त करके श्रीकृष्ण द्वैपायन प्रभु इस ससार में क्या श्रेय का सम्पादन करने वाली है—यह आपन मन में विचार करके ही वहाँ पर वे गये थे ॥११॥ जो नन्दीश्वर के शिष्य हैं और स्वयं योगियों में सबसे अग्रणी अर्थात् परम प्रधान हैं ऐसे सनत्कुमार भगवान् हिमवान् गिरियद जहाँ पर विराजमान रहा करते हैं ॥१२॥ वह हिमालय पर्वत का स्थान अनेक देवों के समुदाय के द्वारा समाकीर्ण है तथा यक्षों और गन्धर्वों के द्वारा सेवित रहा करता है एवं बड़े बड़े सिद्ध चारण और कूष्माण्डों से तथा अनेक अप्सराओं से घिरा हुआ रहा करता है ॥१३॥ जहाँ पर मन्दाकिनी गङ्गा विश्राजमान रहती है जो समस्त दुखों का हरण कर देने वाली है । उस गङ्गा में हम कमल तथा अन्य विविध प्रकार के अत्युत्तम पुष्प विकसित होकर उसकी शोभा की वृद्धि किया करते हैं ॥१४॥ उसके आश्रम में पराभर मुनि के पुत्र व्यास देव जो मुनि प्राप्त हो गये थे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने यथोचित रूप से सनत्कुमारजी का अभिवादन किया था और फिर उन्हीं के सामने उपविष्ट हो गये थे ॥१५॥ व्यास देवजी ने अपने दोनों हाथों को जोड़कर उस समय में वह वाक्य कहा था ॥१६॥

प्राप्त कलियुग घोर पूण्यमार्गवहिष्कृतम् ।

पासण्डाचारनिरत म्लेच्छान्धजनसमुत्तमम् ॥१७॥

अधार्मिकाः क्रूरसत्त्वा ह्यनाचारात्ममेघसः ।
 तस्मिन्पुगे भविष्यन्ति ब्राह्मणाः शूद्रपाजकाः ॥१८॥
 स्नानं देवाचनं दानं होमं च पितृनर्पणम् ।
 स्वाध्याय न करिष्यन्ति ब्राह्मणा हि कलौ युगे ॥१९॥
 न पठन्ति तथा वेदाञ्छ्रेयसे ब्राह्मणाधमाः ।
 प्रतिग्रहायं वेदांश्च पठिष्यन्ति कलौ युगे ॥२०॥
 पुरुषोत्तममाश्रित्य शिवमिन्दारता द्विजाः ।
 कलौ युगे भविष्यन्ति तेषां साता न माधवः ॥२१॥
 स्वां स्वा वृत्तिं परित्यज्य परवृत्त्युपजीवकाः ।
 ब्राह्मणाद्या भविष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे ॥२२॥

श्री व्यास देव जी ने कहा—हे भगवान् ! यह महान् घोर कलि-
 युग प्राप्त हो गया है जिसमें पुण्य का मार्ग एकदम दूर हो गया है और
 सर्वत्र पाण्डु पूर्ण आचार लोग किया करते हैं तथा सर्वत्र म्लेच्छों के
 समान ही आन्धुजन हो गये हैं और सब स्थान इन्हीं से घिरे हुए हैं ॥१७॥
 इस युग में ब्राह्मण लोग भी शूद्रों को भजन कराने वाले हो जायेंगे यह
 ऐसा ही घोर युग है कि उसमें लोग अधार्मिक-महान् क्रूर- आचार से
 रहित तथा अत्यल्प भेषा वाले हो जायेंगे ॥१८॥ इस कलियुग में ब्राह्मण
 गण स्नान देवों का अभ्यर्चन-दान-होम और पितृगणों का भी तर्पण नहीं
 किया करेंगे और न वेदों का स्वाध्याय ही करेंगे ऐसे ही अनाचारी विप्र
 हो जायेंगे ॥१९॥ ये अधम ब्राह्मण अपने श्रेय का सम्पादन करने के
 लिये भी वेदों का पठन पाठन नहीं किया करेंगे और इस घोर कलियुग
 में केवल दान ग्रहण करने के ही लिए वेदों का अभ्यसन किया करेंगे ॥२०॥
 भगवान् पुरुषोत्तम का समायय ग्रहण करने भगवान् शिव की निन्दा
 करने में निरत रहेंगे ऐसे द्विज इस कलियुग में समुत्पन्न होंगे जिनका
 भग्न माधव भी नहीं विद्या करते हैं ॥२१॥ विप्रगण अपनी २ वृत्ति का
 परित्याग करदेंगे और दूसरे वर्णों की वृत्ति से उपजीवित रहने वाले हो

जायेंगे । इस महान् घोर कलियुग के आने पर सभी ब्राह्मण आदि वर्ण ऐसे ही अपने २ कर्मों का त्याग करेंगे- ऐसे ही हो जायेंगे ॥२२॥

एतान्पापरतान्दृष्ट्वा राजानश्चाविचारका ।

भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते वृथा जात्यभिमानिन ॥२३॥

उच्चासनगता शूद्रा दृष्ट्वा च ब्राह्मणास्तदा ।

न चलन्त्यल्पमतयः सप्राप्ते तु कलौ युगे ॥२४॥

कापायिणश्च निग्रन्था नग्नाः कापालिकास्तथा ।

बौद्धा वैशेषिका जैना भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२५॥

तपोयज्ञफलानां तु विकेतारो द्विजाधमा ।

यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽप्य सहस्रश ॥२६॥

विनिन्दन्ति महादेव संसारान्मोचक परम् ।

तद्भक्ताश्च महात्मना ब्राह्मणाश्च कलौ युगे ॥२७॥

ताडयन्ति दुरात्मानो ब्राह्मणान् राजसैवका ।

न निवारयते राजा तान्दृष्ट्वाऽपि कलौ युगे ॥२८॥

एव घोरे कलियुगे किं तच्छ्रेयस्करं द्विज ।

श्रूहि तद्भगवन्महा सत्तारान्मोचक परम् ॥२९॥

राजा लोग भी केवल अपनी जाति का वृथा अभिमान रखने ही बाले हो जायेंगे और इन सबको पाप कर्मों में रत देखकर भी कोई विचार नहीं किया करेंगे ॥२३॥ यह कलियुग प्राप्त हो जायगा तो उस में शूद्र लोग ब्राह्मणों को देखकर भी ऊँचे आसनो पर बैठे रहा करेंगे तथा अपने आसन से बिल्कुल भी ये अल्प मति वाले शूद्र जरा भी नहीं हटा करेंगे ॥२४॥ कलियुग में कथाम वर्ण के वस्त्रों को धारण करने वाले—निग्रन्थि अर्थात् ज्ञान शून्य—नग्न—कापालिक खण्णधारी—बौद्ध और वैशेषिक अनेक सम्प्रदायों वाले समुत्पन्न हो जायेंगे ॥२५॥ अधम द्विज अपना तप और यज्ञों के फल को बेच देने वाले हो जायेंगे तथा कलियुग में सैकड़ों और सहस्रों ही यति होकर भ्रमण करते हुए सर्वत्र

दिललाई देंगे ॥२६॥ इस ससार में मोचन कर देने वाले भगवान् महा-
देव जी की विशेष निन्दा किया करेंगे । कलियुग में ऐसे ही लोग हो
जायगे कि महात्माओं और उनके भक्तों तथा ब्राह्मणों की भी निन्दा
किया करेंगे ॥२७॥ दुष्ट आत्मा वाले राजा के सेवकगण ब्राह्मणों को
साहित किया करते हैं । इस कलियुग का ऐसा ही प्रभाव होगा कि
राजा लोग विप्रों को सताने वाले अपने दुष्ट सेवकों को देखकर भी
उन्हें इस दुष्ट कर्म के करने से नहीं हटाया करेंगे ॥२८॥ हे द्विज ।
आप अब यही बतलाइये कि जब ऐसा महान् घोर कलियुग होगा तो
उस समय में श्रेय करने वाला क्या होगा ? हे भगवन् । इस ससार से
छुटकारा दिलाने वाला क्या साधन होगा—यह हमको आप बतला
दीजिए कि प्राणियों का कल्याण होवे ॥२९॥

॥ महादेव वर-प्रदान ॥

गच्छ वाराणसी व्यास यत्र विश्वेश्वर निव ।
न तत्र युगधर्मोऽस्ति नैव लग्ना वसु धरा ॥१॥
विश्वेश्वरस्य शाल्लिङ्ग उग्रोत्तिलिङ्ग सदुभयते ।
यास्मिन्दृष्टे क्षणाज्जन्तु स सार न पुनर्विशेत् ॥२॥
गत्वा पश्य पर लिङ्ग तत्र सत्यवतीसुत ।
प्राप्त्यसे परमा मुक्ति देवैरपि सुदुर्लभाम् ॥३॥
स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये पश्य विश्वेश्वर परम् ।
दास्यति पर ज्ञान येन मुक्तो भविष्यसि ॥४॥
दृष्ट्वा विश्वेश्वर देव यावत्तिष्ठति (त्स्यास्यसि) तत्क्षणात् ।
आगमिष्यन्ति मुनयस्त्वा द्रष्टु सर्व एव ते ॥५॥
विश्वेश्वरस्य माहात्म्य प्रक्षयन्ति त्वा महामुने ।
ब्रूहि मद्बचनात्तोषा ज्ञान माहेश्वर परम् ॥६॥

एव सत्यवतीसूनुस्तन्माहात्म्यमशेषत ।

सनत्कुमारात्स्वगुरो श्रुत्वा माहेश्वराग्रणी ॥७

प्रणिपत्य गुरु भक्त्या रुद्र ब्रह्मादिसेवितम् ।

सशिष्य प्रययौ शीघ्र व्यासो वाराणसी प्रति ॥८

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास देव । आप अब वाराणसी पुगी में चले जाइये जहाँ पर साक्षात् विश्वेश्वर शिव स्वयं विराजमान रहा करते हैं । यहाँ पर इस कलियुग का धर्म सर्वथा नहीं है और न यह वसुधारा भी लगता है ॥१॥ भगवान् विश्वेश्वर का वहाँ पर लिङ्ग है वह ज्योति लिङ्ग कहा जाता है । जिसके एक बार दर्शन मात्र कर लेने पर क्षणभार में ही प्राणी फिर इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥२॥ हे सत्यवती के पुत्र । आप वहाँ पर गमन करके उस ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन करो । आप वहाँ पर परमोत्तम मुक्ति को प्राप्ति कर लेंगे जोकि देवगणों को भी महान् दुर्लभ होती है ॥ ॥ वहाँ पर वाराणसी पुगी में भागीरथी गङ्गा के परम पुण्यमय जल में स्नान करने परम विश्वेश्वर प्रभु का दर्शन करो । वे स्वयं ही आपको परम ज्ञान का उपदेश करेंगे जिससे आप मुक्त हो जायेंगे ॥४॥ भगवान् विश्वेश्वर देव का दर्शन करके जितनी देर भी आप वहाँ पर ठहरेंगे तो उसी समय में सभी मुनिगण आपका दर्शन करने के लिए वहाँ पर आ जायेंगे । ५॥ हे महा मुने । वे सब मुनिगण आपसे भगवान् विश्वेश्वर का माहात्म्य पूछेंगे तो आप उस समय में मेरे बचन जो उन्हीं के द्वारा उनको भगवान् का परम माहेश्वर ज्ञान प्रदान कर देना ॥६॥ इस प्रकार में सत्यवती के पुत्र ने उनसे माहात्म्य को पूर्ण रूप से महेश्वर देव के भक्तों में अग्रणी ने अपने गुरुदेव सनत्कुमार जी से श्रवण किया था । फिर व्यासजी ने अपने गुरुदेव को भक्ति पूर्वक प्रणाम किया था । और ब्रह्मादि देवों के द्वारा सेवित श्री रुद्रदेव को भी प्रणाम किया था और इसके अन्तर व्यास देव अपने शिष्यों के प्रति ही वाराणसी को चले गये थे ॥७॥८॥

गत्वा वाराणसी व्यास सिद्धपिमुनिसेविताम् ।
 अकरोत्किं तदाचक्ष्व भगवान्विश्वपूजित ॥६॥
 सप्राप्य काशी धर्मात्मा कृष्णद्वैपायनो मुनि ।
 स्नात्वा यथावज्जाह्नव्या तर्पयित्वा सुरान्पितन् ॥१०॥
 ययौ विश्वेश्वर द्रष्टुं ज्योतिर्लिङ्गमनामयम् ।
 सापूज्य सवमावेन दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥११॥
 देवस्य दक्षिणा भूतविषयस्य महामुनि ।
 पश्यन्विश्वेश्वर लिङ्गं जपन् शतरुद्रियम् ॥१२॥
 क्षणाल्लिङ्गात्परं ज्योतिराविर्भूतं निरञ्जनम् ।
 सूक्ष्मात्सूक्ष्मं च परममानन्दतमं परम् ॥१३॥
 आदिमध्यान्तरहितं मूयकोटिसमप्रभम् ।
 यत्तन्माहेश्वरं ज्योतिर्वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ॥१४॥

श्री मनुदेव ने कहा—हे भगवान् ! आप तो सम्पूर्ण विश्व के द्वारा पूजित हैं अब मुझको यह बतला दीजिए कि व्यास देवजी ने सिद्ध ऋषि और मुनिगण से सेवित वाराणसी पुरी में पहुँचकर फिर क्या किया था ? ॥६॥ श्री भानुदेव ने कहा—श्री कृष्ण द्वैपायन परम महान् आत्मा वाले मुनि जो बहुत ही अधिक धर्मात्मा थे वाराणसी पुरी में पहुँच गये और उन्होंने भगवती जा हवी देवी के पवित्र जल में विधि पूर्वक स्नान किया और देवी का तथा पितृगणों का तर्पण कहाँ पर सविधिकिया था ॥१०॥ इसके उपरान्त के अनन्तर ज्योतिर्लिङ्ग भगवान् विश्वेश्वर के दर्शन करने के लिये गये थे । वहाँ पर सर्व भाव से उनका भली भाँति अग्न्यर्चन किया था और उनको प्रणाम किया था जोकि भूमि पर एक दशा के ही समान बिज्र कर साष्टांग प्रणाम किया था ॥११॥ फिर देव की दक्षिणा की थी और वहाँ पर मुनि उपविष्ट हो गये थे । मूर्ति के सामने ही दक्षिण भाग में बैठकर उन्होंने विश्वेश्वर प्रभु के ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन करते हुए और शतरुद्रिय का जाप करते हुए ध्यानमान हो गये थे । एक ही क्षण में उमाशिव लिङ्ग से एक निरञ्जन ज्योति का आवि-

भाव हुआ था जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पद्म आनन्द स्वरूप और तम से परे थी ॥१३॥ वह ज्योति आदि-मध्य और अन्त से रहित तथा करोड़ों सूर्या के समान प्रभा से युक्त थी । वह महेश्वर प्रभु की ज्योति वेदान्तो में प्रतिष्ठित है ॥१४॥

दर्शनात्तस्य च मुने पाराशर्यस्य धीमत ।
 दिव्य माहेश्वर ज्ञानमुद्भूत केवन शिवम् ॥१५॥
 मेने कृतार्थमात्माभाम दुःखत्रयविवर्जितम् ।
 अद्वयं निर्गुणं दान्त जीवन्मुक्तस्तदा मुनि ॥१६॥
 अहो विश्वेश्वरो देव कथं कंवा न सेव्यते ।
 यस्मिन्मृष्टे क्षणाज्ज्ञानमुदितं मम निर्मलम् ॥१७॥
 नमो भगवते तुभ्य विश्वनाथाय शूलिने ।
 पिनाकिने जगत्कर्त्रे विश्वमायाप्रवर्तिने ॥१८॥
 दुर्विज्ञेयाप्रमेयाय परमानन्द रूपिणे ।
 भक्तिप्रियाय सूक्ष्माय पावंतीशाय ते नमः ॥१९॥
 नमो जगत्प्रतिष्ठाय जगज्जननहेतवे ।
 सहर्षे ऋग्यजु साममूर्त्ये तत्प्रवर्तिने ॥२०॥
 जानाति वस्त्वा विश्वेश तत्त्वतो माहृतो जनः ।
 वेदा अपि न जानन्ति साङ्गोपनिषदक्रमाः ॥२१॥

उस परम दिव्य ज्योति के दर्शन करने से पराशर के पुत्र बुद्धिमान उन मुनि को परम दिव्य माहेश्वर ज्ञान उत्पन्न हुआ था जो केवल शिव था ॥१५॥ उस समय म मुनि देव ने अपने आपको परम कृतार्थ एवं तीनों प्रकार के दुःखों से रहित माना था मुनि अद्वय निर्गुण और दान्त ज्योति का दर्शन करके जीवन मुक्त हो गये थे ॥१६॥ ओहो ! यह भगवान् विश्वेश्वर देव की महिमा का आद्वन है । क्या कारण है कि किम प्रकार से जिनके द्वारा इनका सेवन नहीं किया जाता है । अभिप्राय यही है कि इनकी सेवा गमी को करनी चाहिए जो भी नहीं करते हैं

वे महान् मूर्ख हैं। जिनका इतना प्रबल प्रभाव है कि दर्शन करने पर एक ही क्षण भर में मुझे परम निर्मल ज्ञान उत्पन्न हो गया है ॥१७॥ भगवान् विश्वनाथ शूल धारी आप के लिए मेरा प्रणाम है। आप पिनाक धनुष के धारण करने वाले—जगत् के कर्ता और विश्व की माया के प्रवृत्त करने वाले प्रभु की सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है ॥१८॥ जो बहुत ही कठिनाई से जानने के योग्य हैं—अप्रमेय हैं और परमानन्द रूप वाले हैं तथा भक्ति से प्यार करने वाले और परम सूक्ष्म हैं ऐसे पार्वती के ईश के लिये नमस्कार है ॥१९॥ जो इस जगत् की प्रतिष्ठा हैं और जगत् के जन्म देने के हेतु हैं तथा इसका सहार करने वाले हैं और ऋक-यजुर्वेद और सामवेद की भूति हैं तथा उनको प्रवृत्त कराने वाले हैं उनके लिए नमस्कार है ॥२०॥ हे विश्वनाथ ! तार्क्ष्यिक रूप से मुझे जैसा कौन मनुष्य आपको जानता है जबकि साङ्ग और उपनिषदों से पुरन साक्षात् वेद भी आपको नहीं जान पाते हैं ॥२१॥

अथ तस्मिन्महादेवे परज्योतिषि विश्वभुक् ।
 शूलपाणिरमेयांरमा प्रादुरासीद्वृषध्वजः ॥२२॥
 ततस्तमब्रवाद्वाक्यं कारुण्याच्छ्रुभया गिरा ।
 वर वरय दास्यामि यत्ते मनास रोचते ॥२३॥
 भगवन्कृतकृत्योऽस्मि दर्शनात्तव शंकर ।
 जाता त्वद्विषय शान देवानामपि दुर्लभम् ॥२४॥
 भक्तिं यरे भगवति त्वय्येवाव्यभिचारिणोम् ।
 देहि मे देवदेवेश नान्यदिष्ट वर मम ॥२५॥
 एवमस्त्विति देवेशो व्यासायामिततेजसे ।
 वर दत्त्वा मृनीन्द्राय क्षणादन्तर्हितोऽभवन् ॥२६॥
 तस्माद्व्यासात्परो नान्यः शिवभक्तो जगन्त्रये ।
 कृष्णो वा देवकीसूनुरजुंनो वा महामतिः ॥२७॥
 एवं हरात्सत्त्वधरः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
 तत्र यानि च बिद्धानि तानि द्रष्टुं यमो मुनिः ॥२८॥

श्री भानु देव ने कहा—इसके अनन्तर उस ज्योति में जो परम दिव्य महादेव जी की थी इस विश्व का भोग करने वाले वृषभध्वज-अभेय आत्मा वाले शूनपाणि प्रभु प्रादुर्भूत हुए थे ॥२२॥ इसके पश्चात् परम करुणा पूर्ण वाणी के द्वारा भगवान् विश्वनाथ ने उम मुनि व्यास देव से कहा था कि तुम वरदान माग लो । मैं वही हूँ जो भी तुम्हारे मन में हो ॥२३॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे भगवान् ! हे शङ्कर ! आपके चरणों के दर्शन प्राप्त करके मैं तो तृप्त कृत्य हो गया हूँ । मुझे आगे विषय का ज्ञान भी प्राप्त हो गया है जोकि देवा की भी परम दुर्लभ होता है ॥२४॥ सबसे पर भगवान् आपके चरणों में ही अब्यभिचारिणी भक्ति होवे—ह देव देवेश्वर । मुझे यही एक वरदान आप प्रदान करिए । इसके अनिर्वचन अन्य कोई भी वरदान प्राप्त करने की मेरी इच्छा ही नहीं है ॥२५॥ भानुदेव ने कहा—फिर देवेश्वर ने ऐसा ही होगा—यह उन अमित तेज से युक्त व्यास देव की वर दे दिया था जोकि व्यास देव महामुनीन्द्र थे और फिर एक ही क्षण में भगवान् शङ्कर अन्तर्हित हो गये थे ॥२६॥ तीनों सों में उन श्री व्यास देव जी से अधिक अन्य कोई भी शिव का भवन नहीं है । अथवा देवकी दत्ता के पुत्र श्रीकृष्ण या महा भतिमान् अर्जुन है । इस तरह से श्रीकृष्ण दंपायन प्रभु ने श्री हर से वर प्राप्त कर लिया था और फिर वहाँ पर जो भी भगवान् शिव के तिष्ठ विराजमान थे उनके दर्शन करने के लिए वे मुनि चले गये थे ॥२७॥२८॥

॥ वाराणसी लिंग महिम वर्णन ॥

कानि दिव्यानि लिङ्गानि यानि द्रष्टुं ययौ मुनिः ।
 आचक्ष्व तानि नः सूत माहात्म्य चापि कृत्स्नशः ॥१॥
 यदुक्तं भानुना पूर्वं मन्वे मुनिसत्तमाः ।
 तदेव कथयिष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥२॥
 आग्नेय्यामविमुक्तस्य वापी त्रैलोक्यविश्रुता ।
 यत्र सनिहितो देवो नित्य विश्वेश्वरः शिवः ॥३॥
 यत्र स्नानं द्विजश्रेष्ठा देवानामपि दुर्लभम् ।
 भक्त्या यैस्तज्जल पोतं ते रुद्रा एव भूतले ॥४॥
 तेषां लिङ्गानि जायन्ते हृदये स्त्रीणि सुघृताः ।
 दुर्लभं तज्जल तस्मात्तिष्ठत्येव हि मुद्रितम् ॥५॥
 तत्र सत्यवतीसूनुः स्नात्वा चैव यथाविधि ।
 अविमुक्तेश्वरं दृष्ट्वा लाङ्गलीशं ततो ययौ ॥६॥
 तत्र ब्रह्मादयो देवाः सेवन्ते शूलपाणिनम् ।
 तस्य दर्शनमात्रेण ज्ञान पाशुपत भवेत् ॥७॥

ऋषियों ने कहा—वे कौन-कौन से शिवलिङ्ग दिव्य हैं जिनका दर्शन प्राप्त करने के लिये व्यास मुनि गये थे ? हे सूतजी ! उनको आप हमको बतलाइये और उन का पूर्ण माहात्म्य भी कहिए ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठो ! पहिले मनुजी को भानुदेव ने जो कहकर बताया था । वही मैं आपको बतलाऊंगा । मुझसे आप श्रवण करिए ॥२॥ आग्नेयी विदिशा में एक अविमुक्त की लोको में परम प्रसिद्ध वाणी है जहाँ पर विश्वेश्वर देव शिव नित्य ही सनिहित रहा करते हैं ॥३॥ द्विज श्रेष्ठो ! जहाँ पर स्नान करने की बहुत बड़ी महिमा है जो स्नान देवो को भी परम दुर्लभ हुआ करता है । जिन्होंने भक्ति से उस जन का पान किया था वे रुद्र भूतल में ही विद्यमान हैं ॥४॥ हे सुवतो ! उनके हृदय में तीन लिङ्ग उत्पन्न होने हैं । वह जल बहुत ही दुर्लभ है । इसी

कारण से वह मुद्रित स्थित रहा करता है ॥१॥ वहाँ पर उस जल में विधि-विधान के साथ सत्यवती के पुत्र श्री व्यास देवशी ने स्नान किया था । फिर वहाँ अविमुक्तेश्वर प्रभु का उन्होंने दर्शन किया था तथा इसके पश्चात् लाङ्गलीन के समीप में वहाँ से वे चले गये थे ॥६॥ वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण भगवान् घूसपाणि की सेवा किया करते हैं । उनके दर्शन की ऐसी महिमा है कि केवल उनके दर्शन मर ही से पाशुपत ज्ञान का उदय हो जाया करता है ॥७॥

जगाम स मुनिः पश्चाद्द्रष्टुं वै तारकेश्वरम् ।

यत्कालकाले भगवाञ्ज्ञान तत्सप्रयच्छति ॥८॥

यत्रैवानेन देवस्य स्थापित लिङ्गमुत्तमम् ।

यस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महरण व्योहति ॥९॥

तद्दृष्ट्वा परम लिङ्ग व्यास सत्यवतीमुतः ।

ययौ शुक्रेश्वर द्रष्टुं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥१०॥

आराध्य मुनिना यत्र शुक्रेणामिततेजसा ।

प्राप्ता सजीवनी विद्या सुराणामपि दुर्लभा ॥११॥

देवस्य बह्निदिग्भागे कूपस्तिष्ठति दोभनः ।

स्नान तत्राश्रमेयस्य फल यच्छति दोभनम् ॥१२॥

तस्मिन्कूपे मुनिः स्नात्वा दृष्ट्वा शुक्रेश्वर शिवम् ।

ब्रह्मेश्वर ययौ द्रष्टुं तत्र ब्रह्मा विराट् स्वयम् ॥१३॥

तपस्तप्त्वा महाघोर प्रीतये पावंतीपतेः ।

ब्रह्मैव प्राप्तवान्ब्रह्मा योग चान्ये महर्षयः ॥१४॥

इसके पश्चात् वे महामुनि भगवान् तारकेश्वर प्रभु के दर्शन करने के लिए चले गये थे जहाँ पर भगवान् अन्न बाल में अपना ज्ञान प्रदान किया करते हैं ॥८॥ जहाँ पर ही इनने देवेश्वर के एक उत्तम लिङ्ग की स्थापना की थी । जिसके दर्शन करने से ही ब्रह्म हत्या के महापाप, शूद्र, श्वे, जाति, जाति, ई ॥९॥, माया, प्रीति, पुत्र, दयालुता, ई, माया, परमोत्तम लिङ्ग का दर्शन करने फिर भगवान् निदिधौ के प्रदान करने

वाले भगवान् शुक्रेश्वर का दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ से गमन किया था ॥१०॥ जहाँ पर अपरिमित तेज वाले शुक्र देवाचार्य मुनि ने आराधना की थी और भगवान् शिव के प्रसाद से सजीवनी विद्या को प्राप्त किया था जो विद्या सुरु को भी परम दुर्लभ है ॥११॥ देवेश्वर के अग्नि कोण के भाग में एक परम सुन्दर कूप विद्यमान है । वहाँ पर स्नान करने से वह कूप अश्वमेध महायज्ञ का परम शोभन फल प्रदान किया करता है ॥१२॥ उस कूप में मुनिवर व्यासजी ने स्नान किया था और शुक्रेश्वर शिव का दर्शन भी किया था । इसके पश्चात् वे ब्रह्मेश्वर प्रभु के दर्शन करने के लिये चले गये थे वहाँ पर विराट् ब्रह्माजी स्वयं ही विराजमान रहा करते हैं ॥१३॥ वहाँ पर ब्रह्माजी ने पार्वती के स्वामी भगवान् शिव की प्रीति प्राप्त करने के लिये महान धोर तप किया था जिसके प्रभाव से ब्रह्माजी ने ब्रह्मत्व प्राप्त कर लिया था और अग्न्य महर्षियो ने योग की प्राप्ति कर ली थी ॥१४॥

दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य सर्वयज्ञफल लभेत् ।

पुनर्जंगाम भगवानोकारेश्वरमव्ययम् ॥१५॥

स्मरणाद्यस्य लिङ्गस्य मुच्यते सर्वपातकैः ।

यत्र साक्षाच्छिवः सूक्ष्मो नित्य तिष्ठति वै द्विजाः ॥१६॥

अनुग्रहाय लोकता पशुपाशविमोचक ।

यत्र पाशुपताः सिद्धा ओकारेश्वरमीश्वरम् ॥१७॥

संपूज्य परमां सिद्धिं प्राप्तवन्तो द्विजोत्तमाः ।

कृष्णपक्षे चतुर्दश्या तस्मिन्नलिङ्ग उपोषितः ॥१८॥

यदि जागरणं कुर्यात्परां सिद्धिमवाप्नुयात् ।

सतः सत्यवतीसूनुः कृत्तिवासेश्वर ययौ ॥१९॥

उपासते महादेवं यत्र ब्रह्मादयः सुराः ।

मुनयः शसितात्मानो रुद्रजाप्यपरायणाः ॥२०॥

कृत्तिवासेश्वरे लिङ्गे लीला ना,श्च बहवो द्विजाः ।

देवस्य पूर्वदिग्भागे ह्यतीर्थं महत्सरः ॥२१॥

उस दिवलिङ्ग का ऐसा अमृतपूर्व प्रभाव है कि उसके दर्शन से प्राणी सभी प्रकार के यज्ञो के करने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है । फिर भगवान् व्यास देव अव्यय ओङ्कारेश्वर के भभीप में चले गये थे ॥१५॥ जिस लिङ्ग के स्मरण कर लेने भर से ही मनुष्य समस्त प्रकार के महा-पामको से छुटकारा पा जाया करता है । हे द्विजो ! जहाँ पर सूक्ष्म स्वरूप वाले भगवान् शिव साक्षात् निर्य ही स्थित रहा करते हैं ॥१६॥ पशुपाद के विमोचन करने वाले प्रभु ने लोको पर अनुग्रह के लिये ही ऐसा किया है । जहाँ पर सिद्ध पाशुपत ईश्वर ओङ्कारेश्वर का भली भाँति पूजन करके हे द्विजोत्तमो ! उत्तम सिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं । मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन में उपासित होकर उस लिङ्ग के समीप में स्थित रहे ॥१७-१८॥ यदि उस दिन रात्रि जागरण करे तो परमोत्तम सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है । इसके परवात् तत्पवती के पुत्र श्री व्यास देवजी कृतिवासेश्वर जी के स्थान में मग्न कर गये थे ॥१९॥ जहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण भगवान् महादेव जी की उपासना किया करते हैं । षष्ठि मात्या वाले मुनिगण रुद्र मन्त्र के जब में पद्ययन रहा करते हैं ॥२०॥ हे द्विजगण ! कृतिवासेश्वर लिङ्ग में बहुत से लीन हैं । देवेश्वर के पूर्व दिशा के भाग में हम तीर्थ नाम वाला एक महान सरोवर है ॥२१॥

स्नात्वा तत्र गह्वानेव कृत्तिवासेश्वर शिवम् ।

ये द्रक्ष्यन्ति महात्मानस्ते वै ब्रह्मादिवन्दिता ॥२२॥

सकृत्पश्यति यो भक्त्या कृत्तिवासेश्वर विभुम् ।

न पतत्येव सगारे रुद्र एव न सताय ॥२३॥

हमतीर्थे नर स्नात्वा कृत्तिवासेश्वर विभुम् ।

संपूज्य परया भक्त्या कृत्तिवासेश्वर शिवम् ॥२४॥

न पतत्येव सगारे नासनाया विचारणा ।

मयो रत्नेश्वर द्रष्टुं मोक्षो यत्र प्रतिष्ठित ॥२५॥

दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य फल वक्तुं न शक्यते ।

सर्वस्मादधिको योगो वेदविद्भिर्निपेक्ष्यते ॥२६॥

योऽय पाशुपतो योगः पशुपाशविमोचक ।

वर्षेर्द्वादशभिः सम्यक्कृते पाशुपते द्विजाः ॥२७॥

रत्नेश्वरे तदा ज्योतिर्दर्शनान्मनुजोत्तमः ।

रत्नेश्वर तु संपूज्य पाराशर्यो महामुनिः ॥२८॥

उस सरोवर में स्नान करके कृत्तिवासेश्वर महादेव शिव का जो दर्शन करेंगे वे महान् आत्मा वाले लोग ब्रह्मा आदि देवों के भी पूजित हो जाया करते हैं ॥२२॥ कृत्तिवासेश्वर विष्णु को जो केवल एक बार भी दर्शन करते हैं और भक्ति की भावना से उनका अवलोकन किया करते हैं वे फिर कभी भी इस ससार में आकर जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं वे तो साक्षात् रुद्र का ही स्वरूप प्राप्त कर लिया करते हैं—इस में शेषमात्र भी सन्देह नहीं है ॥२३॥ उस हस्ततीर्थ में मनुष्य स्नान कर के कृत्तिवासेश्वर प्रभु का पराप्रति से अभ्यर्चन करता है तो फिर वह इस ससार में कभी पतन प्राप्त ही नहीं किया करता है—यह पर्वथा सरथ है और इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए । फिर व्यास देव ने रत्नेश्वर भगवान् का दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ से चले गये थे जहाँ पर मोक्ष को प्राप्त कर लेना तो प्रतिष्ठित ही होता है ॥२४-२५॥ उस लिङ्ग के दर्शन प्राप्त करने से जो भी पुण्य-फल प्राप्त होता है वह तो मुख से कहा ही नहीं जा सकता है । सब से अधिक योग तो वेदों के वेत्ता लोगों के ही द्वारा नियोजित किया जाया करता है ॥२६॥ जो यह पाशुपत योग है वह पशुपाश का विमोचन करने वाला होता है । हे द्विजो ! बारह वर्ष तक इस पाशुपत योग की भली भाँति कर लेने पर उस समय में रत्नेश्वर में ज्योति आविर्भूत होती है । मनुजोत्तम उसका दर्शन करने से श्रेष्ठ प्राप्त किया करता है । रत्नेश्वर प्रभु का भली भाँति पूजन करके पाराशर्य मुनि के पुत्र महामुनि व्यासदेव आगे की ओर बढ़ गये थे ॥२७-२८॥

द्रष्टु देवाधिदेवेश वृद्धकालेश्वर ययी ।

तस्मिन्लिङ्गे महादेव सदा तिष्ठति लीलया ॥२६॥

अनुग्रहाय लोकानामुभया सह विश्वभुक् ।

पृथिव्या यानि लिङ्गगणि सन्ति दिव्यानि वै द्विजाः ॥२७॥

वृद्धकालेश्वरे दृष्टे दृष्टान्येव न सशय ।

देवस्य पूर्वदिग्भागे कूपो मुनिनिषेवित ॥२८॥

पूरित पुण्यसलिलैर्देवदेवेन शम्भुना ।

यं पीत तस्य सन्निधौ प्राकृर्नश्चुलुङ्गयम् ॥२९॥

प्रकृतिर्मुच्यते तेभ्यो मुक्तारमानो भवन्ति ते ।

तत्र द्वैपायनो विप्रः स्नानं कृत्वा समाहितः ॥३०॥

वृद्धकालेश्वर लिङ्गं संपूज्य च ततो ययी ।

मन्दाकिनीतटे रम्ये मुनिसिद्धनिषेविते ॥३१॥

मध्यमेश्वरनामान मोक्षलिङ्गमनुत्तमम् ।

यत्र ब्रह्मादयो देवा मुनयः सनकादयः ॥३२॥

फिर वे वहाँ मे देवाधिदेव श्री वृद्ध कालेश्वर प्रभु का दर्शन करने के लिये गये थे । उस लिङ्ग में महादेव सर्वदा ही लीला से समवस्थित रहता करते हैं ॥२६॥ समस्त लोकों के ऊपर अपना परम अनुग्रह करने के लिये विश्व का भोग करने प्रभु जगदम्बा उमादेवी के साथ ही वहाँ पर स्थित रहते हैं । हे द्विजो ! इस पृथ्वी पर जिनने भी दिव्य दिव्य लिङ्ग हैं उन सबके दर्शन केवल एक वृद्ध कालेश्वर के दर्शन कर लेने पर ही हो जाया करते हैं—इसमें मग्य नहीं है । देवेश्वर के पूरे दिगा के भाग में एक कूप मुनिग के द्वारा निषेवित है ॥२७-२८॥ देवों के भी देव भगवान् शम्भु के द्वारा वह पुण्य जलों का द्वारा पूरित कर दिया गया था । जिन साधारण मनुष्यों ने उसका तीन चुम्बू जल का पान किया है प्रकृति उनसे मुक्त हो जाया करती है और वे मुक्तारमा हो जाया करते हैं । हे विप्रो ! वहाँ पर द्वैपायन मुनि ने स्नान किया था और समाहित हो गये थे ॥२९-३०॥ फिर वृद्ध कालेश्वर लिङ्ग का भजी

भाति पूजन किया था और वहाँ से भी गमन करके चले गये । मन्दा-
किनी के तट पर परम गम्य स्थल है जो मुनि और सिद्धों के द्वारा सेवित
है । वहाँ पर मध्यमेश्वर नाम वाले परमोत्तम मोक्ष लिङ्ग विराजमान
हैं जहाँ पर ब्रह्मा आदि देव और सनकादि मुनिगण वहाँ पर भगवाद् की
सेवा के लिये रहा करते हैं ॥३४-३५॥

उपासते परं लिङ्गं शिवदर्शनकाङ्क्षिणः ।

मन्दाकिन्यां मुनिः स्नात्वा दृष्ट्वा वै मध्यमेश्वरम् ॥३६॥

घण्टाकर्णहृदे स्नात्वा लिङ्गं तद्विमलं शिवम् ।

प्रतिष्ठाप्य मुनिथेष्ठो सुखवाञ्छानामुत्तमम् ॥३७॥

घण्टाकर्णहृदे तत्र दृष्ट्वा व्यासेश्वरं शिवम् ।

यत्र यत्र मृतो वार्ष्णि वाराणस्या मृतो भवेत् ॥३८॥

ततः सत्यवतीसूनुः कपर्दीश्वरमीश्वरम् ।

द्रष्टुं जगाम विप्रेन्द्रा लिङ्गं तत्पारमेश्वरम् ॥३९॥

पिशाचमोचनं नाम तत्र तीर्थमनुत्तमम् ।

रुद्रलोकस्य सोपानमिति प्राह महामुनिः ॥४०॥

ये द्रक्ष्यन्ति कपर्दीशं कृतार्थास्ते न सशयः ।

मानुषी तनुमाश्रित्य रुद्रा एव न सशयः ॥४१॥

तस्मिंस्तीर्थे मुनिः स्नात्वा सतर्प्य च सुरान्पितॄन् ।

कपर्दीश्वरमीशानं सगूज्य प्रययौ मुनिः ॥४२॥

वे सभी भगवाद् शिव की दर्शनाकांक्षा रखने वाले होकर ही उनकी
उपासना किया करते हैं । व्यास मुनि ने भी मन्दाकिनी में स्नान करके
मध्यमेश्वर प्रभु का दर्शन किया था ॥३६॥ फिर घण्टाकर्ण हृद में स्नान
करके वहाँ पर विमल शिव लिङ्ग की प्रतिष्ठा करके थेष्ठ मुनि ने उत्तम
ज्ञान का नाम लिया था । जहाँ-जहाँ पर भी मृत्यु को प्राप्त होने वाला
मनुष्य वाराणसी में ही मृत हुआ करता है ॥३७-३८॥ हे विप्रेन्द्रो !
इसके अनन्तर सत्यवती के पुत्र महामुनि ईश्वर कपर्दीश्वर का दर्शन
प्राप्त करने वे लिये उस पारमेश्वर लिङ्ग के समीप में गये थे । वहाँ पर

पिशाच मोचन नामक एक उत्तम तीर्थ है । महामुनि ने यही कहा था यह तीर्थ रुद्र लोक में पहुँचने का सोरान है । जो कपर्दीश्वर प्रभु का दर्शन करेंगे वे निश्चित रूप से कृतार्थ हो जाया करते हैं—इसमें सशय विलकुल भी नहीं है । वे लोग मानुषी शरीर को आश्रय लेते हुए भी साक्षात् रुद्र ही होते हैं—इसमें विश्विन्मात्र भी संशय नहीं होता है । उस तीर्थ में मुनीन्द्र ने स्नान किया था और फिर मुरो तथा पितृगणों का तर्पण किया था । इसके अनन्तर कपर्दीश्वर का भस्मी भाँति किया और फिर वहाँ से प्रस्थान कर गये थे ॥३६-४०-४१-४२॥

॥ दक्षेश्वर माहात्म्य ॥

पुनर्जगाम भगवान्कृष्णद्वैपायन प्रभुः ।

द्रष्टुं दक्षेश्वरं देव भक्तानां सिद्धिदायकम् ॥१॥

यच्छिद्धावज्जया पाप जात दक्षप्रजापतेः ।

तस्य पापस्य मोक्षाय तस्मिँलिङ्गे द्विजोत्तमा ॥२॥

आराध्य देवदेवेशं बहुम्यन्दशतानि वै ।

तस्य प्रसन्नो भगवान्देवदेव सहोमया ॥३॥

ददौ माहेश्वरं योग तस्मै दक्षाय धीमते ।

लब्ध्वा त परम योग तस्मिँलिङ्गे तय गतः ॥४॥

ततः प्रभृति तस्मिँलिङ्गे योगिभिः मेव्यते द्विजाः ।

योग ददाति सर्वेषां देवो दक्षेश्वर शिवः ॥५॥

गङ्गाया प्रयत स्नात्वा दृष्ट्वा दक्षेश्वर शिवम् ।

प्राप्नोति परम योगमिति द्वैपायनोऽश्वत्थी ॥६॥

स्नात्वा सत्यवतीमृनुगङ्गाया प्रयतो द्विजाः ।

दृष्ट्वा दक्षेश्वरं देव ययौ पञ्चाग्रिमोचनम् ॥७॥

श्री मुनिजी ने कहा—फिर भगवान् कृष्ण द्वैपायन प्रभु दक्षेश्वर देव का दर्शन करने के लिये गये थे जो कि अपने यज्ञों की सिद्धियों के प्रदान

वरने वाले है ॥१॥ दक्ष प्रजापति को भगवान् शिव की आज्ञा से जो पाप हुआ था । हे द्विजोत्तमो ! उस पाप से मोक्ष पाने के लिये उस लिङ्ग में देव देवेश्वर को बहुत-से सैकड़ों वर्षों तक आराधना करके उन की उपासना की । फिर देवों के देव उमादेवी के साथ प्रसन्न हो गये थे ॥२-३॥ फिर भगवान् ने प्रसन्न होकर उस घीमान् दक्ष के लिये माहेश्वर योग प्रदान कर दिया था । उस परमोत्तम योग को प्राप्त करके यह उसी लिङ्ग में लय को प्राप्त हो गया था ॥४॥ हे द्विजो ! तभी से लेकर योगियों के द्वारा उस लिङ्ग की सेवा की जाया करती है और वे देव दक्षेश्वर शिव सभी को यह योग दिया करते हैं ॥५॥ ईपायन मुनि ने यह कहा है कि भागीरथी गङ्गा में प्रपत होकर स्नान करे और फिर दक्षेश्वर भगवान् शिव का दर्शन करके परम योग को प्राप्ति कर लिया करता है ॥६॥ हे द्विजगण ! सत्यवती के पुत्र व्यास देव ने प्रभत होकर गङ्गा में स्नान किया था और इसके पश्चात् दक्षेश्वर देव का दर्शन किया और इसके पीछे वे त्रिलोचन प्रभु के स्थान पर चले गये थे ॥७॥

हेतुना केन दक्षस्य निन्दाऽभूच्छाकरी पुरा ।

कारण वद तत्सूत श्रोतु वाञ्छा प्रवर्तते ॥८॥

आमीहृत्सुतो दक्ष पुन प्रचेतसोऽभवत् ।

शप्तो देवेन रुद्रेण क्रोधाच्छमारेवजया ॥९॥

वैर निधाय मनसि श भुना सह सुव्रता ।

दक्ष प्राचेतसो यज्ञमकरोज्जाह्नवीतटे ॥१०॥

तस्मिन्यज्ञे सम हूता इन्द्राद्या देवतागणा ।

ऋषयो मनुय सिद्धा राजान प्रथितोजस ॥११॥

ब्रह्मा च विष्णुना साधमाहून्मन्त्रेण धीमता ।

देवान्सर्वाश्च भागार्थमाहूतान्द्यसमव ॥१२॥

दृष्ट्वा शिवेन रहितान्दद्या प्रत्येवमघ्नीत् ।

अहो दक्ष महामूढ दुर्बुद्धे किं कृत त्वया ।

देवा सर्वे ममाहूता शङ्करेण त्रिना कथम् ॥१३॥

अन्तर्यामी स विद्वेशः सर्वेषामेव देहिनाम् ।

भोक्ता न सर्वयज्ञानां शङ्करः परमार्थतः ॥१४॥

ऋषियो ने कहा—पूर्व काल में किम हेतु से दक्ष प्रजापति को शङ्कर भगवान की निन्दा हुई थी । हे मृत ! उस कारण को बतलाने को कृपा करिए उसके ध्वंस करने की हमारी बड़ी प्रयत्न इच्छा है । ॥१५॥ श्री मृतजी ने कहा—दक्ष ब्रह्माजी का पुत्र था और फिर वह प्राचेतस हो गया था । यम्भु की अवज्ञा के होने से क्रोध से रुद्र देव ने उस दक्ष को नाश दे दिया था ॥१६॥ हे मुन्नी ! यम्भु भगवान के साथ मन में बैर रखकर प्राचेतस दक्ष ने जाह्नवी के तट पर यज्ञ किया था ॥१७॥ उस यज्ञ में इन्द्र आदि देवतागण सब बुलाये गये थे और ममस्त ऋषि-गण-भुनिगण-मिथ और प्रियि ओज जाने राजा योग भी बुलाये गये थे ॥१८॥ उस घीमान ने भगवान विष्णु के साथ ब्रह्माजी भी बुलाये गये थे । यद्य सम्भव ब्रह्माजी ने ममस्त देवों को अपना भाग ग्रहण करने के लिये बुलाया था । जब उन देवों की शिव में रहित उम्होने देखा था तो ब्रह्माजी दक्ष से यह बोले—॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अहो ! दक्ष ! तुम महान् मूढ़ हो तेरी बहुत ही दुष्ट बुद्धि है । यह तूने क्या किया है । बिना भगवान शङ्कर के ये ममस्त देवगण क्यों बुलाये गये हैं ? ॥२०॥ वह विद्वेश अन्तर्यामी है जो सभी देहपात्रियों के अन्दर विराजमान रहा करते हैं । यह सब यज्ञों के भोग करने वाले परमार्थ में भगवान् शङ्कर ही होने हैं ॥२१॥

एते च मुनयः सर्वे तव माहात्म्यकारिणः ।

न जानन्ति पर भाव महादेवस्य शून्यिनः ॥२२॥

एते च देवा शम्भो आगता यज्ञभगिनः ।

तन्मायामोहिताः सर्वे न जानन्ति विनाकिनम् ॥२३॥

सस्य पादस्य शून्योन्मिश्रित्य प्राप्तशानहम् ।

शान्तिनामि गदा मूर्त्ता प येन च निराश्वरः ॥२४॥

यस्य वामाङ्गजो विष्णुर्दक्षिणाङ्गाङ्गवाम्यहम् ।

यस्याऽऽङ्गऽखिल विश्वं सूर्यो भ्रमति सर्वदा ॥१८

चन्द्रश्च तारकाश्चैव ग्रहाश्च भुवनानि च ।

धर्माधर्मव्यवस्था च वर्णाश्रैवाऽऽश्रमाणि च ॥१९

तिष्ठन्ति शासनात्तस्य देवदेवस्य शूलिन ।

सा च शक्ति परा गौरी स्वेच्छाविग्रचारिणी ॥२०

तव पुत्रीति दुर्बुद्धे मन्यसे तमसाऽऽवृत ।

करता जानानि विश्वेशीमीश्वराधररीरिणीम् ॥२१

ये सब मुनिगण तुम्हारी सहायता करने वाले हैं और शूली महा-
देव का जो परम भाव है उसको नहीं जानते हैं । ये इन्द्र आदि देवगण
यज्ञ के भाग ग्रहण करने वाले यहाँ पर आ गये हैं । ये सभी उनकी
माया से मोहित हुए हैं और इनमें किसी को भी भगवान् पिनाकी की
महिमा का किञ्चि मात्र भी ज्ञान नहीं है । जिसके चरणों से स्पर्श की
हुई रज के छू लेने मात्र से मीने सहाय्य को प्राप्त किया है । शार्ङ्ग धनुष
के धारण करने वाले भगवान् विष्णु के द्वारा भी उनके चरणा की रज को
सदा फिर के द्वारा धारण किया जाया करती है तो भला बताइये तब
से पर अन्य कौन है ? ॥१६॥१७॥ जिनके वाम अङ्ग से भगवान् विष्णु
समुत्पन्न हुए हैं और दक्षिण अङ्ग से मैं पैदा हुआ हूँ और जिसकी
आज्ञा निरोधार्य कर सूर्य देव सर्वदा सम्पूर्ण विश्व में भ्रमण किया
करत हैं । उसी देवों के देव भगवान् शूली के शासन से ये सब चन्द्र-
तारा ग्रह और भुवन धर्म और अधर्म की व्यवस्था सब वर्ण तथा समस्त
आश्रम स्थित रहा करते हैं । और वह गौरी स्वेच्छा विग्रह का धारण
करन वाली उनकी ही परा शक्ति स्वरूपा है ॥१८॥१९॥२०॥ हे दुष्ट
बुद्धि वाले ! तू तब से ही ममावृत होकर उसको अपनी पुत्री समझ रहा
है । कौन है जो उस विश्व की स्वामिनी और महेश्वर के अर्ध शरीर
को धारण करने वाली को जानता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं है ॥२१॥

अज्ञान ही है और तुम्हारे विनाश का कारण है जोकि किसी विशेष हेतु से ही तुमको हो गया है—ऐसा ही मुझे निश्चित रूप से प्रतीत हो रहा है ॥३१॥३२॥ इस प्रकार से दधीचि मुनि के बधन का श्रवण करने विचक्षण दक्ष ने सब दक्ष आदि देवों की सन्निधि में ही दधीचि मुनि से हे विप्रो ! कहा था ॥३३॥ दक्ष ने कहा—हे द्विजोत्तम ! मैं नारायण भगवान् से अन्य किसी भी देव को नहीं देखता हूँ । शिव ही सब वस्तुओं के कारण नहीं है—ऐसा मुझे निश्चय है ॥३४॥ केवल एक नारायण ही सबके कारण हैं और भगवान् विष्णु से अन्य कोई भी कारण नहीं हैं—ऐसा भ्रूति प्रतिपादन करती है । उमा देवी के साथ जो देव है वही बुधों के द्वारा सोम ऐसा कहा जाता है भगवान् विष्णु कभी वही कारण है—ऐसा दधीचि ने कहा था ॥३५॥

तस्माद्य सर्वदेवानामधिकश्चन्द्रशेखरः ।

इज्यते सर्वयज्ञेषु कथं दक्ष न पूज्यते ॥३६॥

यज्ञस्य पालको विष्णुरिति यन्निश्चितं त्वया ।

भविष्यत्यन्यथैवाऽऽनु पश्यत कमनापतेः ॥३७॥

एते च ग्राह्याः सर्वे ये द्विपन्ति महेश्वरम् ।

भवन्तु वेदवाह्यस्ते तमोपहतचेतसः ॥३८॥

पापण्डाचारनिरता सर्वे निरयगामिनः ।

कलौ युगे तु संप्राप्ते दरिद्राः क्षूद्रयाजकाः ॥३९॥

सर्वस्मादधिको रुद्रः पशुपाशविमोचकः ।

पराङ्मुखस्तु युष्माकं मा भूदिज्याकरी गतिः ॥४०॥

इति शप्त्वा ययौ विप्रो दधीचिर्भुनिपुङ्गवः ।

स्वाश्रमं मुनिभिर्जुष्टमोकारं नर्मदातटे ॥४१॥

एतस्मिन्नन्तरे गौरी परव्योमात्मिका जिवत् ।

दक्षयज्ञस्य वृत्तात् श्रुत्वा देवश्रेष्ठं मातु ॥४२॥

प्राह विश्वाधिकं रुद्रं प्रणतार्तिप्रमञ्जनम् ।

निरोदयमाणं देवेशो परानन्दैर्नावग्रहम् ॥४३॥

दधोचि ने कहा—भगवान् शिव तो सभी यज्ञों में यजन किये जाया करते हैं । हे दक्ष ! तुम्हारे द्वारा उनका यजन फिर क्यों नहीं किया जा रहा है ? ॥३६॥ यह तुम्हारा जो निश्चित है कि यज्ञ के पालक भगवान् विष्णु है यह बात भी अभी शीघ्र वसलापति के देखते देखते अन्यथा ही हुई जाती है ॥३७॥ और ये सब ब्राह्मण जो महेश्वर भगवान् से द्वेष किया करते हैं वे सब तम से उपहत वित्त वाले वेद ब्राह्मण हो जायेंगे ॥३८॥ ये सब पापण से पूर्ण आचार में ही निरत हैं और नरकों के गमन करने वाले ही हैं तथा कनियुग के सम्प्राप्त होने पर ये धूर्तों को यजन कराने वाले हरिद्र हो जायेंगे ॥३९॥ सबसे अधिक भगवान् रुद्र देव ही हैं जो यशु पाशों के विमोचन करने वाले हैं । जो पराङ्मुख आप जैसे हैं आपकी इच्छा करने वाली गति कभी नहीं होगी ॥४०॥ वे मुनियों में महान् श्रेष्ठ दधोचि विश्व—इस प्रकार से क्षाप देकर वहाँ से चले गये थे । और भर्भटा के तट पर मुनियों के द्वारा सेवित ओङ्कार को जयते हुए अपने आश्रम को वे चले गये थे ॥४१॥ इसी वीथ में पर ध्योमातिका तिता गौरी ने देव श्रुति के मुख में दक्ष केयस का वृत्तान्त सुन लिया था और विश्वाधिक रुद्र देव से जोकि प्रणवों के आर्तियों का भङ्ग करने वाले हैं । परमानन्द स्वरूप विश्वह वाले हैं और सभी कुछ देखने वाले हैं देवसो ने कहा—॥४२॥४३॥

योऽयं प्राचेतसो दक्षः पिता मे पूर्वजन्मनि ।

आयामवज्ञाय कथं यज्ञं कर्तुं प्रचक्रमे ॥४४॥

देवाः सर्वे समाहूता विष्णुना सह सांकर ।

आदित्या वसवो रद्राः साध्याश्चैव भरुदग्नाः ॥४५॥

ऋषयो मुनयः सिद्धा दैतेया दानवाश्च ये ।

राजानश्च महामाणा गन्धर्वाः किनरास्तथा ॥४६॥

अवज्ञाकारिणस्तस्य यज्ञं शीघ्रं विनाशय ।

तेन मे जायते प्रीतिरतुला भक्तवत्सल ॥४७॥

एव देव्या वच श्रुत्वा देवदेव पिनाकधृत् ।
 असृजत्तत्क्षणाच्छ्रुत्वा भुर्वीरभद्र महाबलम् ॥४८॥
 सहस्रसिंहवदन प्रलयाग्निसमप्रभम् ।
 सहस्रबाहु जटिल दुष्टानां च भयकरम् ॥४९॥

श्री देवी ने कहा—जो यह प्राचेतस दक्ष है वह मेरे पूर्व जन्म में पिता था । वह हम दोनों की अवज्ञा करके कैसे यज्ञ करने में संलग्न हो गया है ॥४८॥ हे शङ्कर ! विष्णु देव के साथ अन्य सभी देवों को बुलाया है जिनमें अब आदित्य है वसुगण रदुगणसाध्य तथा भद्रगण भी हैं—ऋषि—मुनि—सिद्ध—सिद्ध—हैतेय और दानव भी हैं । सब मही भाग नृप हैं तथा गन्धर्व और विष्मर भी हैं ॥४९॥ हे भक्त बरसले ! उस अवज्ञा करने वाले के यज्ञ को आप बहुत ही शीघ्र विनष्ट कर दें । इससे मुझे बहुत अधिक प्रीति होगी ॥५०॥ इस तरह से कहे हुए देवी के वचनों को सुनकर दवा के देव पिनाकधारी प्रभु ने उसी क्षण में शम्भू न महाबलवान् वीरभद्र का मृजन किया था । उसका वदन एक सहस्र सिंहों के महान था और प्रलय काल की अग्नि के समान प्रभा से युक्त था । एक सहस्र उसकी बाहुएँ थीं मस्तक पर जटाएँ थीं तथा वह वीरभद्र दुष्टों के लिये महान भयङ्कर था ॥४८॥४९॥

भक्तानां वरद देव सूर्यसोमाग्निलोचनम् ।
 उमाकोपोद्भवा देवी भद्रकाली भयकरो ॥५०॥
 अन्याश्च देव्यो रद्राश्च क्षतशा रोमसभवा ।
 भद्रकाल्या सह तदा वीरभद्रो महाबल ॥५१॥
 प्रहितो देवदेवेन दक्षयज्ञजिघासया ।
 गत्वा स यज्ञ दक्षस्य भस्मसादकरोद्द्विजा ॥५२॥
 दक्षस्तदद्भुतं कर्म दृष्ट्वाऽथ भयविह्वलः ।
 गतस्त्वच्छरणं शीघ्रं वीरभद्रस्य शूलिनः ॥५३॥
 उवाच वीरभद्रस्तं दक्षं प्राचेतसं द्विजा ।
 तस्य पापविमोक्षाय वारुण्यामृतवारिधिः ॥५४॥

गच्छ वाराणसी दश सर्वपापप्रणाशिनीम् ।

अनुग्रहार्थं लोकानां यत्र तिष्ठति शकरः ॥५१॥

अनुग्रहाद्भगवतो देवदेवस्य शूलिनः ।

अनेनैव शरीरेण तत्र मोक्षं गमिष्यसि ॥५२॥

वह वीर भद्र शिव भवतो को वरदान देने वाला और सूर्य तथा
और अग्नि के समान नेत्रों वाला देव था । उमा देवी के क्रोध से
समुत्पन्न देवी महेश्वरी भद्र काली थी जो बहुत ही अधिक भयङ्करी
थी ॥५०॥ अन्य भी बहुतसी देवियों और रोमों से समुत्पन्न सैकड़ों ही
रुद्र थे उस समय में भद्रवाली के साथ महान बल वाले वीर भद्र को दश
के दश को विध्वंस करने की इच्छा से देवों के देव ने वहा पर भेजा था ।
हे द्विजो ! उस वीरभद्र ने वहा पहुँचकर दश के दश को भस्मी भूत कर
दिया था ॥५१॥५२॥ भगवति दश ने उरा अत्यन्त अद्भुत कर्म को
देखा तो वह भय से विह्वल हो गया था । वह शीघ्र ही शूली वीरभद्र
के शरणागति में प्राप्त हो गया था । हे द्विजो ! वीरभद्र ने प्राचेतस
दश से कहा था जो वीरभद्र उसके पापों का विमोचन करने के लिए
हम कल्याणमृत् के सागर के समान ही हो गये थे ॥५३॥५४॥ वीरभद्र
ने कहा—हे दक्षी अब आप सब पापों के विनाश करने वाली वाराणसी
में शीघ्र चले आइये जहा पर लोको के ऊपर अनुग्रह करने के लिये
राज्ज्वर भगवान् स्वयं विराजमान रहा करते हैं ॥५५॥ देवों के भी देव
शूली भगवान् के अनुग्रह से इसी शरीर से तैरा मोक्ष वहा पहुँचने पर
हो जायेगा ॥५६॥

वीरभद्रस्य वचनं श्रुत्वा दक्षो महामतिः ।

गत्वा वाराणसीं शीघ्रं सर्वसङ्गविवाजितः ॥५७॥

प्रतिपश्य महालिङ्गं गङ्गातीरे मनोरमे ।

आराध्य परया भक्त्या तस्मिँल्लिङ्गे लयं गतः ॥५८॥

दक्षेश्वरस्य माहात्म्यं कथितं मुनिपुङ्गवाः ।

त्रिलोचनस्य माहात्म्यं साप्रतः वण्यन्ते मया ॥५९॥

श्री मूनजी ने कहा—महामति मान दक्ष ने वीर भद्रग बवन सुन-
कर वह सब सङ्गा से रहित होकर शीघ्र ही वाराणसी पुरी में चला
गया था । वहाँ पर परम मनारम गङ्गा के तट पर एक महालिङ्ग की
प्रतिष्ठा की थी । वहाँ पर परम भक्ति से आराधना करके वह उसी
लिङ्ग में लीन हो गया था ॥५७॥५८॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! मैंने यह दशेश्वर
प्रभु का माहात्म्य आपके सामने वर्णित कर दिया है । अब अगे मेरे
द्वारा भगवान् त्रिलोचन के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है ॥५९॥

॥ त्रिलोचन माहात्म्य ॥

त्रिलोचनात्पर लिङ्ग वाराणस्या न दृश्यते ।
सदा मनिहितो नित्य यस्मिंस्त्रिङ्गे शिव स्थित ॥१॥
यानि स्थितानि लिङ्गानि वाराणस्या द्विजोत्तमा ।
दृष्ट न्येव भवन्त्येव दृष्टे लिङ्गे त्रिलोचने ॥२॥
असंख्यातानि पापानि ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
कृतानि नाशयत्येव देवदेवस्त्रिलोचन ॥३॥
मायापादोऽन वद्वाना सर्वेषा प्राणिनामपि ।
मृक्ति ददाति परमा देवदेवस्त्रिलोचन ॥४॥
पश्चिमाभिमुख लिङ्ग संप्रमेयतमण्डितम् ।
सम्य दर्शनमात्रेण कोऽपि निङ्गार्चन फलम् ॥५॥
त्रिलोचन मुगपूज्य कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
यशो कामेश्वर द्रष्टु मिद्वलिङ्गमनुत्तमम् ॥६॥
दशो दुर्वाससे यत्र देवदेवो महेश्वर ।
प्रमत्तो विविधा मिद्धि सर्वेषामपि दुर्नमा ॥७॥

श्री मूनजी ने कहा—इस वाराणसी पुरी में भगवान् के त्रिलोचन
लिङ्ग में महान् अन्य कोई भी लिङ्ग नहीं है जो वहाँ पर दिखलाई देता
हो । जिस लिङ्ग में सदा ही भगवान् निज स्थित रहा करते हैं ॥१॥

हे द्विजोत्तमो ! वाराणसी पुरी में जो अन्य जितने भी शिव के लिङ्ग विराजमान हैं उन सबका दर्शन केवल एक ही त्रिलोचन लिङ्ग के दर्शन करने पर ही होजाया करते हैं ॥२॥ देवों के देव भगवान त्रिलोचन जितने भी परम हैं उन सबका तुरन्त नाश कर दिया करते हैं चाहे वे असह्यात और ज्ञान से अथवा अज्ञान से किसी भी तरह से किये गये हों । देव देव त्रिलोचन प्रभु माया के पाश से बद्ध समस्त प्राणियों को परम मुक्ति प्रदान कर दिया करते हैं ॥३॥४॥ पश्चिम दिशा की ओर मुख वाले—सर्षों की मेखला से मण्डित वह लिङ्ग है । उस लिङ्ग के दर्शन मात्र से ही कोरिलिङ्गों के अर्चन कर फल प्राप्त हो जाया करता है ॥५॥ श्री कृष्ण द्रौपदी मुनि ने त्रिलोचन प्रभु का पूजन भली भाँति किया था और इसके पश्चात् कामेश्वर सब लिङ्गों में उत्तम लिङ्ग के दर्शन प्राप्त करने के लिए वहाँ से आये गमन कर गये थे ॥६॥ जहाँ पर देवों के देव महेश्वर ने प्रसन्न होकर अनेक सिद्धियाँ दुर्वासा मुनि को प्रदान की थी जो देवों को भी परम दुर्लभ होती हैं ॥७॥

अन्यश्चापि वरो दत्तो देवदेवेन शूनिना ।

कृतानां क्रियमाणानां सर्वेषां तपसामपि ॥८॥

क्रोधो नाशकर प्रोक्तो ह्यन्यथैव मुनेऽस्तु ते ।

तस्य दक्षिणदिग्भागे कामकुण्डमिति स्मृतम् ॥९॥

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या दृष्ट्वा कामेश्वरं शिरम् ।

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्तो याति परां गतिम् ॥१०॥

अन्यान्यपि च लिङ्गानि वाराणस्यां स्थितान्यपि ।

संख्यामपि न जानाति तेषां देवश्चतुर्मुख ॥११॥

को वा वदति माहाम्ममृते देवान्महेश्वरात् ।

नन्दीश्वरो वा जानाति प्रसादाद्भिरिजापते ॥१२॥

अथ सत्यवतीसूनुर्द्वेष्टुः देवीं शिवां पराम् ।

विद्यालाक्षीं द्विजश्रेष्ठां यय सनिहितां शिवा ॥१३॥

ता दृष्ट्वा विधिद्वयवत्या मपूज्य च महामुनि ।

परानन्दात्मिका गौरी स्तुति मत्वा चकार स ॥१४॥

देव देव शूची ने अन्य भी वरदान दिया था जो किये हैं और जो भी इस समय में किये जा रहे हैं उन सब तपो का नाश करने वाला क्रोध होता है ऐसा कह गया है। अतएव मुनिवर आपका यह सब किया हुआ तन व्यर्थ ही हो जाया करता है क्यों कि आप में बड़ा भारी उग्र क्रोध विद्यमान है। इसलिये उसके दक्षिण दिशा के ओर एक काम कुण्ड नाम वाला सरोवर कहा जाता है विद्यमान है ॥८॥१६॥ उस कुण्ड में मनुष्य भक्तिभाव से स्नान करके और कामेश्वर प्रभु शिव का दर्शन करके ब्रह्म हत्या आदि महा मानकी से भी मुक्त हो जाया करता है तथा परमगति की प्राप्ति कर लेता ॥१७॥ इनके अतिरिक्त अन्य भी शिवलिङ्ग वाराणसी में स्थित हैं उन सबकी सत्ता को चतुर्मुख देव भी नहीं जानते हैं इतनी अधिक सन्या है ॥११॥ उन सब सबके माहात्म्य को महेश्वर देव के बिना अन्य कौन कह सकता है अर्थात् किसी में भी ऐसी सामर्थ्य नहीं है। केवल एक नन्दीवत् रही गिरिजा पति की कृपा से उसको जानता है ॥१२॥ इससे अनन्तर मत्स्यवती ने पुत्र पराशरा देवी का दर्शन करने के लिये गये थे जहाँ पर ८ द्विजों ने परम श्रेष्ठों। विशालाक्षी शिवा स्वयं सम्मिहित रहा करनी है। यहाँ मुनि ने उनका दर्शन करके भवनी भाँति से उनका अभ्यर्चन किया था तथा गौरी की परानन्दात्मिका मान कर उन महा मुनि ने उनका स्नान भी किया था ॥१३॥ १४॥

विनालाक्षि नमस्तुभ्य परब्रह्मात्मिके शिवे ।

स्वमेव माता सर्वेषां ब्रह्मादीनां दिगौरसाम् ॥१५॥

इच्छानसि क्रियाशक्तिर्जननविनम्रत्वमेव हि ।

ऋज्वी कृण्डतिनी मूढमा योगसिद्धिप्रदायिनी ॥१६॥

स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मी. सख्यनी ।

गती दायागणी विद्या सर्वशक्तिमयी शिवा ॥१७॥

अपर्णा चैकपर्णा च तथा चैकैकपाटला ।

उमा हैमवती चापि कल्याणी चैव मातृका ॥१८॥

ख्यातिः प्रजा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ।

गणाम्बिका महादेवी नन्दिनी जातवेदसी ॥१९॥

सावित्री वरदा पुण्या पावनी लोकविश्रुता ।

आयती निमती रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ॥२०॥

कालरात्री महामाया रेवती भूतनायिका ।

गौतमी कौशिकी चाऽऽर्षा चण्डी कार्त्तयायनी सती ॥२१॥

श्री व्यासदेव जी ने कहा था—हे विशाल नेत्रों वाली भगवती ! आपको मेरा प्रणाम है । हे शिव ! आप तो परब्रह्म के ही स्वरूप वाली हैं । ब्रह्मा आदि समस्त देवों की आप ही माता हैं ॥१८॥ इच्छा शक्ति-ज्ञान-शक्ति और क्रिया शक्ति आप ही तो हैं । आप ऋग्वेदी सूरमा कुण्डलिनी हैं जो योग की सिद्धियों को प्रदान करने वाली होती हैं । ॥१९॥ स्वाहा-स्वघा-महाविद्या-मेघा सहस्री-सरस्वती-सती दाक्षारणी-सर्व शक्तिमयी शिष्य-अपर्णा-एक पर्णा-ऐकैक पाटला-उमा-हैमवती-कल्याणी-मातृका आप ही हैं ॥१७-१८॥ ख्याति-प्रजा-महाभागा और लोक में प्रसिद्ध गौरी भी आप ही हैं । गणाम्बिका-महादेवी नन्दिनी-जात वेदसी-सावित्री-वरदा-पुण्या पावनी-लोकविश्रुता-आयती-निमती-रौद्री-दुर्गा-भद्रा-प्रमाथिनी-कालरात्री-महामाया-रेवती-भूतनायिका-गौतमी-कौशिकी-आर्षा-चण्डी-कार्त्तयायनी-सती भी आप ही हैं अर्थात् ये सब आपके ही विभिन्न रूप हैं ॥१८-२०-२१॥

वृषध्वजा शूलधरा परमा ब्रह्मचारिणी ।

महेन्द्रोपेन्द्रमाता च पार्वती सिंहवाहना ॥२२॥

एवं स्तुत्वा विद्यालक्षी दिव्यैरेतैः मुनामभिः ।

कृतकृत्योऽभवद्द्वयासो वाराणस्या द्विजोत्तमाः ॥२३॥

वाराणस्यां विद्यालक्षी गङ्गा विश्वेश्वरः शिवः ।

भक्तिं पशुपती तत्र दुर्लभं हि चतुष्टयम् ॥२४॥

य पश्यति विशालाक्षी स्नात्व गङ्गाम्मसि द्विजाः ।

अश्वमेघसहस्रस्य फनमाप्नोत्यनुत्तमम् । २१।

वाराणस्यास्तु माहात्म्यमिति किञ्चिन्मयोदितम् ।

य पठेच्छृणुमाद्यापि यानि माहेश्वरं पदम् । २६।

वृषध्वजा-मूषधरा-सरमा-ब्रह्मचारिणी महेश्वरीपेन्द्रमाना-गर्वती-
निहवाहनामी आप ही हैं । इस प्रकार से उस विशालाक्षी का दिव्य
गुहर नामों के द्वारा स्तवन करने व्यासदेव हे द्विजो । उस वाराणसी
पुरी में कृतकृत्य हो गये थे । २२ २३। वाराणसी पुरी में ये चार वस्तुएं
बहुत ही दुर्लभ हैं जो अन्यत्र वही भी प्राप्त नहीं हो सकती हैं—एक तो
विशालाक्षी देवी—दूसरी भागीरथी गङ्गा—तीसरी विद्देवदेव शिव और
चतुर्थ पशुपति भगवान् में भक्ति । २४। हे द्विजो ! जो पुरुष गङ्गा के
गरम पावन जल में अवगाहन करके विशालाक्षी भगवती जगदम्बा का
दर्शन किया करता है वह एक सहस्र अश्वमेघ यज्ञों के पुण्य फल को
उत्तम रूप से प्राप्त कर लिया करता है । २५। वाराणसी पुरी का माहात्म्य
अद्वय विनाल है । मैंने तो वहाँ पर कुछ थोड़ा सा ही बतना दिया है ।
जो भी इस माहात्म्य का श्रवण करता है अथवा इसको पढ़ता है वह
भीषा महेश्वर भगवान् के पद को प्राप्त किया करता है । २६।

—

। शिव भक्त महिमा ।

अन्यद्ग्रन्थमिदं वदन्ते शृणुष्व मूनिपुङ्गवा ।

शिवेन बध्निन माशात्मकस्य स्कन्दाय पृच्छन्ते । १।

देवदेव महादेव जगद्गुरुनमोऽस्तुते ।

भर्गो विश्वेश्वरेशान् वाम्भ्यामृणवारिधे । २।

पश्य प्रसीदति शिघ्रं तेन वा ज्ञायते भवान् ।

योगस्त्वद्विषयः को वा ज्ञान त्वद्विषयः च किम् । ३।

गर्वमेतन्महादेव पुत्रस्नेहाहुरीहि मे । ४।

मद्भक्त सर्वदा स्कन्द मत्प्रियो न गुणाधिक ।
 सर्वांशी सर्वभक्षी वा सर्वाचारविनोपक ॥५॥
 मरुपरो वड्भन कार्यमुक्त एव न सशय ।
 नाहं प्रसन्नस्तपमा न दानेन न चेज्यया ॥६॥
 तुष्टोऽहं भक्तिसेवेन क्षिप्रं यच्छे परं पदम् ।
 त्रिपुण्ड्रधारी सततं शान्तो रुद्राक्षरङ्गण ॥७॥
 निर्दम्भ सत्यसक्त्पो भक्त स्यादुत्तमो मम ।
 सूर्यवह्नीन्दुभक्तानामुत्तमो वैष्णव पर ॥८॥

श्री सूनजी ने कहा—हे मुनियोग्यो ! मैं अब एक अन्य जन के विषय में बतलाऊंगा । आप लोग उसका श्रवण करिए सेनाती स्कन्द के पृच्छने पर उनको साक्षात् भगवान् शिव ने ही स्वयं इसको कहा है ॥१॥ स्कन्दजी ने कहा—हे देवो के भी देव ! आप तो महान् देव हैं और आपने चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण कर लिया है । हे भगं ! आप इस विश्व के ईश्वर के भी ईशान हैं तथा परब्रह्मणी अमृत के महासागर हैं ॥२॥ आप कृपा कर यही बतलाइये कि आप किस के ऊपर बहुत शीघ्र प्रसन्न होने हैं और जिसके द्वारा आपका ज्ञान प्राप्त किया जाता है ? आपके विषय का योग क्या है और आपसे सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान क्या होता है ? ॥३॥ हे महादेव ! यही सब कुछ आज मुझे अपना पुत्र समक्ष पर स्नेहपूर्वक बनाने की कृपा कीजिये ॥४॥ ईश्वर ने कहा—हे स्कन्द ! मेरा भक्त सर्वदा मेरा हृदय हुआ करता है । कोई गुणों में अधिक हो वह मेरा प्रिय नहीं होता है चाहे सभी कुछ का भण्डार करने वाला हो, भले ही सर्वेश्वरी हो और सभी आचारों का विनोम ही क्या न करने वाला हो किन्तु मन-वाणी और शरीर से मुझसे ही परायण रहने वाला हो तो वह निश्चय ही मुक्त हो जाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । मैं अधिक तपस्वियों से—दान से तथा दया से सभी प्रसन्न नहीं हुआ करता हूँ । मैं तो केवल भक्ति के योगमान से ही सन्तुष्ट हो जाया करता हूँ और उस करने वाले को शीघ्र ही परम पद प्रदान

कर दिया करता हूँ । जो त्रिपुण्ड्र की धारण करने वाला हो, निरन्तर ध्यान्त रहता हो और रुद्राक्ष का कङ्कण रखता हो —तथा दम्भ से रहित और सत्य सङ्कल्प हो वही मेरा उत्तम भक्त होता है । सूर्य-अग्नि-चन्द्र-इनके भक्तों में वैष्णव पद एवं उत्तम होता है । १५। १६। १७। १८।

वैष्णवाना सहस्रेभ्य शिवभक्तो विशिष्यते ।

यदि पापरत क्रूर स्वाश्रमाचारवर्जितः ॥६

मम भक्तो यदि भवेत्पूज्यो मान्य स एव हि ।

येऽपि दम्भ श्रमाश्रित्य भक्तानामुरजीविका । १०।

मसार।त्तेऽपि मुच्यते किं पुनर्मत्परा जना ।

मद्भक्तानां च माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वतः । ११।

जानेऽहं त्वं च जानासि नन्दो जानाति व मुहुः ।

मार्गस्थो वाऽप्यमार्गस्थो मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा । १२।

मम भक्तो यदि भवेत्सर्वस्मादधिको हि स ।

भक्त प्रियो मे सततं यथा त्वं श्रीश्वभूदन । १३।

तस्मात्तत्पूजनाद्वत्स पूजितोऽहं न मयः ।

मद्भवत द्वेष्टि यो मोहात्म भा द्वेष्टि सनातनम् । १४।

सहस्रो वैष्णवो मे शिवभक्त विशिष्ट होता है । यदि पापो मे रत हो—क्रूर हा और अपने आश्रम के आचार से भी वञ्चित हो यदि वह मेरा भक्त है तो वह परम पूज्य और मान्य ही हुवा करता है । जो भी कुछ लोग दम्भ का सहारा लेकर भक्तों के उप जीविका होते हैं वे भी दण मनार से मुक्त हो जाया करत हैं फिर जो मेरे ही ध्यानार्थन में ललर रहा करते हैं उनकी ता बान ही क्या है । मेरे जो भक्त है उनका माहात्म्य को तारिख रूप से कीन जानना है अर्थात् कोई भी नहीं जाना करता है । ६। १०। ११। मैं जनता हूँ और तुम जानने हो—नन्दी भयवा मुह जानना है । मार्ग मे स्थित अथवा अमार्ग मे रहने वाला हो—पण्डित हो या मूर्ख हो । १२। यदि वह मेरा भक्त है तो वह मयके अगिर लाया है । मेरा भक्त मुझे भक्त ही प्यारा लाया है जैसे हे श्रीश्वभूदन !

तुम मेरे प्यारे हो ॥१३॥ है वत्स ! इसीलिए उस मेरे भक्त के पूजनाचन से मैं ही साक्षात् पूजा मया होता हूँ—इससे बुद्ध भी संशय नहीं है । जो मोह के कारण से मेरे भक्त से द्वेष करता है वह मुझ रानातन से ही द्वेष किया करता है क्योंकि मेरे भक्त बहुत ही प्रिय और प्राणों के समान होते हैं ॥१४॥

त पूजयति यो भक्त्या स मा पूजितवान्गुह ।
भक्तिरष्टविधा स्कन्ध सर्वशस्त्रेषु पठ्यते ॥१५॥
तामह कथयिष्यामि भक्ति भवविनाशिनीम् ।
मङ्गलजनवात्सल्य पूजायाश्चानुमोदनम् ॥१६॥
स्वयम्भ्यर्चनं भक्त्या ममार्थं चाङ्गवेष्टितम् ।
मत्कथाश्रवणे भक्ति स्वरनेत्राङ्गविक्रिया ॥१७॥
ममानुस्मरणं नित्यं गच्छ मा नोपजीवति ।
भक्तिरष्टविधा ह्येषा गस्मिन्ल्लेखोऽपि वर्तते ॥१८॥
म विप्रेन्द्रो मुनि श्रीमान्स यतिः स च पण्डित ।
तस्मै दानं सदा देयं तस्माद्वाह्यं पठानन ॥१९॥
सकृदभ्यर्चयेन्मा यो भक्तिलेशसमन्वित ।
॥ महापातकैर्मृत्को मम लोके महीयते ॥२०॥
स्वहस्ताद्भुतपुष्पाणि मामृद्दिश्व प्रयच्छन्ति ।
तद्दानं सर्वदानानामतमं त्रिपठ्यते ॥२१॥

हे गुह ! जो मेरे भक्त की पूजा करता है उगरी भक्तिभाव से मेरा ही पूजन किया हुआ ममगता चाहिए है सन्द । यह भक्ति आठ तरह की होती है जो कि सभी शास्त्रों में पढ़ी गयी है ॥१३॥ मैं अब उगी सगार के अपार वा विनाश करने वाली भक्ति के विषय से बतलाता हूँ । मेरे भक्तियों के कारण वात्सल्य अर्थात् हादिक अनुपम पूजा वा अनुमोदन करना—स्वयं जो भक्ति में यत्न करना—मेरे लिये अङ्ग वेष्टित—मेरी वधा से श्रवण करने में भक्तिभाव—गूर के और अङ्गों की विविधा वा होता—मेरा ही नित्य स्मरण करना और जो मुनियों

उपजीविन रहता है—यही आठ प्रकार की भक्ति होती है जिसमें इस भक्ति का लेशमात्र भी विद्यमान है वही विप्रोद्भ—मुनि, श्रीमान् यति और वह ही पण्डित है। उसको ही सदा दान देना चाहिये। हे पंडानन ! उससे ग्रहण करना चाहिए ।१६। १७। १८। १९। जो मुझको एकबार ही अभ्यर्चित कर देता है वह भक्ति के लेश में युक्त होता है। वह महान् पातको से मुक्त होकर मेरे लोब में ही प्रतिष्ठित हुआ करता है। अपने हाथ से लाये हुए कुमुदों को जो मेरा उद्देश्य करके समर्पित किया करता है वह दान अन्य सभी दानों से उत्तम परिगणित किया जाना है ।२०। २१।

मयि भक्ति सदा कार्या भवपाशविमोचनी ।

भक्तिगम्यस्त्वहं वत्स मम योगो हि दुर्लभ ।२२।

योगात्मजायते ज्ञान योगो मय्येकचित्तता ।

न न स्वरूपमेव स्याद्विद्रूपमजमव्ययम् ।२३।

आनन्दमजरं शुद्धमज्ञानेन निरोहितम् ।

वेदान्तवाक्यबोधेन तच्चाज्ञान निवर्तते ।२४।

ज्ञान नैराऽऽत्मनो धर्मो न गुणो वा कश्चन ।

ज्ञानस्वरूपमेवाऽऽत्मा नित्य मर्कगन शिव ।२५।

अहमात्मा समस्ताना भूताना परमेश्वर ।

एक एव पदार्थश्च कल्पितो मयि पण्मुय ।२६।

अद्वैतमेक परममात्मानं ज्ञानविग्रहम् ।

नानात्मान प्रपद्यन्ति मायया मोहिता जना ।२७।

नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयातिवका ।

सदमदृम्यामन्यरूपा मिथ्याभूता सनातना ।२८।

हे वत्स ! मेरी भक्ति सदा ही करनी चाहिये क्योंकि यह भव के पाशों का विनाश कर देने वाली होती है। मैं भक्ति के ही द्वारा गम्य होता हूँ और मेरा योग तो अत्यन्त दुर्लभ होता है ।२२। योग से ज्ञान समुत्पन्न हो जाता है और यह योग सुखम एव चित्तता का होना ही

होता है। ज्ञान तो मेरा स्वरूप ही होता है जो चिद्रूप अर्थात् ज्ञान के स्वरूप वाला—अध्यय-आनन्द-अजर-और शुद्ध है जो कि अज्ञान के द्वारा ही तिरोहित (छिपा हुआ) रहा करता है। वेदान्त के वाक्यों के अवबोध होने से वह अज्ञान निवृत्त होना है। १२३। १२४। ज्ञान आत्मा का धर्म और कोई गुण नहीं है। प्रत्युत यह आत्मा ज्ञान स्वरूप वाला ही होता है—यह निश्चय है—सर्वगत और शिव है। १२५। मैं ही समस्त भूतों का आत्मा एवं परमेश्वर हूँ है पशुभुव ! और—एक ही पदार्थ मुझमें सन्निहित है। १२६। माया से मोहित जन अद्वैत—एक—ज्ञान के निग्रह वाले परमात्मा को अनेक आत्माओं वाला देखा करते हैं। १२७। मेरी माया न सद्रूप वाली है और न असद्रूप रूप वाली है तथा वह माया सभवात्मिका भी नहीं है। वह मेरी माया सद और असद से अन्य ही स्वरूप वाली होती है तथा मिथ्याभूत है और सनातना भी है अर्थात् सर्वदा से चली आने वाली है। १२८।

विज्ञानमेवमखिल विश्वाकारमबुद्धयः ।

पश्यन्ति ज्ञानिनस्त्वेकमात्मरूपमिदं जगत् । १२९।

अहमात्मा विभुः शुद्धः स्फटिकोपलसन्निभः ।

उपाधिरहितः शान्तः स्वयज्योतिः प्रकाशकः । १३०।

आत्मन्येवाखिल भाति शुक्तिकारजत यथा ।

शुक्तितत्त्वरिज्ञानात्तन्नाशस्तद्वदात्मनि । १३१।

कर्तृत्वं नैव भोवतृत्वमात्तनोऽस्मि कदाचन ।

अहङ्काराविवेकेन कर्तृत्वमिति निश्चितम् । १३२।

आत्मनो नित्यमुक्तस्य निर्विभागस्य पशुमुख ।

नैवास्ति किञ्चित्कर्तृत्वमित्याहुर्वेदवादिनः । १३३।

कर्तृत्वं करणस्यैव नाऽऽत्मनोऽस्मि हि तत्पत ।

न तेन लिप्यते ह्यात्मा पुण्यापुण्याख्यकर्मणा । १३४।

जो बुद्धि से रहित होते हैं वे समस्त विश्व के आवार वाला विज्ञान को ही देखा करते हैं और जो जानी होते हैं वे इस जगत् को एक ही

आत्मरूप देखते हैं । १२६। मैं आत्मा हूँ—एक हूँ—विभु-गुह्य-स्फटिक के समान हूँ—उपाधि से रहित-शान्त स्वयं ज्योति और प्रकाशक हूँ । १२७। जिस तरह से सीप में रजत (चांदी) का भ्रम उसके चरुचिक्क के कारण में हो जाया करता है वैसे ही यह सम्पूर्ण आत्मा में ही विभात हुआ करता है । जब शक्ति के तत्त्व का परिज्ञान हो जाता है तो वह रजत का भ्रम दूर हो जाया करता है उसी तरह से तत्त्वज्ञान होने से उमी की भांति आत्मा में उमका नाश हो जाया करता है । १२८। इस आत्मा में कभी भी न तो वत्तुत्व होना है अर्थात् यह किसी भी कर्म का कर्त्ता नहीं होता है और भीवनरूप इन आत्मा में होना है अर्थात् यह किसी भी कर्म का जय कर्त्ता ही नहीं है तो भोगने वाला भी नहीं हुआ करता है । यह वत्तुत्व आत्मा में अहङ्कार और अविवेक से ही हुआ करता है—यही निश्चित है । १२९। हे बरमुख ! यह विभाग से रहित है—नित्य मुक्त है, इसको कुछ भी कर्त्तव्य नहीं होता है ऐसा ही वेदों के ज्ञाता पुरुष रहा करते हैं । १३०। सात्त्विक रूप में आत्मा को वत्तुत्व और करणत्व कुछ भी नहीं होता है जो कुछ भी कर्म जाना है उसमें यह आत्म-नरम भी निग नही हुआ करता है चाहे वह कर्म पुण्य स्वरूप हो । किसी भी प्रकार के कर्म से आत्मा निग नहीं होती है । १३१।

बुद्धधादयो गुणा सर्वे त्प्रभृदनुन्देरहृति ।

अहकाराच्च मूढमाणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ॥ ३५

मूढमेभ्य पञ्च भूतानि तेभ्य म्यूतमिद जगत् ।

चतुर्विंशन्मध्यक्तं पुण्य पञ्चविंशत् ॥ ३६

न तस्य तार्यं वर्णं क्रियारूपं च विद्यते ।

स्वाशानात्कवित मर्लमान्मन्गेवेति च श्रुति ॥ ३७

इति मद्रिपय जान कथितं तव पुत्रव ॥ ३८

बुद्धि आदि में सब गुण हैं । बुद्धि में अहकार हुआ था और अह-कार में मूढम तन्मात्राये होती हैं और इन्द्रिया हुआ करता है । १३५।

उन्हीं मूढम तन्मात्राया में पांच भूत होते हैं और उन्हीं पञ्च-भूतों में यह सम्पूर्ण स्वरूप जगत् उत्पन्न हुआ करता है । यह अहकार भी-सो-रूप का होता है और पञ्चोक्त यह पुरुष हुआ

करता है। मन बुद्धि अहङ्कार-माँच तन्माना-पञ्चभूत-ग्यारह इन्द्रियाँ ये २४ हुए। १३५। उमरों न तो कार्य है और न करण है और न वह क्रिया रूप ही है, अपने ही अज्ञान से ये सब आत्मा में कहे गये हैं— ऐसी श्रुति है। १३७। यही मेरे से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान है। हे पुत्र यही मैंने आपको बतना दिया है। १३८।

भूतकार्यमिदं देहभाषद्रोगाकुल परम् ।

विषयं पीडयते देव सुखदुःखात्तकं सदा ॥१॥

अभिभूतो यदा योगो दुःखैरध्यात्ममभवौ ।

किमुपाय तदा तस्य यदा नै भौतिकस्य च ॥२॥

नूत्नाधिदैवितस्यापि योगसंसिद्धये प्रभो ।

यातनायोपसर्गाणां प्रसादाद्योगिना वद ॥३॥

सात्त्विका राजसा विघ्नास्तामसास्त्विह योगिनाम् ।

योगनासररा सर्वे भवन्ति भवतामपि ॥४॥

प्रातिभाश्रवणावातादर्शनास्वादवेदना ।

उपसर्गा भवन्त्येते सात्त्विकास्तु पदेव हि ॥५॥

वरिद्रोऽहमहं चाऽऽद्वयं शूरोऽहं दूर्बलस्तथा ।

मूर्खाऽहं च सुविद्वांश्च सुहृदोऽहमरूपवान् ॥६॥

दीताऽहं वपणश्चाहं सुखी भोग्यहमेव च ।

अकृलीन कुलीनश्च कण्टक कण्टकोज्जित ॥७॥

श्री स्कन्द देवजी ने कहा—यह देह तो भूतों का ही कार्य है और आपत्ति तथा रोगों में परम व्याकुल रहा करता है। यह शरीर विषयों के द्वारा जो सुख-दुःख स्वल्प सदा पीडित रहा करता है ॥१॥ जिस समय में अध्यात्म सम्भव दुःखा से योगी सदा अभिभूत रहा करता है उस समय में जबकि ऐसी परिस्थिति हो तो इस भौतिक का क्या उपाय है। २। हे प्रभो अविदैविक की भी योग की साधना के लिये बतलाइए। योगियों की उपसर्गों की यातना के लिये भी प्रसन्नता से बतलाइये। ३। श्री ईश्वर ने कहा—यहाँ पर योगियों के विघ्न सात्त्विक-राजस और तामस हुआ करते हैं। ये सभी आपकी योग

के त्रास करने वाला होते हैं । ४। सात्त्विक उपसर्ग के बल से ही हुआ करते हैं जो प्रातिम-श्रवण-वार्त्ता-दर्शन-आस्वाद वेदन्त सून हैं । ५। मैं दरिद्र हूँ और मैं शूर वीर हूँ और दुर्बल हूँ—मैं मूर्ख हूँ और बड़ा विद्वान् हूँ—मैं सुन्दर रूप वाला हूँ और अरूप वाला हूँ—दाता हूँ और कृष्ण हूँ—मैं मुखी और भोगी हूँ—अकुलीन हूँ और कुलीन हूँ—कण्ठक और कण्ठकोक्षित हूँ । ६॥७॥ ✓

✓ मदीय सर्वमेतद्धि वस्त्वित्यादिप्रजल्पनम् ।

अहकारमय किञ्चिद्यत्तत्कुत्सन् हि राजमम् ॥८॥

अन्धत्व चैव बाधियं पङ्क्तुत्व दूष्टरोगता ।

शिरोरोगो ज्वर शूलयदममूर्च्छाभ्रमादय ॥९॥

राजसास्तामसा सर्वे तमोहकारसयुता ।

व्याधयो मिश्रभावेन पीडयन्तीह देहिनम् ॥१०॥

केवल जाड्यभावेन मूढत्व मोहन तथा ।

अज्ञानत्व च मूकत्वमित्याद्यास्तामसा स्मृता ॥११॥

गुह्यका यातुधानाश्च किनरोरगराक्षसा ।

देवदानवरीद्राश्च दैत्या मातरजा गणा ॥१२॥

तामसास्तु ग्रहा भूता वायुभूता नर सदा ।

पीडयन्तीह विघ्ना हि योगाम्नासरत ग्रहे ॥१३॥

एवमाद्युपसर्गाणां वारणाय च धारणाम् ।

वदयामि विधिया बल्य योगिना सिद्धिहेतवे ॥१४॥

यह समस्त वस्तु जान म ही हैं—इत्यादि प्रजल्पन जो कुछ भी अहङ्कार से परिपूर्ण है वह सम्पूर्ण राजस अधोन् रजोगुण से युक्त है । ८। अन्धापन-बाधिरता-मगलापन होना दुष्ट रोग का हो जाना—शिर में रोग-ज्वर-शूल-राजयदमा-मूर्च्छा-भ्रम प्रभृति ये सब तम और अहङ्कार से युक्त राजस तथा तामस हैं । ये व्याधियाँ मिश्र भाव में देह धारी को पीडा दिया करती हैं । ९॥१०॥ केवल जाड्य भाव में मूढता तथा मोह का होना-अज्ञान होना और मूक होना इत्यादि सब तामस

बहे गये है '११। गुहमहा प्रतुवा-विन्नर-उरग-राशम-देव-दानव-रोद्र-
दैत्य और सप्तवज्र गुण-ग्रहभूत तथा वायुभूत तामस हैं जो मनुष्य को
सदा ग्रहों के द्वारा जो योग के अभ्यास में रत है उसको पीड़ा दिया
करते हैं और ये सभी विघ्न होते हैं । १२॥१३। इस प्रकार के उपसर्गों
के अनवारण करने के लिये हे वत्स ! योगियों की सिद्धि के लिये विविध
प्रकार की धारणा को मैं बतलाता हूँ । १४।



॥ सात्विक-राजस विघ्नादि कथन ॥

त्वगादिसप्तधातूनामेकोभूत विचिन्तयेत् ।
प्रणव कण्ठनासाग्रे खीज वह्निदीपितम् ॥१५॥
वाह्येषु च सर्वेषु उपसर्गेषु योगवित् ।
एतदेव चरेन्नित्यमुपसर्गादयो ययु ॥१६॥
पित्तरोगाभिभूतो वा योगी योगपरायण ।
ध्यानमेतत्प्रकुर्वीत तथाऽन्यच्छृणु पुत्रक ॥१७॥
सुवृत्त चोडुनाथस्य चाक्षरं तत्र चिन्तयेत् ।
सुधाभिलषितं ध्यायेत्स्वस्थं मूर्ध्नि शिवात्मकम् ॥१८॥
प्रविश्य ब्रह्मरन्ध्रेण देहं निवाणजं स्मरेत् ।
शीतलेन मुगन्धेन हृत्तत्त्वं चापि तेन वै ॥ १९॥
पैप्तिं नाश्चोपसर्गाश्च भानुना तिमिरं यथा ।
विपश्चरजराद्याश्च नश्यन्त्यभ्यासतो ध्रुवम् ॥ २०॥
नाशयेदन्धता योगी दिव्यदृष्टिं प्रजामते ।
उत्क्षिप्यापानमन्यं च चन्द्रदैवत्यया पिवेत् ॥ २१॥

तत्रक आदि जो शरीर में सात धातुयें हैं वे सभी एकीभूत हैं—
या विचिन्तन करना चाहिए और कण्ठनासाग्रे में खीज के सहित
हेमदीपित प्रणव है । योग के सध्या पुरुष को सभी उपसर्गों में वर्ण
रने में यही नित्य चरण करना चाहिए तो सभी उपसर्ग आदि चले

जाते है । १५॥१६॥ अथवा कोई योगाम्यास में तत्पर पुरुष जो योगी है पित्त के रोग से अभिभूत न होवे तो उसको ध्यान करना चाहिए । हे पुत्र ! तथा अन्य भी श्रवण करो । १७॥ यहाँ पर उडुनाय के सुवृत्त अक्षर का चिन्तन करना चाहिए । सुधा से अभिलाषित शिवात्मक का अपने मूर्धा में ध्यान करें । १८॥ ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा प्रवेश करके देह को निर्वाणज स्मरण करें और उसके द्वारा शीतल सुगन्ध से हृतात्त्व का भी स्मरण करे । १९॥ पँक्तिक जो उपसर्ग हैं और विष ज्वर जरा आदि है वे सब योग के अम्यास से भानु के द्वारा ग्रन्थकार के ही समान निश्चय ही नष्ट हो जाया करते है । २०॥ योगी अन्यता का विनाश कर दिया करता है और दिव्य दृष्टि हो जाया करती हैं । अपान का और अन्य का उत्क्षेप करके चन्द्र दैवत्यया से पान करना चाहिए । २१॥

पीत्वा पार्थिवतत्त्वेन स्तम्भ वायोविनाशयेत् ।
 पुष्टिरेवातुला तस्य स्थिरत्वं रजहीनता ॥ २२
 हृत्तत्त्वं च सुपीताभममरत्वं तथा स्मरन् ।
 श्रोत्रमाकाशवाय्वोश्च अत्रैकत्वं विचिन्तयत् ॥ २३
 मोचयेत् पुनर्वायुं बधिरत्वविनाशनम् ।
 क्षणोति तूर्यं सर्वं श्रुतधारी भवेत्सदा ॥ २४
 वियन्मयोऽयं मचारी सतताभ्यासयोगतः ।
 सरोजं रसनायां च तद्द्रष्टारं मर्कटिकम् ॥ २५
 स्मृत्वा मध्ये पुनर्ध्यायेच्छुक्लवर्णां स्वरस्वतीम् ।
 जडत्वं च शिरोरोगं मुखरोगान्विनाशयेत् ॥ २६
 प्रज्ञां चैवं स्मृतिमोघां कवित्वं बुद्धिरत्तमा ।
 स्तम्भनं दुष्टमत्त्वानां सर्वं वायुश्रयत्पदा ॥ २७
 हृत्परोजगतं देवमष्टादशभुजं युतम् ।
 नीलारणं महाबायं त्रिदिवचन्द्रजटाधरम् ॥ २८

पार्थिव तत्त्व के द्वारा पान करके वायु का जो स्तम्भ है उसका विनाश कर देना चाहिए । उसको जगत् पृष्टि हो जाती है और उसको

स्थिरता तथा रोग हीनता भी हुआ करती है । २२) और गुपीनाम हस्तत्व का तथा अमरत्व का स्मरण करता हुआ श्राव और आवास वायु की एकता का निन्तन करे । २३) फिर उस वायु का मोचन करे तो वधिरता का विनाश हो जाता करता है । वह पुरुष सदा श्रूतधारी होता है और दूर से ही सभी कुछ का श्रवण कर लिया करता है । २४) निरन्तर अभ्यास के योग से यह विषमय सञ्जरण करने वाला सरोज को रसना में वणिवा व सहित उसके दुष्ण स्मरण करके पुन ध्यान करे कि शुभ वणं वाली सरस्वती देवी है । वह जड़ता सिर का रोग और सुख के रोगों का विनाश कर दिया करता है । २५) २६) इस प्रकार से प्रजा-स्मृति मेधा-विविध और उत्तम बुद्धि-दुष्ट मत्वा का स्तम्भन हो जाता है और सदा सब वायुओं को जीव सेवे । २७) अठारह मुजाजा से युक्त देव को हृदय रूपी कमल में स्थित का स्मरण करे जो नील और अरुण वण वाले हैं—महाद् परम विद्वान् विग्रह सं युक्त हैं तथा तीन नैत्र से समुक्त एक जटाओं में चन्द्रमा को धारण किये हुए हैं । २८)

सिंहचर्माम्बर भीम सर्वाभरणभूषितम् ।

भुजङ्गहाराभरण सवकङ्कणत्रूपुरम् ॥ २९

उवालामालाकुल दीप्त भाभासितदिगाननम् ।

अभेद्य विजय रौद्रमक्षोभ्य त्रिदशेश्वरम् ॥ ३०

कपालमालिन चोग्र भीम दष्टाकरालिनम् ।

अस्त्रैर्व्यग्रकर देवममोर्ध्वदंष्ट्रिकारणं ॥ ३१

स्मरणाद्यजनाद्येव तैजसैस्तिघ्ननाशनम् ।

शूल मुन्दरवज्र पुटण्डकामुं कञ्जकल्पसि ॥ ३२

पद्मान्ते दक्षिणे भागेऽविनाश परमेमेश्वरम् ।

परिघध्वजखट्वाङ्गै रङ्गुक्ष च धनुर्गदाम् ॥ ३३

ज्वालाननेन पाशेन वामभागेऽमयप्रदम् ।

अनेन ध्यानयोगेन सर्वविघ्नान्निवारयेत् ॥ ३४

ईश्वर चिन्तयेत्प्राणं ज्ञानमानन्दविग्रहम् ।

उभावपि स्थिरीकृत्य योगी मोक्षाय कल्पते ॥ ३६

बाह्यं चित्तं समारोप्य बाह्यो परमकारयत् ।

ततो द्वाराणि सयम्य ब्रह्मरन्ध्रे लय गतः ॥ ४०

लक्षमाधाय तत्रैव योजयेन्मयि पण्मुख ।

घृत घृतेष्वेव यथा नियुक्तं प्रयाति चैव्यादविशेषभावम् ।

तथैव लीनो न भवेत्स भूय परे चतुर्थे त्वनया च युक्त्या ॥ ४१

जो योग का ज्ञाता है और योग से युक्त आत्मा वाला है वह परम निर्वर्ण को प्राप्त किया करता है । पञ्च मे आदित्य मण्डल को और फिर सौम्य पावक को तथा हृदय कपी बुद्ध में आवास करने वाले आत्मा का महामुनि को चिन्तन करना चाहिए और इसके अवन्तर मुनिर्मल-परम शाश्वत-ईश देव का ध्यान करना चाहिए ॥ ३६॥ ३७॥ सम्पूर्ण इस जगत् को व्याप्त करके समवास्थित और काल तथा अवकाश से विवर्जित विपद्देश में अथवा हृदय कपी बुभुज में विराजमान ईश्वर का योग के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ योगी आनन्द में विग्रह वाले स्थाण्ड ज्ञान स्वरूप ईश्वर का चिन्तन करे । दोनों को स्थिर करने योगी मोक्ष को प्राप्त किया करता है । ॥ ३८॥ ३९॥ वायु के बाह्य में चित्त को समारोपित करके परम करे । इसके पदबात द्वारों का सयम करके ब्रह्म रन्ध्रे में लय को प्राप्त हो जाता है हे पण्मुख । वही परमेश का आपान करके मुक्त में योजित करे । घृत जैसे घृत में मिल जाता है उसी भाँति ऐवम् हो जाने में नियुक्त होकर अविशेष भाव को प्राप्त किया करता है । उसी भाँति से इसी युक्ति से द्वारा पुनः चतुर्थ परमे वह लीन हो जाया करता है ॥ ४०॥ ४१॥

॥ हरोत्पत्त्यादि कथन ॥

ततः ससर्ज भगवान्देवोऽसावन्तमनः सुतान् ।
 सनातन च सनक सनन्दनमथापि च ॥१॥
 शम्भु सनत्कुमारं च पञ्च तान्पद्मसम्भवः ।
 न मृष्टो दधिरे बुद्धिं शिवैकध्यानतत्पराः ॥२॥
 मृष्टो तेष्वनपेक्षेषु मोहाविष्टः प्रजापतिः ।
 तपस्तपाप परम न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ॥३॥
 गते बहुतिथे काले समभूत्क्रोधमूर्च्छितः ।
 प्राणात्मकः समुद्भूतो ललाटाह्नह्यणो हरः ॥४॥
 केनापि हेतुना विप्राः सूर्यकोटिसमप्रभः ।
 निश्चक्राम ततो भित्त्वा भाल भगवतो विधेः ॥५॥
 रोदयित्वाऽज्जन्मान तस्माद्बुद्ध इति स्मृतः ।
 अन्यानि सप्त नामानि षण्णुध्व मुनिषु गवाः ॥६॥
 भवः सर्वस्तयेशानः दशरूपा पतिरेव च ।
 भीमश्रोत्रो महादेव इति नामानि सत्तमाः ॥७॥

श्री मृतजी ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् इन देव ने अष्वो पुत्रों का सृजन किया था । सनातन सनक-सनन्दन और शम्भु सनत्कुमार इन पाँचों को पद्म सम्भव ब्रह्माजी ने समुत्पन्न किया था । ये सबके सब एक मात्र भगवान् शिव के ध्यान में ही तत्पर रहा करते थे और इन्होंने सृष्टि की रचना करने में अपने बुद्धि को नहीं लगाया था ॥१॥२॥ मृष्टि की रचना करने के कार्य में वे जब सबके सब अनपेक्ष हो गये थे तो प्रजापति मोह से एक दम आविष्ट हो गये थे । फिर उन्होंने परम घोर तपश्चर्या की थी और फिर उनको कुछ भी ध्यान नहीं रहा था ॥३॥ जब बहुत काल व्यतीत हो गया तो ब्रह्मा जी क्रोध से मूर्च्छित हो गये थे । उसी समय में उनके ललाट में प्राणात्मक हर समुद्भूत हो गये थे ॥४॥ हे विप्रो ! किसी भी हेतु से करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा वाले

वे भगवान विधि के भाल का भेदन करके निकले थे ॥५॥ अग्र जन्मो के वे रोदन करते हुए निकले थे इसी कारण से उनको रुद्र कहा गया है । हे मुनि पुद्गवो ! अन्य जो सात नाम हैं । उनको भी आप श्रवण कीजिये ॥६॥ हे सत्तमो ! उनके ये सात नाम हैं—भव-शर्व-ईशान-पशुपति-भीम-उग्र और महादेव ॥७॥

भूमिरापोऽनलो वायुर्धर्म सूर्यश्च चन्द्रमाः ।

अष्टमी दीक्षितस्तत्र मूर्तिरीशस्य शूलिनः ॥८॥

याभिर्वाप्तमिदं विश्वं विश्वस्यास्य जगन्मयः ।

तेन विश्वेश्वरो देव इति नाम्ना शिव स्मृतः ॥९॥

प्रजा सृजेति निर्दिष्टश्चन्द्रमौलिविरञ्चिता ।

ससर्ज मनसा रुद्रानात्मतुल्यान्महेश्वरः ॥१०॥

नीलकण्ठास्त्रिनेत्राश्च जटायुकुटमण्डितान् ।

वृषध्वजान्वीतरागाञ्छरामरणवर्जितान् ॥११॥

सर्वज्ञाञ्जलकोटीस्तान्सर्वानुग्राहिणः परान् ।

दृष्ट्वा तान्विविधान् रुद्रान्विरञ्चिः प्राह शाकम् ॥१२॥

जरामरणनिर्मुक्तामीदृशी मा सृजः प्रजाम् ।

सृजस्वान्या सुरेक्षान् प्रजा मृत्युसमन्विताम् ॥१३॥

ब्रह्माणमग्रवीच्छेदमुर्नास्ति मे तादृशी प्रजा ।

ततः प्रमृतिं विश्वात्मा न प्रासूत क्षमा प्रजाः ॥१४॥

ईशगुणी की आठ मूर्तियाँ हैं—भूमि—जल—अतल—वायु—

अपोम—सूर्य—चन्द्रमा और आठवीं मूर्ति दीक्षित है । जिन आठ मूर्तियों के द्वारा इस विश्व का जगन्मय विश्व व्याप्त है । इसीसे विश्वेश्वर देव 'शिव'—इस नाम से बहे गये हैं ॥८॥९॥ विरञ्जि ने चन्द्रमौलि वायु भगवान से निर्देश दिया था कि तुम प्रजा का सृजन करो । उस समय में महेश्वर भगवान ने अपने ही समान रत्नों का मनगो सृजन किया था । वे सबसे सब नीचे बैठो बाने—तीन नेत्रों के धारण करने लगे—जटा और मुकुटों से अलङ्कित थे—हे वृषध्वज—दीक्षित और जरा तथा मृत्यु से वर्जित थे ॥१०॥११॥ वे सर्वज्ञ सायकोटि-नाद पर

अनुग्रह करने वाले और पर थे । उन सब विविध प्रकार के रदो को देखकर ब्रह्माजी ने भगवान् शङ्कर से कहा था ॥१२॥ जो प्रजा जरा और मरण में रहित हो ऐसी प्रजा का मृजन मत करो । हे सुरेशान । अन्य ऐसी प्रजा की रचना करो जो मृत्यु से समान्वित हो ॥१३॥ शम्भु भगवान् ने ब्रह्माजी से कहा—मेरी प्रजा उस प्रकार की नहीं है । तब से लेकर विश्वात्मा ने फिर शुभ प्रजा को प्रसूत नहीं किया था ॥१४॥

ह्रदं रात्मममुद्भूतं क्रीडायुक्तस्तदाऽभवत् ।

स्थाणुर्वानिश्चलो यस्मात्स्थित स्थाणुरिति स्मृतः ॥१५॥

ज्ञान वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्य क्षमा धृति ।

दृष्टृत्वमात्मसबोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च ॥१६॥

अव्ययानि दशैतानि नित्य तिष्ठन्ति शक्रे ।

स एव भगवानीशो विश्वेशो नीललोहिनः ॥१७॥

ततस्तमाह भगवान्ब्रह्मा सवीक्ष्य शकरम् ।

अनुगृह्य यथा मा त्व पुत्रत्वे दत्तवान्वरम् ॥१८॥

अद्य तत्सफल जात चिन्तित यन्मयेप्सितम् ।

एव विश्वेश्वर शम्भु समाभाष्य चतुर्मुख ॥

स्त्रोत्रेणानेन तुष्टाव क्षिरस्याधाय चाञ्जलिम् ॥१९॥

नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर ।

नमः शिवाय नैवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥२०॥

नमोऽस्तु तु महेशान नमः शान्ताय हेतवे ।

प्रधानपुरुषशाय योगाधिपतये नमः ॥२१॥

• उस समय में भगवान् शम्भु अपनी आत्मा से समुत्पन्न रदो के साथ क्रीडा युक्त हो गये थे । वे स्थाणु के समान एकदम निश्चल थे इसी कारण से उनको स्थाणु—इस नाम से कहा गया है ॥१५॥ ज्ञान—वैराग्य—ऐश्वर्य—तप—सत्य—क्षमा—धृति—दृष्टृत्व—आत्म सबोध—अधिष्ठातृत्व—ये दश अव्यय हैं जो भगवान् शङ्कर ने नित्य ही स्थित रहा करते हैं । वह ही भगवान् ईश विश्व के ईश और नील

लोहित है ॥१६॥१७॥ इसके पदवान् भगवान् ब्रह्माजी ने उन शङ्कर को देखकर उनसे कहा था । तुम मुझ पर अनुग्रह करके ऐसा करो । मैंने पुत्रत्व होने में तुमने वरदान मुझको दिया था । अर्थात् मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा—ऐसा कृपा करके मुझे वरदान प्रदान किया था । आज वह वरदान सफल हो गया है और जो मैंने सोचा था वह मेरा अभीष्ट मनोरथ पूर्ण हो गया है । इस प्रकार से विश्वेश्वर शम्भु से भगवान् चतुर्मुख ने कहकर अपने मस्तक पर दोनों हाथों को जोड़ते हुए रसकर हृदय निम्नलिखित श्लोक के द्वारा उनका स्तवन किया था—

॥१८॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे महा देव ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार अर्पित है । हे परमेश्वर ! आपके लिये मेरा प्रणाम है । शिव देव के लिये और ब्रह्मा के रूप बाने आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥२०॥ हे महेशान ! आपकी मेरा प्रणाम है । परमेशान्त स्वरूप और हेतु रूप आपके लिए मेरा प्रणाम है । आप प्रमान-पुरुष के ईश है और योग के अधिपति हैं । ऐसे आपके लिए मेरा वारम्बार नमस्कार है ॥२१॥

नमः कालाय रुद्राय महाशक्त्याय शूलिने ।

नमः पिनाकहस्ताय त्रिशूलाय नमो नमः ॥२२

नमस्त्रिभुक्तये तुभ्य ब्रह्माणो जनकाय न ।

ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने ॥२३

नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः ।

वेदान्तमारमाराय नमो वेदात्मभूतये ॥२४

नमः सद्भाय बुद्ध्याय योगिना गुरवे नमः ।

प्रहीणलोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय ते ॥२५

नमो ब्रह्मण्यदेनाय ब्रह्माधिपतये नमः ।

ऋग्वेदाय च देवाय नमस्ते परमेश्वरिने ॥२६

नमो दिग्वाससे तुभ्य नमो मुण्डाय दण्डिने ।

अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ॥२७

नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगद्धिहेतवे ।

नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः ॥२८॥

कानस्वरूप-रुद्र-महाप्राप्त तथा शूलचारी आपके लिए मेरा नमस्कार है । पिनाक धनुष को हाथ में धारण करने वाले त्रिनेत्र मे लिए मेरा नमस्कार है और बारम्बार प्रणाम है ॥२२॥ त्रिमूर्ति आपके लिये मेरा नमस्कार है । ब्रह्मा के जनक आपके लिए मेरा प्रणाम है । ब्रह्म विद्या के अधिपति और ब्रह्म विद्या के प्रदान करने वाले के लिए मेरा प्रणाम है ॥२३॥ वेदों के रहस्य स्वरूप और काल के भी काल आपके लिए नमस्कार है । आप वेदान्त के सार के भी सार हैं तथा वेदों की आत्म मूर्ति हैं ऐसे आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥२४॥ शुद्ध-बुद्ध और योगियों के गुरुदेव आपकी सेवा में मेरा प्रमाण समर्पित है प्रहीण शोक वाले अनेक भूतों के द्वारा परिवृत्त आप के लिए मेरा नमस्कार है । ब्रह्मण्य देव तथा ब्रह्म के अधिपति आपको मेरा प्रणाम है । त्र्यम्बक देव परमेश्वरी आपके लिए मेरा प्रणाम है ॥२५॥२६॥ दिगम्बर (नग्न) आपको प्रणाम है । मुण्ड और दण्डी, आपके लिए नमस्कार है । अनादि मल से हीन तथा ज्ञान जानने के योग्य आपके लिये नमस्कार है ॥२५॥२६॥२७॥ तार और तीर्थ के लिए तथा योग की श्रद्धि के हेतु-धर्म से अधिगमन करने के योग्य और योगगम्य आपको नमस्कार है ॥२८॥

नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः ।

ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने ॥२९॥

त्वयैव सृष्टमस्मिन् त्वय्येव सकल स्थितम् ।

त्वया सहियते विश्व प्रधानास्य जगन्मय ॥३०॥

त्वमीश्वरो महादेव पर ब्रह्म महेश्वर ।

परमेश्वरी शिव शान्त पुरुषो निष्कलो हरः ॥३१॥

त्वमक्षर पर ज्योतिरोक्तः परमेश्वर ।

त्वमेव पुरुषोऽनन्त प्रधान प्रवृत्तिस्तथा ॥३२॥

भूमिरापोऽनलो वायुव्योमाहंकार एव च ।
 यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मासजितम् ॥३३॥
 यस्य घोरभवन्मूर्धा पादो पृथ्वी दिक्षो भुजाः ।
 आकाशमुदर तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ॥३४॥
 सतापयति यो नित्यं स्वभाषिर्भोसयन्दिशः ।
 ब्रह्मतेजोमयं विदध तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥३५॥

अपक्ष से रहित आपको नमस्कार है और निराभास आरके लिये प्रणाम है । विश्व रूप ब्रह्मा परमात्मा के लिये नमस्कार है ॥३६॥ हे जगन्मय ! आपने ही इस सम्पूर्ण विश्व की रचना की है और आपमें ही यह समस्त विश्व स्थित रहा करता है । आपके द्वारा इस विश्व का सञ्चार किया जाता है जो कि प्रधानाख्य है । ३०॥ आपही महादेव हैं—ईश्वर हैं—पद्म ब्रह्मा और महेश्वर हैं । आपही परमेश्वरी—शान्त—शिव—पुरुष—निष्कल और हर है ॥३१॥ आप अक्षर—परम ज्योति—ओङ्कार और परमेश्वर हैं । आपही पुरुष हैं जोकि अनन्त हैं—तथा आपही प्रधान प्रकृति हैं ॥३२॥ आपही भूमि-जल-वायु-अधोम और अहङ्कार हैं । आप ब्रह्मा की संज्ञा वाले हैं जिनके ऊपर की मैं नमस्कार करूँगा ॥३३॥ जिसका भूर्धावी हुआ था—पृथ्वी चरण हुए और दिशाएँ भुजाएँ थी । आकाश जिसका उदय है उस विराट् के लिए मैं प्रणाम करता हूँ ॥३४॥ जो अपनी दीप्ति को के द्वारा समस्त दिशाओं को भासित करते हुए नित्य ही सतत किया करते हैं और ब्रह्म ने जो भय विदध हैं उन आप सूर्यात्मा के लिए मेरा नमस्कार है ॥३५॥

हृदय वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः ।
 कव्यं पि नृगणानां च तस्मै बल्ल्यात्मने नमः ॥ ३६॥
 आप्याययति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत् ।
 पीयते देवतासघंस्तस्मै चन्द्रात्मने नमः ॥ ३७॥
 विभक्त्यंशेषभूतानि योऽन्तश्चरासि सर्वदा ।
 शक्तिर्माहिष्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥

मृजत्यशेषमेवेद यः स्वकर्मनिरूपतः ।

स्वात्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वेनत्रात्मने नमः ॥ ३६

यः शेते शेषशयने विश्वमावृत्य मायया ।

आत्मानुभूतियोगेन तस्मै विश्वात्मने नमः ॥ ४०

विभक्तिं शिरसा नित्यं द्विमलभुवनात्मकम् ।

ब्रह्माण्ड योऽखिलाधारं तस्मै शेषात्मने नमः ॥ ४१

यः परान्ते परानन्दं पीत्वा दिव्यैकमाक्षिणम् ।

नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥ ४२

जो नित्य ही हृष्य का हवन किया करते हैं वही तेजोमयी रौद्री तनु है और विनृगणों के लिये कष्ट का वहन किया करते हैं उन बद्धि रूप के लिये प्रणाम है । ३६। जो इस सम्पूर्ण जगत् को निरप ही अपने धाम के द्वारा आप्यायित किया करते हैं और देवता सद्यों के द्वारा पेत्य किया करते हैं । उन आप चन्द्रात्मक के लिये मेरा नमस्कार है । ३७। जो सब भूतों का मरण किया करते हैं और जो सर्वदा अन्त करण में अन्तर्यामी रूप में चरण किया करते हैं ऐसी जो महेश्वर शक्ति है उन वायु के स्वरूप वाले आपके लिये मेरा नमस्कार है । ३८। जो अपने २ बर्गों के अनुरूप ही इस सम्पूर्ण विश्व का सृजन किया करते हैं । और स्वात्मा में ही अवस्थित है उन चार मुखों वाले के स्वरूप घारी आपको मेरा नमस्कार समर्पित है । ३९। जो अपनी माया के द्वारा इस समस्त विश्व को समावृत करके शेष की शय्या पर क्षीर सागर में शयन किया करते हैं और आत्मानुभूति के योग के द्वारा ही मोते रहा करते हैं उन विश्वात्मा आपके लिये मेरा प्रणाम है । ४०॥ इन चौदह भुवनो को जो अपने शिर पर नित्य ही धारण किया करते हैं जो यह सबका आधार ब्रह्माण्ड है उसे आप धारण कर के विराजमान हैं उन शेषात्मा आपके लिये मेरा प्रणाम समर्पित है । ४१॥ जो परान्तमे दिव्यैकमाक्षी परानन्द का मान करके अनन्त महिमा वाले नृत्य किया करते हैं उनके रुद्रात्मा आपके लिये मेरा नमस्कार है । ४२॥

योऽन्तरा सर्वभूताना नियन्ता तिष्ठतीश्वर ।
 त सर्वसाक्षिण देव नमस्ते परमात्मने ॥ ४३
 यस्य केशेषु जीमूता नद्य सर्वाङ्गसधिषु ।
 कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै व्योमात्मने नमः ॥ ४४
 य विनिद्रा यतश्वासा सतुष्टा समदर्शिन ।
 ज्योति पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥ ४५
 यस्य भासा विभातीद तदह तमस परम् ।
 तत्त्व सदा निराकार चिद्रूप पारमेश्वरम् ॥ ४६
 यया सतरते माया योगी सक्षीणकल्मष ।
 अपरान्तामपर्यन्ता तस्मै विद्यात्मने नमः ॥ ४७
 नित्यानन्द निराधार निष्फल परम शिवम् ।
 प्रपद्ये परमात्मान भवन्त परमेश्वरम् ॥ ४८
 एव स्तुत्वा महादेव ब्रह्मा तद्भावाभावित ।
 प्राञ्जलि प्रणतस्तस्थौ गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥ ४९

जो समस्त प्राणियों के अन्दर नियन्ता होकर ईश्वर समावस्थित
 रहा करते हैं उन्हीं सबके साक्षी रूपी देव परमात्मा के लिये नमस्कार
 है ॥४३॥ जिनके केशों में मेघ हैं और जिसकी सब सधियों में नदियाँ
 हैं जिसकी कुक्षि में चारों समुद्र विद्यमान रहा करते हैं उन व्योमात्मा
 आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥४४॥ जिस ज्योति को जगत निद्रा वाले—
 यतश्वासो वाले सतुष्ट और समदर्शी युञ्जान होकर अर्थात् योगाम्बास
 करते हुए देखा करते हैं उन योगात्मा आपके लिये मेरा नमस्कार है ।
 ॥४५॥ जिसकी दीप्ति से यह सम्पूर्ण विकसित हुआ करता है उस तमसे
 परे- निराकर तत्त्व को जो सदा चिद्रूप पारमेश्वर है । जिसके द्वारा
 योगी सक्षीणक मष वाला माया का सतरण किया करता है जो कि
 माया अपरान्ता और अपर्यन्ता है उस विद्यात्मा के लिये मेरा प्रणाम
 है ॥४६॥४७॥ नित्य ही आनन्द स्वरूप निराधार निष्फल परम पर
 मात्मा आप परमेश्वर शिवकी प्रशरणगति में जाता हूँ ॥४८॥ इस

प्रकार में उनके ही भाव में भावित होन वाले ब्रह्माजी ने महादेवजी की स्तुति करके सनातन ब्रह्म को ग्रहण करने हुए प्रणत और प्रञ्जलि होकर वही पर स्थित हो गये थे ॥४६॥

ततस्तस्य महादेवो नित्ययोगमनुत्तमम् ।

ऐश्वर्यं ब्रह्मसद्भावे वैराग्यं च ददौ हर ॥ ५०

कराम्या मुगुभाम्या च उपस्पृश्य महेश्वर ।

व्याजहार महादेव सोऽजुग्रह्य पितामहम् ॥ ५१

यत्स्वयाऽभ्यर्चितो ब्रह्मन्पुनस्त्वेऽहं मया कृतम् ।

त्वमिदानीं ममाऽऽदेशात्पृजम्ब विवधा प्रजा ॥ ५२

त्रिधा भिन्नोऽभ्यह ब्रह्मन्ब्रह्मविष्णुहराख्याया ।

सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽहं न सशय ॥ ५३

मत्त्वममग्रतः पुन मृष्टिहेतोर्विनिर्मित ।

ममैव दक्षिणादङ्गाद्वामाङ्गात्पुरुषोत्तम ॥ ५४

ममैव हृदयादुद्रं सजातं कामरूपवृक् ।

ब्रह्मविष्णुहराख्यानां य पर परमेश्वर ॥ ५५

इसके पश्चात् हर महादेवजी ने उनके नित्य एवं परमोत्तम योग-ऐश्वर्य और ब्रह्मसद्भाव वैराग्य प्रदान किया का ॥५०॥ महेश्वर प्रभू ने अपने परमगुण करा में उन ब्रह्माजी का उपस्पर्श किया था और उनसे परम अनुग्रह करके ही पितामह में महादेवजी ने कहा था । हे ब्रह्मन् ! जो आपन मेरी अभ्यर्चना की थी । वही मैंने उनके पुत्र होने के रूप में उपस्थित होन का कार्य किया है । अब आप मेरे आदेश से विविध भाति की प्रजा का मृजन करिए । ५१।५२॥ हे ब्रह्मन् ! मैं तीन प्रकार में ब्रह्मा विष्णु और हर इन नामों से भिन्न २ स्वरूप बना हा गया हूँ । सर्ग रक्षा और सय के गुणों में मुक्त होना हुआ भी मैं निर्गुण ही हूँ—इसमें तनिक भी सशय नहीं है ॥५३॥ वह आप मेरे आगे पुत्र हैं जो मृष्टि की रचना करने के ही लिये निमित्त किये गये हो आप मेरे ही दक्षिण अङ्ग में समुत्पन्न हुए हैं और मेरे वाम अङ्ग में

पुरपोत्तम हुए हैं । मेरे ही हृदय से रुद्र उत्पन्न हुए हैं जो कामरूप को धारण करने वाले हैं । ब्रह्मा-विष्णु और हर नामा वाला मैं जो पर है वह परमेश्वर हूँ ॥५४॥५५॥

त महान्त महादेव ब्रह्मज्ञानन्ति सूरय ।
एव ब्रह्माणमाभाष्य दत्त्वा च विविधान्वरान् ॥ ५६
अन्तर्हितो महादेव पश्यत पद्मजन्मन ।
अनुग्रहात्ततस्तस्य तस्माज्ज्ञानोदयो भवेत् ॥ ५७
ततश्च पाशविच्छित्ति शिव एव भवेत्तत ।
नश्यन्ति व्याधयस्तस्य गलगण्डग्रहादय ॥ ५८
ऐहिकी लभते सिद्धि चिरजीवित्वमेव च ।
सर्वपापविनिर्मुक्त शिवलोके महीयते ॥ ५९

हे ब्रह्मा ! उन महान् महादेव को सूरिगण जानते हैं । इस रीति से ब्रह्माजी से कहकर और अनेक वरदान देकर पद्मजन्मा ब्रह्माजी के देखते हुए महादेवजी अन्तर्धान हो गये थे । इसके अनन्तर उनके ही अनुग्रह से उन ब्रह्माजी के हृदय में ज्ञान का उदय हो गया था । और इसके पश्चात् शिव ही पाशविच्छित्ति हो गये थे । उसकी सब गलगण्ड ग्रहादि व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं ऐहिकी सिद्धि को प्राप्त करता है और चिरजीवित्व भी प्राप्त किया करता है । वह सब पापों से छुटकारा पाकर अन्त में शिवलोक में अधीष्ठित हुवा करता है ॥५६॥५७॥५८॥

॥ ब्रह्म पद्मयोनित्वादि कथन ॥

कथं स भगवाञ्जमु सर्वस्याऽऽद्योऽपि सन्विभु ।
चतुर्मुखस्य पुत्रत्वमगमत्केन हेतुना ॥ १
दक्षिणाञ्जमवो ब्रह्मा महादेवस्य शूलिन ।
कथं तत्पद्मयोनित्वं विरश्चेरिति नो वद ॥ २

आसीदेकार्णवे घोरे नटे वै सचाराचरे ।
 देवाश्च दानवाश्चैव मुनयो मनवस्तथा ॥ ३
 निर्विद्यन्ते तदा तस्मिन्सजाते प्रतिसचरे ।
 नारायणो महायोगी शेते तस्मिन्स्तमोमये ॥ ४
 योगनिद्रां समासाद्य शेषाहिशयने द्विजा ।
 उद्धूत पङ्कज तस्य नामौ भगवतो हरे ॥ ५
 दिव्यगन्धसमोपेत शतयोजनविस्तृतम् ।
 तस्यैव शयनस्थस्य दिव्य वर्षशत मतम् ॥ ६
 ब्रह्मा जगाम त देश यत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तम ।
 समुत्थाप्य च त ब्रह्मा करेण मधुसूदनम् ॥
 मायया मोहितो ब्रह्मा तमुवाच सुरेश्वरम् ॥ ७

ऋषियो ने कहा— हे भगवान् ! वह भगवान् शम्भु जब सबके आदि में रहने वाले बिभु है तो वे किस कारण से ब्रह्माजी के पुत्रत्व को प्राप्त हुए थे ॥१॥ शूली महादेवजी के दक्षिण अङ्ग से समुत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी हैं तो विरञ्चि से पद्म से समुत्पन्न होना कैसे हो गया था— यह सब हमारे सामने आप वर्णित कीजिए ॥२॥ श्री सूत ने कहा— जब यहा पर एकार्णव ही था अर्थात् केवल एक समुद्र था और वह भी परम धीर रूप वाला था सभी चर और अचर नष्ट हो गये थे । उस समय में उस प्रति सञ्जट के हो जाने पर कोई भी विद्यमान नहीं रहा था न तो कोई देव ही थे—न दानव थे—न मुनिगण थे और न मनु गण थे । उस तमोमय काल में केवल एक महायोगी भगवान् नारायण ही शयन किया करने हैं ॥३॥४॥ हे द्विजो ! शेष नाग की शय्या पर योग निद्रा से प्राप्त होकर वे भगवान् नारायण शयन कर रहे थे । उनकी नाभि में एक पद्म उत्पन्न हुआ था और वे भगवान् श्री हरि थे ॥५॥ वह पद्म साधारण पद्म नहीं था । वह तो परम दिव्य गन्ध में मुक्त था और सौ योजन के विस्तार में युक्त था । इस प्रकार शयन में स्थित उनकी दिव्य सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥६॥ ब्रह्माजी उस देव में गये

थे जहा पर परम पुरुषोत्तम शयन किये हुए थे । ब्रह्माजी न कर के द्वारा उन मधुसूदन को उठाया था और माया से मोहित होकर ब्रह्माजी ने उन सुरेश्वर प्रभु से कहा था ॥७॥

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे शैते कोऽत्र भवानहो ।

ब्रूहोत्युक्तेऽब्रवीद्विष्णुर्ब्रह्माण तेजसां निधि ॥ ८

न जानासि कथं मूढ मामन्तर्यामिण विभुम् ।

सर्वस्याऽऽद्य सुरथेष्ठ जानीहीत्यब्रवीद्विभु ॥ ९

एवमुक्त्वा पुनश्चक्री जानघपि पितामहम् ।

को भवानिति त प्राह ब्रह्मा हरिमथाब्रवीत् ॥ १०

अहं वै सर्वभूतानामाद्य सर्वजगत्पति ।

ब्रह्माण मा परं देव जानीहि पुरुषर्षभ ॥ ११

चराचरात्मक विश्वं मयि निष्ठति सर्वदा ।

मध्येय विलयश्चान्ते पुनरेव न सशय ॥ १२

एवं पितामहेनोक्तो भगवान्कमलापति ।

प्रविष्टो ब्रह्मणो देहं तत्र लोकानन्ददर्श स ॥ १३

विस्मित कमलावान्तो निर्गतश्च विधेमुखात् ।

सहस्रशीर्षा पुरः पुनर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ १४

इस परम घोर एकार्णव मे जो आप शयन कर रहे हैं वे आप कौन हैं—यह ब्रह्माजी—ऐसा कहने पर तेजो के निधि भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी से कहा था—हे मूढ़ ! क्या तुम नहीं जानते हो और तुम मुझको क्यों नहीं जानते हो मैं तो सबका अन्तर्यामी और विभु हूँ । मैं तो सभी का आद्यमुरो में थोष्ट हूँ । विभु ने कहा—अच्छा, अभी मुझे जान लो ॥८॥९॥ इस प्रकार मे ब्रह्माजी फिर चक्री भगवान् मे जानते हुए भी पितामह से पूछा था कि आप कौन हैं ? हमने उत्तर में ब्रह्मा जी ने श्री हरि से कहा था ॥१०॥ मैं सब भूतों का आद्य हूँ और हम गमस्त जगत् का स्वामी हूँ । हे पुत्रो मे परम थोष्ट ! मुझको ब्रह्मा गमणो जो कि परम देव है ॥११॥ यह भगवत् पर-अनगात्मा विश्व

मुझमें ही स्थित रहा करता है और अन्त में मुझमें ही विलय को प्राप्त हो जाया करता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१२॥ इस प्रकार से पितामह के द्वारा भगवान् कमलापति से कहा गया था तो उस समय में वे ब्रह्माजी के देह में प्रविष्ट हो गये थे और कहा पर सभी लोगो को देखा था । कमलाकान्त विष्णु यह देखकर बहुत ही विस्मित हो गये थे और फिर वे विद्याता के मुख से बाहिर निकल आये थे । सहस्र शीशों वाले पुरुष फिर ब्रह्माजी से बोले ॥१३॥१४॥

विधो त्वमपि मद्देहं प्रविश्यासु विलोकय ।

चराचरात्मकांल्लोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥ १५

ततो विरिञ्चिर्भगवानुदरं कमलापते ।

प्रविश्य भुवनान्सर्वान्द्रष्ट्वाऽभूद्विस्मितो विधि ॥ १६

नापश्यन्निर्गमद्वारे पिहितानि च चकिणा ।

ततोऽग्नौ नाभिपद्मस्य नालमार्गमविन्दत ॥ १७

तेन मार्गेण निर्गत्य ब्रह्मा ब्रह्मविदा वर ।

रेजे पङ्कजमध्यस्थो देवर्देव पितामह ॥ १८

तमब्रवीद्ब्रह्मदापाणिर्ब्रह्माणममितद्युति ।

लीलार्थमेतत्सकल पितामह कृत मया ॥ १९

न मात्सर्यात्सुरश्रेष्ठ द्वाररोधो मया कृत ।

त्वमेव जगतो मान्य सर्वस्याऽऽद्य पितामह ॥ २०

पुनस्त्वे त्वामहं याचे देहि मे कमलासन ।

पद्मयोनिरिति रयार्ति मत्प्रितार्थं गमिष्यसि ॥ २१

हे ब्रह्मन् ! आप भी मेरे देह में प्रविष्ट होकर शीघ्र ही देखिए । जहां पर चराचरात्मक सब लोक विद्यमान हैं जिनमें सभी देव-असुर और मनुष्य हैं ॥१५॥ इसके अनन्तर फिर भगवान् कमलापति के उदर में प्रवेश करके उन्होंने समस्त भुवना को देखा था मो ब्रह्माजी को आश्चर्यचकित कर दिया था ॥१६॥ भगवान् चक्रिने सभी द्वारों को बन्द कर दिया था अतएव ब्रह्माजी को अपने बाहिर निकलने

का कोई भी द्वार ही नहीं मिला था । तब वे नाभि पद्म के नाल पर प्राण हो गये थे ॥१७॥ ब्रह्म के जानाओ मे परम श्रेष्ठ ब्रह्माजी उसी मार्ग से बाहिर निकल कर आये थे और देवों के देव ब्रह्माजी उस कमल के मध्य मे स्थिर होकर परम शोभित हुए थे ॥१८॥ अपरिमित शुक्ति चाभे शदापाणि ने उन ब्रह्माजी से कहा था — हे पितामह ! लीला के ही लिये मैंने यह सभी कुछ किया है ॥१९॥ मैंने किसी मत्सरता की भावना से द्वारों का अवरोध नहीं किया था । आप ही जगत् के मान्य सबके आदि मे होने वाले पितामह है ॥२०॥ हे कमलासन ! मे आपसे याचना करता हूँ कि आप पुत्रत्व मे प्राप्त हो वही मुझे दीजिए । मेरे श्रिय के लिये आप पद्म योनि हैं—इस प्रतिष्ठि को प्राप्त हो जायेंगे ॥२१॥

तत स्वयंभूविश्रादिद्वचक्रिणो वरमुत्तमम् ।
 दत्त्वा प्रहर्षमगमत्सर्गभूतात्मको विभु ॥ २२
 तनस्तमप्रवीद्विष्णु नाऽऽवाभ्यां विद्यते परम् ।
 त्वन्मय मन्मय सर्मिका मूर्तिद्विधा स्थिता ॥ २३
 एण निगदितो विष्णुर्ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
 विरञ्चयेय प्रतिज्ञा ते निष्फलैव भविष्यति ॥ २४
 किं न पश्यसि विश्व शे स्वयंज्योति सनातनम् ।
 सर्वात्मकमुमाग्रान्तमनःदिनिधन परम् ॥ २५
 गच्छाऽऽवाभ्या पर देवमधिक शरण विधे ।
 एव हरेनिगदितै श्रुत्वा ब्रह्मा तमब्रवीत् ॥ २६
 आवाभ्यामधिक कश्चिद्विद्येतेति मुधा हरे ।
 भापसे निद्रयाऽऽविष्टस्त्यज मोह महामते ॥ २७

इतने पश्चात् विद्व के आदि स्वयम्भू ने भगवान् चक्रों को यह उत्तम वरदान दिया था और सर्वभूतात्म विभु परम प्रहर्ष को प्राण होगये थे ॥२२॥ इसके अनन्तर फिर ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु से कहा था कि हम दोनों व पर कोई भी विद्यमान नहीं है । त्वन्मया और मन्मय

अर्थात् तुम्हारे स्वरूप में रहने वाली और मेरे रूप में रहने वाली सब एक ही मूर्ति हैं केवल दो रूपा में ही स्थित रहा करती हैं ॥२३॥ परमेष्ठी ब्रह्माजी के द्वारा जब भगवान् विष्णु से इस प्रकार से कहा गया तो भगवान् विष्णु ने कहा—हे विरञ्जे ! यह तो आपकी प्रतिज्ञा निष्कन्त ही हो जायेगी ॥२४॥ क्या आप स्वयं ज्योति समातन विश्व के ईश को नहीं देख रहे हैं ? वे सबकी आत्मा-उमादेवी के स्वामी अनादि निघन और परम हैं ॥२५॥ हे विधे ! अब आप हम दोनों से पर अधिक देख की शरण में गमन करो । इस प्रीति से भगवान् श्री हरि के कथन का श्रवण कर ब्रह्माजी ने उनसे कहा—॥२६॥ हम दोनों से भी कोई अधिक विद्यमान है वह हरे ! यह तो सर्वथा विद्या ही है । हे महामते ! आप निद्रा से आविष्ट होकर हो ऐसा कह रहे हैं । आप इस मोह का त्याग कर दीजिए ॥२७॥

मेघ विधे यदज्ञात्वा परे भाग महेश्वरे ।
अस्तीति नान्यथाऽहं ते ब्रवीमि कमलासन ॥ २८
मोहितात्मा न सदेहो मायया परमेष्ठिन ।
मायी विश्वात्मको रुद्रो मायाशक्तिस्तु शाकरी ॥ २९
यस्मात्सर्वमिदं ब्रह्मन्विष्णुरुद्रं नद्रपूर्वकम् ।
महाभूतेन्द्रियं सर्वं प्रथमं संप्रसूयते ॥ ३०
सर्वेश्वर्येण सपन्नो नाम्ना सर्वेश्वर स्वयम् ।
सर्वैर्मुमुक्षुभिर्ध्येयं शम्भुराकाशमध्यग ॥ ३१
योऽग्रे त्वां विदधे पुन तव वेदाश्च दत्तवान् ।
यत्प्रमादात्त्वया लब्धं प्राजापत्यमिदं पदम् ॥ ३२
एवो बहुना जन्तूना निष्क्रियाणां च सत्क्रिया ।
य एव बहुधा बीज करोति स महेश्वर ॥ ३३
जीवैरेभिरिमांल्लोकान्मवनिषो य ईशते ।
य एवो भगवान् रुद्रो न द्वितीयोऽग्निश्च दधन ॥ ३४

सदा जनानां हृदये सैनिविष्टोऽपि य परे ।

अलक्ष्यो लक्षयन्विश्वमधितिष्ठति सर्वदा ॥ ३५ ॥

भगवान् विष्णु ने कहा—हे विधे ! ऐसा मन कहे महेश्वर मे परम भाव को आप जानते नहीं है । हे कमलासन ! हम दोनों से भी पर कोई देवेश्वर है—यह मैं आपको अन्या अर्थात् मिथ्या नहीं बोल रहा हूँ ॥२८॥ आप परमेश्वर की माया से मोहित आत्मा वाले है अतएव आप उनके स्वरूप को नहीं जानते है किन्तु मेरे इन कथन मे वित्तुल भी सन्देह नहीं है । विश्वात्मक रुद्रयार्य हैं अर्थात् माया वाले है और माया शक्ति ही शाङ्करी है ॥२९॥ जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न हुआ है हे ब्रह्मा ! उन्ही से विष्णु—रुद्र और इन्द्र आदि महाभूत और सब इन्द्रियो से प्रथम ही सम्प्रसूत हुआ करते हैं ॥३०॥ वे सभी प्रकार से ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं और उनका स्वय सर्वेश्वर है । वे सभी भुवःपुत्रों के द्वारा ध्यान करने के योग्य हैं ऐसे वे आकाश के मध्य मे गमन करने वाले शम्भु देव हैं ॥३१॥ जिन्होंने अपने आपको पुत्र बनाया था और आपको वेदों का ज्ञान प्रदान किया था । यह प्रजापत्यके पद को भी उन्ही के प्रमाद से आपने प्राप्त किया है ॥३२॥ जो एक ही बहुत से जन्तुओं की मस्त्रियाओं का करने वाला है । जो एक ही है और बहुत प्रसार के बीज को किया करता है उन्ही महेश्वर है ॥३३॥ इन जीवों से इन समस्त लोको का वह एक ही शासन करने वाला ईश है । वे ही एक भगवान् रुद्र हैं और दूसरा कोई भी नहीं है ॥३४॥ सर्वदा मनुष्यों हृदयों मे सैनिविष्ट भी है तथापि वह हमरे वे द्वारा अलक्ष्य रहा करते है और स्वयं वे सम्पूर्ण विश्व को देखते हुए ही अविष्टित रहा करते हैं ॥३५॥

यस्तु कालात्मयुधानि कारणान्यपि लीलया ।

अनन्तशक्तिरेकात्मा भगवानितिष्ठति ॥३६॥

यस्य शम्भो परा शक्तिर्भाविगम्या मनोहरा ।

निर्गुणा स्वगुणैरेव निगूढा निष्कला शिवा ॥३७॥

एष देवो महादेवो विज्ञेयः सर्वदा जनैः ।
 न तस्य परम किञ्चित्पद समधिगम्यते ॥३८॥
 अयमादिरनाद्यन्तः स्वभावादेव निर्मलः ।
 अनन्तः परिपूर्णश्च स्वेच्छाधीनश्चराचरः ॥३९॥
 उत्तरोत्तरभूतानामुत्तरश्च निरुत्तरः ।
 अनन्तमहिमा भूमिरपरिच्छिन्नवैभवं ॥४०॥
 अनेन विप्रकृत्येन प्रथमं मृज्यते जगत् ।
 अन्तकाले पुनश्चेदमस्मिन्प्रलयमेप्यति ॥४१॥
 दृश्यश्च पतितैर्मूढैर्दुर्जनैरपि कुत्सितैः ।
 भक्तैरन्तर्बहिष्चापे पूज्यः सम्भाव्य एव च ॥४२॥

जो कायात्मक कारणों को भी, अपनी लीला ये अधिक न रहा करते हैं क्योंकि वे अनन्त शक्ति वाले और एकात्मा भगवान् हैं ॥३८॥ जिन भगवान् शम्भू भी शक्ति पर हैं । वह भाव गम्या एव परम मनोहरा है । शम्भु देव की वह शक्ति निगुणा है और अपने ही गुणों के द्वारा वह निगुणा है—किष्कला एव दिवा है ॥३७॥ यही देव महादेव है जो सर्वेदा जनों के द्वारा जानने के योग्य हैं । उनका जो कुछ परम पद है वह समधिगत नहीं किया जाया करता है ॥३८॥ यह आदि है और आदि अन्त से रहित हैं तथा स्वभाव से ही परम निर्मल हैं । वे भगवान् शम्भू अनन्त-परिपूर्ण-स्वेच्छा के अधीन रहने वाले तथा चराचर स्वरूप हैं ॥३९॥ उत्तरोत्तर भूतों का उत्तर एव निरुत्तर हैं । वे अनन्त महिमा की भूमि हैं तथा अपरिच्छिन्न वैभव वाले हैं ॥४०॥ विविध कृत्यों वाले इनके ही द्वारा यह जगत् सर्वप्रथम मृजित हुआ करता है और अन्त काल जब उपस्थित होता है तो उस समय में यह सम्पूर्ण जगत् इसी में प्रलय को प्राप्त हो जाया करता है ॥४१॥ जो पतित-मूढ-कुत्सित और दुर्जन हैं तथा मेरे भक्ति हैं उनके द्वारा वे दृश्य भी होते हैं—पूज्य एव सम्भाव्य हुआ करते हैं ॥४२॥

तदीय त्रिविध रूप स्थूल सूक्ष्म ततः परम् ।

अस्मदाद्यैः सुरैर्दृश्य स्थूल सूक्ष्म तु योगिमिः ॥४३॥

तत पर तु यन्नित्य ज्ञानमानन्दमव्ययम् ।
 तन्निष्ठस्तत्परैर्भक्तैर्हृष्यते व्रतमास्थिते । ४४
 बहुनाऽत्र किमुक्तेन ब्रह्म-सर्वेश्वरे शिवे ।
 भक्तिरेव सदा कार्या यथा युवतो विमुच्यते ॥४५
 प्रसादादेव सा भक्ति प्रसादो भक्तिरसंभव ।
 यथेहाङ्कुरतो बीज बीजनो वा यथाऽङ्कुर ॥४६
 तस्य प्रसादलेशेन पशौ पाशपरिक्षय ।
 तस्मात्पशुपति शम्भु पशवस्त्वस्मदादय ॥४७
 सर्वेषां भुक्तिद शम्भुस्तेषां भावानुरूपत ।
 गर्भस्थो मुच्यते कश्चिज्जागमानस्नया पर ॥४८
 घालो वा तरुणो वाऽथ वृद्धो वा मुच्यते पर ।
 तिमग्नोनिगत कश्चिन्मुच्यते नारकी पर ॥४९

उन भगवान् शम्भू क अनन्य रूप हैं । वे स्थूल भी हैं—सूक्ष्म भी हैं—और उससे भी पर रूप पाये हैं । अस्मादादि के द्वारा जा सुर हैं स्थूल रूप ही दृश्य है । जो सूक्ष्म उनका रूप है वह तो वागियों के द्वारा ही दखन के योग्य होता है ॥४३॥ उनसे भी पर जो नित्य ज्ञान और आनन्द एव अद्वय उनका रूप है वह तो उनम ही परायण एव शम्भु म दृढ निष्ठा रखने वान और शर्तों म समास्थित भक्ता के द्वारा ही दिखाई दिया करता है ॥४४॥ हे ब्रह्मन् ! यदा पर बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है । सर्वेश्वर भगवान् शिव म ही सदा भक्ति करनी चाहिए जिसके द्वारा भुवन मनुष्य इस भव बन्धन म विमुक्त हो जाया करता है ॥४५॥ यह भगवान् शम्भु की भक्ति उनका प्रसाद म ही हुआ करती है और उनका प्रसाद भक्ति से हुआ करता है जिस तरह से बीज म अंकुर हुआ करना है और उस अंकुर म फिर बीज उत्पन्न हुआ करता है ॥४६॥ उनके प्रसाद क नया भाव म ही यन्त्र के पाशना परित्याग हो जाता है । इसीसे भगवान् शम्भु यन्त्र पति बड़े जाते हैं और अस्मादादि यन्त्र सब यन्त्र हैं ॥४७॥ उनके भावा के अनुरूप भगवान् शम्भु

सबको मुक्ति प्रदान करने वाले हैं । कोई तो गर्भ में स्थित रहने हुए ही मुक्त हो जाया करता है तथा कोई ज्वयमान होकर के मुक्त हो जाता है । चाहे रात हो—तड़ण हो अथवा वृद्ध हो सभी मुक्त हो जाया करते हैं । कोई शम्भु के प्रसाद से तिर्यग्गोत्रि में रहने वाला भी मुक्त हो जाता है और जो गारवी होता है यह भक्ति के प्रभाव में मुक्ति प्राप्त कर लिया करता है ॥४८॥४९॥

अपरस्तूदरप्राप्तो मुच्यते स्वपदक्षयान् ।
 कठिनः क्षाणपदो भूत्वा पुनरावृत्य मुच्यते ॥५॥
 कश्चिद्धर्चनगतस्तस्मिन् स्थित्वा स्थित्वा विमुच्यते
 तस्मान्नैकप्रकारेण नराणां मुक्तिरिष्यते ॥५॥
 ज्ञानभावानुहवेण प्रसादेनैव निर्वृति ।
 त्वमेका भगवन्मूर्तिरन्या नारायणी परा ॥५२॥
 रौद्री तृतीया कथिता जगत्संहारकारिणी ।
 एनासा प्रेरक शम्भु स्वे स्वे कार्ये चतुर्मुख ॥५३॥
 निर्गुणोऽपि गुणः स्वतन्त्रैश्वर्यविग्रहः ।
 तमीश्वर महादेव न पश्यसि कथं विधे ॥५४॥
 दिव्यं ददामि ते चक्षुर्येन पश्यसि तं शिवम् ।
 विष्णोर्भगवतो ब्रह्मा दिव्यं चक्षुरवाप्य तु ॥५५॥
 अपश्यत्स महादेव प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम् ।
 ब्रह्मा लब्ध्वा परं ज्ञानमेश्वरं निर्गुणं परम् ॥५६॥

इसका उदर में प्राप्त ही स्वपद के क्षय से मुक्त हो जाता है और कोई क्षीणपद होकर पुनः आवृत्ति करके अर्थात् जन्म ग्रहण करके मुक्त हो जाया करता है ॥५०॥ कोई ऊर्ध्वगत उसमें स्थित-स्थित रहता ही हुआ विमुक्त हो जाया करता है । इस कारण से नरो की जो मुक्ति होती है अनेक प्रकार से होती है तात्पर्य यह है कि मुक्ति के प्राप्त करने का एक ही नहीं अनेक मार्ग होते हैं ॥५१॥ ज्ञान के भाव के अनु-
 रूप प्रसाद से ही निर्वृति होती है । भगवान् की मूर्ति भी अनेक है—

अन्यापरा नारायणी मूर्ति है—तीसरी रोद्री कही गयी है जो इस जगत् के सहार के करने वाली है । हे चतुर्मुख । इन सबको प्रेरणा देने वाले अपने अपने कार्य मे भगवान् शम्भु ही हैं । ॥५२॥५३॥ वे स्वयं गुणो से रहित है तथापि गुणो के अध्यक्ष है और स्वतन्त्र ऐश्वर्य के विग्रह बाने है । हे विधे । उन ईश्वर महादेव को आप क्यों नहीं देखते हैं । ॥५४॥ अब मैं आपको दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ जिससे आप उन भगवान् शिवको देख लेंगे । भगवान् विष्णु से ब्रह्माजी ने दिव्य चक्षु की प्राप्ति करके उन्होंने फिर प्रत्यक्ष रूप मे अपने ही समक्ष मे स्थित महा देवजी का साक्षात् दर्शन प्राप्त किया था ब्रह्माजी ने परम ज्ञान का लाभ प्राप्त किया था और परम निगुण ऐश्वर्य को प्राप्त किया था ॥५५॥५६॥

तमेव शरणं गत्वा सस्तूय विविधैः स्तवैः ।
 प्रीतो भूत्वा महादेवश्चतुर्ध्वमथाब्रवीत् ॥५७॥
 स्तोत्रैर्विधैर्भक्त्या तापिनोऽहं विधे त्वया ।
 भुक्तो भविष्यासि क्षिप्रं मत्समश्च न सशयः ॥५८॥
 मयैव सृष्टं सृष्ट्यर्थं त्वमेव च जनार्दन ।
 वरं वदामि ते ब्रह्मन्वरयस्त्वं यथेष्टितम् ॥५९॥
 एव शमोनिगदितं श्रुत्वा चैव पितामह ।
 विष्णुं निरीक्ष्य पुरतः स्थितमाह महेश्वरम् ॥६०॥
 भगवन्देवदेश सर्वज्ञ गिरिजापते ।
 त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा मददा सुतम् । ६१॥
 त्वन्मायामोहितं शमो न वेत्ति त्वा परं शिवम् ।
 नमामि तव पादाब्जं योगिनां भवभेषजम् ॥६२॥
 श्रुत्वा विरञ्चैर्वचनं देवदेव पितामहम् ।
 ब्रह्मण्यमब्रवीत्पुत्रं ममात्मोक्त्याथ चाक्रमम् ॥६३॥

तब तो ब्रह्माजी उन्हीं की शरणार्थी मे प्राप्त हो गये थे और फिर उन्होंने भी महादेवजी की अनेक स्तवों के द्वारा स्तुति की थी । इस पर

महादेवजी पद्म प्रसन्न हो गये और ब्रह्माजी से बोले—॥५७॥ ईश्वर ने कहा—हे विधे ! आपने बहुत से स्रोत्रो के द्वारा स्तुति करके और भक्ति की भावना मुझसे तोषित कर दिया है । अब आप दीप्त ही विभुक्त हो जायेंगे और मेरे ही समान भी हो जायेंगे—इसमें तनिक भी शङ्क नहीं है ॥५८॥ मैंने ही इस विश्व की सृष्टि के लिए आपका मूलन किया है हे ब्रह्मन् । मैं वरदान देता हूँ आपका जो भी अभीष्ट हो उसे और वरदान प्राप्त कर लीजिए ॥५९॥ पितामह ने इस प्रकार का कथन शम्भु भगवान का श्रवण करके और सामने विष्णु देखकर आगे स्थित महेश्वर से कहा है ॥६०॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवान् ! देवदेवेश ! आप गिरजा के स्वामी और सर्वज्ञ हैं । मैं तो अपना पुत्र चाहता हूँ अथवा आपके ही समान मेरे सुत होवे ॥६१॥ हे शम्भो ! मैं तो आपकी माया से मोहित हो रहा हूँ अतएव आप परात्पर शिव को मैं नहीं जानता हूँ । मैं आपके चरण कमलों में नमस्कार करता हूँ जो आपका पादपद्म योगियों के सत्कार का भेषज है ॥६२॥ पितामहारी देवदेवमें विरज्जि के वचन को श्रुतकर इसके अवभार चक्री को देखकर पुत्र ब्रह्मा जी से कहा—॥६३॥

प्रापित यत्त्वया ब्रह्म स्तस्करिष्यामि पुनः ।

अहमशेन भविता पुत्रस्तव पितामह ॥६४॥

ज्ञान मद्विषय क्षिप्रं भविष्यति तवानघ ।

सृज त्वं मत्प्रसादेन चराचरमिदं जगत् ॥६५॥

एव योगीश्वर शार्ङ्गो ममैवाशो न शङ्क्य ।

साहाय्ये भविता ब्रह्मन्ममाऽऽदेशात्तवानघ ॥६६॥

एव दत्त्वा वरं शम्भुर्ब्रह्माणे द्विजसत्तमा ।

अथाब्रवीद्धृषीकेश प्राञ्जलिं पुरतः स्थितम् ॥६७॥

वरं वरम् दास्यामि तवे नारायणाव्यय ।

नाऽऽवाभ्या विद्यते भेदो मच्छक्तिस्त्व न शङ्क्य ॥६८॥

त्वन्मयं मन्मयं सर्वमव्यक्तं पुरुषात्मकम् ।

ज्ञानज्ञेयात्मकं विश्वं त्वन्मयं मन्मयं हरे ॥६९॥

ज्ञाताऽहं ज्ञानरूपस्त्व मन्नाऽहं त्व मतिहरे ।
प्रकृतिस्त्व सुरश्रेष्ठ पुरुषोऽहं न सशय ॥७०॥

हे पुत्र ब्रह्मा ! आपने जो प्रार्थना की है उसे हे पुत्र ! मे करूँगा ।
हे पितामह ! मैं अपने अंश से तुम्हारा पुत्र बनूँगा । हे अमघ ! मेरे
विषय मे तुमको बहुत ही शीघ्र ज्ञान होगा । मेरे प्रमाद से अब आप
इम चण्डावर जगत् का मृज्जन करो ॥६४॥६५॥ यह जो योगीश्वर शाङ्क-
घारी है यह भी मेरा ही एक अंश है—इम सशय नहीं है । हे ब्रह्मा !
आप तो निरुपाय है । यह भी मेरे आदेश से आपकी मदायता म होगे
॥६६॥ इस तरह से शम्भु भगवात् ने हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्माजी को वर-
दान देकर उसके पश्चात् अपने सामने म ही स्थित ऋषीवेश से शम्भु
ने कहा—हे अद्भुत नारायण ! आपभी वरदान माँग लीजिए । मैं आप
को भी दूँगा । हम दोनों मे कोई भेद नहीं है । आप भी मेरी ही शक्ति
है—इम सशय नहीं है । यह पुरुषात्मक अक्षय त्वन्मय और सब-
मन्मय ही है अर्थात् तुम्हारा और मेरा ही स्वरूप है । हे हरे ! यह विश्व
ज्ञान वे दाश ही ज्ञेयात्मक है जोनि त्वन्मय और मन्मय है मैं तो ज्ञाता
हूँ और आप ज्ञान रूप हैं । हे हरे ! मैं तो मन्ता हूँ और मति हूँ ।
हे सुरश्रेष्ठ ! आप प्रकृति हैं और मे पुरुष हूँ—इम सशय नहीं है
॥६७॥६८॥६९॥७०॥

एव चन्द्रमा अहं सूर्यः शर्वरी त्वमहं दिनम् ।
त्वमेव माया विश्वस्य मायाऽहं परमा विभो ॥७१॥
एव शम्भो वनं श्रुत्वा वासुदेवो निरञ्जन ।
अग्रवीत्परमात्मानं महादेव द्विजोत्तमा ॥७२॥
निश्चला त्रयि मे भक्तिर्भक्त्यव्यभिचारिणी ।
वरं निमग्न्यैर्भगवन्करोमि मुग्धपूजिन ॥७३॥
एवमस्त्वित्ययाऽऽभ्यास्य समातिष्ठन्न च शान्तिं नमः ।
पानयोन्मममाऽऽदेनादित्युक्त्वाऽन्तर्हितो हरः ॥७४॥

अभवद्ब्रह्मण पुत्रो यथा देवस्त्रिलोचन ।

तथा सर्वमज्ञेयेण कथित मुनिपुंगवा ॥७१॥

आप अब हैं तो मैं सूर्य हूँ । आप रात्रि हैं और मैं दिन हूँ । आपही इस विश्व की माया हैं और मैं परमा विभो माया हूँ ॥ ७१॥ निरञ्जत वामुदेय इन प्रकार के शम्भु के वचन का श्रवण कर रहे द्विजोत्तमो । परमात्मा महादेवजी से वे बोले—॥७२॥ भगवान् विष्णु ने कहा—हे भगवान् आपम मेरी व्यग्रभिचारिणी भक्ति होवे । हे सूर पूजित । इसके अतिरिक्त अन्य वरा को प्राप्त कर मैं कहूँगा ॥७३॥ इसने अनन्तर ऐसा ही होवे—यह इतना कहकर शार्ङ्ग भगवान् का उन्होंने आलङ्घन किया था और कहा था कि मेरे आदेश से इस समस्त विश्व का आप परिपालन करिए । इतना कहकर भगवान् हर वही पर अग्रगण्य हो गये थे ॥७४॥ किस तरह स त्रिनोत्तम देव ब्रह्माजी के पुत्र हुए थे वह सब पूर्ण कर ले हे मुनि श्रेष्ठा । मैंने वर्णित कर दिया है ॥७५॥

॥ गौरी पृथक् शरीरत्वादि कथन ॥

कथं भगवती गौरी शकारार्धशरीरिणी ।

परब्रह्मात्मिका नित्या परमाऽऽकाशमध्यगा ॥१॥

सर्वशक्तिमयी शान्ता निर्गुणा निरुपद्रवा ।

आदिमध्यान्तरहिता सर्वोपाधिविवर्जिता ॥२॥

स्वभाभिर्ग्राहयन्तीदं विश्वमेतत्पुण्ड्रेश्वरी ।

नित्यानन्दा निरावच्छा निर्विभागा निरञ्जना ॥३॥

पृथक्शरीरमकरोक्तं सा परमेश्वरी ।

वयं तच्छ्रोतुमिच्छामः सूत वक्तुमिहार्हसि ॥४॥

विश्वेदेवरान्महादेवाद्धरं सव्या पितामह ।

प्रजा ससर्ज भगवान्न व्यवधन्त सा प्रजा ग॥५॥

दुःखितोऽभूत्तदा ब्रह्मा प्रजा दृष्ट्वा तु दुर्बला ।

नेनेऽकृताथमात्मानं प्रादुर्भूतस्ततो हर ॥६॥

ब्रह्माणमवबोच्छमुर्जातं त्वद्दुःखकारणम् ।

सर्वतः शर्मणे यत्र भाविष्यति तवानघ ॥७॥

ऋषियो ने कहा— भगवती गौरी शङ्कर भगवान की अर्ध शरीरिणी कैसे हुई थी ? वह तो परम ब्रह्मात्मिका नित्या और परमाकाश के मध्य में रहने वाली है । वह सर्वशक्ति मयी—शान्ता—निर्गुणा और निरूप द्रवा हैं । वह आदि मध्य और अन्त से रहिता हैं तथा सब प्रकार की उपाधियों से रहिता है ॥१॥२॥ वह सुरेश्वरी इस सम्पूर्ण विश्व को अपनी विभाओं से भासिक किया करती हैं । वह नित्य ही आनन्द स्वरूपिणी निरातङ्का निर्विभ्रामा और निरञ्जना हैं ॥३॥ उस परमेश्वरी ने कैसे पृथक् शरीर को दिया था ? हम यही श्रवण करने की इच्छाएं रखते हैं । हे सूतजी यह बताने की परम सुयोग्य है ॥४॥ सूतजी ने कहा—पितामह ने विश्व के ईश्वर महादेव जी से वर प्राप्त करके भगवान् परमेश्वरी ने प्रजा का सृजन किया था किन्तु वजित नहीं हुई थी ॥५॥ उस समय में ब्रह्माजी बहुत ही दुःखित हुए थे जब कि उन्होंने अपनी रची हुई प्रजा को दुर्बल देखा था । तब उन्होंने अपने आपको असफल ही समझ लिया था । उसी समय में भगवान् हर प्रादुर्भूत हो गये थे ॥६॥ भगवान् शम्भु ने ब्रह्माजी से कहा था कि हमने तुम्हारे दुःख का कारण जान लिया है । हे अनघ ! सभी ओर से यहाँ पर आपके बल्याण के लिए होगा ॥७॥

प्रियता वै तथेत्युक्त्वा कर्तुं समुपचक्रमे ।

अर्धनारीश्वरो देव स्वयं विश्वेश्वर शिव ॥८॥

नारीशान्महादेव सस्रजं पृथग्वीश्वरीम् ।

ब्रह्मात्मिका परा शक्तिं कोटिवालाकं मामुराम् ॥९॥

न तस्या त्रियते जन्म जातेति किल भाति या ।

पर भाव न जानन्ति यस्या ब्रह्मादय मुरा ॥१०॥

यस्यास्तु शक्तिभिर्वाच्या ब्रह्माण्डाना च कोटयः ।
 भतुरङ्गादिभक्तेव दृष्टा साऽय विराञ्चना ॥११॥
 अब्रवीत्प्राञ्जलिभूत्वा विश्वेश्वरी पितामह ॥१२॥
 त्वा नमामि शिवा शान्तीमीश्वराद्यंशरीरिणीम् ।
 अनाद्यनन्तविभवा भूतप्रकृतिमीश्वरीम् ॥१३॥
 जन्ममृत्युजरातीता जन्ममृत्युजरापहाम् ।
 क्षेत्रज्ञशक्तिनिलया परमाकाशमध्यगाम् ॥१४॥

करो उस प्रकार से कहकर करना आरम्भ कर दिया था ।
 विश्वेश्वर शिव देव स्वयं अर्च नारीश्वर हो गये ॥८॥ नारी भाग से
 महादेव ने ईश्वरी का पृथक् सृजन किया था जो ब्रह्मात्मिका-करोड़ों
 बाल सूर्या के समान भामुरा पराशक्ति थी ॥९॥ उसका जन्म नहीं है
 जोकि अमृत्स्वप्न हुई-एसी प्रणीत ही होती है । जिसके परम भाव को
 ब्रह्मा आदिक सुर भी नहीं जानते हैं ॥१०॥ जिसकी शक्तियों से करोड़ों
 ब्रह्माण्डों को कहना चाहिए विरज्जि ने मर्त्या के भङ्ग से विभक्ता होती
 हुई है । उसको देखा था ॥११॥ पितामह ने प्राञ्जति होकर विश्वेश्वरी
 से कहा था ॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ईश्वर के अद्य शरीर वाली-
 शान्ता—गिवा आपको मैं नमस्कार करता हूँ । आप अनाद्यन्त विभव-
 वाली—भूत प्रकृति और ईश्वरी हैं । आप जन्म मृत्यु और जरा से परे
 हैं और प्राणिमों के जन्म—मृत्यु और जरा का अपहरण करने वाली हैं ।
 क्षेत्रज्ञ शक्ति की निभया है तथा आप परमाकाश के मध्य में गमन
 करने वाली अर्थात् स्थित रहने वाली हैं ॥१३॥॥१४॥

ग्रहमेन्द्र विष्णुनमितानष्टमूर्त्येङ्गिनीमजाम् ।
 प्रधानपुरुषातीता सावित्री वेदमातरम् ॥ १५॥
 ऋग्यजु सामनिलयामृज्वी कुण्डलिनी पराम् ।
 विश्वेश्वरी विश्वमयी विश्वेश्वरपतिव्रताम् ॥ १६॥
 विश्वसहारवरणी विश्वमायाप्रवर्तिनीम् ।
 गर्गम्यत्यन्तवरिणी व्यक्ताव्यक्तम्बुपिणीम् ॥ १७॥

पाहि मां देवदेवेशि शरणागतवत्सले ।

नान्या गतिर्महेशानि मम त्रैलोक्यवन्दिते ॥ १७

त्वा माता मम कल्याणि पिता सर्वेश्वर शिव ।

सृष्टोऽहं त्रिपुरघ्नेन सृष्ट्यर्थं शक्रप्रिय ॥ १८

विविधाश्च प्रजा सृष्टा न वृद्धिमुपयान्ति ता ।

तत पर प्रजा सर्वा मयुनप्रभवा किल ॥ २०

सत्रर्धयितुमिच्छामि कृत्वा सृष्टिमत परम् ।

शक्तीनां खलु सर्वासां त्वत्त सृष्टिं प्रवर्तते ॥ २१

आप ब्रह्मा इन्द्र और विष्णु, वे द्वारा वन्दित हैं तथा अष्टमूर्ति भगवान् शिवकी अङ्गिनी और अजा हैं । आप प्रधान पुरुष सभी अतीत्य हैं और वेदों की माता आप सावित्री हैं १५। ऋग्वेद-यजुर्वेद और सामवेद इत्यादि आप निलया हैं । आप अङ्गी परकुण्डलिनी हैं । आप इस विश्वकी ईश्वरी हैं—विश्वमयी और विश्वेश्वर प्रभु की पत्नीव्रता हैं ऐसी आपसे मैं प्रणाम करता हूँ १६। आप विश्व का महार करने वाली हैं तथा विश्व की माया का प्रवर्तन करने वाली हैं । आप सगं और स्थिति एवं अन्त के करने वाली हैं । तथा व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाली हैं १७। हे शरणागता पर ध्यान करने वाली । हे देव देवेश्वरी । मेरी रक्षा करो । हे त्रैलोक्य द्वारा वन्दिते । हे महेशानि । मेरी अन्य कोई भी गति नहीं है । हे कल्याणि । आप मेरी माता हैं और मेरे पिता सर्वेश्वर शिव हैं । हे शक्रप्रिय । त्रिपुरारि ने मुझे सृष्टि करने के लिये ही सृष्टि किया है । मैंने अनेक प्रकार की प्रजाप्रा का सृजन किया है किन्तु वे सृष्टि का प्राप्त नहीं होती हैं । इससे पदषात् सभी प्रजा मयुन से समुत्पन्ना हुई थी १८। १९। २०॥ इससे आप सृष्टि करने में वर्धा, करने की इच्छा करता है । समस्त शक्तियाँ ही सृष्टि तो आप से ही प्रवृत्त होती हैं २१।

नैव सृष्ट त्वया पूर्वं शक्तीनां मत्सुत निवे ।

मर्त्या देहिना देवि गर्वशक्तिप्रदायिनी ॥ २२

त्वमेव नात्र सदेहस्तस्मात्त्व वरदा भव ।
 मम मृष्टिविवृद्धचर्यममेनैकेन आश्रते ॥ २३
 मम पुत्रस्य दक्षस्य पुत्री भव शुचिस्मिते ।
 मायिता वी तदा देवी ब्रह्मणा मुनिपुंगवा ॥ २४
 एका शक्ति भ्रुवोर्मव्यात्मसर्जाऽऽत्मसमप्रभाम् ।
 आह तां प्रहसन्नेक्ष्य देवी विश्वेश्वरो हर ॥ २५
 ब्रह्मणो वचनाद्देवि कुरु तस्य ययेप्सितम् ।
 आदाय शिरसा शम्भोराज्ञा सा नरमेश्वरी ॥ २६
 अमवदक्षदुहिता स्वेच्छया ब्रह्मरूपिणी ।
 पुनराद्या पद्म शक्ति शम्भोर्देह ममाविशत् ॥ २७
 अर्धनारीश्वरो देवो विभ्रामीति हि न युति ।
 तत प्रभृति विप्रेन्द्रा मय्युनप्रभवा प्रजा ॥ २८
 एव व उचिता विद्या देव्या मभूतिस्तमः ।
 पठेद्य शृणुयाद्वापि सततस्त्वम्य वर्धते ॥ २९

ह निध १ अ पने पूर्व में शक्तिया के कुन का मृउन किया था ।
 ह दवि १ गव दहघारिया को अत्य ही गति के प्रदान करने वाली है ।
 ॥२२॥ आगही हैं इसम कुछ भी सन्देह नहीं है । इसकारण म वरदान
 दन वाली होइय । एक शास्त्र के म मरी मृष्टि व विषयम करने
 व निग हे शुचिस्मिते । मर पुत्र प्रजापति दक्ष की आज पुत्री होइय । हे
 मुनि पुंगवा १ उम ममम म ब्रह्माजी व द्वारा देवी की प्रार्थना की
 गयी थी ॥२३॥ उम दक्षी न अपने ही समान प्रभावशाली एक शक्ति
 का मृष्टिया व मम स मृष्ट किया था और उम देवी को दगाकर
 हमन हुए विश्वेश्वर हर बोले । ह दवि १ ब्रह्माजी व वचन म उनका
 आ भी वर्धयित हा उम पुन कर दो । मगवान् गम्भू की आजा का
 गिर ने स्वीकार कर वर वरदानकरा ब्रह्म शक्ति के अर्पण म
 ही दान की पुत्री हो गई थी । निर यह मरणा पुन गति मरणाद् गम्भू
 व दक्ष म ममावि हो गई था ॥२४॥२५॥-७ यह दन अर्द्ध नारीश्वर

प्रोभित होत है—यह हमारी श्रुति है तभी से आरम्भ करके है
वप्रेन्द्र ! मैधुन के द्वारा उत्पन्न होने वाली प्रजा हुई थी । २८। हे
विप्रो ! इस प्रकार से आप सबके सामने मैंने देवी की उत्तमा सभूति का
वर्णन कर दिया है । जो इसको पढ़े या सुनेगा उसकी सन्नाति की वृद्धि
होगी । २९।

॥ सुरासुर सृष्ट्यादि कथन ॥

स्वयभुवा समादिष्ट पूर्वं दक्ष प्रजापति ।
प्रजा सृजेति सर्गादौ ससर्ज च सुरासुरान् ॥ १
प्रजापतेर्वीरणस्य कन्याऽसिक्रीति विश्रुता ।
पट्टि दक्षोऽसृजत्कन्या असिकन्या च प्रजापति ॥ २
ददौ च दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ ३
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे वृशाश्वाय धीमते ।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वद्ददौ दक्ष प्रजाति ॥ ४
साध्या विश्वा च सकल्पा मुहूर्ता च ह्यरुन्धती ।
मरुत्वती वसुभानुलम्बा जामोति ता दश ॥ ५
धर्मस्य पत्नयत्त्वेतास्तासा सततिरुच्यते ।
साध्या वभूवु साध्याया विश्वाया विश्वदेवता ॥ ६
सकल्पायास्तु सकल्पो मुहूर्तास्तु मुहूर्तजा ।
अरुन्धत्यास्त्वन्रुन्धत्या नरत्त्वत्या मरुत्वत ॥ ७

श्री गूतजी ने कहा—स्वयम्भू भगवान् म सबसे पूर्व मे दक्ष प्रजा-
पति को समादिष्ट किया था । सर्ग के आदि म यही आदेश दिया था
कि प्रजा का सृजन करो और सुरा तथा असुरो का गृह्य किया था । ।
जापति दीरण की एह कन्या असिनी भी और ह्यो नाम रा वह

दिश्रुत थी । प्रजापति दक्ष ने असिन्वी मे षष्टि कन्याओं का मृजन किया था । दक्ष तो धर्म के लिये दे दी थी और तेरह कश्यप के लिये दी थी । मत्ताईस मोम की दी थी और चार आरिष्ट नेमि को प्रदान की थी । २।३। दो बहु पुत्र की और दो धीमान् कृशाश्व की प्रदान की थी । उसी भांति दक्ष प्रजापति ने दो अङ्गिरा मुनि को प्रदान की थी । ४। वे दश ये थी—साध्या-विश्वा-सकल्य-मुहूर्ता-अरन्वती-मरत्स्वती-बसु-भानु-लम्बा-जामी । ५। धर्म की ये दश पत्निया थी अब उनकी सन्नि बतलायी जाती हैं । साध्या में साध्यगण समुत्पन्न हुए थे और विश्वा में विद्व देवता उत्पन्न हुए थे । ६। मङ्कल्या से सङ्कल्प उत्पन्न हुए और मुहूर्ता-मुहूर्ता से सम्पन्न हुए थे । अरन्वती में अरन्वत्य और मरत्स्वती में मरु त्वत् हुये थे ॥७॥

वसोन्तु यसव प्रोक्ता भानोन्ते भानव स्मृता ।
लम्बाया घोपनामानो नागवीथीस्तु जामिजा ॥ ८
ज्योतिष्मन्तस्त्रयो देवा व्यापका सर्वतोदिशम् ।
यसवन्मे ममास्पाता मर्षभूतहितैषिण ॥ ९
आपो नलश्च मोमश्च ध्रुवश्चैवानिलोज्ज्वल ।
प्रक्षूपश्च प्रभासश्च वमकोऽष्टौ प्रकीर्तिता ॥ १०
ध्रुवस्य पुत्र बाल म्यात्मवर्लोकभयङ्कर ।
विश्वरर्मा प्रभामस्य धर्मस्यैषा तु मर्ति ॥ ११
अदितिश्च दिनिश्चैव दनुरित्यपरा मता ।
अरिष्टा मुरसा प्रोक्ता स्वधा मुरभिरेव च ॥ १२
विन्दता च तथा नाम्ना वद्रू क्रोधवशा न्विरा ।
मुनेश्च पत्नयस्त्वेता वश्यस्य द्विजोत्तमा ॥ १३
अनुर्धाता भगम्बटा मित्रोऽय वरणोऽयमा ।
त्रिविक्वाण्मविता पूषा अनुमान्यष्णुर्देव च । १४
तुषिता नाम ते पूर्य पाशुपत्यान्तरे मनो ।
आदिग्या अदिने पुत्रा प्रोक्ता शैवम्बनेऽन्तरे ॥ १५

वसु से वसुगण हुए तथा भानु से भानव उत्पन्न हुए वनलाये गये है। लम्बामे घोष नाम वाले तथा जामि से नागबीबी हुए। ८। तीनों देव ज्योतिष्मान् है और सब दिशाओ मे व्यापक है। जो वसुगण समाख्यात हुए हैं वे समस्त प्राणियों के हितैषी है। आप-बल-सोम-ध्रुव-अनिल-अनल-प्रत्यूप-प्रभास-ये ही आठ वसुगण कहे गये हैं। ९। १०। ध्रुव का पुत्र कान है जो सभी लोगों को भय करने वाला है। प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा है—यही कर्म की स-नतियाँ है। ११। आदिति—दिति और अपरा दनु मानी गयी हैं। अरिष्टा सुरसा-स्वधा-मुरभि-विनता-ताम्रा-वद्रू-क्रोधवशा-त्वरा कश्यप मुनि की ये हे द्विजोत्तमो। पत्नियां थी। १२। १३। असु-धाता-भग-रश्मि-मित्र-वरुण-अयंमा विव-स्वा-सविता-पूषा-अशुमान् और विष्णु हैं। सुपिता नाम वाले वे है जो पूर्व म चरक्षुप गनु के अन्नर मे थे। १४। आदित्य अदिति के पुत्र है जो वैवस्वतम्यन्तर म कहे गये हैं। १५।

पुनद्वय दिति सूते कश्यपान्मुनिपु गवात् ।

हिरण्यकशिपु त्वेक हिरण्याक्षमनन्तरम् ॥ १६

हिरण्यकशिपुर्योऽसौ ब्रह्मणो वरदपित ।

शक्राद्या देवता सर्वास्तेन दैत्येन बाधिता ॥ १७

ब्रह्माण शरण गत्वा प्रोचु प्राञ्जलय सुरा ।

देवदेव जगन्नाथ चतुर्मुख सुगोत्तम ॥ १८

हिरण्येन दैत्येन शस्त्रास्त्रै सूदिता वयम् ।

दाराश्चापहृतास्तेन वज्रादीन्यायुधानि च ॥ १९

थायन्वाग्मान्भयंरतान्शरण नान्यदस्ति त ।

एव मुरंनिगदित श्रुत्वा एवं पितामह ॥ २०

देवं मह ययो तूर्णं यत्राऽस्ते विष्णुरव्यय ।

सस्तूय विविधै स्तोत्रैरखीत्वमलामन ॥ २१

दिति ने दो पुत्र प्रमूत किय थे जो कि मुनि पुत्रुव कश्यप से समु-
ग्न हुए थे। एक तो हिरण्यकशिपु था। और दूसरा हिरण्याक्ष था।

११६। जो यह हिरण्याक्षिपु था वह ब्रह्माजी के वरदान से हर्षित हो गया था । शक्र आदि देवता उस दैत्य ने वाधित कर दिये थे । ११७। सब सुरगण हाथ जोड़कर ब्रह्माजी की शरणागति में पहुँचकर बोले— देवो ने कहा—हे देवो के देव ! आप तो जगत् के नाथ हैं । हे चतुर्मुख ! आप सब सुरों में श्रेष्ठ हैं । ११८। हिरण्यकशिपु दैत्यने शक्र अजितो द्वारा हम सबको मूर्छित करा दिया है । उसने हमारी स्त्रियों का हरण कर लिया है और वज्र आदि सब आयुध भी छीन लिये हैं । ११९। इस भय से परम नस्त हैं हमारी आप रक्षा कीजिए । हमारा आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है । इस प्रकार से सुरों के द्वारा कथित वो श्रवण कर पितामह उन समस्त देवगणों के साथ शीघ्र ही वहाँ पर गये जहाँ पर अभ्यय भगवान् विष्णु विराजमान थे । अनेक स्त्रियाँ के द्वारा सस्त्रयन करके कमलासन ने कहा—। २०। २१।

हिरण्यकशिपुर्देव मद्वरेणातिगर्वित ।

बाधते सकलान्देवान्मुनीन्निधूतवल्मयान् ॥ २२

यस्त हनिष्यति क्षिप्रं न त पश्यामि माधव ।

त्वमेव हन्ता तस्येति मत्वा वयमुपागता ॥ २३

हन्तुमर्हसि त शीघ्रं देवानां कार्यसिद्धये ।

श्रुत्वा नारायणो वाक्यमीरित त्रिदिवीशसाम् ॥ २४

नरस्यार्धतनुं कृत्वा मिहस्यार्धतनुं तथा ।

नृसिंहरूपी भगवान्हिरण्यकशिपो पुरे ॥ २५

आविर्भाभूव भगवान्देवो नारायण प्रभु ।

मुख्यन्ताद महाघोरनमुराणां भयङ्करम् ॥ २६

हिरण्यकशिपुर्हृष्टा नृसिंहमतिभीषणम् ।

यथाय प्रेषयाभास प्रह्लादादीन्महामुरान् ॥ २७

प्रह्लादश्चानुह्लादश्च मह्लादो ह्लाद एव च ।

हिरण्यकशिपो पुत्रादन्त्यार प्रथितोजग ॥ २८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे देव ! हिरण्यकशिपु मेरे द्वारा वधन

प्राप्त कर अत्यन्त गवित हो गया है वह समस्त देवों को बाधा देता है और जो निर्धूतकल्मष मुनिगण हैं उनको भी सताता है । १२२। हे माधव जो कोई उसको शीघ्र ही मार देगा ऐसा अन्य कोई भी मैं नहीं देख रहा हूँ । केवल आप ही उसके दमन करने वाले हैं—यही समझकर हम सब आपकी समाधि में उपस्थित हुए हैं । १२३। देवों व कार्य की सिद्धि के लिये आप उसका शीघ्र ही दमन करने में समर्थ होते हैं । देवों की वधित उस रात का श्रवण करके भगवान् नारायण ने आधा शरीर नर का तथा आधा सिंह का शरीर धारण किया और नरसिंह स्वी भगवान् हिरण्यशिपु के नगर में आविर्भूति हो गये थे । वे साक्षात् भगवान् देव नारायण प्रभु ही थे । उन्होंने महाद् घोर नाद किया था जो सभी असुरों को अत्यन्त भयकर प्रतीत हो रहा था । हिरण्यशशिपु ने अत्यन्त भीषण भगवान् नृसिंह को देना था । हिरण्य-वाशिपु के चार पुत्र थे जिनका नाम प्रह्लाद-अनुह्लाद-सह्लाद और ह्लाद थे । ये सभी प्रथित भोज वाले थे । १२४।

नरसिंहेन ते सार्धं युयुधुर्दानवास्तदा ।

प्रह्लाद प्राहिणोह्लाह्यमश्रु त नरकेसरिम् ॥२६॥

वैष्णवाश्रमनुह्लाद कोमार च तथाऽनर ।

प्राहिणोद्घ्राद आग्नेय तथा चान्ये महासुरा ॥३०॥

चत्वार्यश्राणि सप्तान् भगवन्त नृकेसरिम् ।

वभूवस्तानि भग्नानि यथा वज्राहता द्रुमा ॥३१॥

गृहीत्वा यतुः पुत्रान् हस्ताभ्यां नरकेसरिम् ।

चिक्षेप गगनाद्भूमौ गृहीत्वा पुन पुन ॥३२॥

एव तान् यथितान् हृष्टा हिरण्यकशिपु स्त्रयम् ।

जाज्वल्यमान कोपेन ययौ यत्र नृकेसरिम् ॥३३॥

विनिवृत्तोऽप्य सङ्ग्रामात्प्रह्लादो दैत्यराट् तत ।

शात्वा तु भगवद्भावं नृसिंहाभिनोजम ।

ध्यात्वा नारायण देव वारयामास दानवान् ॥३४॥

एष नारायणो योगी परमात्मा सनातनः ।

ध्यातव्यो न तु योद्धव्यो भवद्भिरिति निश्चितम् ॥३५॥

पुनोदितमनाहत्य हिरण्यकशिपुः पुनः ।

युयुधे हरिणा सार्धं यावद्वर्षशतत्रयम् ॥३६॥

अथ विश्वारमको विष्णुः क्रोधसंरक्तलोचनः ।

नखैर्विदारयामास हिरण्यकशिपु तदा ॥३७॥

उस समय में भगवान् नरसिंह के साथ उन दानवों ने युद्ध किया था । प्रह्लाद ने उन नरकेशरी प्रभु पर ग्रह अस्त्र का प्रहार किया था ॥३६॥ अनुह्लाद ने वैष्णवास्त्र का प्रक्षेप किया था तथा दूसरे ने कौमार अस्त्र चलाया था । ह्लाद ने आग्नेय अस्त्र चलाया था और अग्न्य असुरों ने जो बड़े महान् ये दूसरे २ अस्त्रों से प्रहार किया था ॥३७॥ ये चारों अस्त्र भगवान् नरसिंह जी के पास पहुँच कर सब के सब भग्न हो गये थे जैसे वज्र से द्रुमहत हो जाया करते हैं ॥३८॥ नरकेशरी ने उन चारों पुत्रों को हाथों से पकड़ लिया था और उनकी लेटेकर बारम्बार आकाश से भूमि में गिरा दिया था । इस प्रकार से उन अपने पुत्रों को व्यथित देखकर हिरण्यकशिपु स्वयं क्रोध से जाग्रत्यमान होकर वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर भगवान् नृसिंह देव विराजमान थे । ॥३९-४०॥ फिर दैत्यराट् प्रह्लाद सग्राम से विनिवृज्त हो गया था क्यों कि उसने अपरिमित ओज वाले भगवान् नृसिंह जी का भगवद्भाव जीत लिया था । नारायणदेव का ध्यान करके उसने दानवों को निवारित किया था । ॥४१॥ उसने सब दानवों से कहा था कि यह परमात्मा-सनातन योगी नारायण हैं । इनका ध्यान करना चाहिये और इनसे आपको युद्ध नहीं करना चाहिए यह निश्चित बात है ॥४२॥ इस पुत्र के कथन का निरादर करके हिरण्यकशिपु ने पुन हर्षभगवान् के साथ तीन सौ वर्ष तक घोर युद्ध किया था ॥४३॥ इसके अनन्तर त्रिशूलात्मक भगवान् विष्णु ने क्रोध से लान नेत्र बनाकर उसी समय में अपने परम हीनता नष्टों से हिरण्यकशिपु के वध-स्थल को विदीर्ण कर दिया था ॥४४॥

॥ हिरण्याक्ष बधादिक कथन ॥

हृते हिरण्यकशिपो प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ।

हिरण्याक्षं महाबाहु राज्ये समभियोजयत् (?) ॥१॥

सोऽपि देवान् रणे जित्वा स्वर्गात्ते वै पलायिता ।

हिरण्याक्षे महादेव तत्साऽऽराध्य चान्तकम् ॥२॥

लेभे पुत्र महाबाहु सर्वामरनिपूडनम् ।

हिरण्याक्षभयाद्देवा शार्ङ्गिण शरण गताः ॥३॥

दृष्ट्वाऽथ भगवान् देवान् हिरण्याक्षवधाय वै ।

वाराह रूपमास्थाय हिरण्याक्षो निपूडितः ॥४॥

हृते तस्मिन्हिरण्याक्षे प्रह्लादो वैष्णवाग्रणी ।

स्यक्त्वा तु तामसी वृत्तिं स्वकीयं राज्यमास्थित ॥५॥

तत कदाचिद्देवाना मायया मोहितोऽभवत् ।

कचन ब्राह्मण दृष्ट्वा कृशाङ्गं गृहमागनम् ॥६॥

अवज्ञामकरोद्दैत्य क्षस्तेनाग्रजन्मना ।

बल यस्य समीश्रित्य दैत्य मामवमन्यसे ॥७॥

श्री मूतजी ने कहा—हिरण्यकशिपु के निहत् हो जाने पर दैत्यो मे थ्रैष्ठ प्रह्लाद राज्य पर महाबाहु हिरण्याक्ष को समभियोजित किया था ॥१॥ उसने भी देवो को रण मे जीतकर उनको स्वर्ग से भगा दिया था । हिरण्याक्ष ने अन्तक महादेवजी को तपस्या के द्वारा आराधना कर के सब दैवो को मार देने वाले महाबाहु पुत्र को प्राप्त किया था । हिरण्याक्ष के भय से गममन्न दैवगण भगवान् शार्ङ्गी के शरण मे प्राप्त हुए थे ॥२-३॥ भगवान् ने हिरण्याक्ष के वध के लिये भगवान् देवो को देवजर वाराह का स्वरूप धारण करके उस हिरण्याक्ष को भगवान् ने मार दिया था ॥४॥ उस हिरण्याक्ष के मारे जाने पर वैष्णवो मे अग्रणी प्रह्लाद ने तामसी वृत्ति का त्याग कर दिया था और अपने राज्यासन पर समस्थित हो गया था ॥५॥ इनके पदवान् दिगी तपस ने देवो को माया से यह मोहित हो गया था । दिगी अङ्ग वाले घर मे आये

हुए ब्राह्मण को देखकर दैत्य ने उसकी अवज्ञा कर दी थी । फिर उस ब्राह्मण ने उसका शाप दे दिया था—हूँ दैत्य ! जिसके बल का समाश्रय करके तू मेरा अपमान कर रहा है ॥६-७॥

भक्तिर्विनश्यतु क्षिप्रं तव देवे जनार्दन ।
इति तप्त्वा ययौ विप्रं स्वाश्रमं मुनिपुङ्गवा ॥८॥
अथ दैत्यपतियुंद्धमकरोद्विष्णुना सह ।
पितुर्वधमनुस्मृत्य देवाश्चान्ये विनिजिता ॥९॥
अनुग्रहाद्भगवतः पूर्वस्माद्दैत्यराट् पुनः ।
त्यक्त्वा मायामयं सर्वं शार्ङ्गं शरणं ययौ ॥१०॥
अभिपिचयान्धकं राज्यं योगवृत्तोऽभवत्स्वयम् ।
अथ देवो महादेव शरण्यं सर्वदेहिनाम् ॥११॥
केनापि हेतुना भिक्षामकरोद्ब्राह्मणं सह ।
सस्थाप्य मन्दरे देवो गिरिजा गिरिजापति ॥१२॥
सत्नारायणकान्देवानकरोत्याश्रं गाञ्छिव ।
स्त्रीरुच्यारिणो देवाः सेवन्ते पार्वती तदा ॥१३॥
सस्थाप्य नन्दिप्रमुखानसंख्यातान्गणेश्वरान् ।
भैरवं च समादिश्य नन्दिनं द्वारदेवत ॥१४॥

उन देव जनार्दन मे तेरी भक्ति बहुत ही क्षीघ्र नष्ट हो जायगी—
इस प्रकार से शाप देकर वह विप्र है मुनि पुङ्गवो ! अपने आश्रम में
चला गया था ॥८॥ इमने अनन्तर दैत्यपति ने भगवान् विष्णु के ही
साथ युद्ध किया था । उसने अपने पिता के वध का अनुसरण किया था
और सब देवों को भी विनिजित कर दिया था ॥९॥ भगवान् ने पहिले
अनुग्रह से पुनः दैत्यराट् ने सब मायामय का त्याग कर दिया था और
पुनः भगवान् शार्ङ्गों को शरण में चला गया था ॥१०॥ राज्यासन पर
अंधक का अभिषेक करने स्वयं योग में युक्त हो गया था । इमने
अनन्तर देव महादेव सभी देवधारियों के शरण्य हैं ॥११॥ किसी हेतु
उन्होंने ब्राह्मणों के साथ भिक्षाटन किया था और गिरिजापति ने देवी

गिरिजा को एक मन्दिर में मस्थापित कर दिया था ॥१२॥ शिव ने नारायण के सहित सब देवों को पार्श्ववर्त्ती कर दिया था । सब देवगण सती का रूप धारण करने वाले होकर सदा पार्वती की सेवा करते थे । १३॥ वहाँ पर नन्दी प्रमुख असंख्य गणों को और गणेश्वरों को मस्थापित करा दिया था और भैरव को भी आदेश दे दिया था तथा द्वादश पर नन्दी को नियुक्त कर दिया था ॥१४॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्नो मन्दर चान्धकासुरः ।
 आहूतुं कामः शर्वाणी त दृष्ट्वा कालभैरवः । १५॥
 ताडयामास शूलेन पपात भुवि मूर्च्छितम् ।
 पुनरुत्थाय वेगेन गदामादाय दैत्यराट् । १६॥
 भैरव ताडयामास तथा चान्यान्मणेश्वरान् ।
 दृष्ट्वा तदद्भुतं युद्धं विष्णुर्दानवमर्दनम् । १७॥
 असृजच्चक्षुर्यो दिव्यास्ताभिर्दक्ष पराजितः ।
 सती वधाय भगवान् रुद्रो मन्दरपर्वतम् । १८॥
 प्राप्नो यत्र स्थिता देवी देवै सह गणेश्वरैः ।
 दृष्ट्वा विश्वेश्वर देवी शीघ्रं परमया मुद्रा । १९॥
 ननाम शिरसा भक्त्या भर्तुं श्वरणपङ्कजम् ।
 प्रणम्य दण्डवद्विष्णु यद्वृत्तं तन्मयवेदयत् । २०॥
 श्रुत्वा तद्विस्मितो भूत्वा देव्या सह वरासने ।
 उपविष्टस्तदा सर्वे देवाः प्राञ्जलय तास्थित । २१॥

इसी बीच में वह अन्धकार सुर मन्दरगिरि पर प्राप्त हो गया था । वह शर्वाणी का आहरण करना चाहता था । उसकी काल भैरव ने देख लिया था । ॥१५॥ भैरव ने दून से ताडित किया था और वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया था । फिर वह दैत्यराट् बड़े वेग से उठकर गदा नेकर आक्रमण करने के लिये आया था ॥१६॥ उसने गदा से भैरव पर तथा अन्य गणेश्वरों पर प्रहार किया था । उस अद्भुत युद्ध को देखकर दानवों के मर्दन करने वाले विष्णु ने दिव्य शक्तियों का

करिए जिससे यह दैत्य मर जावे इस प्रकार के श्रीहरि को वचन का श्रवण करके भगवान् क्षत्रुर ने कास भैरव को उस बलवान् दैत्य के वध के लिये भेजा था । इसके पश्चात् वह काल भैरव प्रभु शम्भु शिव की आज्ञा का परिपालन करके सहसा सून को ग्रहण करके दैत्य के युद्ध में पहुँच गये थे । सून के अग्रभाग से उसका निर्मोदन करके अपनी आत्म-लीला से वे नृत्य करने लगे थे । सून के अग्रभाग में उस दैत्य के स्थापित करने पर ब्रह्माद्य मुनिगण ने उस समय में अनेक स्तोत्रों के द्वारा स्तवन किया था और उस समय में सब लोक परम प्रसन्न हो गये थे । ॥२२॥
मे ॥२३॥

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेक समाहिता य विदुरीशतत्त्वम् ।
पुरातनं पुण्यमनन्तरूप काल कवि योगवियोगहेतुम् । २८।
दैष्टाकराल दिवि नृत्यमान हुताणवक्त्रं ज्वलनार्करूपम् ।
सहस्रपादाक्षिशिरोभियुक्त भवन्तमेक प्रणमामि रुद्रम् २९।
जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रे विभागहीनामलनत्वरूपम् ।
त्वमग्निरेको बहुधा विभज्यसे वायादिभेदैरखिलात्मरूप । ३०।
त्वामेकमाहु पुरुष पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
त्व पश्यमीद परिपास्यजसं त्वमन्तको योगिगणाभिजुष्टः । ३१।
एकान्तरात्मा बहुधा निर्विष्टो देहेषु देहादिविशेषहीनः ।
त्वमात्मतत्त्व परमार्थशब्द भवन्तमाहुः शिवमेव केचित् । ३२।
त्वमक्षर ब्रह्म परं पवित्रमानन्दरूप प्रणवाभिधानम् ।
त्वमीश्वरो वेदविदेषु सिद्धः स्वायम्बुवोऽशेषविशेषहीनः । ३३।
त्वमिन्द्ररूपो वरुणोऽग्निरूपो हसः प्राणो मृत्युरन्नाधियज्ञः ।
प्रज,पतिर्भगवानेकरूपो नीलश्रीवस्तूयसे वेदविद्भिः । ३४।
नारायणस्त्व जगतामनादिः शितामहस्त्व प्रपिताममश्च ।
वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः स शशिवस्त्व परमेश्वरोऽसि । ३५।

अधिक ने कहा—मैं एक भगवान् को नमस्कार करता हूँ जिनको परम समादिन योग्य सोच ईश तत्त्व को जान पाते हैं । आप परम पुरा-

तन-पुष्प-म्बरूप-अनन्त रूप वाले-बाल-रवि और योग तथा विमोह के हेतु है ॥२८॥ देहा से बराल-दिवलोक में नृत्य करते हुए—अग्नि को मुख में धारण करने वाले—ज्वलन (अग्नि के स्वरूप वाले—सहस्रशिर-आदि पादों से युक्त आप एक म्द्र भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२९॥ हे जय आदि देव और असुरों के द्वारा पूजित चरण वाले ! आप विभाग ॥ हीन अमल तत्त्व रूप वाले हैं । आपको एक ही पुराण पुष्प—आदित्य के समान वर्ण वाले और तम से परे कहते हैं । आप इसको निरन्तर देगा करते हैं और परिपालन दिया करते हैं । आप ही अन्तर् हैं और योगी गणों के द्वारा सेवित हैं ॥३०॥३१॥ आप एक ही अन्तरात्मा हैं और बहुत से रूपों में विनिविष्ट हैं । देहों में रहते हुये भी आप देहादि विशेषता में रहित हैं आप ही आत्म तत्त्व है—आप पर-मार्थ गन्ध हैं । कुछ लोग आपको ही शिव ही कहा करते हैं ॥३२॥ आप अक्षर परम ब्रह्म हैं—आप परम पवित्र और आनन्द स्वरूप हैं तथा प्रणव के नाम वाले हैं । आप ईश्वर हैं जो वेदों के वेत्ता हैं उनमें आप मिष्ट हैं । आप स्वाध्मभुव और समस्त विशेषताओं से हीन हैं ॥३३॥ आप इन्द्र रूप हैं—वरुण-अग्नि भी आपके ही रूप हैं । आप ह्रम-प्राण-मृत्पु और अन्मापिण्ड हैं । आप प्रजापति भगवान् अनेक रूपों वाले हैं आप नीली घीवा वाले हैं तथा वेदों के ज्ञाता के द्वारा आपका गन्धवन दिया जाया करता है ॥३४॥ जगत् को आप ही नारायण हैं । आप ही पिता मह और प्रपितामह हैं । आर्यों वेदात्म और गोपनीय उपनिषदों में गाया रथ है । आप सदा शिव और परमेश्वर हैं ॥३५॥

नमः परस्तासमम परस्मै परात्मने पञ्चपरान्तराय ।

त्रिमूर्त्यतीताय निरञ्जन य सहस्रनाम्यामनसेन्धिताय ॥३६॥

त्रिमूर्तेऽन्नन्तरात्ममूर्त्ये जगन्निध.माय जगन्मयाय ।

नमो सप्ताष्टाशितसोचनाय नमो जनानां हृदि गन्धिताय ॥३७॥

कलीन्द्रहाराय नमःऽनु गुह्य मुनीन्द्रमिन्द्राविनयादपय ।

ऐश्वर्यमर्माग्नमग्निताय नम परान्ताय भयोद्भवा ।

सहस्रचन्द्रार्कसमूहमूर्तये नमोऽग्निचन्द्रार्कत्रिलोचनाय ।
 नमोऽस्तुते सोमायनमध्रमाय नमोऽस्तु देवाय हिरण्यवाहवे ॥३६॥
 नमोऽतिगुह्याय गुहान्नराय वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय ।
 त्रिकालहीनामलघामघाम्ने नमो महेशाय नमः शिवाय ॥५०॥
 स्तघेनानेन भगवान्प्रीतो भूत्वाऽय भैरवः ।
 अवरोह्य च क्षालाद्यादुवाच परमेश्वरः ॥४१॥
 त्वयाऽहं स्तोत्रवर्णेन तोषितो दैत्यपुङ्गव ।
 प्रीतोऽस्मि तव दास्यामि गाणपत्यं हि दुर्लभम् ॥४२॥

समसे भी घर—परम स्वस्व वाले—परमात्मा पञ्चपरान्तराय—
 त्रिमूर्ति में भी अतीत—निरञ्जन और सहस्र शक्तियों से आमन पर
 संस्थित आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥३६॥ त्रिमूर्ति—अनन्त परात्म-
 मूर्ति—जगत् के निवास—जगन्मय—सलाट में अर्पित नेत्र वाले के लिये
 नमस्कार है और जनों के हृदय में संस्थित के लिये नमस्कार है ॥३७॥
 सर्वराजों के हार पहिने वाले आपके लिये प्रणाम है । आपके चरण
 कमलों की मुनीन्द्र और सिद्ध समर्पित किया करते हैं ऐश्वर्य और धर्म के
 आसन पर समवस्थित आपके लिये नमस्कार है और परान्त एवं मन के
 उत्पन्न करने वाले आपकी नमस्कार है ॥३८॥ एक सहस्र चन्द्र और
 सूर्य के समूह के समान दीदीप्यमान मूर्ति वाले और अग्नि तथा चन्द्र
 एवं सूर्य के नेत्रों वाले आपकी सेवामें नमस्कार है । सोमायन मध्यम के
 लिये नमस्कार है । देव हिरण्य वाहु के लिये प्रणाम है ॥३९॥ अत्यन्त
 गुह्य—गुहान्नराय और वेदान्त के विज्ञान के द्वारा निश्चित होने
 वाले के लिए नमस्कार है । तीनों वालों में हीन एक अमल घाम के त्रेत्र
 वाले के लिये प्रणाम है । महेश के लिये एवं शिव के लिये नमस्कार है
 ॥४०॥ इस प्रकार की सन्तुति से भगवान् भैरव प्रसन्न होकर उन्होंने
 धूल के अग्रभाग में भींचे उस दैत्यको उतार कर परमेश्वर ने कहा—हे
 दैत्यो मे श्रेष्ठ ! आगे के इस स्तोत्र में परम श्रेष्ठ के द्वारा तुमने मुझको

अनन्तर भैरव ने उनका दर्शन करके बड़े डी आनन्द से उसका परिष्वजन किया था । ४८। फिर उन भैरव और शार्ङ्गों की एक ही मूर्ति हो गई थी जो कालाग्नि भैरव है वे ही स्वयं नृहरि है । ४९।

भगवान् नृहरियोऽसौ स एव किल भैरवः ।

नृहरे पूजनान्नून प्रीतो भवति भैरवः ॥ ५०

पूजनाद्भैरवस्यैव नृहरिः पूजितो भवेत् ।

ये पश्यन्ति तयोर्भेदं मायया मोहिता जनाः ॥ ५१

निरये ते विपच्यन्ते मावदाभूतसंश्लवम् ॥ ५२

तस्मात्पूज्या सदा मूर्तो रुद्रनारायणात्मिका ।

प्रीता भूत्वा भगवती भवत्यज्ञानहारिणी ॥ ५३

एव सक्षेपतः प्रोक्तो मयाऽन्धकवधो द्विजाः ।

प्रादुर्भावो भैरवस्य तस्य चैव पराक्रमः ॥ ५४

इमं यः पठतेऽध्यायं महादेवस्य सनिधौ ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवस्यानुचरो भवेत् ॥ ५५

जो भगवान् नृहरि हैं वह ही काल भैरव हैं । नृहरि भगवान् के अभ्यर्चन करने से भगवान् भैरव भी निश्चय ही प्रमत्त हो जाया करते हैं क्योंकि दोनों में कोई भेद ही नहीं है । ५०। भैरव के पूजन से भी भगवान् नृहरि पूजित हो जाया करते हैं । जो लोग उन दोनों में कोई भेद देना करते हैं वे माया से मोहित ही मनुष्य हुआ करते हैं । ५१। वे मनुष्य नरक में यातनाओं का विषाग भोग करते हैं जब तक भूत सृष्ट होता है नरक में ही पड़े रहा करते हैं । ५२। इस कारण से सर्वदा रुद्र नारायणात्मिका मूर्ति का पूजन करना चाहिए । भगवती परम प्रमत्त होकर अज्ञान के हरण करने वाली हो जाती है । ५३। हे द्विजो ! इस प्रकार से मैंने यह अन्धक का वध परम सक्षेप में ही बना दिया है । भैरव का प्रादुर्भाव होना उत्ती का पराक्रम है अर्थात् उन देव के पराक्रम के कारण ही भगवान् भैरव का प्रादुर्भाव हुआ था अन्यथा नहीं होता । इस अध्याय को जो भगवान् महादेवजी की

प्रह्लाद राज्यारोहण तथा दृक्ष्वाकु वंश कथन] [१२५

सन्निधि में बैठकर जा पढ़ा करता है वह सभी पापा में निनिर्मुक्त होकर अन्त में भगवान् शिव का ही अनुचर हो जाया करता है । ५५।



॥ प्रह्लाद राज्यारोहण तथा दृक्ष्वाकु वंश कथन ॥

हिरण्यकशिपो पुत्र प्रह्लादो दैत्यसत्तम ।
 अन्धके निहते दैत्ये तत्र राज्ये स्थित स्वयम् ॥ १
 कृत्वा न सुचिर काल राज्य परमधार्मिक ।
 राज्य विरक्तो मतिमाञ्छमादिगुणसयुत ॥ २
 राज्ये मतिमता श्रद्धो ह्यभिपिच्य विरोचनम् ।
 तपोवन गत सोऽयं वासुदेवपरायण ॥ ३
 विरोचनश्च निहतो देवदेवेन चक्रिणा ।
 बलिस्तस्याभवत्पुत्रो दैत्यो धर्मपरायण ॥ ४
 बद्ध्वा नीत स पाताल देवदेवेन चक्रिणा ।
 वाणासुरस्तस्य सुतो भक्तो विद्वेश्वरे शिवे । ५
 दत्ता भगवता तस्मै गाणपतभमनुत्तमम् ।
 तारश्च शम्यरश्चैव कपिल शङ्करस्तथा ॥ ६
 स्वर्भानुर्वपपर्वा च वाणस्यैते सुता द्विजा ।
 कश्यपात्सुरसा जज्ञे खेचरान्मुनिपुंगवा ॥ ७

श्री सूतजी ने कहा — हिरण्यकशिपु का पुत्र दैत्य श्रेष्ठ प्रह्लाद अन्धक दैत्य के नाहत हो जाने पर वही राज्यासन पर स्वयं ही स्थित हो गया । १। उस परम धार्मिक ने बहुत समय तक राज्य का शासन करने में वह मतिमान् राज्यासन करने से विरक्त हो गया था और शम आदि गुणा से युक्त बन गया था । २। फिर उस राज्यासन पर मतिमानों में परम श्रेष्ठ प्रह्लाद ने विरोचन को अभिषिक्त कर दिया था और वह स्वयं भगवान् वासुदेव की भक्ति में परायण होकर तपोवन में बना

गया था । ३। देवों के देव भगवान् ने विरोचन को निहित कर दिया था । उसका पुत्र बलि धर्मपरायण दैत्य हुआ था । देवदेव भगवान् चक्रधारी ने उसको भी बाँधकर पातान मे पहुँचा दिया था । उसका पुत्र बाणामुर हुआ था जो भगवान् विश्वेश्वर शिव का परम भक्त था । भगवान् ने परमोत्तम गणपत्य यह प्रदान कर दिया था । हे द्विजो ! बाणामुर के तार शम्बर-कपिल शङ्कर स्वर्भानु वृषपर्वा ये इतने पुत्र हुए थे । हे मुनि पृथ्वी ! सुरसा ने कश्यप मुनि से खेचरो का जन्म दिया था । ४। ५। ६। ७।

अनन्ताद्या काद्रवेया बलिनो बलवत्तरा ।
 गन्धर्वाञ्जनयामास तथाऽरिष्टा तु कश्यपात् ॥ ८
 विनता जनयामास विरयाती गरडारुणौ ।
 पश्चादीन्स्थावरान्ताश्च तथाऽन्यान्सुपुबुद्धिजा ॥ ९
 स्थावराश्चङ्गमाश्चैव समुत्पाद्याथ कश्यप ।
 पुन सतानवृद्धयर्थं ततोऽप परम तप ॥ १०
 तपःप्रभावात्सभूतो वत्सरश्चासित सुतो ।
 नैध्रुवो वत्सराजातो रैम्यश्चैव महामति ॥ ११
 सुमेधा सुपुत्रे पुत्रान्नैध्रुवान्कुण्डपायिन ।
 असितादेकपर्णाया समभूद्देवलो मुनि ॥ १२
 आराध्य देवल शम्भु परा सिद्धिमवाप्तवान् ।
 क्षाण्डित्यो देवलाजात एतेऽपत्यास्तु वाश्यपा ॥ १३
 तृणविन्दुस्तु राजर्षि कन्यामिलविलाभिधाम् ।
 पुलस्त्याय ददौ तस्या विथवा समजायत ॥ १४

ये काद्रवेय अनन्ताद्य हैं ये बलधारी और विघ्नेश बलवान् थे । अरिष्टा नाम वाली पत्नी ने कश्यप ऋषि से गन्धर्वों को समुत्पन्न किया था । ८। विनता ने परम विख्यात गरुड और अरुण इन दोनों को जन्म प्रदण कराया था । हे द्विजो ! पशुआ से आरम्भ करके स्थावरा के भन्ने तब और अन्यो को भी प्रमूत्र किया था । ९। कश्यप मुनि ने

स्थावरो को और जङ्गमो को ममूत्वन्न करके पुन सन्तानो की वृद्धि के निचे परम तपश्चर्या की थी । १०। उप तप के प्रभाव से वत्सर और असित य दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । वत्सर से नैध्रुव उत्पन्न हुआ था और महामनि रंभ्य पैदा हुआ था । ११। नैध्रुव से सुमेधा ने कुण्डपाभी पुत्रा को समुत्पन्न किया था । एकपर्णा के आसन्न से देवव मुनि समुत्पन्न हुए थे । १२। देवव ने सन्धु की समार, घना करके परम सिद्धि प्राप्त की थी । देवल से शाण्डिल्य उत्पन्न हुए । ये कश्यप की सन्तनिया हैं तृणबिन्दु राजर्षि ने हलविला नाम वाली कन्या को पुलस्त्य मुनि को प्रदान कर दी थी उसी से विथवा समुत्पन्न हुआ था । १३। १४।

पुष्पोत्कटा तथा वाका कैकसी देववर्णिनी ।

चतस्र पत्नयस्तस्य पौलस्त्यस्य महात्मन ॥ १५

कुवेरो देववर्णिन्या कैकस्या रावणस्तथा ।

कुम्भकर्णं द्रूपणखा तथैव च विभीषण ॥ १६

पुष्पोत्कटायामभवस्तस्य पुत्राश्च कन्यका ।

महोदर प्रहस्तश्च महापार्श्वस्तथाऽपर ॥ १७

तथा कुम्भनग्नी कन्या तरय विश्रवसो द्विजा ।

निशिरा द्रूपणश्चैव विद्युज्जिह्वो महाबल ॥ १८

वाकायामभवन्पुत्रा राक्षसा क्रूरकर्मिण ।

भूता मृगा पिशाचाश्च सर्वे वै दक्षिणस्तथा ॥ १९

पौलस्त्या इति ते सर्वे मरीचे, कश्यप सुत ।

भृगो सकाशादभवच्छुक्रो दैत्यगुरुर्महानू ॥ २०

प्राप्ता सजीविनी विद्या येन शुक्रेण धीमता ।

महादेव समाराध्य पुरा वदरिकाश्रमे ॥ २१

महात्मा प्रलस्थ की चार पत्नियाँ हुई थी । एक का नाम पुष्पोत्कटा था — दूसरी वाका थी — कैकसी और देव वर्णिनी थी । देववर्णिनी पत्नी के उदर मे कुवेर पैदा हुए और कैकसी के गर्भ से रावण उत्पन्न हुआ था तथा साय हों छोटें भाई कुम्भकर्ण और विभीषण हुए और

एक बहिन दूर्पणखा हुई थी १६५।१६। पुष्पोत्कर मे तीन पुत्र और कन्या हुई थी । उनके नाम ये है—महोदर-प्रहस्त और महापार्षा । उस विथवा कुम्भनखी एक कन्या भी हुई थी । नकामे त्रिशिरा दूषण-विद्युज्जिह्व-महाबल ये पुत्र समुत्पन्न हुए थे जो क्रूर कर्मों कें करने वाले राक्षस थे । भूत-मृग और पिशाच ये सभी देष्ट्राचारी थे १७।१८। १९। सभी पीतस्थ हैं और भगीचक्रा कश्यप पुत्र था । भृगु के सकाश से महाम् दैत्य गुरु शुक्र हुए थे १२०। जिस परम श्रीगात्र शुक्र ने सजीविनी विद्या प्राप्त करली थी और पहिले बदरिका ध्रम मे शुक्राचार्य ने श्री महादेवजी की समाराधना करके ही सजीविनी विद्या उनके प्रसाद से प्राप्त करली थी १२१।

जरामरणनिर्मुक्तो वज्रकायो महामुनिः ।

योगाचार्य इति ख्यातः प्रसादान्दिरिजापतेः ॥ २२

अनसूया तु सुपुत्रे क्रमत्पुत्रत्रयं द्विजाः ।

दत्तात्रेय चन्द्रमसं तथा दूर्वासिमं मुनिम् ॥ २३

आत्रेया इति ते ख्याता निरपत्यस्तथा क्रतुः ।

वसिष्ठाय ददौ कन्या नारदो मुनिपुंगवाः ॥ २४

अरुन्धतोमरुन्धत्या शक्तिर्नाम वभूव ह ।

शक्तेः पराशरस्तस्मात्कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ २५

द्वैपायनाच्छुक्रो जज्ञे पञ्च पुत्राः शूकस्य ते ।

भूरिश्रवाः प्रभुः शंभुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः ॥ २६

कन्या कीर्तिमती नाम वजा एते प्रकीर्तिताः ।

यद्वयपाददितिर्लभे भास्कर तेजसाऽधिकम् ॥ २७

सज्ञा राज्ञी प्रभा स्याया भानोर्भार्याः स्मृतास्त्विमाः ।

मूले मूर्ध्निभनुं संज्ञा यम्य वंशेऽभवन्नृपाः ॥ २८

भगवाद् गिरिजापति के प्रसाद में यह महामुनि जरा (यृद्धमा) और मरण में निर्मुक्त होकर वज्रकाय हो गये थे तथा योगानार्यागमाभ्यास हुए थे १२२। १२३। अनसूया ने क्रम में तीन पुत्रों को प्राप्त किया

था । वे तीनों दत्तात्रेय-चन्द्रमा और दुर्वासा मुनि थे । १२३। ये सब आत्रेय-इस नाम से ही ख्यात हुए थे और ऋतुमुनि अपत्य (सन्तान) से ही वही रह गये थे । हे मुनिपुङ्गवो ! नारदजी ने वसिष्ठजी के लिये कन्या प्रदान करदी थी । १२४। उस कन्या का नाम अरन्धती था । उस अरन्धती ने शक्ति नाम वाला हुआ था । शक्ति से पराशर हुए तथा उन पराशर मुनि से कृष्णद्वैपायन मुनि ने जन्म ग्रहण किया था । १२५। द्वैपायन मुनि से शुन समुत्पन्न हुए थे और उन शुक् मुनि के पाच पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था । उन पाचों के नाम—भूरिश्रवा-प्रभु धम्भु कृष्ण और पाचवा गौर था । १२६। एक कन्या थी जिसका नाम कीर्त्तिमती था ये सब वंश कीर्त्तिन कर दिये गये हैं । कश्यप मुनि से अदिति ने तेज से अत्यधिक तेजस्वी भास्कर को प्राप्त किया था । १२७। स ज्ञा-राक्षी-प्रभाऔर छाया ये भानु देव की भार्या ये कही गयीं । सज्ञा ने सूर्य देव से मनु को प्रभूत किया था जिसके वंश में नृप हुए थे । १२८।

यम च यमुना चैव राक्षी रेवन्तमेव च ।

प्रभा प्रभातमादित्याच्छाया सार्वणिमेव च ॥ २९

शनि च तपती चैव विष्टि चैव यथाश्रयम् ।

इक्ष्वाकुर्नभश्चैव धृष्ट शर्यातिरेव च ॥ ३०

नरिष्यन्तश्च नाभागो ह्यरिष्ट करुपस्तथा ।

यूपध्वजो महातेजा नव वैवस्वता समा ॥ ३१

इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च कन्या एतास्त्रय (१) स्मृताः ।

इक्ष्वाकौश्चभवत्पुत्रो विकुक्षिरिति विश्रुतः ॥ ३२ ॥

तस्य पुत्रशत त्वासोत्ककुत्स्थो ज्येष्ठ ईरितः ।

तस्मात्सुयोधनो जज्ञे पृथुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ ३३ ॥

विश्वकस्तस्य पुत्रोऽभूदमकस्तस्य वै सुतः ।

तरमाच्छर्यातिरभवद्युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ ३४ ॥

श्रावन्तिस्तस्य पुत्रोऽभूच्छ्रावन्ती येन निर्मिता ।

तस्मात्क्वलयः ख्यातो धूम्रमारिस्ततोऽभवत् ॥ ३५ ॥

राज्ञीमार्या ने यम को और यमुना को जन्म दिया था और रेवन्त को भी उत्पन्न किया था । प्रभाभार्या ने सूर्य देव से प्रभात को तथा छायाभार्या ने सार्वणि को समुत्पन्न किया था । २६। घनि को तपती का और विष्टि को यथाक्रम से उत्पन्न किया था । इन्वाकु-नाभाग घृष्ट-शर्याति-नरिष्यन्त-ह्वरिष्ट-करष वृषध्वज महानेजा ये भी सम ढीवस्वन हैं । ३०। ३१। इला ज्येष्ठा वरिष्ठा ये तीन कन्यायें बतायी गयी हैं । राजा इन्वाकु का विकुश्चि नाम वाला विश्रुत पुत्र हुआ था । ३२। उसके एक ही पुत्र थे । उनमें वसुत्स्थ सबसे बड़ा कहा गया है । उस वसुत्स्थ से सुयोधन उत्पन्न हुआ था और उस सुयोधन का पुत्र पृथु हुआ था । ३३। उसका पुत्र विश्वक और विश्वक का पुत्र दमक उत्पन्न हुआ था । उससे शर्याति हुआ और इसका पुत्र भुवनाश्व हुआ था । भुवनाश्व का पुत्र श्रावस्ति तथा इसके द्वारा ही श्रावस्ती पुरी की रचना की गयी थी । उनमें कुवलय की उत्पत्ति हुई थी जोइसी नाम से रचात था इसके पश्चात् धुन्धुमारि समुत्पन्न हुआ था । ३४। ३५॥

धुन्धुमारैस्त्रय पुत्रा वृढाश्वाद्या महीजस ।
 वृढाश्वस्य च दायदो हरिश्चन्द्रस्ततोऽभवत् ॥३६॥
 रोहितन्तम्य पुनोऽभूद्रोहितस्यापि तत्सुत ।
 धुन्धुस्तम्मादभूत्पुत्रो धुन्धो पुनो बभूवतु ॥३७॥
 सुदेवो विजयश्चैव कुरवो विजयात्स्मृत ।
 कुरवोऽथ कुरवाञ्जज्ञे तस्माद्वाहुरभूत्सुत ॥३८॥
 सगरस्तम्य पुत्रीऽभूत्पौत्रस्तस्याशुमान्मृत्त ।
 तम्य पुत्रो दिनीपस्तु तस्माञ्जज्ञे भगीरथ ॥३९॥
 प्रोतोऽभूत्तापमा शम्भुर्ददौ वरमनुत्तमम् ।
 गन्ता वभार निरगा रक्षार्थं जगता हर ॥४०॥
 दग्नामुताना वर्षाणि द्विमह्य शतद्वयम् ।
 महादेवाद्हर लब्ध्वा राज्यं कृत्वा भगीरथ ॥४१॥

विरक्तो राज्यभोगेभ्यो विश्व मत्वेन्द्रजानवत् ।

जावाल समनुप्राप्य यत्तज्ज्ञान शिवात्मकम् ॥४२॥

धुन्युमारि व तीन पुत्र हुए थे जो दृढाक्षवाच महान् ओज वाले थे । दृढाक्ष का दाय ग्रहण करने वाला फिर हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुआ था । ३६ उस हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित हुआ था । रोहिताक्ष का पुत्र धुन्यु था । उस धुन्यु के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनका नाम सुदक्ष और विजय था । विजय से कुरूक उत्पन्न हुआ था । इसका पुत्र वृष हुआ था और उसका पुत्र बाहु उत्पन्न हुआ था । ३७। ३८। बाहु का पुत्र सागर पैदा हुआ था और उसका पुत्र अशुमान् हुआ था । इस अशुमान् का पुत्र राजा दिनीप था । इस दिनीप ने भागीरथ ने जन्म ग्रहण किया था । भगवान् दम्भु भागीरथ की तपस्या से प्रसन्न हो गये थे और उसको उत्तम वरदान प्रदान किया था । भगवान् हर ने जगता की रक्षा करने के लिये अपने सिर पर गङ्गा को धारण किया था । ३९। ४०। एक लाख दो सहस्र दो सौ वर्ष तक महादेवजी वरदान प्राप्तकर भागीरथ न राज्य किया था । ४१। राज्य के भोगों से विरक्त होकर इस विद्वत् को महेंद्र केजाल के ही समान जावाल समनुप्राप्त करके जो शिवात्मक ज्ञान था उन्हीं को प्राप्त किया था । ४२।

नुरेनुग्रहालब्ध्वा परा सिद्धिं गतो नृप ।

श्रुतस्तस्याभवत्पुत्रो नाभागस्तत्पुतोऽभस्वत् ॥४३॥

सिन्धुद्वीपस्ततो जज्ञे अयुनायुस्ततोऽभवत् ।

ऋतुपर्णस्तु तत्पुत्र सुधामा तत्पुतोऽभवत् ॥४४॥

यस्मै दत्ता भगवता गाणपत्यमनुत्तमम् ।

कल्माषपादस्तत्पुत्र क्षेत्रजस्तत्पुतोऽश्मक ॥४५॥

ऋषेर्वासिष्ठाद्विप्रेन्द्रान्निकुलस्तत्पुतोऽभवत् ।

ननुत्तस्याभवत्पुत्रो नाम्ना यत्तरथो नृप ॥४६॥

अभूद्विल्विलस्तस्माद्वृद्धशर्मा ततोऽभवत् ।

तस्माद्विश्वसहो नाम सत्त्वाङ्गस्तत्पुतोऽभवत् ॥४७॥

दीर्घबाहुस्ततो जज्ञे रघुस्तस्याभवत्पुत्रः ।

रघोरजस्तु विख्यातो राजा दशरथस्ततः ॥४८॥

तस्य पुत्राश्च चत्वारो धर्मज्ञा लोक विश्रूता ।

रामोऽथ भरतश्चैव तृतीयो लक्ष्मण स्मृतः ॥४९॥

मुनिवर के अनुग्रह से इस ज्ञान की प्राप्ति करके नृप ने परासिद्धि प्राप्त करली थी। इसका पुत्र श्रुत हुआ था और इसका पुत्र नाभाग उत्पन्न हुआ था ॥४३॥ उससे फिर सिन्धु द्वीप समुत्पन्न हुआ था। इससे अयुतायु ने जन्म प्राप्त किया था। अयुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण हुआ था ॥४४॥ जिसके लिये भगवान् ने उत्तम गणपत्य पद प्रदान किया था। इसका पुत्र क मापय व हुआ था। उसका पुत्र क्षेत्रज अवमक हुआ था ॥४५॥ हे विप्रेन्द्रो! ऋषि वसिष्ठ से नकुल उनका पुत्र हुआ था। नकुल का दशरथ नाम से विश्रुत नृप पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४६॥ उससे इलविल उत्पन्न हुआ था तथा इसका भी पुत्र वृद्धशर्मा उत्पन्न हुआ था। वृद्धशर्मा का पुत्र विश्वसह और भस्का का पुत्र खट्वाङ्ग हुआ था ॥४७॥ इससे दीर्घबाहुतने जन्म प्राप्त किया था और दीर्घबाहु का पुत्र रघु हुआ था। रघु का पुत्र तो परम विख्यात है जिसका राजा दशरथ पुत्र रूप में प्रगूत हुए थे ॥४८॥ उन महाराज दशरथ के चार ही पुत्र हुए थे जो परम धर्मज्ञ और लोको में प्रसिद्ध थे। राम भरत और तीगरी सदमण थे ॥४९॥

चतुर्थश्चैव शत्रुघ्नो रामो नारायणः स्वयम् ।

धर्मज्ञ सत्यशक्त्यो महादेवपरायणः ॥५०॥

सीता तस्याभवद्भार्या पार्वत्यशक्तमुद्भवा ।

जनकेन पुरा गोरी तपसा तोषिता यतः ॥५१॥

जनकाय ददौ शम्भुः प्रीतो घनुरनुत्तमम् ।

तदनुभंक्षयामास जनकस्य गृहे स्थितम् ॥५२॥

दृष्ट्वा पराक्रम तस्य रामस्य गुणगालिनः ।

जनकं प्रददौ तस्मै सीता ब्रह्मविदा वरः ॥५३॥

पित्रः कृतोऽभिप्रेकार्यं रामो राजश्रेष्ठः के यदा ।

वारयामास वैश्वेयी तदा राजः प्रिया वधू ॥५४॥

राजस्त्वया वरो दत्त पूवमेव यत प्रभो ।

राजान् मत्मुने तस्माद्भूतं कर्तुमर्हसि ॥५५॥

इति तस्या वच श्रुत्वा राज्ये तमभिषिञ्च स ।

प्रेषयामास त राम वन प्रति सलक्ष्मणम् ॥५६॥

चौथे पुत्र शत्रुघ्न थे । श्रीराम तो स्वयं नारायण थे । जो धर्मज्ञ—
सत्य सत्त्व वाले—महादेव जी की भक्ति में परायण थे ॥५०॥ सीता
उनकी भार्या थी जो माशान् पार्वतीजी के अंग में ही समुत्पन्न हुई थी
क्योंकि महाराज जनक ने तपस्या के द्वारा गौरीदेवी की सम्पुष्ट किया
था । भगवान् शम्भु ने जनक नृप के लिये परम प्रसन्न होकर उत्तम
धनुष दिया था । जनक के घर में स्थित उसी धनुष को श्रीराम ने तोड़
दिया था । गुणशाली श्रीराम के पराक्रम को देखकर, महाराज
जनक ने जोकि ब्रह्म वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ थे उन श्रीराम के लिए
सीता को दे दिया था ॥५१॥५२॥५३॥ जिस समय में राज्य के अभि-
षेक के लिए श्रीराम का निश्चय किया था उस समय में राजा की प्यारी
बधू केकयी ने वारण कर दिया था । उसने राजा से कहा था—हे प्रभो !
हे राजन् ! आपने पहिले ही क्याकि मुझे वरदान दिया है । अतएव मेरे
पुत्र को ही आप राजा बनाने के लिये मामर्घ हैं । उसके इस वचन को
सुनकर राज्य में उसका अभिषेक उसने कर दिया था । फिर राजा ने
श्रीराम को वन में लक्ष्मण के सहित भेज दिया था ॥५१॥५२॥५३॥
५४॥५५॥५६॥

वन गत्वा निवसतो भार्या दृष्ट्वाऽथ राक्षस ।

रावणो नाम पीलस्त्यो नीत्वा लङ्का पुनर्ययो ॥५७॥

अदृष्ट्वा ता तत सीता दुःखितौ रामलक्ष्मणौ ।

मध्य वानरराजेन गत्वा दाशरथी द्विजा ॥५८॥

सुग्रीवस्य सया वीरो हनुमान्नाम वानर ।

गत्वाऽथ रावणपुरीमपश्यज्जनकात्मजाम् ॥५९॥

अथ पूर्णक्षणा सीतामिन्दो वरनिमाननाम् ।

विश्वासार्थं ददौ तस्यै रामस्यैवाङ्गुलीयकम् ॥६०॥

दृष्ट्वाऽङ्गुलीयक सीता प्रहृष्टा च तदाऽभवत् ।

समाश्वास्य ततः सीता प्रययौ राघवान्दिकम् ॥६१॥

रामस्तमागतं दृष्ट्वा प्रहर्षोत्फुल्ललोचन ।

श्रुत्वा तद्वचनाद्वृत्तं युद्धाय कृतनिश्चय ॥६२॥

सेतुं कृत्वाऽथ रक्षोभिर्युद्धं कृत्वा महामना ।

निहत्य रावणं रामो भ्रातृभिः सह सुव्रत ॥६३॥

वन में जाकर निवास करने वाले श्री राम की भार्या की देखकर राक्षस रावण ने बोकि पीतल-व या लज्जा में ले जाकर गमन किया था ॥५७॥ उस सीता को वहाँ पर न देखकर राम और लक्ष्मण दोनों बहुत ही दुःखित हुए थे । हे द्विको ! उन दशरथ के पुत्रों ने राजा सुग्रीव के साथ मुख्य अर्थात् मित्रता की थी ॥५८॥ उस वानर राज सुग्रीव का एक सखा परम वीर हनुमाद् नाम का वानर था । वह हनुमाद् रावण की पुरी लज्जा में गया था और वहाँ पर उसने जन जात्मजा को देखा था ॥५९॥ वह जनक की आत्मजा अथुओ से परिपूर्ण नेत्रों वाली थी और इन्द्रों वर के समान उसका मुख था । हनुमान ने जानकी जी को विश्वास दिलाने के लिये कि मैं श्रीराम का ही एक भेक हूँ और उन्हींने मुझको भेजा है उन जानकी के लिये श्रीराम के द्वारा ही हुई अगूठी दी थी ॥६०॥ उस समय में उस अंगुलीयक को देखकर जानकी परम प्रसन्न हुई थी । वह हनुमान सीताजी को भली भाँति समाश्वासन देकर पुनः श्री राघवेश्वरजी के समीप में वापिस आगये थे ॥६१॥ श्रीराम ने हनुमान को जानकी जी की मूर्तता लेकर वापिस आया हुआ जब देखा था तो प्रसन्नता में उनके नेत्र गिल गये थे । हनुमान के मुख में सम्पूर्ण लज्जा का वृत्तान्त श्रवण करके उन्होंने युद्ध के लिये निश्चय कर लिया था कि रावण के साथ ध्वंश ही करना होगा ॥६२॥ फिर महार् मन करने श्रीराम ने राक्षसों के साथ युद्ध करने तथा समुद्र में सेतु बाँधकर तथा रावण को मारकर श्रीराम ने जो मुचन थे उस जानकी को भाँद्यों के साथ वापिस

ने आकर अपने पास समवस्थित कर दिया था जोकि अबनक लङ्का में अशोक वाटिका में स्थित रहता करती थी ॥६३॥

आनयामास ता सीतामशोकवनमध्यगाम् ।

प्रतिप्राप्य महादेव सेतुमध्येऽथ राघव ॥६४॥

लक्ष्मवान्परमा भक्तिं शिवे शिवपराक्रमः ।

रामेश्वर इति ख्यातो महादेव पिनाकधृक् ॥६५॥

तस्य दशनमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति ।

अभिपिस्तस्ततो राज्ये रामो राजीवलोचन ॥६६॥

पालयन्पृथिवी सर्वा घर्मेण मुनिपुंगवा ।

अयजद्वेवदेवेशमश्वमेधेन शकरम् ॥६७॥

तस्य प्रसादात्स्वयम् प्राप्तवानथ राघव ।

एव सक्षेपत प्रोक्त रामस्य चरितं मया ॥६८॥

इदं विस्तारतो विप्रा प्रोक्तं वाल्मीकिना पुनः ।

कुशार्धको लवश्चान्य पुत्री रामस्य सुव्रतौ ॥६९॥

श्री राघव ने सीता जी को अशोक वाटिका से लाकर वहां पर सेतु के मध्य में श्री महादेव की प्रतिष्ठा की थी ॥६४॥ श्री शिव के पराक्रम में युक्त श्रीराम ने भगवान् शिव में परमाधिक भक्ति को प्राप्त किया था । वे श्री महादेव पिनाक धनुष के धारण करने वाले श्रीरामेश्वर महादेव के ही नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ॥६५॥ उन श्रीरामेश्वर महादेव जी के केवल दर्शन ही कर लेने भरमें ब्रह्म हत्या से छुटकारा पा जाया करता है । इसके पश्चात् श्रीराम का राज्यासन पर अभियेक किया गया था और फिर राजीव के समान नथो वाले श्रीराम ने घर्मे के साथ हे मुनि पुङ्गवो ! सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन किया था तथा भगवान् शङ्कर का अश्वमेध यज्ञ के द्वारा यजन किया था ॥६६॥६७॥ उन्हीं के प्रसाद से श्रीराघवेन्द्र प्रभु ने पद को प्राप्त किया था । इस प्रसंग में मैंने यह श्रीराम का चरित्र बहुत ही संक्षेप में उल्लिखित कर दिया है । फिर वाल्मीकि मुनि ने इसी श्रीराम के चरित्र को बहुत

विस्तार के साथ कहा था । श्रीराम के दो परम सुत्रत पुत्र हुए थे । एक का नाम कुश था और दूसरे का नाम लव था । ये ही दोनों ही लव कुश के नामों से प्रसिद्ध थे ॥६८॥६९॥

सत्यसन्धो महावीर्यो महादेवपरायणो ।
अतिथिश्च कुशाञ्जज्ञे निपद्यस्तत्सुतोऽभवत् ॥
नलस्तस्याभवत्पुत्रो नभस्तस्याभवत्पुन ॥७०॥
ततश्चन्द्रावलीकश्च नारापीडस्तनोऽभवत् ।
ततश्चन्द्रगिरिर्नाम भानुजित्तत्सुतोऽभवत् ॥७१॥
एते सर्वे नृपा प्रोवता इदमाकुकुनसभवाः ।
धर्मत्मानो महामत्त्वा कीर्तिमन्तो दृढव्रता ॥७२॥
इम य पठते नित्यमिक्ष्वाकोर्वशमृत्तमम् ।
मर्वपापविनिर्मुक्त सूर्यलोके महीयते ॥७३॥

ये दोनों भाई लव और कुश परम सत्य प्रतिज्ञा वाले थे—महान् वीर्य—पराक्रम से युक्त थे—और श्री महादेव जी भक्ति भाव में पश-
यण थे । कुश ने अतिथि नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था और
उम अतिथि का पुत्र निपद्य नाम वाला समुत्पन्न हुआ था । इसका पुत्र
नल हुआ था तथा उस नल के नभ नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया
था । फिर इसके चन्द्राव लोक हुआ था । चन्द्रावलोक के पुत्र का नाम
नारापीड हुआ था । फिर उससे चन्द्रगिरि ने जन्म प्राप्त किया था
और इसके पुत्र का नाम भानुजित था । ये सभी नृप जो मेरे द्वारा
बनलाई गये हैं वे गय इक्ष्वाकु राजा के कुल में ही जन्म लेने वाले हुए
थे । ये सभी परमधर्मिन् और महान् सत्व वाले थे तथा नीति से युक्त
एव रक्षक बल वाले हुए थे ॥७०॥७१॥७२॥ इस महाराज इक्ष्वाकु के
उत्तम पश को जो भी कोई पुण्य नित्य ही पढ़ा करता वह सभी प्रकार
के महान् पातकों से निर्मुक्त हो जाता करता है और अन्त में सूर्यलोक
में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥७३॥

॥ शिव महिमादि कथन ॥

चतुष्वपि च वेदेषु पुराणेषु च सर्वत्र ।
 श्रीमहेशात्परो देवो न समानोऽस्ति कश्चन ॥१॥
 ब्रह्मा विष्णुर्वलाराति सर्वे यस्य वशे स्थिताः ।
 उत्पत्तिः सर्वदेवानां स एव ध्येय उच्यते ॥२॥
 नास्ति शमो परो धर्मो नास्त्यर्थः शक्रात्परः ।
 शिवः श्रेष्ठस्तु नस्ति मोक्षो नैव हरात्परः ॥३॥
 यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
 तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥४॥
 सृष्टृत्वं ब्रह्मणो येन ध्येयत्वं येन शार्ङ्गिणः ।
 विष्णुत्वं येन शक्रस्य तस्मादन्यः परो न हि ॥५॥
 केचित्ल्लोका महेशान् त्यक्त्वा केशवार्किकराः ।
 तत्र किं कारणं सूत वद सद्यःपनाशक ॥६॥
 अन्तकाले स्मरन्त्येव प्रायेण गरुडध्वजम् ।
 विद्यमाने शिवे विष्णोः प्रभो धीपावनीपती ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—चारों वेदों में और पुराणों में सर्वत्र श्रीमहेश
 में पर अग्न्य कोई भी देव नहीं है और न उनके समान ही कोई देवना
 है ॥१॥ ब्रह्मा विष्णु और वलाराति सभी जिनके वश में स्थित रहा
 करते हैं और समस्त देवों की वशी उत्पत्ति है और वही सबके ध्येय बह
 जाया करते हैं ॥२॥ शम्भु भगवान् से पर कोई धर्म नहीं है न शक्र
 से पर कोई अर्थ ही है । भगवान् शिव से अन्य कोई भी मुख नहीं है
 और न हर से पर कोई मोक्ष ही होना है ॥३॥ जिस समय में धर्म के
 सदृश आकाश को मानव वेष्टित कर लिया करते हैं उस समय में शिव
 को न जानकर दुःख का अन्त होगा ॥४॥ जिसने ब्रह्मा का सृष्टृत्व—
 शार्ङ्गिणता ध्येयत्व और विष्णुत्व का पद प्राप्त हुआ है तथा शक्र को
 विष्णुत्व मिला है उस शम्भु में पर अन्य कोई भी नहीं है ॥५॥ श्रुतिगो

ने कहा—कुछ लोग महेश्वर भगवान् को त्याग करके, केशव भगवान् के ही निष्कृत होते हैं हे सून जी ! आप तो सशय के विनाश करने वाले हैं । यह बतलाइये कि वहाँ पर क्या कारण होता है ॥६॥ अन्नकाल में प्राय करके लोग भगवान् गरुड ध्वज का ही स्मरण किया करते हैं जबकि श्री पर्वती के पति भगवान् शम्भु प्रभु विष्णु के आगे विद्यमान रहने पर ऐसा क्यों होगा है ? ॥७॥

यदा यदा प्रसन्नोऽभूतिद्धवितभावेन धूर्जटि ।
 विष्णुनाऽऽराधितो भक्त्या तदाऽसौ दत्तवान्धरान् । ८
 त्वत् परं प्रभु नैव प्रायेण ज्ञानस्यति स्फुटम् ।
 विरला केचिदेतद् निष्ठा वेत्स्यन्ति तत्त्वत ॥९॥
 हेतुना तेन विप्रेन्द्रा शिव जानन्ति केचन ।
 प्रायेण विष्णुनामानि गृणन्ति वरदानत ॥१०॥
 विष्णो स्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।
 शम्भुपाद एवैष नास्ति कार्ग्य विचारणा ॥११॥
 यः शम्भु तत्त्वतो वेत्ति स तु नारायण स्वयम् ।
 यस्तु नारायण वेत्ति स शक्रो विबुधेश्वर ॥१२॥
 य इन्द्र वेत्ति देवेश लोकपालो जलाधिप ।
 एव सर्वात्लो कपालाञ्जानाति स इहामर ॥१३॥
 देवाञ्जानाति यष्ट्यान्स ऋषिर्बेदविस्वयम् ।
 ऋषीण्यो वेत्ति सम्यक्त्वात्स एव ब्राह्मणोत्तम ॥१४॥

श्री सूतजी ने कहा—जब जब भगवान् धूर्जटि भक्ति भाव से प्रसन्न हो जाने हैं और विष्णु ने भक्ति भावाभ उनको आराधना की थी उस समय में ही होने विष्णु को वरदान दिया था ॥८॥ अतः पर प्रभु प्राय करके स्फुट रूप से नहीं जाने आये । कोई विरले ही तात्त्विक रूप में निष्ठा का ज्ञान प्राप्त करेंगे ॥९॥ हे विप्रेन्द्रो ! इसी हेतु से कुछ ही लोग भगवान् शिव का ज्ञान प्राप्त किया करते हैं । प्राय करके विष्णु के नामों को ही वरदान से लोग ग्रहण करते हैं ॥१०॥ भगवान् शिव

के नामा का स्मरण मात्र से ही ममत्त पापों का क्षय हो जाता करता है—इह भी मयवान् शम्भु का ही प्रवाद है—इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥११॥ जो शिव को तात्त्विक रूप से जानता है वह तो स्वयं नागायक ही है । जो नारायण को जानता है वह देवों का स्वामी शक्र ही है ॥१२॥ जो देवस इन्द्र को जानता है वह लोक माल जलायिह हैं । इस प्रकार ये सब भोक्ताला को जानता है वह यहाँ छमर है ॥१३॥ जो यजन करने के योग्य देवों का ज्ञान रखता है वह वदा के ज्ञाता स्वयं ऋषि हैं । जो भक्ती भाँति से ऋषिमा को जानता है वह ही उत्तम कोटि का ब्राह्मण है ॥१४॥

सर्वदेवमय विप्र यो जानाति ॥ वेदविन् ।

रहस्य वेत्ति वेदस्य न एव हरवत्सभ ॥१५॥

जन्मादिशरण शत्रु विष्णु ब्रह्मादिपूर्वजम् ।

न जानन्ति महामूर्खा विष्णुमायाविमोहिता ॥१६॥

आमीत्प्रतदं नो नाम राजा परमधामिन ।

ममदीपपति पृथ्वीप्रभुरेक प्रतापवान् ॥१७॥

गूर पुण्यमनिर्भोगी दाता वेदार्थपानक ।

रक्षिता सर्वसेतूना ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रिय ॥१८॥

तस्य राज्ये यदा देवा गृह्णन्ति हविस्तमम् ।

न पापव्ही न रा वीढ्यस्तस्य राज्येऽभवज्जन ॥१९॥

यदाति स पुरी त्यक्त्वा श्रीदायं निर्गतो वहि ।

तदा ददर्श दायं राजा विम्बयमाणम् ॥२०॥

पृष्ट वस्त्व कुतो यान कि कार्यं च तवेष्टितम् ।

कृत्वा चाम्यमि तत्सर्वं विज्ञानीषी भवान्बुध ॥२१॥

और विष्णु की माया से विमोहित ही हो जाया करते हैं ॥१६॥ एक प्रतर्दन मध्य वाला परम धार्मिक था वह सातो द्वीपो का स्वामी प्रताप वाला तथा पृथ्वी का एक ही प्रभु था ॥१७॥ वह शूरवीर पुण्यमति वाला भोमी वाला—वेदों के अर्थों का प्रतिपालन करने वाला सभी सेतुओं की रक्षा करने वाला—परम ब्रह्मण्य और ब्राह्मणों से प्यार करने वाला था ॥१८॥ उसके राज्य में देवगण सदा ही उत्तम हवि को ग्रहण किया करते थे । न तो वह पापण्ड वाला था और न बौद्ध था । उसके राज्य में ऐसा कोई अन्य मनुष्य भी नहीं था ॥१९॥ किसी समय में वह अपनी नगरी नगरी को छोड़कर क्रीडा करने के लिये बाहिर निर्गत हो गया था । उस समय में उसने क्षयण अर्थात् योद्ध सन्यासी को देखा था । उसे देखकर उसको बहुत अधिक विस्मय हुआ था ॥२०॥ उसके द्वारा उस क्षयणक से पूछा गया था कि वह कौन है और कहीं को जा रहा था, एवं उसका वहाँ क्या कार्य था तथा उसका ईप्सित क्या था ? वह अथ वहाँ को जायगा और उसकी जाति क्या है—राजा ने उससे यह भी कहा था कि आप यह सभी बातें बतलाइये ॥२१॥

राजन्वणिगह शान्तो यतिः शीलव्रत स्थितः ।

मदीयाञ्चलससग्नाः सन्त्यत्र वणिजः परे ॥२२॥

को धर्मं किं नु तत्र त्वं ज्ञायते केन वक्ति कः ।

अथ पन्थाः कथं प्राप्तः कस्मान्न प्रकटो भवान् ॥२३॥

अहिंसा परमो धर्मस्तत्तत्त्वं यत्तनोर्दमः ।

बुधयते योद्धर्जनाभ्या वक्ता तस्य जिनो मतः ॥२४॥

वेदवेदाङ्गवेत्तारो याज्ञिका वेष्णवा द्विजाः ।

माहेश्वरा महापूज्या न व्यक्तोऽहं भयान्पू ॥२५॥

ततो राजा परा चिन्ता प्राप्तो दुःखितमानसः ।

धिप्राज्य मम दुर्बुद्धेर्वेदवाहोऽस्ति मत्पुरे ॥२६॥

एतं हन्मि यदा पापं तदेतन्मानिनी प्रजा ।

कथयिष्यति शान्तारमा हतो राजा कुबुद्धिना ॥२७॥

एतस्मिन्निहते किंस्याद्भुवन्ति बहवस्तथा ।

दयाशब्द पुरस्कृत्य ह्यधर्मो विचरिष्यति ॥२८॥

क्षपणक न कहा—हे राजन् ! मैं वणिक हूँ, परम शान्त मति हूँ और धीन वन में स्थित रहने प्राप्ता हूँ तथा मेरे अञ्जल में रहने वाले दूसरे वणिह भी हैं ॥२२॥ राजा ने कहा—तुम्हारा धर्म क्या है और उस धर्म में क्या व सैं हैं ? क्या आप जाने जाते हैं किमके द्वारा कौन बोलता है ? यह मार्ग कैसे प्राप्त हुआ या और किस कारण से प्रकट नहीं हुए थे ॥२३॥ क्षपणक न कहा—अहिमा ही मेरा परम धर्म है । तनुका दमन जो है वही परम सत्त्व है । बौद्ध और जैना के द्वारा ही जाना जाता है । उसका वक्ता जिन भगवान ही माने गये हैं ॥२४॥ हे नृप ! यहाँ पर वेदों और वेदाङ्गों के वेत्ता—पात्रिक और वैष्णव द्विज हैं महेश्वर का पूजक—महापूज्य हैं । भय से ही मैं व्यक्त नहीं हुआ हूँ ॥२५॥ सूतजी ने कहा—इसके पश्चात् राजा को बहुत अधिक चिन्ता हुई थी और उसका मन अत्यन्त दुःखित हो गया था । मेरे जैसे राजा के राज्य को भिक्षार है कि दुर्बुद्धि मेरे पुर में एक यह वेद बाह्य पुरुष विद्यमान है ॥२६॥ इसको मैं जब मारता हूँ तो यह भी पाप होना है और तब यह मानिनी प्रजा कहेगी कि बृबुद्धि राजा ने एक परम शान्त क्षपणक को मार दिया है ॥२७॥ इसके मार डालने पर क्या होगा तथा बहुत हो जाते हैं । दया शब्द को आगे करके अधर्म विचरण करेगा ॥२८॥

वेदवाह्या प्रजा राज्ञा शासितु नेव शक्यते ।

तदा तत्पापभागी स्यादित्याह भगवान्मनु ॥२९॥

एवम्वा राज्य तपस्तेपे ततो राजा प्रतर्दनः ।

सावित्री मनसा ध्यात्वा नित्यमेकाग्रमानसः ॥३०॥

ततः कतिपयाहोभिर्ब्रह्मा प्रत्यक्षता गतः ।

महना तपसा तुष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥३१॥

पुत्र प्राप्तोऽस्मि गतोग वर वरग मुनतः ।

कथं त्व गिरामे चित्ते राज्यं त्यक्तं वनस्थया ॥३२॥

वेदा प्रमाण वक् येव जानात्येव च यत्प्रजा ।

शङ्कामात्र भवेद्यत्र वेदप्रामाण्यगोचरम् ॥३३॥

इति याचे वर देव किमन्येव वरेण मे ।

याचे निष्कण्टक राज्य सप्तद्वीपावनीपति ॥३४॥

वेदों से ब्राह्म जब सब प्रजा हो जायेगी तो राजा के द्वारा शासन नहीं की जा सकती है । उस समय में उसके पाप का भागी होता है—
 ऐसा भगवान् मनु ने कहा है ॥३३॥ सूतजी ने कहा—इसके पश्चात् राजा प्रतदन ने राज्य को त्याग करके तपस्या करने लगा था । उसने सावित्री देवी का मन से ध्यान करके वह नित्य ही एकग्र मन वाला रहता था । ३०। इसके अनन्तर कुछ दिनों के बाद ब्रह्माजी प्रत्यक्षता को प्राप्त हो गये थे । ब्रह्माजी महान् तप से परम सन्तुष्ट हो गये थे और यह वचन उनसे बोले—ब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! हे सुग्रह ! मैं परम सन्तुष्ट हो गया हूँ तुम वरदान माग लो । तुम राज्य में कयो खेद को प्राप्त कर रहे हो ? विस में खिन्नता का क्या कारण है ? आपने राज्य का परित्याग क्यों कर दिया है ? ॥३१-३२॥ राजा ने कहा—वेद प्रमाण को बतलाता है और उसकी प्रजा सब जानती ही है । वेद ही प्रमाण का गोचर है और उसमें शङ्कामात्र भी नहीं होती है ॥३३॥ हे देव ! मैं यही वरदान चाहता हूँ । मुझे अन्य वरदान से कुछ भी प्रयोजन नहीं है । मैं तो सातों द्वीपों की भूमिका स्वामी अपना निष्कण्टक शूय चाहता हूँ यही आप से मैं माचना करता हूँ ॥३४॥

एवमस्त्विति सप्रोच्य ब्रह्माऽन्तर्धानमाययो ।

प्रतदनोऽपि राजपि सन्तुष्ट पृथिवीपति ॥ ५

ततः प्रभृति तद्राज्ये सर्वो धर्मो व्यवस्थितः ।

वेदवेदाङ्गवेत्तारो ब्राह्मणा यसितव्रता ॥३६॥

अग्निहोत्रादि यज्ञाश्च यतयो ब्रह्मचारिणः ।

शैवा नानाविधा पुण्या वैष्णवा शुभलक्षणा ॥३७॥

तस्य राज्ये महापुण्ये न पापण्डो न हैतुवी ।

वर्णाश्रमाचारवता क्रिया सर्वास्तदाभवन् ॥३८॥

उत्तमवा विष्णुभक्तानां जिवपूजा गृहे गृहे ।
 सर्वे ते शान्मानयन्ति न कविद्वेष्टि मानवः ॥३६॥
 तर्कवेदान्तमीमामाव्याख्यानि गृहे गृहे ।
 वेदनिर्योपवद्राज्य यज्ञस्तम्भा. स्थले स्थले ॥३७॥
 अनेकभोगसमुक्ता हृष्टाः पुष्टाः स्त्रियः मती. ।
 रक्षन्ति पतय. पुण्या यथा वृद्धपुरस्कृता. ॥३८॥

सूनवी न बड़ा—“ऐसा ही होगा”—यह कह कर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये थे । प्रतर्दन राजा भी पृथिवी पति परम सन्तुष्ट मन्तुष्ट हो गया था ॥३५॥ तब से ही आरम्भ करके उसके राज्य में सब धर्म व्यवस्थित हो गया था । सब ब्राह्मण वेद वेदाङ्गों के ज्ञान और मणित यज्ञों वाले थे । यनि और ब्रह्मचारी अग्निहोत्रों की करते थे तथा यज्ञ होते थे । धर्म भी अनेक प्रकार के एवं पुण्यमय थे और वैष्णव शुभ लक्षणों वाले थे ॥३६-३७॥ उसके महान पुण्य राज्य में कोई भी पापगुण और हेतु की नहीं था । उस समय में यज्ञों और जात्राओं जनों की सभी क्रियाएं होती थी ॥३८॥ विष्णु के भक्तों के उत्तमव होते थे तथा घर-घर में जिव की पूजा हुआ करती थी । सभी लोग देशों को मानने थे और मनुष्य किसी से भी द्वेष नहीं किया करता था ॥३९॥ घर-घर में तर्क-वेदान्त-मीमांसा के व्याख्यान हुआ करने थे । उसका राज्य वेदों के निर्योप वाक्ता था और मन्त-मन्त में यज्ञों के स्तम्भ बने हुए थे ॥४०॥ अनेक भोगों में समुक्त हृष्ट और पुष्ट स्त्रियां सब सजी थी । जिस प्रकार में वृद्ध पुरस्कृत होते हैं वैसे ही पुण्य यनिभोग उन्हीं रक्षा दिया करती हैं ॥४१॥

एव बहुतिथे काले गते ये दैत्यदानवाः ।
 पापिष्ठा होनकर्माणि म्नेन्द्राम्नेत्रि दिव मनाः ॥४२॥
 येषां तु मरति शुद्ध वेदमार्गं हि मन्त्रे ।
 ते सर्वे नरवान्मुखा प्राप्ता एवामरावतीम् ॥४३॥
 मयं न तु नगीवन्दं सयं न हरिपूजनम् ।

वित्त्वदलंसु सवंत्र पूज्यते गिरिजापतिः ॥४४
 कथं तेषां तु पितरो नरके निवसन्ति हि ।
 तस्मिन् राज्ये समागत्य किं कुर्युर्यन्मक्रिकराः ॥४५
 शृणुध्वभृपयः सर्वे यदामीत्यरमाद्भुतम् ।
 स्वर्गगामिषु सर्वेषु व्यापाररहिते यमे ॥४६
 पूजिताः सर्वलोकेषु सर्वे इवा बभूविरे ।
 तदाऽप्यौ धर्मराड्गत्वा शक्रलोकं महामनाः ।
 उवाच सर्वदेवानां पुरतः प्राञ्जलिः स्थितः ॥४७

सूतजी ने कहा— इस प्रकार से बहुत सा काल व्यतीत हो जाने पर जो भी दैत्य दानव थे वे महा पापिष्ठ—हीन कर्मों वाले और म्लेच्छ थे वे भी स्वर्गलोक को चले गये थे ॥४२॥ जिनकी मन्तति छुड़ थी वह वेदमणि को मानती थी । वे सब उनके पूर्वज जो नरको में पातनाए भोग रहे थे वे नरको की मन्तति के पुण्य प्रभाव से परित्याग करके ऐरावती में प्राप्त हो गये थे ॥४३॥ उस राज्य में सभी जगह तुलसी के वृक्ष लगे हुए थे तथा सर्वत्र श्रीहरि का पूजन होता था । सर्वत्र बिल्व पत्रों के द्वारा भगवान् गिरिजा के पति का पूजन किया जाता था ॥४४॥ फिर उनके पितर जाहे वे कैसे भी पापी क्यों न हों, कैसे नरको में निवास कर सकते हैं क्योंकि उनकी मन्तति पूजा परायण थी । उसके राज्य में आकर विचारे यम के दूत नवा करेंगे क्योंकि वहाँ ऐसा कोई था ही नहीं जिसे वे ले जाकर दण्ड दें ॥४५॥ सूतजी ने कहा—ऋषि-गण सब श्रवण करें जो वहाँ पर परम अद्भुत हुआ था । सभी के स्वर्ग में गमन करने वाले हो जाने पर यमराज तो सर्वथा व्यापार से रहित ही हो गये थे ॥४६॥ सब लोको में पूजित होकर सभी देव हो गये थे । उस समय में धर्मराज तहामना शक्रलोक में गया था और हाथ जोड़कर सभी देवों के सामने स्थित होकर कहने लगा था ॥४७॥

चतुरशीतिलक्षाणां जीवानां या स्थितिः सदा ॥४८॥
 तां नष्टामधुना वेदि यदि देवः प्रमाणवान् ।

यस्या कीटादियोनो यः स्थितो जीवोऽतिपापवान् ॥४६

नरके सयमिन्या वा तत्पुत्रेण म उद्धृत ।

श्राद्धदेवाचर्चनादीनि करोति श्रुतिनिश्चयः ॥४७

अस्माक हीनजीवाना को विशेषो यदा श्रुतिः ।

प्रमाणयति तत्त्वेन वय देवा यदाज्ञा ॥४८

पुरोहित तव प्रजा शोभना प्रतिभानि मे ।

पूर्व चार्वाकबौद्धादिमार्गा मदशितास्त्वया ॥४९

तेन मार्गेण विभ्रान्ता वेदमार्गवहिष्कृता ।

दैत्याश्च दानवाश्चैव तथा कुरु द्विजोत्तम ॥५०

न चार्वाको न वै बौद्धो न जैनो यवनोऽपि वा ।

कापालिक कौलिको वा तस्मिन् राज्ये विशेषकञ्चित् ॥५१

वेदा प्रमाणमित्येव मन्यमाना प्रजा शुभा ।

यथ सा चाल्यते तात न शक्य हि शुभाशुना ॥

विधिदत्तवरस्याहमुच्छेत्तु शक्तिमान्कथम् ॥५२

यम ने कहा—चोराभी साल जीवो की जो स्थिति सदा थी मैं उसको इस समय में बिनाष्ट हुई ही समझता हूँ यदि देव प्रमाण वाले हैं । जिस कीटादि योनियों में अत्यन्त पाप वाला जो जीव स्थित रहा करता है ॥४६॥४६॥ नरक में अथवा सयमिनी में वह जब होता है तो वह उसके पुत्र के द्वारा ही उद्धृत कर दिया जाता है । वह श्राद्ध और देवाचर्चना आदि किया करता है । इसका ही ऐसा प्रभाव होता है—ऐसा श्रुति का विशेष निश्चय है ॥४७॥ इन्द्र देव ने कहा—जब श्रुति ही ऐसा प्रतिपादन करती है तो हम जैसे हीन जीवों में क्या विशेषता है । हम देवगण तो उसकी आज्ञा से ही तात्त्विक रूप में प्रमाण निपा करते हैं ॥४८॥ हे पुरोहित ! तुम्हारी प्रजा परम शोभना मुझे प्रतीत होती है कि आपने पूर्व में ही चार्वाकि और बौद्ध आदि मार्ग में महारिज कर दिये थे ॥४९॥ उग मार्ग में विभ्रान्त हुए भोग वेशों के मार्ग में बहिष्कृत हो गये थे । हे द्विजोत्तम ! दैत्य और दानव सभी बाहि

करो ॥५३॥ गुरुजी ने कहा—उसके राज्य में चरवाक बौद्ध जैन यवन—
वा पालिक-कोलिक कोई भी नहीं पर भी कभी भी प्रवेश नहीं करता
है । वहाँ की परम शुभ प्रजा वेद ही प्रमाण हैं—ऐसा मानने वाली
है । हे तात ! वे लोग कैसे विचलित किये जा सकते हैं । ऐसा किया
नहीं जा सकता है । वह इस समय में सारी प्रजा परम शुभ है ॥५४॥
विधाता के द्वारा दिये हुए वरदान को मैं उच्छेदन करने में किस तरह
से क्षत्तिशाली हो सकता हूँ ॥५५॥

दैत्याना दानवानां च दुर्दर्शाना भवो यदा ॥५६॥

तदा शुक्रः स्वयं तेषां कृपया सोद्यमो भवेत् ।

तस्मात्त्वे विप्रशार्दूल वस्मादस्मानुपेक्षसे ॥५७॥

असाध्य तव किं मान्य वयं त्वच्छरण गताः ।

अस्माकं दुर्जनाः सर्वे वेदकर्मरता कृताः ॥५८॥

तेषां व्यामोहनाय त्वं कुरु यत्नं कृपानिधे ।

देवानां रक्षणा चैव दैत्यानां पापकर्मणाम् ॥५९॥

एव नृवरसु देवेषु बृहस्पतिरुदारधी ।

उपायं चिन्तयामास सृष्टेः सरक्षणाय च ॥६०॥

शृण्वन्तु त्रिदवाः सर्वे ममोपायं वदाम्यहम् ।

देवः कश्चिद्यदि भवेत्कपटी वैष्णवः स्वयम् ॥६१॥

शङ्खचक्राङ्गुनतनुस्तुलसीकाष्ठभूषितः ।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं च विभ्राणो हरिनामाक्षरजपन् ॥६२॥

देवतामात्रनिन्दी च चकृत्वा मतिमीश्वरे ।

शिवद्वेष्टा महापापप्रेरकः शिवनिन्दकः ॥६३॥

इन्द्र आदि ने कहा—जब दैत्यो को दानवो को और बुरी दशा
वालो को भव होता है ॥५६॥ दैत्याचार्य शुक्र स्वयं ही कृपा करके उनके
कल्याणार्थ उद्यमो होंगे । इससे है विप्रशार्दूल । आप हमको किस
कारण में उपेक्षित कर रहे हैं ॥५७॥ हे मान्यवर ! आपने किये क्या कार्य
असाध्य है । हम सब लोग आपके क्षरण में प्राप्त हुए हैं । हममें जो

भी दुर्जन हैं व सब वेदमार्ग में रति रखने वाले किये गये हैं । १५८। हे प्रणानिधे ! उनके व्यमोदन करने के लिय आप यत्न करिये जो भी दैत्य हैं—राक्षस हैं देव हैं और पाप कर्म करने वाले हैं उनका व्यमोदन करने का प्रयत्न करिये । १५९। मूतजी ने कहा—इस प्रकार से देवा के बोलने पर उदार बुद्धि वाले बृहस्पति जी ने मृष्टि के सरक्षण व लिये कोई उपचार सोचा था । १६०। गुरुजी ने कहा—हे त्रिदशों ! मेरे उपाय को आप सब लोग श्रमण कीजिये । मैं आपका बतलाता हूँ । कोई देव यदि कपटी होता है और स्वयं वैष्णवभी कपटी होता है । चाहे वह दारु-वक्र से अङ्कित तनुवाला हो और तुलसी काष्ठ से भी भूषित हो—ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करने वाला हो श्रीहरि के नाम को जाप रहा हो—देवता मात्र की निन्दा करने वाला हो और ईश्वर में मति न करके शिव का द्वेषी हो तो वह महा पाप का प्रेरक शिव निन्दक हुआ करता है । १६१।

दम्भेन यदि तद्वाज्ये शिवनिन्दा कृता भवेत् ।
तदा तत्पूर्वजा सर्वे नरकं यान्ति दारुणम् ॥६४॥
ततो देवेषु सर्वेषु न कश्चिदवदत्तया ।
मथयन्ति स्म चान्योन्यं नैतत्कर्मास्ति मुन्दरम् ॥६५॥
पदचाण्डाल शिवं ब्रूयात्पापघारण्येन विष्णुना ।
यस्य प्रणादाढं कुण्डं प्राप्तिवानोहन् पदम् ॥६६॥
ततः किन्नरमह्यं प्रावाचेद्दशवीर्यवति ।
माहि किन्नर मायावी भूत्वा त्वं वैष्णवी भुवम् ॥६७॥
तत्र गत्वा जगन्मर्षान्ग्रही कोऽस्ति शिवो महान् ।
एव एव महाविष्णुर्नाम्नो ध्येयं कथयन् ॥६८॥
पूर्वं प्रच्छगम्पेन स्थित्वा मार्गं प्रदर्शय ।
घनं घनैर्जना एव मविष्मन्ति च हैनुका ॥६९॥
वेदं प्रमाणांमि मेव वदितव्यं तस्या मया ।
परं स्वैरो महाविष्णु शिवस्तस्य च किन्नर ॥७०॥

यदि उसके राज्य में दम्भ से शिव की निन्दा की हुई होनी है । तब उसके समस्त पूर्वज दारुण नरक में जाया करते हैं । १६४। इसके अनन्तर सब देशों में कोई भी ऐसा नहीं बोलता था । वे सब अन्योन्य से कहते थे कि यह कर्म सुन्दर नहीं है । १६५। साधारण्य विष्णु के समान कौन सा चाण्डाल है जो भगवान् शिव को बतलाता है । जिसके प्रसाद से वैकुण्ठ में ऐसा पद प्राप्त किया है । १६६। स्वामी ने कहा—इसके अनन्तर किन्नर को बुलाकर शचीपति ने कहा—हे किन्नर ! तुम मायावी होकर विष्णु भगवान् की भूमि को चले जाओ । १६६। वहाँ पहुँच कर सब मनुष्यों से बो-नो - महान् शिव कौन है ? एक ही महा विष्णु हैं । अन्य कोई भी कभी ध्येय नहीं है । १६८। पूर्व में प्रच्छन्न रूप से स्थित होकर मार्ग को दिखलाओ । धीरे-धीरे जब इस प्रकार से हेतुक हो जायेंगे । १६९। आपको मदा यहो बोलना चाहिये कि वेद ही प्रमाण है परन्तु एक महा विष्णु ही है । शिव तो उनका किकर ही है । १७०।

प्रेरितोऽसौ बलात्तन भीतोऽगच्छच्छृणुः शनैः ।

दाम्भिक रूपमास्थाय यथा साधु वदेज्जन ॥७१॥

सर्ववैष्णवचिह्नानि धृत्वा भ्राम्यति तत्पुरे ।

शिष्यान्करोति तत्पूर्व वदेन्मान्यो न शङ्करः ॥७२॥

क्वचिद्वदति न ध्येयो न मुख्य इति च क्वचित् ।

क्वचिदुत्कृष्टजीवोऽय क्वचिच्छ्रीविष्णुकिंकरः ॥७३॥

इति नानाविधा बुद्धिर्नराणां भेदिता यदा ।

तदा शिष्यं परिवृतो राजगेहं विशत्यपि ॥७४॥

चालितो राजलोकोऽपि विरुद्धं नैव दृश्यते ।

विष्णुभक्तो महाज्ञान्तो वेदवेदाङ्गपारवान् ॥७५॥

उपायनान्यनेकानि ह्याश्च स्यन्दनान्वसु ।

लोका सर्वे ददत्येव गुप्तं पापं न दृश्यते ॥७६॥

सूत जी ने कहा—उसके द्वारा प्रेरित हुआ वन पूर्वक वह भेजा । डरते हुए धीरे-धीरे वहाँ गया था उमने दाम्भिक स्वल्प धारण

पग्वे गया था । जिससे मनुष्य उसको साधु वहे । ७१। समस्त वैष्णव
 ये सिद्धो को धारण करने उसने पुर मे भगण करता था । पहिले उन
 सगरो निष्पन्न करता है फिर कहता है कि शङ्कर मान्य नहीं है । ७२।
 पही तो यह कहता है कि शिव ध्यान करने के योग्य नहीं है । और वह
 पही भी मुख्य नहीं है । कही पर यह कहता था शिव एक उत्कृष्ट श्रेणी
 का जीव है और कही पर रहा करता था वह श्री विष्णु का स्वर
 है । ७३। जग हय प्रकार से अनेक प्रकार की मनुष्यों की बुद्धि को
 मोहित करती थी तब वह शिष्या से परिवृत होकर राज गृह में भी
 प्रवेश करता था । ७४। राज लोक भी उसने धानित कर दिया है और
 विरुद्ध नहीं दिखलाई देता था । विष्णु का भक्त मह मुशान्त और वेद-
 वेदाङ्ग के पार था । ७५। अनेक उपायन अश्व—रथ—उस सभी
 लोक दिया ही करने हैं और गुप्ति पाप नहीं दिखलाई देता है । ७६।

एकस्मिन्ममगे विप्रो एकादश्यामुपोषिता ।

जना प्रातश्चक्राणि नमस्वस्तुं गता शुभा ॥७७

तत्रोपविष्ट शिष्टं स्वर्तुं स्वीयेन तेजसा ।

न कचिन्मन्यते विप्र यो भस्माद्धितभालवान् ॥७८

एतस्मिन्ननरे राजा प्राप्नवाश्चोपतदन ।

वृतो बहुविधैर्विप्रै कुशहस्तो मुचिब्रत ॥७९

त्रिपुण्ड्रधारिण केचिद्वर्षपुण्ड्रधरास्तथा ।

पठन् शिवसूक्तानि विष्णुसूक्तानि चापरे ॥८०

एतैर्बहुविधैर्विप्रै वृतो राजोपविश्य स ।

उवाच वचन युक्त कोमलाक्षरसयुतम् ॥८१

स्वामिन्नागनवा-साक्षाद्भगवा-हरिपार्षद ।

वेद पठसि विष्णोश्च भक्तस्तद्वेषवार्यपि ॥८२

सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! एक समय मे एकादशी मे उपोषित
 मनुष्य प्रातः काल को शुभ लोग धक्रमणि को नमस्कार करने के लिये गये
 थे । ७७। वही पर बैठा हुआ वह अपर्ण शिष्या से परिवृत अपने तेज से

किसी भी निपुण को नहीं मानता है जो कि भस्म से अङ्कित कलाट वागा
या ॥७८॥ इसी बीच में श्री प्रतर्दन राजा वहाँ पर प्राप्त हो गया था ।
वह राजा हाथों में कुंदा लिये हुए शुचिग्रन्थ वाले बहुत से विप्रों में घिरा
हुआ था ॥७९॥ उनमें कुछ त्रिपुण्ड्रधारी ने और कुछ ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण
करने वाले थे । ये सब शिव सूक्तों को याद कर रहे थे तथा दूसरे विष्णु
सूक्तों को पढ़ रहे थे ॥८०॥ इन बहुत सी तरह के विप्रों से परिवृत वह
राजा वहाँ पर उपनिष्ट हो गया था । फिर राजा ने कोमल अक्षरों से
समन्वित युक्त वचन कहा था ॥८१॥ हे स्वामिन् ! यह माक्षात् भगवान्
का हरिपापद समागत हुआ है वेद का पाठ करता है विष्णु का भक्त
है और उनके ही वेद को धारण करने वाला भी है ॥८२॥

वेद एव पर श्रेयो वेदार्थादधिक न हि ।

प्रमाण वेद एवैको विष्णुवाक्यश्रुतिरेव च ॥८३॥

राजन्वेदार्थविज्ञाने बहवो मोहिता जना ।

शिवपूजारता सन्तो नानादेवतपूजका ॥८४॥

एको विष्णुर्न द्वितीयो ध्येय किं त्वितरं मुरं ।

क्रूर च क्रूरकर्माण शकर मन्यते कथम् ॥८५॥

त्वदीया ब्राह्मणा एते ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्किता शुभा ।

तान्दृष्ट्वा प्रीतिरत्यर्थं जायते नृपसत्तम ॥८६॥

एते त्रिपुण्ड्रभाला ये कररुद्राक्षमानिन ।

पठन्त शिवसूक्तानि दृष्ट्वा वप्स्य पतेद्वि ॥८७॥

दर्भत्योपग्रह कोऽयं किं वा भस्माङ्गधारणम् ।

रुद्राक्षा वा च को रुद्र कानि सूक्तानि तस्य च ॥८८॥

विष्णुरेक परो ध्येयो नान्यो देव कदाचन ।

तदीयायुधचिह्नानि पूज्यो वै वेष्णव सदा ॥८९॥

दौण्ड्याभास ने कहा — वेद ही परमार्थ है और अन्य कुछ भी
अर्थ से अधिक नहीं है । एक वेद ही प्रमाण है । यह विष्णु का तथ्यन
९ तथा श्रुति है ॥८३॥ राजन् ! वेदों के अर्थ के विज्ञान में बहुत से

अन मोहिता हो रहे हैं । कुछ गिन की पूजा में रत है और नाना देवों के पूजा है । ॥८४॥ एतत्ती विष्णु भावात् ध्येय है दूसरा कोई भी च्यान करने योग्य नहीं है । फिर इतर मुरों से क्या प्रयोजन है । महान क्रूर और क्रूर ही कर्मों के करने वाला सद्गुरु को क्यों मानने हैं ॥८५॥ ये सब ऊर्गों से अविता आपके ही विष्णु हैं जो शुभ हैं हे नृप श्रेष्ठ ! उनही देवगुरु मुझे अत्यन्त ही प्रीति होनी है । जो ये त्रिपुण्ड्र भाल धारण हैं और हाथ में रुद्रास्त्र की माला धारी हैं जो कि शिव मूर्त का पाठ कर रहे हैं उनको देवगुरु दिन लोह में वज्र गिरता है । ॥८६॥ ८७॥ घर्म का उपग्रह यह क्या है अथवा अङ्ग में भस्म का धारण करना भी क्या है । रुद्रास्त्रा कौन है और रुद्र कौन है और उमक मूर्त क्या है । ८८॥ एव विष्णु ही परम देह है । अन्य सभी भी कोई देव है ही नहीं । उमक य आधुपा के चिह्न है । अतएव वीष्णव जल सदा ही पूजने के योग्य हैं ॥८९॥

अनादिना प्रमाणेन वेदेन प्रोच्यते शिव ।
विष्णोरप्यधिनो विप्रः सपूज्यो न कथं भवेत् ॥९०॥
शिवादिषु पुराणेषु प्रोच्यते शङ्करो महान् ।
सर्वासु स्मृतिषु ब्रह्मविष्णवाचारेषु सर्वतः ॥९१॥
नानागमेषु पुण्येषु प्रोच्यते ह्यज ईश्वर ।
कठोर वाक्यमेतत्तो भाति चेतमि मेऽशनि ॥९२॥
नैकाग्रमनसस्ते तु येऽव्यन्तोह घूर्जटिम् ।
श्मशानवासी दिग्वासा ब्रह्मस्तकघृग्भव ॥९३॥
सर्पहार कथं सेव्यो विषधारी जटाधर ।
तस्माद्विष्णु सदा सेव्य मुन्दर कमलापति ॥९४॥
नानारूपाणि रुद्रस्य के जानन्ति नराधमा ।
त्वं वैष्णव इवाऽऽभासि वेदार्थं नैव वेत्सि रे ॥९५॥
चिन्तयित्वा ततो राजा विद्रुपो ब्राह्मणोत्तमान् ।
आहूय निर्णय चास्य करिष्यामीति तत्त्वतः ॥९६॥

राजा ने कहा—अनादि प्रमाण वाले वेद के द्वारा भगवान् शिव कहे जाया करने हैं। हे विपुल भगवान् शिव तो विष्णु मे भी अधिक पूजा के योग्य होते हैं फिर ऐसा क्यों नहीं होना चाहिए। १६०। शिवे आदिक पुण्यों मे भगवान् शङ्कर महान् कहे जाते हैं। सब स्मृतियों मे हे ब्रह्मा ! सभी निवाचनो मे और नाना आगनों मे और प्रणयग्रन्थो मे अज ईश्वर बताये गये हैं। आपका यह वाक्य अत्यन्त ही बढोर प्रतीत होता है और मेरे चित्त मे एक वज्र के समान ही आघात पहुचा रहा है। १६१। १६२। वैष्णवशास्त्र ने कहा—वे एकाग्रवाग्रमन वाले नहीं है जो धूर्जटिका अर्चन किया करते हैं भव इमशान मे निवास करने वाले—दिगम्बर (नग्न) और ब्रह्म मरकत को धारण करने वाले है वे सपों या हार पहिने वाले हैं विषयारी और जडा रखने वाले हैं ऐसे शिव का सेवन क्यों करना चाहिए। कमला के स्वामी विष्णु परम सुन्दर हैं। १६३। १६४। राजा ने कहा—भगवान् रुद्र के अनेक स्वरूप हैं वीन अधम नर उनको जानते हैं। तुम वैष्णव के समान हो भागित हो रहे हो विन्तु अरे ! तुम बंदो के अर्थ का नहीं जानते हो। १६५। मूनजी ने कहा—इनसे अनन्तर राजा ने चिन्तन करके उग्रम विद्वान् ब्राह्मण को बुलाकर कहा कि आज तारिख रूप मे इन बात का निर्णय में परगा। १६६।

॥ कलि प्रवेशादि कथन ॥

गृह गत्या म्रियगे भूत्वा यावदाह्वयते द्विजान् ।
 तावदेव कलि पापी ब्राह्मणेष्ु विवेक ह ॥१॥
 यस्मिन्ब्राह्मणमाश्रित्य श्रुते तादृशमेव हि ।
 अन्योन्यामर्षयोगेण राण्ड्यन्ति परम्परम् ॥२॥
 मारीभाषाश्रिता वेचिरेवेचिष्यार्यवादिन ।
 यो मया वक्ति तत्तादृशित्य वेचिदयोचिरे ॥३॥

इति कोलाहले वृत्तो याजचेतसि निर्णये ।
 जाते लोके नास्तिकता वसव प्रतिपेदिरे ॥४॥
 राजा वेत्ति महामूर्खं न तु मायाविन द्विजम् ।
 लोके तु भ्रान्तिमापन्ने राजा चिन्तापरोऽभवत् ॥५॥
 ईश्वर हन्ति दुष्टात्मा वध्योऽयं मम दास्यत ।
 परं तु लोको ब्रह्मघ्न मिथ्या मा तु वदिष्यति ॥६॥

सृजजी ने कहा—गृह में जाकर स्थिर होकर जब तक द्विजा का आह्वान करता है तभी तक पापी कलि ये ग्राहणा में प्रवेश कर लिया था । १। कोई राजा के पास आकर वैसा ही बोलता था और अन्योन्य भ्रमण के योग में परस्पर में एक दूसरे की बात का सम्बन्ध कर रहे थे । २। कुछ लोग मूर्खीभाव का ही आशय लेकर स्थित थे और कुछ कुछ यथाय वाद के करने वाले थे । जो जैसा कहता था वह उस प्रकार का था । और कुछ इस प्रकार में कह रहे थे । ३। इस तरह से महान् कोलाहल के हो जाने पर राजा के चित्त में निर्णय के होने पर लोक में बहुत से नास्तिकता के भाव को प्राप्त हो गये थे । ४। राजा मायावी द्विज को महामूर्ख नहीं जानता है । लोक के इस प्रकार में भ्रान्ति में प्राप्त हो जाने पर राजा अत्यन्त ही चिन्ता परायण हो गया था । ५। यह दुष्टात्मा ईश्वर का हवन करना है । शास्त्र के अनुसार इसका मुझको दण्ड कर देना चाहिए किन्तु लोक मुझको ग्राहण के हनन करने वाला मिथ्या ही कहगा । ६।

एतस्मिन्समये प्राप्ते लोकपूर्वपितामहा ।
 स्वर्गाम्भृद्वा ह्यनेकानि नरकाणि प्रपेदिरे ॥७॥
 रपा पुत्राश्च पौत्राश्च प्रतिपौत्रास्त्रयाज्यरे ।
 मातामहादिवर्गाश्च सखिसवन्धिवान्धवा ॥८॥
 शिवावगणनोद्भूतपातका यमलोकगा
 सुदृढ भस्मता यात मद्यादङ्गोदक यथा ॥९॥

एतस्मिन्नेव काले तु कमलाहृदयगम ।
 सुप्त आक्रन्दमकरोच्छ्रोणितौघपरिप्लुत ॥१०॥
 लक्ष्मीर्दृष्ट्वाऽय तद्रूप विह्वल भयविह्वला ।
 प्राप्ताऽऽश्चर्य महाघोर रुरोद भृश खिता ॥११॥
 वेदान्तवेद्य पुरुषेश्वर देवदेव
 त्रैलोक्यनाथ किमिद त्वयि दृश्यतेऽद्य ।

आकारमात्ररहित पुरुष पुराण
 स्त्वय्येव विश्वमिह रज्जुभुजगमानम् ॥१२॥
 शैला पतन्ति जलधिमस्तामुपैति
 सूर्यादयो हतरुच पृथिवी पराणु ।
 भूतानि चाच्युत विभो विलय प्रयान्ति
 त्वद्रोममानमपि नैव चलेत्क्षणाधर्म ॥१३॥

श्री सूतजी ने कहा—इस समय के प्राप्त होने पर लोक पूर्ण पिता-मह स्वर्ग से भ्रष्ट हुए अनेकों नरकों में प्राप्त हो गये थे । ७। जिनके पुत्र-पौत्र-प्राति पौत्र तथा दूसरे मातामह वर्ग वाले सखा सम्प्रन्धी और बान्धव भगवान् शिव को अवगणना से उद्धूत पातक वाले हो गये थे वे सब यमलोक में गये थे । उनका सभी सुकृत भस्मी भूत हो गया था जैसे मद्य से गङ्गो का जल भी अपवित्र हो जाया करता है । ८। इसी काल में यमता का हृदय गम मुप्त होता हुआ श्रोणित के ओघ से परिप्लुत हुआ आक्रन्द करता था । लक्ष्मी ने विह्वल उस रूप को देखा तो वह भय में विह्वला हो गयी थी । उनको महान् आश्चर्य प्राप्त हो गया था और वह अत्यन्त दुःखित होकर होकर रन्दन करने लगी थी । ९। लक्ष्मी देवी ने कहा—हे वेदान्त के द्वाग जानने के योग्य । हे । के ईश्वर । आप देवों के भी देव है । हे त्रैलोक्य के नाथ । आज मैं यह क्या दिखलाई दे रहा है । आपनों आकार मात्र में रहित पुराण पुरुष हैं । आप में ही यह विश्व रज्जुभुजग मान स्थित है ।

गैल जलाधि म विगते हैं और जनाधि अदूनो को प्राप्त होता है । सूर्य आदि सब क्षीण बान्ति बान्ते हो गये हैं—पृथिवी पराणु हो गई । हे अच्युत ! हे विभो ! भूत सब विलय को प्राप्त हो रहे हैं . आपका रोम मात्र भी आधे क्षण तक नहीं चरता है । १२।१३।

उपत त्वया तदपि नदिम तथैव स्तितु
मत्स्वामिनोऽवगणना न हि शक्यते मे ।

कृत्वाऽपि पूज्यतममूर्तिम गिरीश
नो मन्यते तदिह वज्रमम ममैव ॥१४

सर्वान्मा सर्वान्तिवर्त्ता वक्ता धर्ताऽयय प्रभु ।

त्व साक्षी सर्वलोकाना त्वत्त परतरोऽस्ति क ॥१५

अस्ति सर्वं वरारोहे मयि सत्तथमेव हि ।

श्रीमद्देशवरात्पृथग् मदीय न हि किञ्चन ॥१६

एकं मृजति भूतानि मत्समानि कियन्त्यपि ।

तत्तत्त्वा वेदम्यह देवि मदीया केचनापरे ॥१७

वेदवेदाङ्गवत्तणा सत्त्वाण्यग्रजन्मनाम् ।

हननान्मुच्यत जीवो न तु श्रीशिवहेतनात् ॥१८

गुर्वङ्गनागमनकृत्मदा मद्यनिधनक ।

ग्राह्णस्वर्णहारी च कदाचिन्मुच्यत जन ॥१९

स्त्रीघ्नो गोघ्नो नृपघ्नश्च तथा विश्वामघातक ।

वृध्नो नास्तिकी लुब्धः कदाचिन्मुच्यते जन ॥२०

न तु श्रीरुद्रमामान्यदर्शी मुच्येत बन्धनात् ।

विरञ्चिविष्णुशक्रेभ्य सर्वोत्कृष्ट न जायते ॥२१

विष्णुना यदि वा तुल्य मुच्यन्ते नैव जन्तव ।

स्वामी मदीय श्रीरुष्ठस्तम्य दासोऽस्मि सर्वदा ॥२२

श्री नारायण ने कहा—हे सम्मी ! तुमने जो कुछ कहा है वह ठीक

वैसा ही है किन्तु मेरे स्वामी की अवगणना मुझ से सही नहीं जाती है ।

इन भगवान् गिरीश को पूज्यतम मूर्ति बाल करके भो जो इनका मान

नही किया करता है वह मुझे वज्र के ही समान आघात करने वाला होता है ॥१४॥ लक्ष्मी देवी ने कहा—आप तो सर्वात्मा है सबके ज्ञाता हैं—सबके कर्ता है—वक्ता—घर्ता—अव्यय और प्रभु हैं। आप सभी लोका के साथी हैं। आप से भी पर तर कौन है ? ॥१५॥ श्री नारायण ने कहा—हे बरारोहे ! सबही है मेरे विषय में जो कुछ तुमने कहा वह सब ही तथ्य ही है। मैं ने भी महेश से ही बरदान प्राप्त किया है और मेरा अपना वास्तव में कुछ भी नहीं है ॥१६॥ वे एक ही ऐसे शक्तिशाली महा पुरुष है जो एक अकेले ही मेरे समान कितने ही भूतों का सृजन किया करते हैं हे देवि ! उस तत्त्व को जानता हूँ और जो मेरे कुछ दूसरे हैं वे जानते हैं ॥१७॥ वेद वेदाङ्गों के ज्ञाता सहस्रो विप्रों के दमन से जो महा पाप होता है उससे भी जीव मुक्त हो जाया करता है किन्तु श्री शिव की अवहेतनाकर ने से जो पाप होता है उससे छुटकारा कभी नहीं होता है ॥१८॥ गुरु शय्या पर गमन करने वाला और सदा मदिरा के सेवन करने वाला और ब्राह्मण के स्वर्ण का हरण करने वाला जन भी बदाशित मुक्ति पा सकता है स्त्री का हन्ता—गौ का दमन करने वाला नृप को मारने वाला तथा विश्वाम का घात करने वाला—कृन् को न मानने वाला—ईश्वर की सत्ता को नहीं मानने वाला और तुच्छजन शायद कभी मुक्त हो सकता है किन्तु भगवान् रुद्र को सामान्य समझने वाला मनुष्य पाप के बन्धन से कभी मुक्त नहीं होता है। जो यह करने है कि शिव श्रद्धा विष्णु इन्द्र से सर्वोत्कृष्ट नहीं है। यदि यह भी कहे कि वे विष्णु के तुल्य ही है उस पाप से भी जन्तु मुक्त नहीं होते हैं। मेरे स्वामी श्रीगण्ड है और मैं सबदा उनका दास ही हूँ ॥१९॥२०॥२१॥२२॥

गच्छामस्तत्र चैवकुण्ठ यत्र स्वाम्यस्ति ते विभो ।

यैलासपर्वने रम्ये प्रणमाम सदाशिवम् ॥२३॥

तनस्ते गह्वारुद्धो गत्वा वैनासपर्वतम् ।

नानापिथ स्तोत्रपदे सगुप्त चक्रानु क्षणात् ॥२४॥

तनो ब्रह्मादया देवा सिद्धास्तत्राऽऽगता गिरी ।

रुद्र कीतूद्रनप्रेम्पु सर्वैस्ते परिवारित ॥२५॥

भवानीसहितस्तत्र गतो यत्र प्रतर्दनः ।

मधेऽवविमानानां मध्ये तिष्ठति शक्रः ॥२६॥

कथयन्तु कथं ह्येते मतिताः सर्वनिर्जराः ।

किं कार्यं विमूर्खं वा राजा चिन्तातुरः कथम् ॥२७॥

श्री लक्ष्मी देवी ने कहा—हे विभो ! हे वंकुण्ड ! चलो वहाँ पर ही गमन करो जहाँ पर आपके स्वामी विराजमान रहते हैं । परम श्रेष्ठ कैलास पर्वत पर हम लोग सदा शिव प्रभु की चलकर प्रणाम करें ॥२३॥ श्री सृगजी ने कहा—इसके उपरान्त वे दोनों गरुड पर समावृत्त होकर कैलास पर्वत पर गये थे और वहाँ पर अनेक प्रशार के छोटो के द्वारा स्वयं न करके क्षण भरमें ही उनको सम्पुष्ट कर दिया था ॥२४॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा आदि देव और सिद्ध गण भी उस गिरि पर वहाँ समागत हो गये थे । कौतूहल की देखने की इच्छा वाले भगवान् रुद्र देव उन सबके द्वारा परिचारित कर लिये गये थे ॥२५॥ भवानी के सहित भगवान्, शम्भु वहाँ पर गये जहाँ राजा प्रतर्दन विद्यमान था । सब देवों के विमानों के मध्य में भगवान् रुद्र विराजमान थे ॥२६॥ श्रीमद्देव ने कहा—आप लोग सब बचनाश्वे कि किस कारण से ये सब निर्जर (देव) सम्मिलित होकर समागत हुए हैं ? ऐसा क्या कार्य है और क्या कोई अपूर्व बात है ? राजा चिन्ता में आतुर क्यों हैं ? ॥२७॥

स्वामिप्रतर्दनो राजा विविलब्धवरोऽभवत् ।

वेदमार्गप्रवक्ता च स्वयं तस्य प्रवर्तकः ॥२८॥

मृष्टिरक्षार्थमस्मामि कपटं कृन्मोक्ष्वरः ।

सर्वधानुषन् भवनो हेमन कारित मुर्दः ॥२९॥

तत्सामश्च महादेव किनरोऽप्य प्रवर्तितः ।

कल्पितो द्रोणवाऽस्मामिस्त्व निन्दापरायणः ॥३०॥

एतस्मिन्नेव बाले तु राजा वृत्तान्तमेविवान् ।

सीङ्गं गङ्गं ममादाय हनवान्तर क्रुधा ॥३१॥

तत्पक्षपातिनो ये च तेषा शीर्षापि कथरात् ।
 पृथक्कृतानि गश्वाद्या हता अश्वा अनेकश ॥३२॥
 न त वारयते कश्चिद्राजान पुण्यचेतसम् ।
 महादेवेन शमित क्रोधस्तस्य महात्मन ॥३३॥
 ततः कोलाहले शान्ते नदी कौतुकपूर्वकम् ।
 युयोज ह्यशीर्षे तच्छरीराणि पृथक्पृथक् ॥३४॥
 शीर्षाणि ह्यगात्रीश्च सम्यक्संयोज्य बुद्धिमान् ।
 उवाच वचन तथ्य देवसंसदि शुद्धगी ॥३५॥
 येन वक्त्रेण गिरिशो हेलितरतन्मुख हयः ।
 मुद्राधारणगर्धेण हेलितस्तत्तनुर्दयः ॥३६॥

देवो ने कहा—हे स्वामिन ! राजा प्रतर्दन विधाता से वरदान प्राप्त करने वाला था । वह वेद के मार्ग का प्रवर्तक था ॥३८॥ सृष्टि की रक्षा के लिए हम सबने हे ईश्वर ! कपट किया था । सुरो ने सर्व धाता आपकी अवहेलना कराई थी ॥३९॥ हे महादेव ! उसको अब आप क्षमा कर दीजिए । यह विचार ही उसका प्रवर्तक है । हमने इसरो वैष्णव रूप वाला कल्पित कर दिया था यह आपकी निन्दा में तत्पर हो गया था ॥४०॥ सूत जी ने कहा—इसी बाल में राजा ने वृत्ताश्रु प्राप्त कर लिया था और तीव्र लज्ज हाथ में लेकर क्रोध से उस विघ्नर को भी मार डाला था ॥४१॥ उसके पक्षपात करने वाले जो भी उनके शीर्षों को पन्धरा से पृथक् कर दिये गये थे । पशु आदि अनेक अश्व मारे गये थे ॥४२॥ उस युग्मचित्त वाले राजा को कोई भी निवारित नहीं करता है उस महान् आत्मा वाले का शीर्ष महादेव जी ने ही शमित किया था ॥४३॥ दमके अनन्तर कोलाहल के दान्न हो जाने पर नन्दी ने पौतुर पूर्वक हमसे शीर्ष में पृथक् २ अङ्गो को माजित कर दिया था ॥४४॥ बुद्धिमान ने शीर्षों को अश्व के गानो में भरी भाँति संयोजित करके पुष्ट पापी माने देवो की गगन में तत्त्व वयम किया था । जिन मुग्न स

गिरिज ये और हेलित उनका मुख देय था । मुद्रा धारण के गर्व से उसके शरीर वाला हेलित हुआ था ॥३५॥३६॥

जात तदधुना तस्य राजर्षो राज्यकर्तारि ।
भविष्य कथयिष्यामि तच्छृगुध्वं समाहिता ॥३७॥
घारे कलियुगे प्राप्तो म्लेच्छदुर्गति भुवम्बले ।
सर्वाचारपरिभ्रष्टा भविष्यान्त नराधमा ॥३८॥
तदाऽऽग्नीदेशमध्ये तु दाक्षिणात्यो भविष्यति ।
ग्राह्यणो दुर्भग कश्चिद्विधवाग्राह्यणीरत ॥३९॥
तस्य पापिष्ठविप्रस्य व्यभिचारात्मुनोऽनघ ।
भविष्यति गुणान्वेगी देवादछायनात्सुरः ॥४०॥
पद्मपादुरुमाचार्यं वर वेदान्तवादिनम् ।
अद्वैतागमबोद्धार प्रणम्य प्रार्थयिष्यामि ॥४१॥
विप्रोऽहं मधुक्षर्माऽस्मि स्वामिन्मा पाठय प्रभो ।
वेदान्तशास्त्रसर्वं च मह्य पाठय भो गुरो ॥४२॥

श्री गह्वाजी ने कहा था—जो राज्य कर्ता राजर्षि के विषय में जोनध्य दा वह अद्वैत बना दिया गया है । आगे जो भविष्य है उसका वर्णन करेगा । आप लोग परम सावधान होकर उसका ध्यान करिए ॥३७॥ घोर कलियुग के प्राप्त होने पर हम भूमण्डल के म्लेच्छों के द्वारा व्याप्त हो जाने पर अघम नर सभी प्रकार के अस्त्रे आचरणों में परिभ्रष्ट हो जायेंगे ॥३८॥ उस समय में आग्नेय देश के मध्य में दाक्षिणात्य होगा । कोई दुर्भग ग्राह्यण विधवा ग्राह्यणी में रहने लगेगा । उस महान् पापिष्ठ विप्र का व्यभिचार से अनघ मुन होगा जो गुणों का अवलम्बन करने वाला और देव वन अध्ययन करने में समुत्तम होगा ॥३९॥ वह परम श्रेष्ठ-वेदान्त का वादी पद्मपादु आचार्य को जो अद्वैतागम को उद्धारण से प्रणाम करके प्रार्थना करेगा ॥४०॥ हे स्वामिन् ! हे प्रभो ! मैं मधुक्षर्मा नाम का विप्र हूँ । हे गुरो ! सम्पूर्ण वेदान्त शास्त्र मुझसे आज पढ़ाये ॥४१॥

आचार्यं करुणामर्तिविनियेन परिप्लुप्तम् ।
 करिष्यति च शिष्याणामग्र्य प्रेमवत्सल ॥४३॥
 ततो दिने दिने भक्तिं करिष्यति यथा यथा ।
 गुरुर्भवति सनुष्ट सर्वा विद्या प्रयच्छति ॥४४॥
 एकदा गुरुणा दृष्ट स्नानसध्यादिका क्रियाः ।
 अकृत्वा भोतनप्रेप्सुर्भविष्यति निराह्निक ॥४५॥
 पृष्ठोऽसौ गुरुणा तथ्य गोलको हि चदिष्यति ।
 धर्मं साधारणो नाथ कृतोऽयं केन कुप्यसि ॥४६॥
 ततो वक्ष्यत्यथाऽऽचार्य कस्ते तात प्रसूत्र का ।
 ततो मे ब्राह्मण स्वामिन्ब्राह्मणी च प्रसूतम ॥४७॥
 वद मातामह कस्ते येन प्राप्ता प्रमूरतव ।
 को विधि कुत्र वा दत्ता तथ्य कोध्र वदान्यथा ॥४८॥
 भस्मसात्त्वा करिष्यामि हीन ब्राह्मणवचसा ।
 इत्येव कथिते सर्वं कथयिष्यति तत्त्वत ॥४९॥

प्रेम वत्सल आचार्य करुणा की मूर्ति थीं विनय से परिप्लुत उसको शिष्यो ने सबका अग्रणी उसको कर देंगे ॥४३॥ इसके पश्चात् दिन-दिन जैसे २ वह भक्तिभाव करेगा गुरुदेव परम सन्तुष्ट होकर अपनी विद्या उसको दे देते हैं ॥४४॥ एक बार गुरुवर ने उसको देखा था कि वह स्नान-सन्ध्योपासना आदि कुछ भी किया न करके हो निराह्निक वह भोजन का प्रेप्सु हो जायगा ॥४५॥ गुरु जी ने उससे यथार्थ बात पूछी थी तो वह गोलक कहेगा । हे नाथ ! धर्म तो साधारण है वह बर लिया गया है फिर किस कारण से कुपित हो रहे हैं ॥४६॥ इसके पश्चात् आचार्य उससे कहेंगे—तेरी माता कौन है और तेरा पिता कौन है । इसने अनन्तर उसने कहा था—हे स्वामिन ! मेरे तात ब्राह्मण थे और मेरी माता भी ब्राह्मणी थी । फिर गुरुजी ने पूछा था—तेरा माता-मह कौन था जिससे तेरी माता प्राप्ति हुई थी ? क्या विधि से विवाह हुआ था । वहाँ पर उसको दिया गया था—यह सब तथ्य टीका २

वतलाओ अन्यथा अर्थात् सही-सही न वतलाने पर मैं तुझको भस्म कर दूँगा क्योंकि तू ब्राह्मण के वर्चस्व से हीन है । इस प्रकार से कहने पर वह सब कुछ तात्त्विक रूप से कह देता ॥४९॥

शाप दाम्पत्ययाऽऽचार्यं सिद्धान्तो मा स्फुरत्फलम् ।
 सिद्धान्ते जडता तेऽस्तु परमद्वैतदर्शने ॥५०॥
 कथं त्वदीया सेना मे निष्फला स्याद्वद प्रभो ।
 इत्यादिऽहुनिर्वेदं यदा त्वेष करिष्यति ॥५१॥
 पदचाग्ददिष्यति स्वामी पूर्वपक्षोऽस्तु ते दृढ ।
 सिद्धान्ते सर्वपैवाऽऽद्ध्य मम वाक्यं न चान्यथा ॥५२॥
 मधुना तेन शास्त्राणां पूर्वपक्षो विलोबित ।
 भविष्यति च वेदान्तमन्यथा कर्तुं मुद्यत ॥५३॥
 यथा यथा कलेर्दं वा प्रचारः सभाविष्यति ।
 तथा तथाऽयमुन्मागं शिवद्वेषु भविष्यति ॥५४॥
 पूर्वं तु द्वाविहाद्देशात्कर्णाटकतिलङ्गशो ।
 क्षान्तर्गदावरीतीरे प्रसृतोऽयं भविष्यति ॥५५॥
 पूर्णं वलियुगे प्राप्त आर्षावितं चलिष्यति ।
 मायावादमसच्छस्त्रं वदिष्यन्ति नराधमा ॥५६॥

इसके अनन्तर वह आचार्य शाप द देने यह शास्त्र जो तुने पढ़ लिया है उसका सिद्धान्त तुमको पूरा रूप से स्फुरित न ही होगा । परम द्वैत दर्शन में सिद्धान्त में तुम्हें जडता होवेगी ॥५०॥ जब यह सिद्ध जित समय में प्रार्थना करेगा कि हे प्रभो ! आपकी इतने दिन तक की हुई मेरी सेवा निष्फल कैय हो जायगी— वह तो आप मुझे बनसा दीजिए । इत्यादि प्रकार का बहुत-सा निर्वेद करेगा तो पीछे स्वामी पीछे कहेंगे कि तेरा पूर्व पक्ष तो गुरुद्वेद रहेगा परन्तु सिद्धान्त में अक्षयता ही रहेगी । योनि मेरे मुग से निजसा हुआ वाक्य मन्त्रया नहीं होगा । अर्थात् तो तार मैने दे दिया है वह असत्य नहीं होगा ॥५१॥५२॥ उन मधु न दाम्प्यो का पूर्व पक्ष दया या और वेदान्त को अक्षय करने के विषे

यह उद्यत हो जायगा ॥५३॥ हे देवो ! जैसे जैसे कलिका प्रचार होगा
 वैसे वैसे ही यह शिव के द्वेष्टा का उन्मर्ष होगा ॥५४॥ सब से पूर्व में
 यह द्रविड देश में होगा और वहा से फिर यह कर्णाटक और कलिङ्ग
 देशों में होगा तथा शनैः शनैः गोदावरी ने तट पर यह प्रसृत हो जायगा
 ॥५५॥ कलियुग के पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाने पर यह आर्षावर्त्त में
 चलेगा । अधम नर मायावाद असत् शास्त्र को ही बोला करेंगे ॥५६॥

तेषां दर्शनमात्रेण सचैल स्नानमाचरेत् ।

भद्रात्स्व च यथा विष्टे राहो स्वर्भानुना यथा ॥५७॥

हस्ति च यथाऽनेके तथैते तत्त्ववादिन ।

योगनिन्दापरा नित्यभग्निहोत्रस्य निन्दका ॥५८॥

वेदान्तसममित्याहुः पुराणानि च ये नरा ।

केवल वेपमात्रेण नरा नरवर्गामिण ॥५९॥

सभापणौ कृते येषां पतेच्च ब्रह्मवचसा ।

वर बौद्धस्य जैन कापालिङ्गमतोऽपि वा ॥६०॥

व्यक्तं वदति वेदानामप्रामाण्यं तु तैः किमु ।

वेदप्रामाण्यवत्कृत्वाऽभिमानी न च वैदिङ् ॥६१॥

ईश्वर वचनाद्वक्ति परं चानीश्वर एव ।

एव जाते तन सर्वे यथागतमितो गता ।

प्रतर्दनोऽपि राजर्षि कृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥६२॥

देहान्ते मुक्तिमाप्नुय परामर्दं तलक्षणांम् ।

ततः परं भविष्यन्ति तस्य शिष्या आवश ॥६३॥

उनके अर्थात् ऐसे अधम मनुष्यों के दान मात्र से ही वस्त्रों के
 सहित स्नान करना चाहिए अर्थात् दर्शना करने के समय में जो भी वस्त्र
 पहिने हुए हो उन सबके ही सहित स्नान करे । विट्टि की जैसी भद्रात्स्व
 होती है और राहु की स्वर्भानुना होती है वैसे ही हस्ति है इन प्रकार
 से मत्त तथा काली लक्षण-वत्कृत्वा वैदिकतोनं वाक्पथीनित्यभरतन के
 परागण होंगे तथा नित्य ही भग्निहोत्र की निन्दा करने वाले हो जायेंगे

॥५७॥ ५८॥ जो नर पुराणों को वेदान्तशास्त्र के ही समान कहते हैं वे केवल वेप मात्र से ही नर हैं और नरकों में गमन करने वाले होते हैं ॥५९॥ जिनके साथ सम्मपाण करने से ही मनुष्य ब्रह्म व चंस से पतित हो जाया करता है । इनसे अच्छा तो बौद्ध—जैन अथवा कापालिक ही माना गया है । तात्पर्य यह है कि यह ता बौद्धादि से ही गया बीना है ॥६०॥ जो खुल तौर पर वेदों का अप्रामाण्य कहता है उनमें क्या है । यह अभिमान ही रखने वाला है और वास्तव में वैदिक नहीं है यह वेदों को प्रामाण्य की तरफ कहा करता है । यह ईश्वर को बचन से ही कहता है और खल स्वयं अनीश्वर अर्थात् ईश्वर का नहीं मानने वाला होता है ॥६१॥ श्री सूतजी ने कहा— इस प्रकार स हान पर सब जहाँ से आय थे चले गये थे । राजपि प्रसन्न भी अपने राज्य को निष्पष्टक बनाने उसका भोग करता था । जब उसका देह का अन्त हो गया तो वह उसी समय ॥ पर अद्वैत लक्षणों वाली मुक्ति को प्राप्त हो गया था । इसमें पश्चात् उसके अनेक शिष्य हागे ॥६२॥६३॥

गम्यासिवेपमात्रेण नृणां जीविता निजाम् ।
 राजसेवा प्रनुर्याणां प्रच्छन्ना कीर्तिना अपि ॥६४॥
 अगम्यागमने सत्ता अभक्ष्यस्य च भक्षणे ।
 अपेयनिरता केचित्तानां भोगममानुला ॥६५॥
 यानाहृडा मदा राजसेवाया तत्परा अपि ।
 अद्वैतनिन्दानिरता प्रच्छन्नग्रन्थगौरवा ॥६६॥
 अन्यदशनसिद्धान्त नैव जानन्ति तत्त्वतः ।
 तस्य दोषस्य बुद्ध्या च पठिष्यन्ति कसौ युगे ॥६७॥
 अन्यदेवतमानानि यदि हेयानि तत्तत्तयम् ।
 वेद पठन्ति पापिष्ठाः नय तक वदन्ति हि ॥६८॥
 भीमासानास्त्रगदग्रन्यानालोभय च पुन पुन ।
 पूर्वपथ च गर्वेणा ग्रहीष्यन्ति मग मरा ॥६९॥

स्वकीय न वदिष्यन्ति यतो नास्ति प्रमाकरम् ।

हसान्परमहसाश्च निन्दिष्यन्ति च जारजाः ॥७

केवल सन्यासियों के वेप मात्र से यह रहा करते हैं और अपनी जीविका किया करते हैं । ये राज सेवा करने वाले प्रच्छन्न कौतिक भी होते हैं ॥५॥ ये सब जो गमन करने के योग्य स्त्री नहीं है उसमें भी आसक्त रहते हैं और अभक्ष्य पदार्थों के मक्षण करने में निरत रहा करते हैं । जो पेय पदार्थ नहीं है उसका पान किया करते हैं और कुछ तो अनेक प्रकार के भोगों में सलग्न रहा करते हैं ॥६५॥ ये सदा यानों में समावृद्ध रहकर भ्रमण किया करते हैं तथा राज-सेवा में भी तत्पर रहते हैं । ये अद्वैतवाद की सदा निन्दा करने में ही निरत रहे हैं और छिपे हुए ग्रन्थों को गौरव माने होते हैं ॥६६॥ ये लोग अन्य दर्शनों के तात्त्विक रूप से नहीं जानते हैं । उनमें केवल दोष देखने की ही बुद्धि से कलियुग में पड़ा करेंगे ॥६७॥ अन्य देवों के नाम यदि देय ही हैं तो क्यों पापिष्ठ लोग वेद को पढ़ते हैं और क्यों तर्क को चला करते हैं ? ॥६८॥ मीमांसा शास्त्र के सह ग्रन्थों को देखकर बारम्बार सबके पूर्व पक्षों को ही ग्रहण भत्सरता के साथ करेंगे ॥६९॥ और अपना सिद्धान्त कुछ भी नहीं बतायेंगे क्योंकि प्रमा के करने वाला ज्ञात ही उन्हें नहीं होता है । ये जार से समुत्पन्न हुए लोग हसों की निन्दा करेंगे ॥७०॥

जातमात्र नर कचिन्मुण्डयित्वा मठाधिपम् ।

यापायवस्त्रमात्रेण करिष्यन्ति नराधमाः ॥७१

माठापत्य च सेवा च धनसंग्रह एव च ।

दासीगमनमोर्ष्या च पञ्चषा तत्त्ववादिनः ॥७२

सारास्त्वमित्येव पर ते तत्त्ववादिनः ।

मायाविलसित विद्वामिति मायंकवादिनः ॥७३

शुद्धं तत्त्व न जानन्ति विश्वं तत्त्वं शब्दमिति च ।

शब्दमात्रेण ते जाताः कलौ हा तत्त्ववादिनः ॥७४

भविष्यति यदा विप्रा पापाना प्रभव कलो ।
 तथा तथा भविष्यन्ति ह्युदीच्या दम्भवैष्णवा ॥७१॥
 शिवसामान्यवक्तार शिवसामान्यदर्शिनम् ।
 दृष्ट्वा स्नायात्सचैनः सञ्जिवसामान्यसाङ्गम् ॥७२॥
 मधुदशितमार्गेण पापिष्ठा वंष्णवाः कलो ।
 भावप्यन्ति ततो म्लेच्छाः शूद्रा यूयवहिष्कृता ॥७३॥
 तस्मान्छण्ड्य विप्रेन्द्रा माहात्म्य पार्वतीपते ।
 भविन तस्य सदा कर्तुं मुद्यता भवत ध्रुवम् ॥७४॥

जातमात्र किसी मनुष्य को मुण्डित कराकर अधम मनुष्य पापाय
 वस्त्र मात्र पहिनाकर उसको मठ का स्वामी कर दिया करेंगे ॥७१॥
 मठ का अधिपति बनना—मेवा करना धन का संग्रह करना
 वासियो का गमन करना और ईर्ष्या की भावना रखना—ये ही वे पाँच
 प्रकार के तत्त्वों के वादी होते हैं ॥७२॥ यह ससार ही परम तत्त्व है—
 ऐसा ही ये तत्त्ववादी कहा करते हैं अर्थात् समझते हैं । यह माया का
 ही शिलास है ऐसा माया के ही वादी कहा करते हैं ॥७३॥ ये सब लोग
 छुट तत्त्व को तो बिल्कुल भी जानते नहीं हैं और इस विषय को ही
 तत्त्व कहा करते हैं । ये लोग शब्द मात्र से ही उत्पन्न हुए हैं । कवियुग
 में हा । यद्ये मेद की बात है कि ये लोग तत्त्ववादी बने हुए हैं ॥७४॥
 हे विप्रों ! जिस समय मैं कवियुग में पापों की उत्पत्ति होगी तो मैंने—
 मैंने ही उत्तर में दम्भ के द्वारा अपना आदम्बर बनाये हुए वंष्णव हो
 जायेंगे ॥७५॥ मन्वान् शिव को एक सामान्य देव खोजने वाले पुण्य को
 भगवान् शम्भु को माघारण देव देखने वाले मनुष्य को तथा गदाशिव
 को सामान्य कहने वाले के शस्त्री को देखकर भी शम्भु के महिमा
 स्तान करना चाहिए ॥७६॥ मधु के द्वारा प्रदर्शित मार्ग में कवियुग में
 वंष्णव महात् पापिष्ठ हो जायेंगे । इसके बाद म्लेच्छ-शूद्र और युयु मे
 बहिष्कृत होंगे ॥७७॥ इसलिये हे विप्रेन्द्रो ! पार्वती के पति का माहात्म्य

महेश्वर ही दास हैं और उन्हीं की अनुसम्पा ने युक्त है । १। यथार्थ रूप
स श्रुति स्मृति और पुराणा का यही सिद्धान्त है । इन्द्र और उर्वेन्द्र
आदि सब भगवान् महेश्वर के ही सिद्धर हैं । ६। वेदान्त के द्वारा जानने
योग्य पार्वती रमण ईशान को जो जानता है वही वैकुण्ठ समस्त देह
धारियों के दुःख का हनन करने वाला है । ७।

वैकुण्ठ मन्यते सम्यगोज्ञानं न पुण्डर ।

य इन्द्र मन्यते सर्वस्वामिनं स ऋषिर्मतः ॥८॥

स्वर्गं लोकं समाप्नोति मुन्याज्ञाप्रतिपालक ।

अद्वैतं शिवमीशानमज्ञात्वा नैव मुच्यते ॥९॥

घोरे बलियुगे प्राप्ते श्रीशङ्करपराङ्मुखा ।

भविष्यन्ति नरास्तथ्यमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥१०॥

रद्रक्रोधाग्निनिर्दग्धे बन्मये तस्य भार्यया ।

रत्या बिलपिते तस्य सखायोऽप्यतिद्व खित्ता ॥११॥

वमन्तादय आगत्य तामूचुः किं विधीयते ।

भर्तारोरेणितु शमोर्धरावा वीरवा(का)रण ॥१२॥

मन्येत घातकं गर्वेल्लोकेऽपूज्यो भवेदयम् ।

तथा निघ्न प्रवर्त्तय्यो येन वेनापि हेतुना ॥१३॥

जम्पापतीर्तिर्लक्ष्म्या न चलेद्यदि विचन ।

नेन मे दुःखमज्ञानं स्यात्किञ्चिन्मात्रं न नान्यथा ॥१४॥

यः पुण्डर ईशान को सम्यक् वैकुण्ठ मानता है । जो मयके
स्वामी इन्द्र को मानता है वह ऋषि माना गया है । ८। मुनि को प्राणा का
प्रतिपालन स्वगता को नीतिमान प्राप्त कर लेता है । अद्वैत ईशान
भगवान् निघ्न का ज्ञान न प्राप्त करने कभी भी मुक्त नहीं होता है । ९।
अत्यन्त घोर त्रिपुष के प्रलय ज्ञान पर नरा भगवान् पराङ्मुख क पगाङ्-
मुखा हैं । जयेंग—दुःख पश्य जयार्त्त यथाय कथन का द्वैपायन मुनि ने
कहा है । १०। इन्द्र की साथ स्त्री जगि न कामदेव के निर्दग्ध हो
जाते पर उगकी भार्या रति के द्वारा अत्यन्त विचार करने पर उगने
मता पाग भी जयन्त दुःखिता हैं मर थ १११। यमज आदि न प्रार

उस रति से कहा था क्या करना चाहिए । समस्त लोको के स्वामी शम्भू से घेर का चारण करने में हम सब लोग विचारे क्या है अर्थान् तुच्छ हैं और कुछ भी नहीं कर सकते हैं । १२। रति ने कहा—सोक में यह सबके द्वारा अपूज्य हो जाये और घातक माने जाये—जिस किसी भी हेतु में उस प्रकार का ही विध्न करना चाहिए । १३। यदि कुछ भी नहीं चलता है तो इनकी अपकीर्ति तो अवश्य ही कहनी चाहिए । इसमें ही मेरे हृदय के दुःख की शान्ति किंचिन्मात्र हो जायेगी अन्यथा नहीं होगी । १४।

चतुर्दशसु विद्यासु गीयते चन्द्रशेखर ।
 वेदान्ता य च गायन्ति मृनय शसितप्रता ॥१५॥
 ब्रह्माद्या देवता सर्वा इन्द्रोपेन्द्रादयस्तथा ।
 न्यूनता तस्य मो ब्रूते कर्मचाण्डाल उच्यते ॥१६॥
 तेन तुल्यो यदा विष्णुर्ब्रह्मा वा यदि गद्यते ।
 पश्चिर्वर्षसहस्राणि विष्ठाया आयते कुमि ॥१७॥
 तुल्यता यदि नो शक्या न्यूनतायास्तु का कथा ।
 मित्रस्याऽऽनृण्यमिच्छाम सकट प्रतिभाति न ॥१८॥
 विचार्येण तदा सर्वे महामोहपुर सरा ।
 तपस्तेपुर्महारीद्र सर्वलोकभयकरम् ॥१९॥
 कदाचिद्भगवान्ब्रह्मा प्रादुरासीदयानिधि ।
 मोहो दम्भस्तथा क्रोधो लोभस्ते सेवका कने ॥२०॥
 पञ्चमो हेतुवादश्च मधुना सर्व आश्रिता ।
 तानुवाच ततो ब्रह्मा वृणीध्व मनसेप्सितम् ॥
 यथा वाणी च भवता तथाऽह दातुमुद्यत ॥२१॥

वमन्त आदि ने कहा—चौदहों विद्याओं में भगवान् चन्द्र शेखर गाये जाते हैं । जिनको वेदान्त गान किया करते हैं और शसित व्रत वाले मुनिगण गाते हैं । ब्रह्मा आदि समस्त देवता तथा इन्द्र उपेन्द्र आदि सब में जो भी शङ्कर भगवान् का न्यूनता वीनता है वह कर्म

चाण्डाल ही कहा जाया करता है । १५। १६। उनके तुल्य वह जन को कभी विष्णु कहे जाते हैं वह साठ हजार वर्ष पर्यन्त विष्ठा में क्रीड़ा होकर निवास किया करता है । १७। जब उनकी तुल्यता ही नहीं बतायी जा सकती है तो फिर उनकी न्यूनता बताने की बात कुछ भी हो ही नहीं सकती है । हम मित्र का आनृष्य चाहते हैं । हमको बड़ा मद्धट प्रतीत हो रहा है । १८। सूतजी ने कहा—उम समय में सबने इस तरह से विचार करके महागोह में आगे बढ़े हुए सब महा रौद्र और सब लोका को महान् भय करने वाला महान् रौद्र तप किया था । १९। किसी समय में दया के निधि भगवान् ब्रह्माजी प्रादुर्भूत हुए थे । कलि ने मोह-दम्भ-क्रोध-लोभ यही सब सेवक थे । २०। पचिवा हेतु बाद था । ये सब मधु के द्वारा हो समाश्रित थे । उन सबसे ब्रह्माजी ने कहा था आप सब मन का अभीष्ट वरदान माँग लो । जैसी वाणी आपकी होगी वीसा ही मैं देने को उद्यत हूँ । २१।

अम्माक परम मित्र वदर्पो नाशित प्रभो ॥२२॥

महादेवेन तेनामी आनृष्य वतुं मुद्यता ।

भविष्यामो वय तात रद्रपूजाभिनिन्दका ॥२३॥

यथा न लभते पूजामम्मत्तश्चन्द्रोत्तर ।

अधुना न भवेदेव भविष्यत्यय तद्विरम् ॥२४॥

भविष्याम इति प्रोक्त भवतो नान्यथा वचित् ।

ये भवद्वशगा लोकस्तेभ्य पूजा न धूर्जटे ॥२५॥

प्रायितोऽय वरो दत्तो यवेष्ट वतुं मह्य ॥२६॥

इत्युपवत्वा तानयो ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ।

मये ते मन्त्रायाचक्रु रनिना मह दु गिता ॥२७॥

मोह आदि ने कहा—हे प्रभो ! हम माता का परम मित्र वदर्पो का महादेवजी ने बिनाग कर दिया है । उनसे हम सब आनृष्य करने के निवे उद्यत हैं । हे तात ! हम रद्र देवजी पूजा का विशेष निन्दा करने के निवे प्रभुता होना चाहेंगे । हे तात ! निन्दक होने का ही वरदान

दीजिए । २२। २३। हम ऐसा ही चाहते हैं कि चन्द्रशेखर हमसे पूजा प्राप्त नहीं करेंगे । ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार की बात इस समय में तो नहीं होगी—हाँ, यह लम्बे समय के पश्चात् हो जायगी । आप लोगों ने यही कहा था कि “हो जायेंगे” अन्यथा बड़ी भी नहीं है । जो आप जैसे मनुष्य हैं उनसे ही घूर्जंगि प्रभु की पूजा न होगी । २४। २५। यह तुम्हारा माँगा हुआ वरदान दे दिया है । अब आप यथेष्ट करण के योग्य हैं । २६। मृतजी ने कहा—इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने यह इतना ही उनसे कहा था और वे वही पर अन्नर्प्यन्ति हो गये थे । उन सबने कलि के साथ मन्त्रणा अत्यन्त दुःखित होते हुए भी थी । २७।

भविद्भूरधुना नोक्त भविष्याम इतीरितम् ।
 ततो मत्समये प्राप्ते सर्वमेव भविष्यति ॥२८॥
 अस्मत्त इति यत्प्रोक्त तेन चास्मद्वशे स्थिता ।
 निन्दाकरा भविष्यन्ति नारमान्यो मन्यते न स ॥२९॥
 लोभमोहादिसयुक्ता प्राप्ते च मयि दारुणो ।
 हेतुवाद पुरस्कृत्य शिवभक्ति पराङ्मुखा ॥३०॥
 तत कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवाजिते ।
 म्लेच्छैर्ब्राह्मणधेनूना विध्वंसनकरे खरे ॥३१॥
 अस्वाध्यायवपट्कारे जैनबौद्धादिमकुले ।
 ब्राह्मणो म्लच्छमार्गस्थे शूद्रे ब्राह्मणचातिनि ॥३२॥
 तदा वसन्त कर्णाटतिलङ्गादिकदूषक ।
 मधुनामा च विधवाक्षेत्रे विप्राद्भूविष्यति ॥३३॥
 गोलकं स तु पापिष्ठ पद्मपादुक्मेश्वरम् ।
 वेदान्तव्याख्यानरत शिष्यत्वेनार्चयिष्यति ॥३४॥
 शास्त्रं पूज्य ततोऽधीत्य स्थित आह्निकवर्जित ।
 विमग्निहोत्रं को यागो हेतुमेव वरिष्यति ॥३५॥
 गुरुराकर्ण्य तद्वाक्यं ब्राह्मणो न भवेदयम् ।
 इति निश्चित्य तं दुष्टं वदयति श्रुततद्वना ॥३६॥

मधुनामा तत प्राप्य शाप त दुष्टबुद्धिमान् ।
 वादरायणसूत्राणा व्याख्यान स करिष्यति ॥४०॥
 मध्वाचार्यस्तो भावादाक्षिणात्यो महान्कलौ ।
 तच्छिष्या प्रतिशिष्याश्च नाऽऽर्यावर्ते न चोत्कले ॥४१॥
 न गौडे न च गङ्गायास्तीरे गोदावरीतटे ।
 नाबुंदारण्यमध्ये च तत्प्रचारो भविष्यति ॥४२॥
 यथा यथा कनेधोरि प्रचारो हि भविष्यति ।
 तथा तथा महाराष्ट्रे हेतुका विरला क्वचिन् ॥४३॥

श्री गुरु ने कहा—तुझ दुष्ट ने कपट से शास्त्र मुझसे पढ़ा है अतः तुझे सिद्धान्त की मर्यादा स्फुरित न होगी तुझे सिद्धान्त में तो अन्धता रहेगी तथा पूर्व पक्ष में चतुर्ता होगी । ऐसा ही होगा मगर तेरे शिष्य पापी ही होंगे । मोह से वे सिद्धान्त से हीन होंगे और लोभ के कारण वे नृप के सेवक बनेंगे । क्रोध से क्रूर बोलने वाले—दम्भ से वेप में सुन्दर दिखाई देने वाले होंगे । ३७।३८। हेतुवाद से वे सब शास्त्रों की को नहीं जानते हैं । ये लोग घीघ्र या देर में घोर नरकों में ही गमन करेंगे । ३९। श्री सूतजी ने कहा—दुष्ट बुद्धि वाला मधुनाम पारी वहाँ स उम शाप की प्राप्त करके वह वादरायण सूत्रों की व्याख्यान करेगा । ४०। हमके पश्चान् भाव में मध्वाचार्य महान् दाक्षिणात्य कलिमुग में हुए थे और उनके शिष्य प्रतिशिष्य आर्यावर्त और उत्कल में नहीं हैं । ४१। गौड देश गङ्गा के तीरे पर-गोदावरी के तट पर-अबुंदारण्य के मध्य में उनका प्रचार नहीं होगा । ४२। जैसे कलिमुग का घोर प्रचार होगा वैसे २ ही महाराष्ट्र में नहीं पर विरले ही होंगे । ४३।

ततोऽतिदुष्टममये महाम्नेच्छैस्तिरमृते ।
 प्रच्यन्न भुवनित्तारी प्रचार हि त्रिषाम्यति ॥४४॥
 पशवामन्तु मन्यामी पठित्वा दूष्टबुद्धिमान् ।
 शिष्योऽशिष्यमनुत्तो हेतुवाद करिष्यति ॥४५॥

तत्त्व ममार इत्येव न बाध्य सत्य एव हि ।
 वदम्यतस्तत्त्ववादो मिथ्यावादी स उच्यते ॥४६॥
 मिथ्याभूत प्रपञ्चोऽय मया निर्मित इष्यते ।
 मायावादिन इत्येते वस्तुतस्तत्त्ववादिन ॥४७॥
 मच्छास्त्र जमिनीय तु कर्मकाण्डप्रवर्तकम् ।
 गौतमीय तु मच्छास्त्रमीश्वरप्रतिपादकम् ॥४८॥
 पु स्प्रवृत्त्येविवेकस्य बोधन बापिल मतम् ।
 तथा वैशेषिक शास्त्रमीश्वरप्रतिपादकम् ॥४९॥

इसके उपरान्त आगम्य दुष्ट समय में जो महाशयस्त्रो ने निरस्त
 या यही पर प्रच्छन्न पापी प्रचार का करना ॥४६॥ पाँच वर्ष का गन्धारी
 गङ्गा दुष्ट बुद्धि वाला शिष्यो और उपनिष्या ने समुत् हाकर हनुवाद
 का करना ॥४७॥ तबहार यही तत्त्व है—बहु बाध्य नहीं है प्रगुत गत्य ही
 है—अनर्थ वादी एका कहना है और मिथ्यावादी यह कहा जाया
 करता है ॥४८॥ यह प्रयत्न मिथ्याभूत है यह द्वारा ही निमित्त रिया
 गया है—तेमा दष्ट होता है । य वागवादी है और वागव मे तत्त्व-
 वादी है ॥४९॥ तत्त्व शास्त्र जमिनीय रखा ही है जो कर्मकाण्ड में प्रगुत
 करता जाता है । गौतम द्वारा रचित भी गत्त्व शास्त्र है जो ईश्वर का
 प्रतिपादक है ॥४८॥ पुनर और प्रवृत्ति का बोध करा देने वाला
 बपिल द्वारा रचित गत्त्व शास्त्र माना गया है उसी भाति वैशेषिक
 शास्त्र भी है जो ईश्वर का प्रतिपादक शास्त्र होता है ॥४९॥

मन्यन्ते श्रीमहेशान सर्वाण्येव परात्परम् ॥५३॥
 पापिष्ठा नैव मन्यन्ते वेदमार्गबहिष्कृता ।
 आचार्यं मधुनामान वदन्तो विधवामुतम् ॥५४॥
 प्रच्छन्नोऽमी महादुष्टश्चार्वाको मधुमज्ञक ।
 भविष्यति कलौ विप्रा शिवनिन्दाप्रवर्तक ॥५५॥
 मोहात्सिद्धान्तबाह्यत्वा क्रोधाच्छस्त्रनिषेधनम् ।
 लोभेन नृपते मेवादम्मादन्यप्रतारणम् । ५६॥
 गणिकामैयुन कामाद्धेतुवादेन वादिता ।
 भविष्यति कलौ विप्रा पोडेय तत्त्ववादिता ॥५७॥

पातञ्जल योग शास्त्र है जिसकी रचना पतञ्जलि मशहूर ने की है । यह शास्त्र शैवशास्त्र अभीष्ट हाता है । वेदान्त शास्त्र तो मूर्खान्त शास्त्र होता है अर्थात् सबसे निरोमणि शास्त्र है जो अद्वैत का प्रोच कराता है । ५०। सब अर्थात् चारा वेद (ऋग-यजु साम-थगर्ग) इन वेदा के छे अङ्क शास्त्र व्याकरण-छन्द-ज्योतिष-नित्य आदि हैं । पुराण और इति छे शास्त्र हैं । स्मृतिषा-उपस्मृतिषा-उपपुराण ये सब शुभ हैं । सर्व विद्याभो का अन्यान्य अधिकार से प्रामाण्य होता है । सबम ही पुनर्धो म तात्पर्य बनाते हैं । ५१। ५२। वही पर बुद्ध विराज हो पर भी तात्त्विक रूप में शासनो म परस्पर कोई विरोध नहीं है । य सभी शास्त्र महेश देव को पर स भी पर मानत हैं । जो पापिष्ठ है और वेद शास्त्र के मार्ग में बहिष्कृत हैं ने ही मानते है । मधुनाम घारी का जो एक विधवा का मुत है आचार्य बनवाने वाले ही घोर पापिष्ठ है । ५३। ५४। यह मधु सजा वाला महात् दुष्ट प्रच्छन्न चार्वाक मनातुपायो है । हे विप्रो ! यह कलियुग में गिय की निन्दा करो म प्रवृत्त हो बनना होगा । ५५। मोह से ही शासनो से बाधुन है और क्रोध से शास्त्र-निषेध है । लोभ से नृपति की सेवा है तथा दम्भ से दूगर्ग का प्रतारण करना होगा । ५६। इस वाचना म गणिका ने माय मैयुन करना है हेतु-वाद से वादिता होगी ॥५७॥

पञ्चवप यतिं वृत्त्वा क्रमेणाऽऽदाय बालकम् ।
 माठापत्य विधास्यन्ति द्रव्यलोभेन नास्तिका ॥५८॥
 पारम्पय मठस्यैव रक्षिष्यन्त्यभिरागिण ।
 भोगामत्ताश्च पापिष्ठा दासीगमनकारिण ॥५९॥
 नाम्ना स यासिनस्तीर्थे यानास्टा ससेवका ।
 नरबाहृतमास्टा शिखासूत्रबहिष्कृता ॥६०॥
 तत्पक्षपातिनो मूढा गृहस्था शिवनिन्दका ।
 मिथ्या वैष्णवमानेन ग्रस्ता निग्यगामिण ॥६१॥
 वेपमात्रा वेपमानेन तु नुमानेन बाडवा ।
 बादिन क्रोधमानेन विद्वासा हेतुवादत ॥६२॥
 पठिष्यन्ति च शास्त्राणि केचिद्गुणसिद्धय ।
 स्वकीय गोपयिष्यन्ति परकीयं पण्डिता ॥६३॥

पञ्च वप व बालक का धन मे लाकर य । बालकर मन वा जति
 पति द्रव्य के लाभ स नास्तिन । ता किया करण । अभिरा । न ग मठ
 पर अपनी परम्परा की रखा करण । य पापिष्ठ भाग म असत्त बार
 दासी व गमन करने वाले हाग ५८।५९। तीस नाम स ही मप्रामी हैं
 और धान पर समारुद्ध रहत हैं तथा सराफा को भी साथ म रखना
 करते हैं । नर बाहन पर आरुद्ध न ह नग गिना गून त बहिष्कृत
 होने हैं । ६०। उनके पक्षपात करने वान मूढ गृहस्थनी हाग जा भग
 वान् शिव की निंदा करने वाले हैं । य लोग मिथ्या ही वैष्णव होन व
 मान वान हैं जा वैष्णव के गम से ग्रस्त हैं और नरव के गामी हैं ।
 ६१। वेपमात्र स ही य वेष्णव हैं न नुमात्र स बाडवा हैं । क्रोध मात्र मे
 ही बानी हैं और हेतुवाद के करने म विद्वाद् हागे । ६२। य शास्त्रा के
 कुछ दोष निकालने के ही दष्टि म पडेंगे । अपन दावा को तो य
 निताने हैं और दूसरा के दोषा का उद्धार न करने व निय गून पण्डित
 है । ६३।

महामोहादय मर्वे रतिमाश्रयाभ्यां भाषितौम् ।
 प्राचुरा शृण्वया वारा तद्गुणविनिवारका ॥६४॥

रते मा कुरु सतापमह मोह कले सखा ।

क्रोध पत्यु परो बन्धुलोभमोही च देवरी ॥६५॥

प्राप्ते कलियुगे पूर्णे मोहलोभादयो वयम् ।

वसन्त मधुनामानमवतीण च दक्षिण ॥६६॥

समाश्रित्य ततो हेतुवाद कुटिलबुद्धयः ।

करिष्यामो यथा शक्य शिवपूजानिवारणम् ॥६७॥

इति ते रतिमाश्वारय यथागन्मिनो गता ।

इति सर्वा समाख्यात शिवनिन्दककारणम् ॥६८॥

श्री सूतजी ने कहा—महामोह आदि सबने रति को आश्वासन दिया था जो कर्त्तव्य की भामिनी थी और उनके दुःख का निवारक होते हुए बहुत ही नम्र वाणी से बोले—मोहादिव ने कहा—हे रते ! तुम सन्ताप मत करो । यह माहृ कलियुग का राजा है । क्रोध तेरे पति का परम बन्धु है तथा लोभ और मोह ये दोनों तुम्हारे देवर हैं । १६४।६५। कलियुग के पूण रूप ने प्राप्ति होने पर मोह लोभ आदि के हम सब दक्षिण में मधुनाम से अवतीर्ण वसन्त का समापन ग्रहण करके कुटिल बुद्धि वाले नेतुवाद को करेंगे जैसे भी शिवकी पूजा का निवारण हो सके किया जायगा । १६६।६७। सूतजी ने कहा—इस तरह से वे रति को आश्वासन देकर जैसे आये थे वैसे ही सब चले गये यह सब मैंने भगवान् शिवकी निन्दा होने का कारण तुम्हारे सामने वर्णित कर दिया है । १६८।

Copyright © 2004 by John Wiley & Sons, Inc.

॥ विष्णु चक्र प्राप्ति कथन ॥

सुदर्शनाख्य पञ्चक लब्धवास्तौत्वय हरि ।

महादेवान्द्रुगवत सूत तद्वक्तुमर्हमि ॥१॥

देवामुराणामभवत्सङ्ग्रामोऽद्भुतदर्शनः ।

देवा विनिजिता दैत्यैर्विप्लु सारणभागता ॥२॥

स्तुत्वा तं विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य पुरतः स्थिताः ।
 भयभीताश्च ते सर्वे क्षताङ्गाः क्लेशिता भृशम् ॥३॥
 तान्दृष्ट्वा प्राह भागवान्देवदेवो जनार्दनः ।
 किमर्थमागता देवा वक्तुमर्हन्त्य सांप्रतम् ॥४॥
 वचः श्रुत्वा हरेर्देवाः प्रणम्योचुः सुरोत्तमाः ।
 निजिता दानवैः सर्वे शरणं त्वामिहाऽऽगताः ॥५॥
 गतिस्त्वमेव देवानां प्राप्ता त्वं पुरुषोत्तम ।
 हन्तुमर्हसि ताञ्छीघ्रमवघ्नान्वारिजेक्षण ॥६॥
 जालधरवधार्थाय यच्चक शूलपाणिनः ।
 महादेववराल्लब्धं जाहि तेन महाबलान् ॥७॥

ऋषियों ने कहा—सुदर्शन नाम वाला जो परम प्रतिष्ठित चक्र है उसको भगवान् श्री हरि ने कैसे प्राप्त किया था । सुना है यह महादेव जी से ही मिला था सो कैसे प्राप्त हुआ है यह हे सूतजी ! आप कहने के लिये योग्य होते हैं । १। सूतजी ने कहा—एक बार देवों का और असुरों का अद्भुत दर्शन वाला महा सम्राट् हुआ था । देव लोग सब दैत्यों के द्वारा पराजित होकर श्री विष्णु के शरण में समागत हुए थे । २। विविध भाँति के स्तोत्रों के द्वारा उनकी स्तुति करके और प्रणाम करने के सब भगवान् के आगे स्थित हो गये थे । वे सभी भय से भीत थे—वृक्ष मङ्गों वाले थे और अत्यन्त ही दुःखिन थे । ३। देवदेव जनार्दन ने उनको देखाकर कहा था—हे देवों ! आप मेरे पास जिन विषयों आये हो । अब आप यह मुझसे कहो । ४। श्रीहरि के वचन का श्रवणकर सुरोत्तम देवों जनार्दन उनको प्रणाम किया और कहने लगे थे । दानवों के द्वारा हम सब निजित हो गये हैं अनन्तर यहाँ पर हम गए आपकी शरणागति में समागत हुए हैं । ५। हम देवों की तो आप ही गति है अर्थात् उद्धार करने वाले हैं हे पुरुषोत्तम ! आप ही हमारे प्राण करने वाले हैं । हे कमलोज्ज्वल ! आप उन अवघ्यों को भीघ्र ही हनन करने के लिये समर्थ होते हैं । ६। जानकर के यय के त्रिषूनागिन महादेवजी

से जो सुदर्शन चक्र आपने प्राप्त किया था उसी से उन महान् बल वालों का हनन करिए । ७।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा भगवान् वारिजेपणः ।

अहं देवास्तथा नूनं करिष्यामीति सुव्रताः ॥८॥

हिमवत्पर्वतं गत्वा पूजयामास शंकरम् ।

लिङ्गं तत्र प्रतिष्ठाप्य स्नाप्य गन्धोदकैः शुभैः ॥९॥

त्वरिताख्येन रुद्रेण संपूज्य च महेश्वरम् ।

ततो नाम्नां संहर्षेण तुष्टाव परमेश्वरम् ॥१०॥

प्रतिनाम च पद्मानि तैरिष्टा वृषभध्वजम् ।

भवाद्यैर्नामभिर्भक्त्या स्तोतुं समुपचक्रमे ॥११॥

भवः शिवो हरो रुद्रः पुष्कलो मुग्धलोचनः ।

अग्रगण्यः सदाचारः सर्वः शमुर्महेश्वरः ॥१२॥

ईश्वरः स्थाणुरीशानः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

धरीयान्वतदो बन्धः शंकरः परमेश्वरः ॥१३॥

गङ्गाधरः शूलधरः परार्थैरुपयोजकः ।

सर्वज्ञः सर्वदेवादिगिरिघन्वा जटाधरः ॥१४॥

भगवान् कमल नेत्र ने उन देवों के उस वचन का श्रवण करके उनसे कहा—हे सुव्रतों ! हे देवों ! मैं निश्चय ही बँगा ही करूँगा ॥८॥ फिर श्रीहरि ने हिमाचल पर जाकर भगवान् शंकर का अभ्यर्चन किया था । वहाँ पर त्रिय लिङ्ग की प्रतिष्ठा करके और परम शुभ भागीरथी गङ्गा के जल से स्नपन कराकर शुभ गन्धादकों से त्वरिताख्य रुद्र के द्वारा महेश्वर की भलीभाँति पूजा की थी । इसके अनन्तर सद्गुण नाम के द्वारा उन परमेश्वर की स्तुति की थी । प्रत्येक नाम पर पक्षों को अग्नि दिया था और वृषभध्वज का उन कमलों में यजन रिया था । भक्ति के साथ भवादि नामों से आवन करने का उपक्रम आरम्भ कर दिया था ॥९॥१०॥११॥ भगवान् त्रिगुण ने कहा—(यह सहस्रनाम है)—भव, शिव, हर, रुद्र, पुष्कल, मुग्धलोचन, अग्रगण्य, सदाचार,

सर्वं, संम्भु, महेश्वर, ईश्वर, स्याणु, ईशान, सहस्राक्ष, सहस्रपाद्, वरी-
यान्, वरद, वन्द्य, शङ्कर, परमेश्वर, गङ्गाधर, धूम्रवर, परार्थक प्रयो-
जक, सर्वज्ञ, सर्वदेवादि, गिरिधन्वा, जटाधर ॥१२॥१३॥१४॥ -

चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्वेषा विश्वामरेश्वरः ।

वेदान्तसारसदोहः कपाली नीललोहितः ॥१५

ध्यानाहारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता गणेश्वरः ।

अष्टमूर्तिविश्वमूर्तिस्त्रिवर्गः स्वर्गसाधनः ॥१६

ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः ।

वामदेवो महादेवः पटुः परिवृद्धो दृढः ॥१७

विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः श्रुतिमन्त्रगः ।

सर्वप्रणवसदादा वृषाङ्को वृषवाहनः ॥१८

ईश पितामी गद्वाङ्गी चित्रवेषश्चिरन्तनः ।

मनोमयो महायोगी स्थितो ब्रह्माण्डधूर्जटी ॥१९

कालकालः कृत्तिवासा सुभगः प्रणवात्मकः ।

नागचूड सुचक्षुष्यो दुर्वासा पुराणमनः ॥२०

दृग्यायुधः स्वन्दगुरु परमेष्ठी परायणः ।

अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधरः ॥२१

चन्द्रापीड, चन्द्रमौलि, वेषा, विश्वामरेश्वर, वेदान्तसार सदोहः, कपाली, नीललोहित, ध्यानाहार, अपरिच्छेद्य, गौरीभर्ता, गणेश्वर, अष्टमूर्ति, विश्वमूर्ति, त्रिवर्ग, स्वर्ग साधन, साधनगम्य, दृढप्रज्ञ, देवदेव, त्रिलोचन, वामदेव, महादेव, पटु, परिवृद्ध, दृढ, विश्वरूप, विरूपाक्ष, वागीश, श्रुतिमन्त्रग, सर्वप्रणव, सदादा, वृषाङ्क, वृषवाहन, ईश पितामी, गद्वाङ्गी, चित्रवेष, चिरन्तन, मनोमय, महायोगी, स्थित, ब्रह्माण्ड धूर्जटी, कालकाल, कृत्तिवासा, सुभग, प्रणवात्मक, नागचूड, सुचक्षुष्य, दुर्वासा पुराणमन, दृग्यायुध, स्वन्दगुरु, परमेष्ठी, परायण, अनादिमध्य-
निधन, गिरीश, गिरिजाधर ॥१५-२१॥

कुं देवक्यन्तु श्रीकण्ठो मोक्षकण्ठोत्तमो मृदुः ।

सामाग्यो देवको दण्डी नीलकण्ठ परधर्मी ॥२२

विशालाक्षो महाव्याघ सुरेश सूर्यतापन ।
 धर्मधामा क्षमाक्षेत्र भगवान्भगनेत्रहा ॥२३
 उग्र पशुपतिस्ताक्ष्यं प्रियभक्त प्रियवद ।
 दाता दयाकरो दक्ष कपर्दी कामशासन ॥२४
 श्मशाननिलयस्तिष्य श्मशानस्थो महेश्वर ।
 लोककर्ता भूतपतिर्महाकर्ता महोपधि ॥२५
 उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्य पुरातन ।
 नीति सुनीति शुद्धात्मा सोम सोमरत सुधी ॥२६
 सोमपोऽमृतप सौम्यो महानीतिर्महास्मृति ।
 अजातशत्रुरालोक्य सभाष्यो हव्यवाहन ॥२७
 लोककारो वेदकार सूत्रकार सनातन ।
 महर्षि कपिलाचार्यो विश्वदीप्तिर्विलोचन ॥२८

कुबेरवधु श्रीकण्ठ, लोकवन्द्य, उत्तम, मृदु, सामान्य, देवक, दण्डी,
 मीलकण्ठ, परश्वधी, विशालाक्ष, महाव्याघ, सुरेश सूर्यतापन, धर्मधामा,
 क्षमाक्षेत्र, भगवान् भगनेत्रहा उग्र, पशुपति, ताक्ष्य, प्रियभक्त, प्रियवद,
 दाता, दयाकर, दक्ष, कपर्दी कामशासन, श्मशाननिलय, तिष्ठन, श्मशान-
 स्थ महेश्वर, लोककर्ता, भूतपति, महाकर्ता, महोपधि, उत्तर गोपति,
 गोप्ता, ज्ञानगम्य, पुरातन, नीति, सुनीति, शुद्धात्मा सोम, सोमरति,
 सुधी, सोमय अमृतम सौम्य महानीति, महास्मृति, अजात शत्रु
 आलोक्य, भम्भाष्य, हव्यवाहन, लोककार, वेदकार, सूत्रकार, सनातन,
 महर्षि कपिलाचार्य, विश्वदीप्ति, विलोचन ॥२२-२८॥

पिनाकपाणिर्भूदेव स्वस्तिकृत्स्वस्तिक सुधा ।
 धात्रीधामा धामकर सर्वग सर्वगोचर ॥२९
 ब्रह्मसृग्विश्वसृक्सर्ग कणिकार प्रिय कवि ।
 शाखो विशाखो गोशाख शिवो मिथगनुत्तम ॥३०
 गङ्गाप्लवोदको भव्य पुष्कल स्थपति स्थित ।
 विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथि ॥३१

सगणो गणकायश्च सुकीर्तिर्द्विन्नसशय ।
 कामदेवः कामकालो भस्मोद्धूलितविग्रह ॥३२॥
 भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्त कृतागम ।
 समावृत्तो निवृत्तात्मा धर्मपुञ्ज सदाशिव ॥३३॥
 अकल्मषश्चतुर्बाहु सर्वावासो दुरासद ।
 दुर्लभो दुर्गमो दुर्गः सर्वायुधविशारद ॥३४॥
 अध्यात्मयोगनिलय सुतन्तुरतन्तुवर्धन ।
 शुभाङ्गो योगसारङ्गो जगदीशो जनार्दन ॥३५॥

पिनाकपाणि, भूदेव, स्वस्तिकृत, स्वस्तिव, सुधा, धात्रीधामा, धाम-
 कर, सर्वंग, सर्वगोचर, ब्रह्ममृक्, विश्वमृक्, सर्ग, वणिक्कार, प्रिय, कवि,
 शाला, विशाल, गोशाल, शिव, भिष्टक्, अतुत्तम, गङ्गाप्लवाङ्क, भव्य,
 पुष्कल, स्थपति, स्थित, विजिनात्मा, विधेयात्मा, भूतवाहनसारथि,
 सगण, गणकाय, मुकीर्ति, द्विन्नसशय, कामदेव, कामकाल, भस्मोद्धूलित
 विग्रह, भस्मप्रिय, भस्मशायी, कामी, कान्त, कृतागम, समावृत्त,
 निवृत्तात्मा, धर्मपुञ्ज, सदाशिव, अकल्मष, चतुर्बाहु, सर्वावास, दुरासद
 दुर्लभ, दुर्गम, दुर्ग, सर्वायुध विशारद, अध्यात्मयोग निलय, सुतन्तु, तन्तु-
 वर्धन, शुभाङ्ग योगसारङ्ग, जगदीश, जनार्दन ॥३६-३५॥

भस्मशुद्धिकरो मेरुस्तेजस्वी शुद्धाविग्रह ।
 हिरण्यरेतात्तरणिर्मरीचिर्माहिमालय ॥३६॥
 महाहृदो महागर्तं सिद्धवृन्दारवन्दित ।
 व्याघ्रचर्मधरो व्यासी महाभूतो महानिधि ॥३७॥
 अमृतात्माऽमृतवपु पञ्चवक्त्र प्रमञ्जन ।
 पञ्चविंशतितत्त्वस्थ पराजात परापर ॥३८॥
 सुलभ सुव्रत शूरो वाग्मायैकनिधिनिधि ।
 वर्णाश्रमगुरुर्वर्णो शत्रुजिच्छस्त्रुतापन ॥३९॥
 आश्रम क्षपण क्षामो ज्ञानवानचलश्चल ।
 प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेय सुपर्णो वायुवाहन ॥४०॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिगुणान्वर ।

अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दम ॥४१

अविवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशारद ।

वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतवाहन ॥४२

भस्म शुद्धिकर—मेरु—तेजस्वी—शुद्ध विग्रह—हिरण्य रेता—
 तरणि—मरोचि—महिमालय—महाह्रद—महागर्त—सिद्ध वृन्दार बन्दित—
 व्याघ्र धर्म घर—व्याली महाभूत—महानिधि—अमृतात्माशममृतवयु—
 पक्षयज्ञ—प्रभञ्जन—पक्ष विशति सत्वस्थ—पारिजात—परापर—
 सुलभ—सुघ्न—गूर—चारमायंक विधि—निधि—वर्णाश्रय गुरु—
 वर्षा—क्षत्रुजित—क्षत्रुतायन—आश्रम—क्षपण—क्षाम—ज्ञानवाद्—
 अचल—चल—प्रमाण भूत—दुर्जय—सुपर्ण—वायुवाहन—धनुर्वेद—
 धनुर्धर—गुणराशि—गुणराशि—गुणाकर—अनन्त दृष्टि—आनन्द—दण्ड—
 दमयिता—दम—अविवाद्य—महाकाय—विश्वकर्मा—विशारद—वीत-
 राग—विनीतात्मा—तपस्वी—भूतवाहन ॥३६—४२॥

उन्मत्तवेप प्रचक्रो जितकामो जितप्रिय ।

कल्याणप्रवृत्ति कल्प सर्वलोकप्रजापति ॥४३

तपस्वी तारको धीमान्प्रधानप्रमुरब्धय ।

लोकपालोऽन्ताहृतात्मा कल्पादि कमलेक्षण ॥४४

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो नियमो नियमाश्रय ।

राहु सूर्ये जनि केतुविरामो विद्रुमच्छवि ॥४५

भक्तिगम्य पर ब्रह्म मृगवाणापणोजघ ।

अद्रिद्रोणिक्कनस्थान पवनात्मा जगत्पति ॥४६

सर्ववर्माचलस्त्वष्टा मङ्गल्यो मङ्गलप्रद ।

महातपा दीर्घतपा स्थविष्णु स्थविरो ध्रुव ॥४७

अह सवत्सारो व्याल प्रमाण परम तप ॥५०२

सर्वत्सरकरो मन्त्र श्रव्य सर्वदर्शन ॥४८

अज सर्वेश्वर सिद्धो महारेता महाबल ।

योगी योगी महादेव. सिद्ध सर्वादिरच्युत ॥४८

उत्तम वेप—श्चन्द्रन—जितकाम—जितप्रिय—वल्पाण प्रवृत्ति—

फलप—स्वलोक प्रजापति—तपस्वी—तारक—धीमान—प्रधान प्रभु—
अध्यय—लोकमान—अन्तर्दितात्मा—वल्पादि—कमलेक्षण—वेदशास्त्रीयं
तत्त्वज्ञ—नियम—नियमाध्यय—राहु—सूर्य—घनि—केतु—विरण्य—
विद्रुम—छवि—भक्तिगम्य—परब्रह्म—भृगु वाणार्पण—अनघ—अग्नि
दोणि कुत स्यान्—पवनारमा—जगत्पति—सर्वं शर्माघल—स्वप्ता—
मङ्गल्य—मङ्गल प्रद—महानया—स्थविष्णु—स्यविट—ध्रुव—अह—
सम्बत्सर—व्याप्त—प्रमाण—परम—तय—सम्बत्सुरकार—अनज—प्रत्यय
—सर्वं दत्त—अज—सर्वेश्वर—सिद्ध—महारेता—महाबल—योगी—
योग—महादेव—सिद्ध—सर्वादि—अच्युत ॥४३—४६॥

वसुवंसुमना सत्य सर्वपापहरो हर ।

अमृत शाश्वत दान्तो बाणहस्तः प्रतापवान् ॥५०

कमण्डलुधरो घन्वी वेदाङ्गो वेदविन्मुनि ।

भ्राजिष्णुर्भोजन भोक्ता लाकनेता दुराधर ॥५१

अस्तीन्द्रियो महामाय सर्वात्रासश्चतुष्पथ ।

कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबल ॥५२

महाबुद्धिमहावीर्यो भूतचारी पुरंदर ।

निशाचर प्रेतचारी महाशक्तिमहाच्युति ॥५३

अनिर्देश्यवपु धीमान्सर्वाकपंकरो मत ।

बहुश्रुतो बहुमायो नियतात्माऽभयोद्भव ॥५४

ओजस्तेजोद्युतिधरो नर्तक सर्वनायक ।

नित्यघन्टाप्रियो नित्यप्रकाशात्मा प्रतापन ॥५५

ऋद्ध स्पष्टाक्षरो मन्त्रः मङ्ग्राम शारदल्पव ।

युगादिकृद्य गावर्तो गम्भीरो वृषवाहन ॥५६

वसु—वसुमना—सत्य—सर्वं पापहर—हर—अमृत—शाश्वत—

दान्त—बाण हस्त—प्रतापवान्—कमण्डलु—धर—घन्वी—वेदाङ्ग—

वेदविता—मूनि—भ्राजिपणु—भोजन—भोजना—लोचनेता—दुराघर
 —अतोन्द्रय—महामाय—सर्वावास—चतुष्यथ—वानयोगी महानाद
 —महोत्साह—महाबल—महाबुद्धि—महावीर्य—भूतचारी—पुरन्दर—
 निशाचर—प्रेतचारी—महाशक्ति—महाधुति—अनिर्देश्यवयु—श्रीभान्
 —सर्वाकर्षकर—बहुभ्रुत—बहुमाय—मत—नियतात्मा—अमयोद्भव
 —भोज तेज धुतिघर—नतंभ—मृद—स्पष्टाक्षर—मन्त्र—तपाम—
 शारहृत्स्व उगादि—कृत—युगावर्त—गम्भीर—वृहै ताहन ॥५०-५६॥

इष्टो विशिष्ट शिष्टेष्ट शरभ सरभो धनु ।
 अपा निधिरधिष्ठान विजयो जयकालवित् ॥५७
 प्रतिष्ठित प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरि ।
 विमोचन सुरगणो विद्येशो विबुधाश्रय ॥५८
 बालरूपो बलोमायी विकर्ता गहनो गुह ।
 करण कारण कर्ता सर्वबन्धप्रमोचन ॥५९
 व्यवसायो व्यवस्थान स्थानदो जगदादिज ।
 दुन्दुभो ललितो विश्वो भवात्माऽऽत्मनि सस्यत ॥६०
 राजराजप्रियो रामो राजचूडामणि प्रभु ।
 वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिविराट् ॥६१
 वीरचूडामणिहर्ता तीक्ष्णानन्दो नदीधर ।
 आत्माधारस्त्रिशूलाङ्कु शिपिविष्ट शिवाश्रय ॥६२
 बालखिल्यो महाचारस्तिग्माशुर्वारिधि खग ।
 अभिराम सुशरण्य सुब्रह्मण्य सुधापति ॥६३

इष्ट—विशिष्ट—शिष्टेष्ट—शरभ—सरभ—धनु—अपा निधि—
 अधिष्ठान—विजय—जय कालवित् प्रतिष्ठित—प्रमाणज्ञ—हिरण्य
 कवच—हरि—विमोचन—सुरगण—विद्येश—विबुधाश्रय—बालरूप—
 बलोमायी—विद्वर्ता—गहन—गुह—करण—कारण—कर्ता—सर्व
 बन्ध प्रमोचन—व्यवसाय—व्यवस्थान—स्थानद—जगदादिज—दुन्दुभ
 —ललित—विश्व—भवात्मा—आत्मा मे सस्यत—राजराज प्रिय—

राम—राज चूडामणि—प्रभु—वीरेश्वर—वीरभद्र—वीरासन विधि—
विराट्—वीर चूडामणि—हर्ता—तीव्रानन्द—नदीधर—आत्माधार—
शिशूलाङ्गु—शिपिविष्ट—शिवाय्य—वालखिल्य—महाभार—निर्माशु
—वाविधि—सग—अभिराम—मुशरय्य—सु ब्रह्मण्य—सुधापति ॥५७
—६३॥

मधुमान्कौशिको गोमान्विराम सर्वसाधन ।
ललाटाक्षो विश्वदेह सार ससारचक्रभृत् ॥६४
अमोघदण्डो मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी ।
परब्रह्मपदो हस शबरो व्याघ्रकोऽनल ॥६५
रुचिर्वररुचिर्वन्द्यो वाचस्पतिरहर्षति ।
रविविरोचन स्कन्द शास्त्रा वैवस्वतोऽर्जुन ॥६६
मुक्तिरुन्नतकीर्तिश्च शान्तराम पुरजय ।
कैलासपति कामारि सविता रविलोचन ॥६७
विद्वत्तमो वीतभयो विश्वकर्माऽनिवारित ।
नित्यो नियतकल्पाण पुण्यश्रवणकीर्तन ॥६८
दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्ननाशन ।
उत्तारको दुष्कृतिहा दुर्धर्पो दुःसहोऽभय ॥६९
अनादिर्भुंभुवो लक्ष्मी किरीटी त्रिदशाधिप ।
विश्वगोप्ता विश्वहर्ता सुवीरो रुचिराङ्गदी ॥७०

मधुमान्, कौशिक, गोमान्, विराम, सर्व साधन, ललाटाक्ष, विश्व-
देह, सार, समारचक्रभृत्, अमोघदण्ड, मध्यस्थ, हिरण्य, ब्रह्मवर्चसी,
परब्रह्मपद, हस, शबर, व्याघ्रक, अनल, रुचि, वन्द्य, वाचस्पति, अहर्षति,
रवि, विरोचन, स्कन्द, शास्त्रा, वैवस्वत अर्जुन, मुक्ति उन्नतकीर्ति,
शान्तराम, पुरजय, कैलासपति, कामादि, सविता, रविलोचन, विद्वत्तम,
वीतभय, विश्वकर्मा, अनिवारित, नित्य, नियतकल्पाण, पुण्यश्रवण
कीर्तन, दूरश्रवा, विश्वसर, ध्येय, दुःस्वप्न, नाशन, उत्तारक, दुष्कृतिन,

दुधपं, दु सह, अभय, अनादि, भू, भुवः, लक्ष्मी, विरीटी, त्रिदशाधिप,
विश्वगोप्ता, विश्वकर्त्ता, सुवीर, रुचिराङ्गदो ॥६४ ७०॥

जननो जनजन्मादि प्रीतिमाप्नोतिमानय ।

वसिष्ठ कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रम ॥७१॥

प्रणव सत्पथाचारो महाकायो महाधनु ।

जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारग ॥७२॥

तत्त्व तत्त्वविदेकात्मा विभूतिभूतिभूषण ।

ऋषिब्राह्मणविद्विष्णुर्जन्ममृत्युजरातिग ॥७३॥

यज्ञो यज्ञपतियंजवा यज्ञान्तोऽमोघविक्रम ।

महेन्द्रो दुर्भर सेनी यज्ञाङ्गो यज्ञवाहन ॥७४॥

पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिविश्वतो विमलोदय ।

आत्मयोनिरनाद्यन्त षट्त्रिंशो लोकभृत्कवि ॥७५॥

गायत्रीवल्लभ प्राशुविश्वादास सदाशिव ।

शिशुर्गिरिरत्न सन्नाट सुपेण सुरशत्रुघ्ना ॥७६॥

अमेयोऽरिष्टमथनो मुकुन्दो विगतज्वर ।

स्वयज्योतिरनुज्योतिरचल परमेश्वर ॥७७॥

जनन, जनजन्मादि-प्रीतिमान्, नीतिमान्, वसिष्ठ कश्यप, भानु,
भीम, भीम पराक्रम प्रणव, सत्पथाचार, महाकाय, महाधनु, जन्माधिप,
महादेव, सकलागमपारग, तत्त्व, तत्त्वविद्, एकात्मा, विभूति, भूतिभूषण,
ऋषि, ब्राह्मणविद्, विष्णु जन्म मृत्यु जरातिग, यज्ञ, यज्ञपति, यंजवा,
यज्ञान्त, अमोघ विक्रम, महेन्द्र, दुर्भर, सेनी, यज्ञाङ्ग यज्ञवाहन पञ्च
ब्रह्म समुत्पत्ति, विश्वतो, विमलोदय, आत्मयोनि, अनाद्यन्त, षट्त्रिंश,
लोकभृत्, कवि । गायत्री के वल्लभ, प्राशु विश्वादास, सदाशिव, शिशु,
गिरिरत्न, सन्नाट, सुपेण, सुर शत्रुघ्ना के हनन करने वाले अमेय,
अरिष्टमथन, मुकुन्द, विगतज्वर, स्वय ज्योति, अनुज्योति अचल,
परमेश्वर ॥७१ ७७॥

पिङ्गत कपिलश्मश्रु शास्त्रनेत्रस्त्रयीतनु ।

ज्ञानस्कन्धो महाज्ञानो वीरोत्पत्तिरप्लवी ॥७८॥

भगो विवस्वानादित्यो योगाचारो दिवस्पतिः ।

उदारकोतिरद्यागी सद्योगी सदसन्मयः ॥७६

नक्षत्रमालो नाकेशः स्वाधिष्ठानपडाश्रयः ।

पवित्रपादः पापारिर्मणिपूरो नभोगतिः ॥७७

हृत्पुण्डरीकमासीनः शुक्राक्षे क्षानो वृषाकापः ।

तुष्टो गृहपतिः कृष्णः समर्थोज्ज्वलासनः ॥७८

अधर्मशत्रुरक्षय्यः पुरुहूतः पुरुष्टुतः ।

वृहद्भुजः ब्रह्मगर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ॥७९

जगद्धितैपो सुगतः कुमारः कुशलागमः ।

हिरण्यगर्भो ज्योतिष्मानुपेन्द्रास्तमिरापहः ॥८०

अरोगस्तपनः प्रक्षो विश्वामित्रो द्विजेश्वरः ।

ब्रह्मज्योतिः सुबुद्धात्मा बृहज्ज्योतिरनुत्तमः ॥८१

पिङ्गल, कपिलश्मश्रु, शाल्मल, श्रयंतनु, ज्ञानस्कन्ध, महाज्ञानी, वीरोत्पति, उपप्लवी, भग, विवस्वान्, आदित्य, योगाचार, दिवस्पति, उदार कीर्ति, उद्योगी, सद्योगी, सदसन्मय, नक्षत्रमाला, नाकेश, स्वाधिष्ठानपडाश्रय, पवित्रपाद, पापों के हरि मणिपूर, नभोगति, हृत्पुण्डरीक में सनासीन, शुक्राक्ष, क्षान, वृषाकापि, तुष्ट, गृहपति, कृष्ण, समर्थ, अनर्थ शासन, अधर्म शत्रु, अक्षय्य, पुरुहूत, पुरुष्टुत, वृहद्भुज, ब्रह्मगर्भ, धर्मधेनु, धनागम, जगद्धितैपी, सुगत, कुमार, कुशलागम, हिरण्यगर्भ, ज्योतिष्मान्, उपेन्द्र, तिमिरापह, अरोग, तपनाध्यक्ष, विश्वामित्र, द्विजेश्वर, ब्रह्मज्योति, सुबुद्धात्मा, बृहज्ज्योति, अनुत्तम ॥७६-८१॥

मातामहो मातरिश्वा मनस्वी नागहारधृक् ।

पुलस्त्य पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ष्य पराशरः ॥८२

निरावरणविज्ञानो विरश्चो विष्टरथवाः ।

आत्ममूरनिरुद्धोऽग्निर्जानमूर्तिर्महायशः ॥८३

लोकचूडामणिर्वीरश्चन्द्रः सत्यपराक्रमः ।

व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलानिधिः ॥८४

अलकारिणुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोत्तम ।

आशु सप्तपतिर्वेगी प्लवन शिखिसारथि ॥८८

असंतुष्टोऽतिथि शुक्र प्रमाथी पापशासन ।

वसुश्रवा कव्यवाह प्रतप्तो विश्वभाजन ॥८९

जयो जरारिश्मनो लोहिताश्वस्तनूनपात् ।

पृषदश्वो नभोयोनि सुप्रतीकस्तमिस्रहा ॥९०

निदाघस्तपनो मेघ पक्ष परपुरञ्जय ।

सुखी नील सुनिष्पन्न सुरभि शिशिरात्मक ॥९१

मातामह, मामरिश्वा, मनस्वी, नागहार घृक, पुलस्त्य, पुनह, अगस्त्य, जातूकर्ष्य, पराशर, निरावरण विज्ञान, विरञ्च, विष्टरश्वा, आत्मभू, अनिरुद्ध, अग्नि, ज्ञानभूति, महायज्ञा, लोक चूडामणि, धीर, चन्द्र, सत्य परा पराक्रम, व्यालकल्प, महाकल्प, कल्पवृक्ष, कलानिधि, अलकारिणु अचल, रोचिष्णु, विक्रमोत्तम, आशु सप्तपति, वेगी, प्लवन, शिखिसारथि, असंतुष्ट, अतिथि, शुक्र, प्रमाथी, पाप शासन, वसुश्रवा, कव्यवाह, प्रतप्त, विश्वभोजन, जय, जरारि के शमन करने वाले, लोहिताश्व, तनूनपात्, पृषदश्व, नभोयोनि, सुप्रतीक, तमिस्रहा, निदाघ, तपन, मेघ, पक्ष, परपुरञ्जय, सुखी, नील, सुनिष्पन्न, सुरभि, शिशिरात्मक ॥८५-९१॥

वसन्तो माघवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहन ।

मनो बुद्धिरहंकार क्षेत्रज्ञ क्षेत्रपालक ॥९२

जमदाग्निर्जलनिधिविपाको विश्वकारक ।

अधरोऽनुत्तरो ज्ञयो ज्येष्ठो नि श्रयसालय ॥९३

शीलो नाम तरुर्दाहो दानवारिररिदम ।

चामुण्डी जनकश्चारुनि शल्यो लोकशल्यहृत् ॥९४

चतुर्वेदश्चनुर्माविश्चतुरश्रत्वरप्रिय ।

आम्नायोऽय समाम्नायस्तीर्थदेव शिवालय ॥९५

वज्ररूपो महादेवः सर्वरूपश्चराचरः ।

न्यायनिर्वाहको न्यायो न्यायगम्यो निरञ्जनः ॥६६

सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः ।

मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डा दान्तो गुणोत्तरः ॥६७

पिङ्गलाक्षोऽय हयंश्चो नीलग्रीवो निरामयः ।

सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक् ॥६८

वसन्त, माघव, ग्रीष्म, नभस्य, बीजवाहन, मन, बुद्धि, अहकार, क्षेत्रज्ञ, क्षेत्र के पालक, जमदग्नि, जलनिधि, विपाक, विश्वकारक, अघर, अनुत्ता, ज्ञेय, ज्येष्ठ, निःश्रेयसालय, शंस, नाम, सर, दाह, दानवो अरि, अरिन्दम, चामुण्डो, जनक, चारु, निःशूल्य, लोवशाल्यहृत्, चतुर्वेद, चतुर्भावि, चतुर, चत्वर प्रिय, आम्नाय, समाम्नाय, तीर्थदेव, शिवालय, वज्ररूप, महादेव, सर्वरूप, चराचर, न्याय निर्वाहर, न्याय, न्यायगम्य, निरञ्जन, सहस्रमूर्धा, देवेन्द्र, सर्वशस्त्र प्रभञ्जन, मुण्ड, विरूप, विकृत, दण्डी, दान्त, गुणोत्तर, पिङ्गलाक्ष, हयंश्च, नीलग्रीव, निरामय, सहस्र-बाहु, सर्वेश, शरण्य, सर्वलोक धृक् ॥६३-६८॥

पद्मासनः पर ज्योतिः परावरः पर फलम् ।

पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विलक्षणः ॥६९

यशभुग्वरदो देवो वरेशश्च महास्वनः ।

देवासुरगुरुर्देवः शंकरो लोकसम्भवः ॥१००

सर्ववेदमयोऽचिन्त्यो देवतासत्यसम्भवः ।

देवाधिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः ॥१०१

देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहेश्वरः ।

देवासुराणां वरदो देवासुरनमस्कृतः ॥१०२

देवासुरमहामात्रो देवासुरमहाश्रयः ।

सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवानामात्मसंभवः ॥१०३

ईडघोऽनीशः सुरव्याप्तो देवर्षिहो दिवाकरः ।

विद्यधायवरः श्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥१०४

शिवध्यानरतः श्रीमाञ्जिदासी श्रीपर्वतप्रियः ।

वज्रहस्तः प्रतिष्ठम्भी विश्वज्ञानी निशाकरः ॥१०१॥

पद्मासन, परज्योति, परावर, परं फल, पद्मगर्भ, विश्वगर्भ, त्रिलक्षण, यज्ञसुक्, वरद, देव, वरेश, महास्वन, देवागुर गुरु, देव, दाहूर, लोक सम्भव, सर्वं घेदमय, अचिन्त्य, देवता सत्य सम्भव, देवाविदेव, देवपि, देवागुर वर प्रद देवागुरेश्वर, दिव्य, देवागुर महेश्वर, देवी और असुरो को बरवान दाता, देव तथा अगुरो के द्वारा नगरकृत देवागुर महामात्र, देवागुर महेश्वर, सर्वं देवमय, अचिन्त्य, देवो का आत्म सम्भव, ईडय, अनील, सुर व्याप्त, देवसिंह, शिवाकर, विबुधारा प्रवर, श्रेष्ठ, सब देवो से उत्तम से भी उत्तम, शिव ध्यान में रत, श्रीमातृ, शिखी, श्री पर्वत को ध्यार करने वाले, वज्रहस्त, प्रतिष्ठम्भी, विश्व ज्ञानी निशाकर ॥६६-१०५॥

ब्रह्मचारी लोचारी धर्मचारी धनाधिप ।

नन्दी नन्दीश्वरो नमो नग्नव्रतघर शुचिः ॥१०६॥

लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षो युगावहः ।

स्ववशः स्वर्गतः स्वर्गः स्वरमयं स्वनं ॥१०७॥

बीजाध्यक्षो बीजकर्ता, धर्मकृद्धर्मवर्धन ।

दम्भोऽदम्भो महादम्भः सर्वभूतमहेश्वर ॥१०८॥

इमशाननिलयस्तिष्य सेतुरप्रतिमाकृतिः ।

लोकोत्तरः स्फुटालोकस्थमम्बको भक्तवत्सल ॥१०९॥

अन्धकारिर्मलद्वेषी विष्णुकधरपातन ।

वीतदोषोऽक्षयगुणोऽन्तकारिः पूषदन्तभित् ॥११०॥

धूर्जटिः खण्डपरशु, सकलो निष्कलोऽनघः ।

आकारः सकलाधारः पाण्डुरागो मृगो नटः ॥१११॥

पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमार सुलोचन ।

समागेयः प्रियः क्रूर, पुण्यकीर्तिरनामग ॥११२॥

ब्रह्मचारी, लोकचारी, धर्मचारी, धनाधिप, नन्दी नन्दीश्वर, नग्न, विष्णुकधरपातन, वीतदोष, अक्षयगुण, अन्तकारि, पूषदन्तभित्, धूर्जटि, खण्डपरशु, सकलो, निष्कलो, अनघ, आकार, सकलाधार, पाण्डुरागो, मृगो, नट, पूर्ण, पूरयिता, पुण्य, सुकुमार, सुलोचन, समागेय, प्रिय, क्रूर, पुण्यकीर्तिरनामग

नग्नव्रनधरे, शुचि, लिङ्गाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, युगावह, स्ववश,
स्वाति, स्वर्ग, स्वरमय, स्वन, बीजाध्यक्ष, बीजकर्त्ता, धर्मकृत्, धर्मवर्द्धन,
दम्भ, अदम्भ, महादम्भ, सर्वभूत महेश्वर, श्मशान निलय, तिष्य, सेतु,
अप्रितमा कृति, लोकोत्तर, स्फुटालोक, ज्यम्बक, भक्तवत्सल, अन्धरु दैत्य
के शरि, मल्लदेवी, विष्णु, कण्ठरपातन, भीतदोष, अक्षयगुण, अन्तकारि,
पूषदन्नवित्, धूर्जटि, खण्डररगु, सकन, किष्कल, अनध, आकार,
सक्तावार, पाण्डुराग, मृग, नट, पूर्ण पूरयिता, पुष्प, मुकुमार, सुलोचन,
साम वे द्वारा गाने योग्य, प्रिय, क्रूर, पुण्य कीर्ति, अनामय ॥१०६-
११२॥

मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः ।

जीवितान्तकरोऽनन्तो वसुरेता वसुप्रद ॥११३

सद्गतिः सत्कृतिः शान्त कालकण्ठ कलावरः ।

मानी मन्तुमहाकालः सद्भूतिः सत्परायणः ॥११४

चन्द्रसजीवनः शास्ता लाकरूढो महाधिपः ।

लोकवन्धुर्लोकनाथः कृन्ज कृन्भूषणः ॥११५

अनपायोऽक्षरः शान्त सर्वसखभृता वरः ।

तेजोमयो द्युतिधरो लोकप्रामोऽग्रणीरगुः ॥११६

सुविस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जयो दुरनिक्रमः ।

ज्योतिर्मयो निराकारी जगन्नाथो जलेश्वरः ॥११७

सुम्बी वीणा महाशोको विशोकः शोकनाशनः ।

त्रिलोकेशस्त्रिलोकात्मा मिद्धि शुद्धिरधोक्षजः ॥११८

अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो व्यक्ताव्यक्तो विशापतिः ।

वरशीलो वरगुणो गतो गव्ययनो भयः ॥११९

मनोजव, तीर्थकर, जटिल, जीवितेश्वर, जीवितान्तकर, अनन्त,
वसुरेता, वसुप्रद, सद्गति, सत्कृति शान्त, कालकण्ठ, कलावर, मानी,
मन्तु, महाकाल, सद्भूति, सत्परायण, चन्द्रसजीवन, शास्ता, लाकरूढ, महाधीन,
लोकवन्धु, लोकनाथ, कृन्ज, कृन्भूषण, अनपाय, अक्षर, शान्त, सर्वसखभृता, वर,
तेजोमय, द्युतिधर, लोकप्रामो, अग्रणीरगु, सुविस्मित, प्रसन्नात्मा, दुर्जय, दुरनिक्रम,
ज्योतिर्मय, निराकारी, जगन्नाथ, जलेश्वर, सुम्बी, वीणा, महाशोक, विशोक,
शोकनाशन, त्रिलोकेश, त्रिलोकात्मा, मिद्धि, शुद्धिरधोक्षज, अव्यक्तलक्षण,
व्यक्त, व्यक्ताव्यक्त, विशापति, वरशील, वरगुण, गतो, गव्ययन, भय

महाधिप, लोकवन्धु, लोकनाथ, कृतज्ञ, कृत्तभूषण, अनपाय, अदर शान्त,
 सवशास्त्र धारियो मे परमश्रेष्ठ, तेजोमय, श्रुतिधर अथवा धृतिधर,
 लोकमय, अग्रणी, अग्रणी, अणु, सुविस्मित, प्रसन्नात्मा, दुर्जय, दुरति क्रम,
 ज्योतिर्मय, निराकार जगन्नाथ, जनेश्वर, तुम्बी, वीणा, महाशोक,
 विनोक, लोकनाशन, त्रिलोकेज, त्रिलोकारत्मा, सिद्धि, शुद्धि, अधोधाज,
 अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, व्यक्ताव्यक्त, विज्ञापनि, वरशील, वरगुण, मत,
 गत्यपन, मय ॥११३-११६॥

ब्रह्मा विष्णु प्रजापालो हसो हसगतिमंत ।
 वेधा विधाता स्रष्टा च कर्ता हर्ता चतुर्मुख ॥१२०॥
 कैलासशिखरावासी सर्वावासी मदागति ।
 हिरण्यगर्भो गगन पुरुष पूर्वज पिता ॥ १२१
 भूतालयो भूतपतिर्भूतिदो भुवनेश्वर ।
 सयमो योगविद्धो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रिय ॥ १२२
 देवप्रियो देवनायो दैवज्ञो देवचिन्तक ।
 विपमाक्षो विशालाक्षो वृषदो वृषवर्धन ॥ १२३
 निर्ममो निरहकारो निर्मोहो निरुपप्लव ।
 दर्पहा दर्पणो दृप्त सर्वतुं परिवर्तक ॥ १२४
 सप्तजिह्व सहस्रार्चि स्निग्ध प्रकृतिदक्षिण ।
 भूतभव्यभवन्नाथ प्रभवो भ्रान्तिनाशन ॥ १२५
 अर्थोऽनर्थो महाकोश परकार्य कपण्डित ।
 निष्कण्टक कृतानन्दो मिर्व्याजो व्याजदर्शन ॥ १२६

ब्रह्मा-विष्णु-प्रजापाल-हस-हसगति मतवधा-विधाना-स्रष्टा
 कर्ता हर्ता-चतुर्मुख-कैलासशिखपूर्वज-पिता-भूतालय-भूतपति-भूतिद-
 भुवनेश्वर-सयम-योगवित्-भ्रद्ध-ब्रमुण्य-ब्राह्मणप्रिय-देवप्रिय-
 देवनाथ-दैवज्ञ-देवचिन्तक-विपमाक्ष-विशालक्ष-वृषद-वृषवर्धन-
 निर्मम-निरहकार-निर्मोह-निरुपप्लव-दर्पहा-दर्पण-दृप्त-
 सर्वतुं परिवर्तक-सप्तजिह्व-सहस्रार्चि-स्निग्ध-प्रकृतिदक्षिण-

भूतभव्य भवन्नाय—प्रभव—भ्रान्तिनाशन—अर्थ—अनर्थ—महाकोश
परकार्यकिपण्डित—निष्कण्टक—कृतानन—निर्व्यजि—व्याजदर्शन ।
॥१२०॥१२६॥

सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यः कीर्तिस्तम्भः कृतागमः ।
अकम्पितो गुणग्राही नैकत्मा लोककर्मकृत् ॥ १२७
श्रीवल्लभः शिवारम्भः शान्तभद्र समञ्जसः ।
भूशयो भूतिकृद्भूतिविभूतिभूतिवाहनः ॥ १२८
अकातो भूतकायस्य कालज्ञानो महापटुः ।
सत्यव्रतो महात्याग इच्छाशान्तिपरायणः ॥ १२९
परार्थवृत्तिवरदो विविक्तः श्रुतिसागरः ।
अनिर्विण्णो गुणग्राही निष्कलङ्कः कलङ्कहा ॥ १३०
स्वभावभद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नः शत्रुनाशनः ।
शिखण्डी कवचो धूली जटी मुण्डी च कुण्डली ॥ १३१
मेखली कञ्चुकी खड्गी माली ससारसारथिः ।
अमृत्युः सर्वजित्सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः ॥ १३२
असह्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान्कार्यकोविदः ।
वेद्यो वैद्यो वियन्दोऽस्य सप्तावरमुनीश्वरः ॥ १३३

सत्त्ववान्—सात्त्विक—सत्य—कीर्तिरतम्भ—कृतागम — अकम्पित—
गुणाग्राही—नैकात्मा — लोककर्मकृत्—श्रीवल्लभ— शिवारम्भ—शान्तभद्र—
समञ्जस—भूशय—भूति—विभूति—भूति वाहन—अकाय—भूतकायस्य—
कालज्ञान—महापटु—सत्यव्रत—महात्याग—इच्छाशान्ति परायण—
परार्थवृत्ति वरद—विविक्त—श्रुतिसागर— अनिर्विण्ण— गुणग्राही—
निष्कलङ्क—कलङ्कहा—स्वभावभद्र—मध्यस्थ—शत्रुघ्न—शत्रुनाशन—
शिखण्डी—कवची धूली—जटी—मुण्डी—कुण्डली—मेखली—कञ्चुकी
खड्गी—माली—ससार के सारार्थ—अमृत्यु—सर्वजित्—सिंह—तेजके-
राशि—महामणि—असह्येय—अप्रमेयात्मा — वीर्यवान्—कोविद —
वेद्य—वैद्य—वियन्दोऽस्य—सप्तावर मुनीश्वर । १२७-१३३ ।

अनुत्तमो दुराधर्षो मधुर प्रियदर्शन ।
 सुरेश शरण शर्म सर्वं शब्दवता गति ॥ १३४
 काल पक्ष करद्वारि कङ्कणीकृतवासुकि ।
 महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्को विशृङ्खल ॥ १३५ -
 द्युमणिस्तरणिर्घन्य सिद्धिद सिद्धिसाधन ।
 विवृत सवृत शिल्पी व्यूढोरस्को महाभुज ॥ १३६
 एकज्योतिर्निरातङ्को नरनारायणप्रिय ।
 निर्लोपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यग्रो व्यग्रनाशन ॥ १३७
 स्तव्य स्तवप्रिय स्तोता व्योममूर्तिरनाकुल ।
 निरवद्यपदोपायो विद्याराशिरकृत्रिम ॥ १३८
 प्रशान्तबुद्धिरक्षुद्र क्षुद्रहा नित्यमुन्दर ।
 द्येयोऽग्रघुर्यो धात्रीश साकल्य शर्वरीपति ॥ १३९
 परमार्थगुरुर्व्यापी शुचिराश्रितवत्सल ।
 रसो रसज्ञ सारज्ञ सर्वसत्त्वावलम्बन ॥ १४०

अनुत्तमो—दुराधर्ष—मधुर—प्रियदर्शन—सुरेश—शरण—शर्म—
 सर्व—शब्दवानो की गति—काल—पक्ष—करद्वारि—कङ्कणी कृत वासुकि—
 महेष्वास—महीभर्ता—निष्कलङ्क—विशृङ्खल—द्युमणि—तरणि—घन्य
 सिद्धिद—सिद्धिसाधन—विवृत—सवृत—शिल्पी—व्यूढोरस्क—महाभुज—
 एकज्योतिर्—निरातङ्क—नरनारायण प्रिय—निर्लो—निष्प्रपञ्चात्मा—
 निर्व्यग्र—व्यग्रनाशन—स्तव्य—स्तव प्रिय—स्तोता—व्योममूर्ति—अना-
 कुल—निरवद्यपदोपाय—विद्याराशि—अकृत्रिम—प्रशान्तबुद्धि—अक्षुद्र—
 क्षुद्रहा—नित्यमुन्दर—द्येय—अग्रघुर्य—धात्रीश—साकल्य—शर्वरीपति—
 परमार्थ गुरु—व्यापी—शुचि—आश्रितवत्सल—रस—रसज्ञ—सारज्ञ—
 सर्वसत्त्वा वलम्बन ॥१३४।१४०॥

एव नाम्ना सहस्रेण तुष्टाव गिरिजापतिम् ।

संपूज्य परया भक्त्या पुण्डरीकैर्द्विजोत्तमा ॥ १४१

जिज्ञासार्थं हरेर्भक्त्या कमलेषु शिव स्वयम् ।
तत्रैक गोपयामास कमल मुनिपु गवा ॥ १४२
हृते पुष्पे तदा विष्णुश्चिन्तयन्किमिदं त्विति ।
ज्ञात्वाऽऽत्मनोऽक्षिमुद्धृत्य पूजयामास शकरम् ॥ १४३
अथ ज्ञात्वा महादेवो हरेर्भक्तिं सुनिश्चलाम् ।
प्रादुर्भूतो महादेवो मण्डलातिगमदीधिति ॥ १४४
सूर्यकोटिप्रतीकाशस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखर ।
शूलटङ्कगदाचक्रकुन्तपाशधरो विभु ॥ १४५
वरकाभयपाणिश्च सर्वाभरणभूषित ।
तं दृष्ट्वा देवदेवेश भगवान्कमलेक्षण ॥ १४६
पुनर्ननाम चरणौ दण्डवच्चूलपाणिन ।
दृष्ट्वा शम्भु तदा देवा बुद्धुर्भयविह्वला ॥ १४७

इस प्रकार क उपर्युक्त भगवान् शिव के सहस्रनामों का पाठ करने से गिरिजापति की स्तुति की थी और पराभक्ति से भली भाँति पूजन करके हे द्विजोत्तमो ! पुण्डरीको से अभ्यर्चन किया था । श्रीहरि की भक्ति की जानने की इच्छा से कमलों में भगवान् शिव स्वयं ने उनमें एक कमल को गुप्त कर लिया था । हे मुनि श्रेष्ठो ! पुष्प के हत हो जाने पर उस समय में विष्णु भगवान् ने चिन्ता की थी कि यह क्या हुआ । अपनी आख को निकाल कर जोकि कमल के ही समान सुन्दर थी जानकर भगवान् शङ्कर की पूजा पूज कर दी थी । १४१-१४३ । इसके अनन्तर श्री महादेवजी ने श्री हरि की सुनिश्चल भक्ति को जानकर महादेवजी प्रादुर्भूत हो गये थे और लिम्ब दीधिति (सूर्य) के मण्डल से ही उनका प्रादुर्भाव हुआ था । करोड़ों सूर्यों के समान स्वरूप वाले थे तीन नेत्रों का धारण करने वाले तथा मस्तक में चन्द्र धारण किये हुए थे । शूल-रङ्ग-गदा-चक्र-कुन्त और पाश को धारण करने वाले विभु थे । १४४-१४५ । भगवान् शिव वरद और अमय दोनों हाथा में ग्रहण किये हुए थे तथा सब आभूषणों से विभूषित थे । भगवान्

कमलेशन ने उन देवों के भी देवेश्वर का दर्शन प्राप्त किया था और फिर उन्होंने शूल पाणि प्रभु के चरणों में दण्डवत् प्राणिपाल किया था । उस समय में भगवान् शम्भु का दर्शन करके देवगण भय से विह्वल होकर भाग दिये थे । १४६-१४७ ।

चचाल ब्रह्मभुवन चकम्पे च वसुधरा ।

अघञ्चोच्चं तत् प्रीते ददाह शतयोजनम् ॥१४८॥

शभोर्भगवत्स्तेजस्तद्दृष्ट्वा प्रहसञ्जिवः ।

अब्रवीच्छार्ङ्गिण विप्राः कृताञ्जलिपुट स्थितम् ॥१४९॥

देवकार्यमिदं ज्ञातमिदानीं मधुसूदन ।

दिव्य ददामि ते चक्रमद्भुत तत्सुदर्शनम् ॥१५०॥

हितार्थं सर्वदेवानां निर्मित यन्मया पुरा ।

गृहीत्वा तद्गुणैर्देव्याञ्जहि विष्णो ममाञ्जया ॥१५१॥

एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्याद्युतसमप्रभम् ।

लोकेषु पुण्डरीकाक्ष इति ख्यातिं गतो हरिः ॥१५२॥

पुनस्तमब्रवीच्छमुर्नारायणमनायम् ।

वतानन्यान्सुरश्रेष्ठ वरयस्व यथेप्सितान् ॥१५३॥

एव शभोर्निगदितं श्रुत्वा देवो जनार्दन ।

अब्रवीत्खण्डपरशु प्राञ्जलिं प्रणयाम्बितः ॥१५४॥

उस समय में यह ब्रह्म भुवन चलायमान हो गया था और वसु-धरा कम्पाय मान हो गयी थी । इसके अनन्तर शम्भु के प्रीत होने पर नीचे और ऊपर के दोनों भाग शत्रु योजन तक हाह से युक्त हो गये थे ॥१४८॥ हे विप्रो ! भगवान् शम्भु का तेज देखकर शिव हमते हुए हाथ जोड़ कर स्थित हुए शार्ङ्गी प्रभु से बोले ! हे मधुसूदन ! इस समय में जो देवों का कार्य विद्यमान है वह मैंने जान लिया है । मैं तुमको परम अद्भुत दिव्य सुदर्शन चक्र प्रदान कर रहा हूँ ॥१४९॥१५०॥ मैंने पहिले देवों के ही हिन के कार्य के लिये इसका निर्माण किया था । उसके गुणों से अब हे विष्णो ! मेरी आज्ञा आपको प्राप्त है आप देवों

का दमन करिये ॥१५१॥ इस प्रकार से कहकर सहस्रों सूर्यों के समान प्रभा में समान्वित उम चक्र को प्रदान कर दिया था । लोगों में मुण्डरी काक्ष—इस स्याति को तभी से श्री हरि प्राप्त हुए थे ॥१५२॥ फिर शम्भु अनामय नारायण से बोले—हे सुरों में श्रेष्ठ ! अन्य भी अभी प्सिन जो भी वरदान तुम्हें चाहिए उनको मुझसे प्राप्त करलो ॥१५३॥ देव जनार्दन ने इस तरह के भगवान शम्भु के कथन का श्रवण करके वे होद्यो को जोड़कर प्रणय से सयुक्त होकर खण्डपरशु प्रभु से बोले ॥१५५॥

भगवन्देवदेवेश परमात्मन्निशवाव्यय ।

निश्चला त्वयि मे भक्तिर्भवत्विति वरो मम ॥१५५॥

भक्तिर्मयि दृढा विष्णो भविष्यति तवानघ ।

अजेयस्त्रिषु लोकेषु मत्प्रसादाद्भूविष्यसि ॥१५६॥

एव दत्त्वा वर शम्भुविष्णवे प्रभविष्णवे ।

अन्तर्हितो द्विजश्रेष्ठा इति देवोज्ज्वलीदृविः ॥१५७॥

नाम्ना सहस्र यद्विष्य विष्णुना समुदीरितम् ।

य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापं प्रमुच्यते ॥१५८॥

अश्वमेधसहस्रस्य फल प्राप्नोति निश्चितम् ।

पठनं सर्वभावेन विद्या वा महती भवेत् ॥१५९॥

जायते महदंश्वर्यं शिवस्य दयितो भवेत् ।

दुस्तरे जलसघाते यज्जल स्थलता व्रजेत् ॥१६०॥

हारायन्ते महापर्षा सिंह क्रीडामृगायते ।

तस्मान्नाम्ना सहस्रेण स्तातव्यो भगवाञ्शिवः ॥१६१॥

प्रयच्छत्यस्त्रिलान्कामान्देहान्ते च परा गतिम् ॥१६२॥

श्री विष्णु भगवान् ने कहा—हे भगवन् ! देव देवेश ! हे परमात्मन् हे अव्यय ! मुझे यही वरदान चाहिए कि मेरी निश्चल भक्ति आपके चरणों में होवे ॥१५५॥ ईश्वर ने कहा—हे विष्णो ! आप तो अघो से रहित हैं मेरी दृढ भक्ति आपमें होगी और मेरे ही प्रसाद से आप तीनों

लोको मे अजेय हो जायेंगे ॥१५६॥ थी सूतजी ने कहा—इस प्रकार प्रभु विष्णु भगवान् विष्णु के लिए शम्भु भगवान् ने वरदान प्रदान करके हे द्विजो ! अन्तर्धान हो गये थे—यह रवि देव ने बतलाया था ॥१५७॥ भगवान् विष्णु ने जो शम्भु के सहस्र नामों का सन्तुदीरण किया था वह परम दिव्य था इस शिव सहस्र नाम को जो भी कोई पढ़ता है या इसकी श्रवण किया करता है वह समस्त पापों से विमुक्त हो जाता करता है ॥१५८॥ वह सहस्र नाम का वक्ता एक सस्र अवधमेघ यज्ञ के यजन का पुण्य फल निश्चित रूप से ही प्राप्त कर लिया करता है । सर्व भाव से इसके पठन करने वाले को महती विद्या प्राप्त हो जाती है ॥१५९॥ सहस्र नाम के पढ़ने वाले के पास महान् ऐश्वर्य हो जाता करता है तथा वह फिर भगवान् शिव का प्रिय बन जाता है । इसकी महिमा से जहाँ परम दुस्तर बल का सघात हो वह भी स्थलता को प्राप्त हो जाता करता है ॥१६०॥ महान् विषले सर्प भी हारो के समान आचरण करने वाले हो जाते हैं और सिंह जैसा भी भयानक हिंसक क्रीडा मृग के समान ही आचरण किया करता है । इसी लिये सहस्र नाम के द्वारा ही भगवान् शिव का स्तवन करना चाहिए । इससे परम प्रसन्न होकर भगवान् शिव सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान कर दिया करते हैं तथा देह के अन्त होने पर परागति दे दिया करते हैं ॥१६१॥ ॥१६२॥

॥ शिव पूजा विधि ॥

श्रुत शमोयथा चक्रं प्राप्तवान्पुरुषोत्तमः ।

इदानीं श्रांतुमिच्छामः शिवपूजाविधिं शुभम् ॥१॥

शिवपूजाविधिं वक्ष्ये संक्षेपेण द्विजोत्तमाः ।

वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण तु ॥२॥

पुरा मेरुगिरेः शृङ्गे सिद्धगन्धर्वसेविते ।

उक्तं सनत्कुमाराय नन्दिना कुलनन्दिना ॥३॥

तत्राऽग्नौ विधिना स्नात्वा ममाचम्य यथाविधि ।
 पूजास्थानमनुप्राप्य उपविश्याथ बुद्धिमान् ॥८॥
 प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेद्देव सदाशिवम् ।
 शरीरशोचणं कृत्वा दहनं प्लावनं ततः ॥९॥
 शैवी तनुं समास्थाय न्यासकर्म समाचरेत् ।
 योऽयं सूत्रात्मको मन्त्रः सर्ववेदात्मकः परः ॥१०॥
 तस्य वर्णश्च विधियन्त्यसेरप्रणवपूर्वकान् ।
 ब्रह्माणि ततो विन्यस्य ततश्चन्दनवारिणा ॥११॥
 पूजास्थानं सुसंप्रोक्ष्य द्रव्याणि च मृनीश्वर ।
 क्षालनं प्रोक्षणं चैव प्रणवेन विधीयते ॥१२॥
 स्थानमेतत्प्रोक्षणीपासं पाद्यपात्रं तथैव च ।
 तथा ह्याचमनीयं च ह्यवगुप्य यथाविधि ॥१३॥
 आच्छाद्य दर्भैर्मन्त्रिभास्तेनैवाभ्युक्ष्य वारिणा ।
 जलं तेषु विनिक्षिप्य द्रव्याणि च ततः क्षिपेत् ॥१४॥

श्री नन्दिकेश्वर ने कहा—हे ब्रह्माजी के पुत्र ! आज मैं भगवान् शिव की पूजा की विधि की बतलाता हूँ आप उसका श्रवण करिए । मैं इसीलिए यह आपको बतलाता हूँ कि हे मुने ! आप सर्वात्मक श्री महा देव जी के परम भक्त हैं ॥७॥ उसके लिये सर्व प्रथम विधि के सहित स्नान करे और फिर यथा विधि आचमन करके पूजा के स्थान पर प्राप्त होवे और बुद्धिमान् अर्चन को आसन पर समुप विष्ट हो जाना चाहिए ॥८॥ तीन बार प्राणायाम करके सदाशिव प्रभु का ध्यान करना चाहिए । शरीर का शोचण करके फिर इसका दहन और प्लावन करे ॥९॥ शैवी तनु में समास्थित होकर न्यास कर्म का समाचरण करना चाहिए । जो यह सूत्रात्मक मन्त्र है वह पर और सर्व वेदात्मक है ॥१०॥ उस मन्त्र के वर्णों का विधि के सहित प्रणव के साथ न्यास करना चाहिए । इसके पश्चात् ब्रह्मों का विन्यास करके फिर सुगन्धित चन्दन के द्वारा मिश्रित जल में पूजा के स्थान का भची भाति प्रोक्षण

करना चाहिए । हे मुनीश्वर ! जो पूजा के व्यहो उनका क्षातन और ओक्षण प्रणव के द्वारा ही करना चाहिए । फिर प्रोक्षणी पात्र और पाद्याग्न को स्थापना करनी चाहिए । उसी भाँति आचमनीयको यथा विधि अवगुण्डित करे । मतिमान को हमों में आन्ध्रान्न करना चाहिए और उसी जल से अवगुण्डन करे । और उनमे जल विक्षिप्त करके फिर द्रव्यो को क्षिप्त करे ॥११॥१२॥१३॥१४॥

उशीर चन्दन चैव पार्थो तु परिकल्पयेत् ।

चूर्णयित्वा सकङ्कोल कपूर जास्तिकाफलम् ॥ १५॥

क्षिपेदाचमनीये तु प्रणवेन यथाक्रमम् ।

सर्वत्र चन्दन दद्यादर्घ्यपात्रेषुना शृणु ॥ १६॥

ग्रीहीन्यवाश्च पुष्पाणि वृक्षाणाणि तथैव च ।

सिद्धार्थानक्षताश्चैव साज्यं च भक्षितं तथा ॥ १७॥

कुशपुष्पयवस्रोहिबहुमूलतमालकान् ।

प्रक्षिपेत्प्रोक्षणीपात्रे प्रणवेन सुधीस्ततः ॥ १८॥

सूत्रेण भवगायत्र्या गायत्र्या च द्विजोत्तम ।

प्रोक्षणीपात्रमादाय सप्रोक्ष्य द्वारपालकौ ॥ १९॥

पार्श्वतो मा चतुर्बाहु सूर्यायुतसमप्रभम् ।

वानरास्यं निनयनं पुष्पमालासुशोभितम् ॥ २०॥

सर्वाभरणशोभाढ्यं नन्दीशं सप्रपूजयेत् ।

दक्षिण्ये तु महाकालं घोररूपं भयावहम् ॥ २१॥

उशीर और चन्दन को पात्र में परिकल्पित करना चाहिए । कङ्को-
त्व के सहित कपूर और जाती फल का चूर्ण करना चाहिए ॥१५॥
और यथा क्रम आचमनीय में द्रव्य से क्षिप्त करे । अर्घ्यपात्र में सर्वत्र
चन्दन देने और अव बागे जो कुछ करना है उसका व्यवस्था करे ॥१६॥
फिर सुधी पुष्प को त्रीसि यव पुष्प कुशा के अग्रभाग सिद्धार्थ-अक्षत-
घृत के सहित भक्षित-वृक्ष-पुष्प यव ग्रीहि बहुमूल तमालक प्रणव के
द्वारा इन सबको प्रोक्षणीपात्र में प्रक्षिप्त करे । द्विजोत्तम की भूज के

द्वारा-शिव गायत्री के द्वारा और गायत्री मन्त्र के द्वारा प्रोक्षणीपात्रको ग्रहणाकर द्वार माला को सम्प्रोक्षण करना चाहिए । १७।१८।१९। पार्श्व भाग में नन्दीश्वर कहते हैं मुझ को सहस्रो सूर्यों के समान प्रभा वाले-चार बाहुओं से युक्त-वानर के समान मुख से युक्त तीन नेत्रों वाले पुष्पो की माला से मुशोभित सभी आभरणों की शोभा से आढ्य नन्दीश का भली भाँति अर्चन करना चाहिए । दक्षिण भाग में महाकाल-भयावह घोररूप हाडों से कराल मुख वाले-कालाग्नि के चय के सूर्य का पूजन करना चाहिए । २०।२१।

दष्टाकरालवदन कालाग्निचयसन्निभम् ।

पश्चादन्तर्गृह शभो प्रविश्य सुसमाहित ॥ २२

पञ्चपुष्पाञ्जलि दद्याद्ब्रह्मणि पञ्चभिर्भुजे ।

गन्धं पुष्पैर्महादेव भक्त्या सपूजयेद्बुध ॥ २३

स्कन्द विनायक चैव लिङ्गशुद्धिमथाऽऽरभेत् ।

सूक्तं मन्त्रैश्च विधिवन्नमोन्तैः प्रणवादिकैः ॥ २४

आसनं कपयेत्पश्चादंश्चर्यदलपङ्कजे ।

अणिमा पूर्वपत्र स्यात्सर्वजत्रमथेश्वरम् ॥ २५

कर्णिकाया न्यसेद्विप्रबह्वं मण्डलततः ।

सौरसौम्य च विन्यस्य घर्मादीन्वै विदिक्षु च ॥ २६

अधर्मादीस्ततो दिक्षु सोमस्यान्ते गुणत्रयम् ।

तत्त्वत्रयमथो विद्वास्ततः शभुः प्रपूजयेत् ॥ २७

रुनापयेदधिना देवगन्धयुक्तेन वारिणा ।

पञ्चामृतततो मन्त्रैः साधितविधिपूर्वकम् ॥ २८

इसके पश्चात्, सुसमाहित होकर भगवान्शम्भु के अन्तर्गृह में प्रवेश करके पञ्च-पुष्पाञ्जलि देदे । हे मुने! पञ्च ब्रह्मों के द्वारा देना चाहिए । बुध पुरुष को भक्ति के साथ गन्ध और पुष्पा से महादेवजी का पूजन करना चाहिए । २२।२३। स्कन्द और विनायक देव का भी पूजन करे । इसके अनन्तर लिङ्ग शुद्धि का आरम्भ करना चाहिए । सूक्ता से और

मन्त्रों के द्वारा विधिवत् पूजन करे। जिनमें “मन” यह तो अन्त में लगाने और अग्नि में प्रणाव लगा देना चाहिए। २४। पीछे ऐश्वर्य हल-पट्टज में आसन की कल्पना करनी चाहिए। अग्निमा पूर्व पत्र होना और इसके पश्चात् सर्वज्ञत्व ईश्वर होंगे। २५। हे विप्र ! इसके अनन्तर अग्निमा में वह्नि के मण्डल का ग्यास करना चाहिए। सौर और सौम्य का विन्यास करे तथा विविधाओं में धर्म आदि का ग्यास करना चाहिए। २६। इसके पश्चात् दिशाओं में अधर्म आदि का ग्यास करे और सोम के अग्न में तीनों गुणों को विन्यस्त करना चाहिए। इसके पश्चात् विद्वान् तीनों तत्वों का विन्यास करना चाहिए। फिर भगवान् शम्भु का पूजन करना चाहिए। २७। विधि से वेद का स्मरण करावे और स्नान का अन्त गन्ध से युक्त ही होना चाहिए। फिर पञ्चामृत का वा साधत मन्त्रों से ही करना चाहिए। और विधि विधान के साथ ही उसे करना चाहिए। २८।

स्नापयेत्प्रणवेनैव तथाऽऽदौ पयसा मुने ।
 आज्येन मधुना दध्ना तथा चक्षुरसेन च ॥ २९
 जलस्य शुद्धिं विधिवन्मन्त्रैः कुर्यादनेकशः ।
 सद्याद्य सितवस्त्रेजः स्नापयेदिन्दुशेखरम् ॥ ३०
 कुशापामार्गकपूरजातीचम्पकपुष्पकैः ।
 करवीरैः सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलैः ॥ ३१
 आपूर्य्य पुष्पैः सुशुभैश्चन्दनार्घ्यैश्च तज्जलम् ।
 सद्योजातादिकास्तथ विन्यसेद्ब्रह्मण सुत ॥ ३२
 सुवर्णकलशेनाथ तथा वै राजतेन च ।
 शङ्खेन मृन्मयेनाथ शोभितेन शुभेन च ॥ ३३
 सकूर्चैर्न सपुष्पेण स्नापयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
 पवमानेन रुद्रेण तथा वामीयकेन च ॥ ३४
 त्वरित्वाख्येन रद्रेण नीलरुद्रेण वा पुनः ।
 अथर्वशिरसा वार्जपि रद्रेण च तथैव च ॥ ३५

हे मुने ! प्रणव के ही द्वारा स्नान कराना चाहिए । उसमें आदि में जल से स्नान करावे । फिर आज्य से मधु से-दधि से तथा ईख के रस से स्नान करावे । २९। फिर विधि पूर्वक अनेक बार जल की पुद्धि भक्तों के द्वारा करावे । श्वेत वस्त्र से भली भाँति ध्यादम करके ही इन्दु शेखर भगवान् का स्नान कराना चाहिए । ३०। हे ब्रह्माजी के पुत्र ! कुता-अग्रा मार्ग-कपूर-जाती-चम्पा कर बीर और तित पुष्पों से तथा मालिका और कमलो त्पलो से पूरित करके सुन्दर पुष्पों से और चन्दनादि से उस जल को मुक्त करे । उसमें सद्योजातादिक का विन्यास करना चाहिए । ३१। ३२। सुवर्ण के बल्लभ से-चादी के से-शङ्ख से-मृत्तिका से निर्मित पात्र से किसी से भी जो शोभित हो और शुभ हो कूर्ब कोस हित और पुष्पों से युक्त से मन्त्रों के साथ स्नान कराना चाहिए । पवमान रुद्र से-तथा कामीयक से स्वरित नाम वाले रुद्र में अथवा नील रुद्र में अथवा अथर्व शिर में तथा रुद्र से स्नान करावे ॥ ३१। ३५॥

रथनरेण पुण्येन श्रीसूक्तेनाथवा मुने ।
 पौरुषेण च सूक्तेन ज्येष्ठसाम्ना च विष्णुना ॥ ३६
 पञ्चभिर्ग्रह्यभिर्वायु सूत्रेण प्रणवेन वा ।
 स्नापयेद्देवदेवेश सर्वयज्ञफलाप्तये ॥ ३७
 वस्त्र यज्ञोपवीते च तथा ह्याचमनीयकम् ।
 मुकुट च शुभ भद्र तथा वै भूषणानि च ॥ ३८
 मुखवास च नैवेद्य सर्वं वै प्रणवेन च ।
 तत स्कटिकसकाश देव निष्कलमक्षरम् ॥ ३९
 कारण सर्वलोकाना सर्वलोकमय परम् ।
 ब्रह्मणा विष्णुरद्रार्चयि देवैरगोचरम् ॥ ४०
 वेदविद्भिर्हि वेदान्तरगोचरमिति श्रुतम् ।
 आदिमध्यान्तरहित भेषज भारोगिणाम् ॥ ४१
 शिवलिङ्गमिति म्यात शिवलिङ्गे व्यवस्थितम् ।
 प्रणवेनैव भन्त्रेण पूजयोर्लिङ्गमूर्धनि ॥ ४२

शिव पूजा विधि कथन]

पुण्य स्थानों से हे मुने ! अथवा श्री सूक्त से और पुरुष सूक्त से और ज्येष्ठमाम से विष्णु से पाँच ब्रह्मों में—सूत्र से अथवा केवल प्रणव से देवेश्वर का स्मरण कराना चाहिए । जिससे सब यज्ञों के पुण्य फल की प्राप्ति होवे ॥३६॥३७॥ वस्त्र-यज्ञोपवीत-आचमनीय भद्र-शुभ मुकुट-तथा भूषण मुक्तायास ताम्बूलादि-नैवेद्य ये सभी प्रणव से समर्पित करे । इसके पश्चात् स्फटिक के सदृश निष्कल अक्षर देवशब्दों जो सब लोकों के कारण सर्व लोकमय परम हैं तथा ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र आदि के द्वारा देवों के भी अगोचर हैं । जो वेदों के ज्ञाताओं के द्वारा वेदान्तों से ही वे गोचर हैं—यह श्रुत है । जो आदि मध्य और अन्त से रहित हैं और जो भव के रोगियों के भेषज हैं वह शिव लिङ्ग इम नाम से विख्यात है और शिव लिङ्ग में व्यवस्थित हैं । लिङ्ग के मस्तक में प्रणव मन्त्र से ही पूजन करना चाहिए ॥३८-४०॥

स्तोत्रं स्तुत्वा महादेव प्रणिपत्य प्रदक्षिणम् ।
पुनरर्घ्यं च वै दत्त्वा पुष्पाणि च विकीर्य वै ॥४३॥
पादयोर्देवदेवस्य प्रणिपत्य विमर्जयेत् ।
एव सक्षिप्य कथित ब्रह्मसूक्तं शिवार्चनम् ॥४४॥
सर्ववेदेषु यद्गुह्यं यथा शोभोर्मया श्रुतम् ॥४५॥
सनत्कुमारो भगवाञ्श्रुतवान्पच्छिवार्चनम् ।
नन्दीश्वराद्भगवतस्तन्मया कथितं द्विज ॥४६॥
यः पठेत्प्रयतो भक्त्या शिवार्चनविधिक्रमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥४७॥

स्तोत्रों के द्वारा स्तवन करके और महादेव जी की प्रदक्षिणा एवं प्रणिपात करके फिर अर्घ्य देवे और पुष्पों का विविरण करे ॥४३॥ देवों के देव वे चरणों में प्रणिपात करके विसर्जित करे । हे ब्रह्मसूक्त ! इस प्रकार ही संक्षेप करके भगवान् शिव का अर्चन यह दिया है । यह सभी वेदों में भी परम गोपनीय है । जैसा मैंने भगवान् राम्भु से सुना ॥४३-४५॥ श्री गूढाजी ने कहा—हे द्विज ! भगवान् सनत्कुमार ने

जो शिवार्चन भगवान् नन्दीश्वर के मुख से सुना था वह मैंने वह दिया है ॥४६॥ जो प्रयत्न होकर भक्ति से इस शिव के अर्चन की विधि के क्रम को पढ़ता है वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥४७॥

॥ दुर्वा-गणपति व्रत कथन ॥

अन्यद्व्रत पापहर धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
 उमामहेश्वर नाम व्रत त्रैलोक्यत्रिभुतम् ॥१॥
 पौर्णमास्याममावास्या चतुर्दश्यष्टमी(?) तथा ।
 कार्यमेतासु तिथिषु नक्तमेतद्विज्ञोत्तमा ॥२॥
 ब्रह्मचारी हविष्याशौ सत्यनाथो सुसयमी ।
 धर्मान्ते प्रतिमा कार्या हेम्ना वा रजतेन च ॥३॥
 पञ्चामृतैस्तु सस्नाप्य पूजयेद्विधिवद्विजा ।
 वस्त्रं पुष्परत्नकृत्य भक्षयेन्नानाविधं शुभं ॥४॥
 ध्वजैर्वितानैश्चमरैर्यथा शोभा प्रकल्पयेत् ।
 आचार्यं पूजयेद्भुक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥५॥
 भक्त्या च दक्षिणा दद्याच्छिवभक्ताश्च भोजयेत् ।
 शैवमेकं तु सभोज्य शनभोज्यफलं लभेत् ॥६॥
 सत्यं सत्यं पुनः सत्यं देवस्त्रं वचनं यथा ।
 प्रतिमा पूजिता पश्चात्ताम्ररात्रिं सुनिमले ।
 निधाय सितवस्त्रेण सदाद्यं शिरसा नमेत् ।
 शङ्खचक्रादिनिर्घोषं शिवस्याऽऽयतनं महत् ।
 पुनर्विद्यां मुमस्याप्यं व्रतं शमोनिवेदयेत् ॥८॥

सूतजी ने कहा—अन्य वन पापों के हरण करने वाला होना है और धर्म-नाम प्रयत्न और मोक्ष का प्रदान करने वाला होना है । उमा महेश्वर नाम का व्रत त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है । १॥ है जोतमो ! पौर्णमासी अमावस्या चतुर्दशी अष्टमी इन तिथियों में रात्रि में यह व्रत

करना चाहिये ॥२॥ व्रत करने वाला ब्रह्मचारी हविष्य के खाने वाला-
सत्य बोलने वाला-सुसयमी होना चाहिए । वर्षान्त में सुवर्ण से अथवा
चाँदी से प्रतिमा बनानी चाहिए ॥३॥ हे द्विजो ! पञ्चामृत से स्नान
कराकर उसका विविधवर्णक पूजन करना चाहिए वस्त्रों और पुष्पों से
अलंकृत करके-शुभ भङ्ग और नाना प्रकार के शुभ भोग्यों से ध्वजा-
विताभों से और चमरों से सोमा की कल्पना करे । भक्ति भाव से
आचार्य की पूजा वस्त्र-अलंकार-भूषणों से करनी चाहिए ॥४॥५॥ भक्ति
से दक्षिणा देवे और जो शिव के भक्त पुरुष हों उनको भोजन कराना
चाहिए । एक शिव के भक्त के भोजन कराने से सौ विप्रों के जिमाने
के समान फल मिला करता है ॥६॥ यह सत्य है और पुनः सत्य है
तथा इसी तरह से सत्य है जैसे देवता के वचन परम सत्य हुआ करते
हैं । पूजित प्रतिमा को पीछे मुनिमंल ताम्र के पात्र में रखकर सफेद
वस्त्र से ढाँककर शिर से उनका नमन करे । शस्त्र तूर्य आदि वाद्यों से
भगवान् शिव का महत् आयतन बनवावे । पुनः उनको वेदी में सस्वा-
पित करके भगवान् शम्भो के लिये व्रत को निवेदित करना चाहिए ॥७-
८॥

शिव प्रदक्षिणीकृत्य पश्चाद्देव क्षमापयेत् ॥९॥

श्रद्धया यः करोतीदं व्रतं त्रिदशपूजितम् ।

सूर्यायुतप्रतीकाश विमान सार्वकामिकम् ॥१०॥

आरुह्य स्त्रीसहस्रैश्च गणैर्नानाविधैर्वृतः ।

याति माहेश्वरं स्थानं यस्तं गत्वा न शोचति ॥११॥

तत्र माहेश्वरान्भोगान्भुक्त्वा कल्पशतत्रयम् ।

तदन्ते वैष्णवान्भोगान्भुङ्क्ते विष्णोः समीपतः ॥१२॥

पश्चाद्भोगसमायुक्तो ब्रह्मलोके महीते ।

ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः प्राजापत्यान्समथ्यनुते ॥१३॥

तस्माल्लोकाच्च्युतः पश्चात्सर्वमोहनमस्कृतः ।

सोमनोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्शयेप्सितान् ॥१४॥

भावात् तिङ्ग्री ही परेकत्र करके पीछे उठने इन प्रकार से क्षमापन की याचना करती चाहिए ॥६॥ जो मनुष्य इस त्रिदशो (देवो) के द्वारा इस वन को क्रिया करता है वह अयुत (दश हजार) सूर्यों के समान सब कामनाओं को पूरा करने वाले विमान पर समारोहण करके सहस्रो स्त्रियों के सहित और अनेक प्रकार के गणों से परिवृत होकर मीषा माहेश्वर के स्थान को चला जाया करता है जहाँ पर जाकर फिर चित्ता नहीं किया करता है ॥१०॥११॥ यहाँ पर तीन सौ कत्तों पर्यंत माहेश्वर भोग का उपभोग करके उसके अंत में वैष्णव भोगों को भगवाद् विष्णु के समीप में न्वित रहना हुआ किया करता है ॥१२॥ पीछे भोगों से समायुक्त होता हुआ ब्रह्म लोके प्रतिष्ठा प्राप्त करता है । ब्रह्मलोक से परिभ्रष्ट होकर प्राणात्म्य भावों का आनन्द ग्रहण करता है ॥१३॥ उस लोक से भी च्युत होकर पीछे सब बीजों के द्वारा वदित हुआ चन्द्रलोक को प्राप्त कर यथाग्निभोगा वा भोग करता है ॥१४॥

सोमाह वैद्मगन्धर्वयक्ष लोकमनुत्तमम् ।

भुक्त्वा तन्न महाभागास्तदने मेरुबोधि ॥१५॥

तदन्ते लोकपालानां लाङ्गानांसाद्य मादने ।

तत कर्माविशेषेण पृथिव्यामेकराडभवेत् ॥१६॥

उमामहेश्वर नाम व्रत सर्वसुखदम् ।

शक्रेण पुरा गीत पावत्या पञ्चमुखस्य च ॥१७॥

अगस्त्य पञ्चमुखात्सिन्ध्या प्राप्तवान्मे गुरुस्त्वन ।

द्विपायनाम्मुनिवरात्प्राप्तवानहमुत्तमम् ॥१८॥

अन्यच्छूलव्रत नाम शण्ध्व मुनिपुत्रवा ।

अमावास्या निराहारो भवेदब्द समयमी ॥१९॥

शूल पिष्टमय कृत्वा वर्षात्रे विनिवेदयेत् ।

शिवाय राजत पद्म सुवर्णं स्नानार्णिशम् ॥२०॥

भक्त्या तु विन्यसेन्मृद्धिं सयमग्न्या पूजयत् ।

ग्रहहृत्पादिभिः पापैर्मुक्तो याति परा गतिम् ॥२१॥

इस रीति से सोम-गन्धर्व-देवेन्द्र और सर्वोत्तम यक्ष लोक में भोग भोगकर इसके अन्त में सुमेरु गिरि के मस्तक पर रहता है। उसके अन्त में लोक शुभ कर्मों के प्रवर्धित रहने से वह इस पृथिवी में एक रुद्र (सम्राट्) होता है ॥१५॥१६॥ यह उमा महेश्वर नाम वाला व्रत सर्व सुखों का प्रदान करने वाला है। पहिले भगवान् शंकर ने पार्वतीजी से फिर उन्हो ने पण्मुख को बनलाया था। अगस्त्य मुनि ने पण्मुख जी के मुख से इसको प्राप्त किया था। उनसे मेरे गुरुजी ने इसे प्राप्त किया था। उन महा मुनिवर द्वैपायन जी से मैंने इस उत्तम व्रत को प्राप्त किया था ॥१७॥१८॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मुझ से आप लोग एक धूल व्रत का श्रवण करिए। अमावस्या के दिन निराहार रह कर एक वर्ष तक सुसयमो रहना चाहिए ॥१९॥ धूल को विष्टमय करके वर्षादि में निवेदित करे। शिव के लिये राजत (बादी का) पद्म जिममें सुवर्ण की कणिका हो निवेदित करे और मस्तक पर भक्ति से विन्यास करना चाहिए। शेष सब कुछ व्रत पूर्व व्रत के ही समान होते हैं। इस व्रत के करने वाला ब्रह्म हत्या आदि महापापों से मुक्त हो जाता है और अन्त में वह परागति को प्राप्त किया करता है ॥२०॥२१॥

लोकान्पूर्वोदितान्प्राप्य तदन्ते पृथिवीपतिः ।

पूर्णमास्याममावास्यामब्दमेकं दृढव्रतः ॥२२॥

वर्षान्ते सर्वगन्धाढ्या प्रतिमां विनिवेदयेत् ।

पूर्ववत्फलमाप्नोति व्रतेनानेन वै द्विजाः ॥२३॥

अष्टम्या च चतुर्दश्यामुपवासी जितेन्द्रियः ।

सर्वभोगसर्मायुक्तं शिवलोके महीयते ॥२४॥

क्षमा सत्य दया दान शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

शिवपूजाग्निहवनमतोपास्तेयता तथा ॥२५॥

सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः ॥२६॥

अन्यद्व्रतं पापहरं क्षुण्णध्वं मुनिषु गवाः ।

पण्मुखस्य पुरा प्रोक्तं देवदेवेन शम्भवेन ॥२७॥

कैलासशिखरासीन देवदेव जगद्गुरुम् ।

प्रणम्य विधिवद्भुक्त्या पप्रच्छ गिरिजासुतः । २८

पूर्व में वर्णित लोकों को प्राप्त करके उसके अन्त में पृथिवी का पति होता है । पूर्णमासी-अमावस्या में एक वर्ष तक वृद्धव्रत वाला पुरुष वर्ष के अन्त में समस्त गन्धों से समन्वित एक प्रतिमा की रचना करावे और उसे विनिवेदित कराना चाहिये । हे ऋषि ! इस व्रत से पूर्व के ही समान पुण्य फल प्राप्त किया जाता है ॥२२॥२३॥ अष्टमी और चतुर्दशी में उपवास करने वाला जितेन्द्रिय पुरुष सब भोगों से समाप्त होकर शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२४॥ सभी व्रतों में यह धर्म सामान्य है जो दश प्रकार का कहा गया है ॥२५॥ क्षमा-सत्य-दया-दान-शौच-इन्द्रिय-निग्रह-शिवपूजा-अग्नि में हवन-सन्तोष-अस्तोदता ये ही वे दश प्रकार के धर्म के लक्षण माने गये हैं ॥२६॥ हे मुनि पुद्गल ! अन्य जो व्रत हैं वे सब पापों के हरण करने वाले ही हुआ करते हैं । इसे आप सुन लीजिए । देवों के देव शम्भु ने पहिले पण्डित को यह बतलाया था ॥२७॥ गिरिजा के सुत ने कैलास पर्वत की शिखर पर समासीन-जगत् के गुरु देवदेव से प्रणाम करके विधिपूर्वक भक्ति की भावना से यह पूछा था ॥२८॥

केन व्रतेन भगवन्सीमाग्यमतुल भवेत् ।

पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं मनुज सुखमेवते ॥२९॥

तन्मे वद महादेव व्रतानामुत्तम व्रतम् ।

येन चीर्णेन देवेश नरो राज्यं च विन्दति ॥३०॥

राज्ञीव जायते नारी अपि दासकुलोद्भवा ।

राजपुत्रो जयेच्छत्रून्गरुह पद्मगानिव ॥३१॥

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसं प्राप्य सर्वाधिको भवेत् ।

वर्णाश्रमविहीनोऽपि सोऽपि सिद्धिं च विन्दति ॥३२॥

दण्डु वत्स श्वद्वयमि व्रतानामुत्तम व्रतम् ।

अस्ति दूर्वागणपतेर्व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥३३॥

भगवत्या पुरा चीर्णं पार्वत्या पद्मया सह ।
सरस्वत्या महेन्द्रेण विष्णुना घनदेन च ॥३४
अन्यैश्च देवैर्मुनिभिर्गन्धर्वैः किनरैस्तथा ।
चीर्णमेतद्व्रत सर्वैः पुराकल्पे पठानन ॥३५

श्रीस्कन्दजी ने कहा—हे भगवन् ! कौनसा ऐसा व्रत है जिसके करने से अतुल सोभाग्य होता है । पुत्र-पौत्र-घन और ऐश्वर्य का मुख मनुष्य प्राप्त किया करता है ॥३६॥ हे महादेव ! वही मुझे आप सब व्रतों में उत्तम जो व्रत हो उसको बतलाने की कृपा कीजिये । हे देव-द्वर ! जिस व्रत के चीर्ण कर लेने पर मनुष्य राज्य की प्राप्ति का लाभ लिया करता है ॥३७॥ चाहे दास कुल में ही क्यों न जन्म ग्रहण किया हो नारा एक रानी के ही समान हो जाया करती है । राजपुत्र अपने शत्रुओं को गड़बड़ जैसे सर्पों को जीत लेता है वैसे ही जीत लेता है ॥३८॥ ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस को प्राप्त करके सबसे अधिक तेजस्वी हो जाया करता है । कोई वर्णों और आश्रमों से हीन भी हो तो भी सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है ॥३९॥ ईश्वर ने कहा—हे बाल ! मुनो, मैं व्रतों में उत्तम व्रत बतलाना हूँ । दूर्वागणपति या व्रत त्रिलोरी में प्रसिद्ध व्रत होता है ॥४०॥ पहिले इस व्रत को भगवती ने पार्वती और पद्मा के साथ चीर्ण किया था । इस व्रत को सरस्वती देवी ने भी किया था तथा महेन्द्र-विष्णु और घनद (कुबेर) ने भी किया था । इनके अतिरिक्त अन्य देवों ने—मुनियों ने—गन्धर्वों ने तथा किन्नरों ने इस व्रत को किया था । हे पठानन ! पहिले कल्प में ही सबने इस व्रत को चीर्ण किया था ॥४१॥४२॥

चतुर्थी या भवेच्छुक्का नमोमासस्य पुण्यदा ।
तस्या व्रतमिदं कुर्यात्कार्तिकया वा पठानन ॥४३
गजाननं चतुर्धाट्टमेकदन्तं विषादितम् ।
विधाय हेम्ना विघ्नेशं हेमगीठागनस्थितम् ॥४४

तथा हेममयी दूर्वा तदाघारे व्यवस्थिताम् ।
 सस्थाप्य विघ्नहर्तारि कलशे ताग्रभाजने ॥३८॥
 वेष्टित रक्तवस्त्रेण सर्वतोभद्रमण्डले ।
 पूजयेद्रक्तकुसुमैः पत्रिकाभिश्च पञ्चभिः ॥३९॥
 बिल्वपत्रमपामार्ग शमी दूर्वा हरिप्रिया (?) ।
 अन्यैः सुगन्धिकुसुमैः पत्रिकाभिः सुगन्धिभिः ॥४०॥
 फलैश्च मोदकैः पश्चादुपहार प्रकल्पयेत् ।
 यथावदुपचारैस्तु पूजयामि जगत्पते ॥४१॥

जो नमो मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी होती है वह परम पुण्य ही होती है उसमे इस व्रत को करना चाहिए अथवा कार्तिक की चतुर्थी में करना चाहिए । पढानेन । गजानन—चार भुजाओं से युक्त एक दाँत वाले त्रिपाटित प्रतिमा बनाकर सुवर्ण से निमित्त करे और विघ्नेश प्रभु को हेम के पीठासन पर स्थित करना चाहिए ॥३६॥३७॥ तथा हेममयी दूर्वा को उनके आधार पर व्यवस्थित करे । फिर विघ्न कर्ता को ताम्र के पात्र कलश में सस्थापित करे और रक्त वर्ण के वस्त्र से वेष्टित करके सर्व तो भद्र मण्डल में रक्त वर्ण के कुसुमों से और पाँच पत्रिकाओं से पूजन करना चाहिए ॥३८॥३९॥ बिल्व पत्र—अपामार्ग—शमी—दूर्वा—हरि प्रिया तथा अन्य सुगन्धित पुष्पों से और सुगन्ध वाली पत्रिकाओं से—फलों—मोदकों से पीछे उपहार की प्रकल्पना करनी चाहिए । हे जगत्पते । मैं यथावत् प्राप्त उपचारों से आपका पूजन कर रहा हूँ—यह प्रार्थना करनी चाहिए ॥४०॥४१॥

श्लुक्त्वा श्रद्धया नून पूजयेन्दिरिजासुतम् ।
 एह्ये हि देव हेरम्ब विघ्नराज गजानन ॥
 उपविश्याऽऽसन देव सर्वकामप्रदो भव ॥४२॥
 उमासुत नमस्तुभ्य विश्वव्यापिन्सनातन ।
 विघ्नोघ छिन्धि सकलमर्घ्यं पाद्य ददामि ते ॥४३॥

गणेश्वराय देवाय उमापुत्राय वेधने ।
 पूजामय प्रयच्छामि गृहाण भगवन्नम ॥४४
 विनायकाय दूराय वरदाय गजानन ।
 उमासुताय देवाय कुमारगुरवे नमः ॥४५
 सम्प्रीदराय वीराय सर्वविघ्नोघहारिणे ॥४६
 उमाङ्गमलसभूत दानवाना वधाय वै ।
 अनुग्रहाय लोकानां स देव पातु विश्वमुक् ॥४७
 परज्योतिः प्रकाशाय सर्वसिद्धिप्रदाय च ।
 तुभ्य दीप प्रदास्यामि महादेवात्मने नमः ॥४८
 गणानां त्वा गणपति हवामहे
 कथं कथीनामुपमश्रवन्ममम् ।
 ज्येष्ठराज ब्रह्मणा ब्रह्मणस्पत
 आ न. क्षण्वन्नूतिमि सीद सादनम् ॥४९

इतना निवेदन करने थक्या से निश्चय ही गिरिजा के सुत का पूजन करना चाहिए । हे देव ! हे रम्ब ! हे विघ्न राज ! हे गजानन ! आइए आइए । हे देव ! आसन पर उपविष्ट होकर समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले हो जाइए । यह आवाहन का भनत है । हे उमा सुत ! हे विश्व व्यापिन् हे मनानिन् ! आपसी सेवा में मेरा नमस्कार है । अन्य मेरे गुरु विघ्नों के साथ का छेदन कर दीजिए । मैं आपसी अर्घ्य और पाद्य अर्पित कर रहा हूँ । यह अर्घ्य और पाद्य का भनत है ॥४२॥४३॥४४॥ गणेश्वर देव-वेधा-उमा के पुत्र के लिए पूजा अर्पित कर रहा हूँ । हे भगवान ! आप हमको ग्रहण कीजिए । आपन लिए मेरा नमस्कार है । यह गन्ध का मात्र है ॥४५॥ विनायक-दूर-वरद-उमा सुत-देव-और कुमार गुरु के लिए हे गजानन ! मेरा नमस्कार है । सम्प्रीदर-वीर और सब विघ्नों के समुदाय के हरने वाले प्रभु के लिये मेरा प्रणाम है । यह पुष्प अर्पण करने का मन्त्र है ॥४५॥४६॥ उमा के अङ्ग के पत्र से समुत्पन्न दानवों के वध के लिये और सौहार्द के ऊपर अनुग्रह करने के

लिए है आप सभूत हुए हैं । हे विश्वमुक्त देव । वही आप मेरी रक्षा कीजिए ॥४७॥ यह घृष देने का मन्त्र है । परम ज्योति के प्रकाश के लिये और सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने के लिए समुत्तम आपको मैं यह दीप अर्पित करता हूँ जोकि आप श्री महादेव जी के आत्मा हैं ऐसे आपको मेरा नमस्कार है । यह दीप का मनज है ॥४८॥ गणों के गणपति आपको हम आवाहन करते हैं । आप ऋषियों में भी श्रेष्ठ ऋषि हैं आप यहा पधारए । हे ब्रह्मणस्वते । ब्रह्मों के आप ज्येष्ठ राज है । हमारी प्रायनाओं का श्रवण करते हुए आप हमारे इस स्थल पर विराजमान होइए यह उपहार काममन्त्र है ॥४९॥

गणेश्वर गणाध्यक्ष गौरीपुत्र गजानन ।

व्रत सपूर्णता यातु त्वत्प्रसादादिभानन ॥५०॥

एव सपूज्य विधनेश यथा विभवविस्तरं ।

सोपास्कर गणाध्यक्षमाचार्याय निवेदयेत् ॥५१॥

गृहाण भगवन्ब्रह्म-गणराज सदक्षिणम् ।

व्रत त्वद्वचनादद्य सपूर्णं यातु सुव्रत ॥५२॥

एव य पञ्च वर्षाणि कृत्वोद्यापनमाचरेत् ।

ईप्सितात्लाभते कामान्देहान्ते शाकर पदम् ॥५३॥

अथवा शुल्कपक्षस्य चतुर्ध्यां सयनेन्द्रिय ।

कुर्ताद्विपन्नय त्वेव सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥५४॥

उद्यापन बिना यस्तु करोति व्रतमुत्तमम् ।

तेन शुल्कतिलैः कार्यं प्रातः स्नान पठानन ॥५५॥

हेम्ना वा रजतेनापि कृत्वा गणपति बुध ।

पञ्चगव्यैश्च मुस्नाप्य दूर्वाभिः सप्रपूजयेत् ॥५६॥

मन्त्रैश्च दशभिर्भक्त्या दूर्वायुक्तैः शिखिघ्नज ।

इत्येव कथितं वत्स वर्वसिद्धिप्रदं शुभम् ॥

व्रतं दूर्वागणपते किमन्यच्छोतुमर्हसि ॥५७॥

हे गणेश्वर ! हे गणात्मज ! हे भौरी के पुत्र ! हे गजानन ! यह मेरा पूर्णता को आपके अनुग्रह से प्राप्त होवे । यह प्रार्थना कामना है । ॥१०॥ इस प्रकार से विघ्नेश का पूजन करके जो जंभा भी आपके पास बँधव हो उसी के अनुसार भजन करना चाहिए और फिर सब सामान के सहित गणाध्यक्ष प्रभु की प्रतिमा को अपने आचार्य के लिये निवेदिन करना चाहिए ॥११॥ हे भगवान् । हे बहान् ! इन गणराज प्रभु को आप दक्षिणा के सहित ग्रहण कीजिए । हे सुव्रत ! आज यह मेरा व्रत आप के वचनासीवदि से सम्पूर्णता को प्राप्त हो जावे । यह व्रत देने का मतज है । इसे धोत कर ही आचार्य को दान देना चाहिए ॥१२॥ इस प्रकार से जो कोई पाच वर्षों तक करके उद्यापन का आरम्भ करता है वह पुरुष इस व्रत के समाचरण से अपने अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त कर लेता है और अन्त में भगवान् शङ्कर के पद की प्राप्ति हुआ करता है ॥१३॥ अबका शुक्ल पक्ष की अनुषोमे गयत द्वादशी वाला होकर इस प्रकार से तीन वर्ष तक करे सो सर्व सिद्धि को पा जाया करता है ॥१४॥ जो कोई मनुष्य बिना ही उद्यापन के इस उत्तम व्रत को किया करता है उसको हे गजानन ! यह शुक्ल तिथी ही में करना चाहिए और प्रातः काल में स्नान करे । सुष पुरुष को सुवर्ण या चाँदी में गणपति की प्रतिमा की रचना करनी चाहिए । पञ्चगव्यां से भली भाँति सुस्मरण कराकर फिर दूर्वाओं से उनका पूजन करना चाहिए ॥१५॥१६॥ हे शिष्यज ! अग्नि से धनजो के और दूर्वाओं के द्वारा पूजन करे । हे वरम ! यह इस प्रकार से सब सिद्धियों का देने वाला परम गुप्त व्रत मैंने बताया है । यह दूर्वा गणपति का व्रत है । अब और क्या मुझे तुम व्यवस्था करना चाहते हो ? ॥१७॥

॥ शिवालय करणादि फल कथन ॥

मृदादिरत्नपर्यन्तैर्द्रव्यैः कृत्वा शिवालयम् ।

यत्फलं लभते मत्स्यस्तन्नो वक्तुमिहार्हसि ॥१॥

शृणुध्वमृषयः सर्वे प्रभावं परमेष्ठिनः ।

शिवालयस्य करणादनन्तमसमुच्यते ॥२॥

अपि लोष्टमयं वाऽपि यः करोति शिवालयम् ।

सर्वदरनेन विप्रेन्द्रा धर्मकामार्थमुक्तये ॥३॥

कैलासाख्यं च यः कुर्यात्प्रासाद परमेष्ठिनः ।

मेर्वाख्यं मन्दराख्यं वा तुहिनाद्रिमथापि वा ।

निपधाद्रि च नीलाद्रि महेन्द्राख्यं द्विजोत्तमाः

स तत्पर्वतसकाशैर्विमानैः सार्वकामिकं ॥५॥

गत्वा शिवपद दिव्यं शिववन्मोदते चिरम् ।

महाप्रलयपर्यन्तं भुक्त्वा भोगान्पथेप्सितान् ॥६॥

तदन्ते विषयास्त्यक्त्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्

पतित खण्डितं वाऽपि जीर्णं वा स्फुटितं तथा ॥७॥

ऋषियो ने कहा—मृत्तिका से आदि लेकर रत्नो पर्यन्त एक शिवा-
लय की रचना कराकर जो पुण्य फल अनुपम प्राप्त किया करता है उसको
आप हमको बतलाने के लिये समर्थ है ॥१॥ श्री सूत जी ने कहा—
हे समस्त ऋषि गणो ! अब आप परमेष्ठी प्रभु का प्रभाव सुनिये ! शिवा-
लय की रचना करने से अनन्त फल वतलाया जाता है ॥२॥ जो भी
कोई चाहे लोष्टमय ही एक शिवालय की रचना करता है हे विप्रेन्द्रो
वह सर्व प्रयत्नो से धर्म काम और अर्थ तथा मुक्ति के लिये ही हुआ
करता है ॥३॥ कैलास नाम वाला जो परमेष्ठी का प्रासाद कोई बनाता
अथवा मेरु नाम से युक्त—मन्दर नाम वाला या तुहिन गिरि नाम
वाला—निपधाद्रि—महेन्द्र-नीलाद्रि नाम से युक्त शिवालय हे द्विजोत्तमो!
कोई बनवाता है जो कि अत्युत्तम हो वह अनुपम पर्वत के सदृश सर्व

कामिक विमानों के द्वारा ही परम दिव्य शिव पद को जाकर भगवान शिव की ही तरह चिन्मय काल तक परम प्रसन्न रहा करता है । वह महा प्रलय तक वहा पर यथोप्सित भोगों का भोग किया करता है । इसके अन्त में सब विष्टियों की त्याग करके भगवान शिव हे सामुग्य को प्राप्त कर लिया करता है । चाहे वह पतित खण्डित—जीर्ण अथवा स्फुटित कैसा ही क्यों न होवे ॥४॥ ५॥६॥७॥

कारयेत्पूर्ववद्यस्तु सुघाद्यं सुमोहरं ।
 प्राकार मण्डप वाऽपि प्रासाद गोपल तथा ॥८॥
 कर्तुं रम्यविक पुष्प लभते नात्र सशय ।
 वृत्त्यर्थं वा प्रकुर्वीत नर कर्म शिवालये ॥९॥
 य प्रयाति न सदेह स्वर्गलोके सवान्धव ।
 यश्चाऽऽत्मभोगसिद्धयर्थमपि रुद्रालये सकृत् ॥१०॥
 कर्म कुर्याद्यदि सुख लब्ध्वा सोऽपि प्रमोदते ।
 यदाऽऽक्तो भवेन्मर्त्य प्रासाद कर्तुं मीश्वरे ॥११॥
 समार्जनादिभिर्वाऽपि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
 समार्जनं तु य कुर्यान्मार्जन्या मृदुमूढमया ॥१२॥
 चान्द्रायणमहस्रभ्य फल मासेन लभ्यते ।
 शिवस्य पुरतो वह्निं सम्याप्याम्यर्च्य शक्नुते ॥१३॥
 जुहुयादात्मनो देह य स याति शिव पदम् ।
 शिवजेने निराहारो भृत्वा प्राणान्परित्यजेत् ॥१४॥

जो पूर्ववत् उस शिवालय का उद्धार करके ध्यार करा देता है और सुपा आदि पुत्रका देता है और परम मुन्दर पदार्थों से विरचिन करा देता है , उमका प्राकार-मण्डप-प्रासाद और गोपुर बनवा देता है । उस बनाने वाले को अधिक पुष्प प्राप्त हुआ करता है—दमम पुष्प भी साग्य नहीं है । अथवा वृत्ति व लिय मनुष्य निवास्य में कर्म करे । जो एसा करता है वह वाण्यवा व महिन स्वर्गलोक में गमन किया करता है—इयम सन्देह नहीं है । जो आगम भोग की विधि व लिये

भी रुद्रालय में यदि एक बार कर्म करे तो वह सुख प्राप्त करके वह भी परम प्रसन्न होता है। जब मनुष्य असक्त हो कि ईश्वर के प्रसाद का निर्माण न कर सके तो शिवालय में समाज न आदिवी सेवा करने में भी समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है। जो मनुष्य मृदु सून्या माजंती से समाज न किया करता है वह एक मास में एक सहस्र चान्द्रायण यज्ञों का फल प्राप्त कर लिया करता है। भगवान् शिव के आगे वृद्धि की स्थापना करके शङ्कर का अभ्यर्चन करे और अपने देह की आहुतियाँ देता है वह भी शिवजी के पदों को प्राप्त किया करता है। भगवान् शिव के क्षेत्र में निराहार होकर जो प्राणों का परित्याग किया करता है वह परमेश्वर के प्रसाद से शिव के शायुष्य को प्राप्त कर लेता है। ॥८-१४॥

शिवसायुज्यमाप्नोति प्रसादात्परमेश्वर ।

अथाऽऽत्मरणौ छित्त्वा शिवक्षेत्रे वसेन्नर ॥१५॥

देहान्ते शिवसायुज्यं लभते नात्र संशयः ।

फलं यदश्वमेधस्य तदेव क्षेत्रदर्शनात् ॥१६॥

शताधिकं प्रवेशाच्च द्विगुणं लिङ्गदर्शनात् ।

तस्माच्छतगुणा पूजा जलस्नानं ततोऽधिकम् ॥१७॥

जलस्नानाच्च विप्रेन्द्रा क्षीरस्नानं शताधिकम् ।

दध्ना सहस्रमाख्यातं मधुना तच्छताधिकम् ॥१८॥

अनन्तं सर्पिषा स्नानं वाससा तच्छताधिकम् ।

तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं पञ्चत्वं शकरालये ॥१९॥

तस्माच्छतगुणं पुण्यं नियमैर्यस्त्यजेत्तनुम् ।

प्रदक्षिणात्रयं कुर्याच्च प्रसादं समन्ततः ॥२०॥

सव्यापसव्यव्याजेन मृदुं गत्वा शुचिर्नरः ।

पदे पदेऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात् ॥२१॥

इसके अनन्तर जो जपने चरणों का छेदन करके शिव के क्षेत्र में निवास किया करता है वह देह के अन्त हो जाने पर भगवान् शिव के

सायुज्यपद को प्राप्त किया करता है—इसमें नेश मात्र भी सशय नहीं है । शिव के क्षेत्र के दर्शन का भी ऐसा फल होता है कि जो अश्वमेध यज्ञ करने वाले को हुआ करता है वही उसे होता है । १५।१६। शिवालय में प्रवेश करने से सौ गुना अधिक और शिवलिङ्ग के दर्शन से उससे भी दशगुना फल प्राप्त होता है । उसमें भी शतगुना पूजा का फल होता है और जब से भगवान् शिव का स्नान कराने से उससे भी अधिक फल हुआ करता है । १७। हे शिष्यो ! जब के द्वारा स्नान कराने से दूध से स्नान कराने में सौ गुना अधिक हुआ करता है । वही से स्नान कराने पर सहस्र गुना फल कहा गया है और मधु से शत शतगुना अधिक फल होता है । घृत से स्नान कराने पर अनन्त गुना फल होता है । घास से कराने पर शताधिक फल हुआ करता है । उससे कोटि गुना पुण्य शङ्करालय में पञ्चत्व का होना है । १८।१९। उससे भी करोड़ गुना पुण्य नियमों के साथ रहकर जो शरीर का त्याग किया करता है उगता होता है । प्रातः के चारों ओर जो तीन प्रदक्षणा किया करता है । तस्य-अपमव्य ध्यात्वा से शुचि मनुष्य भूदुग्मन करने पर-एव पद में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त किया करता है । २०।२१।

दुर्लभा खलु या मुक्तिरनायासेन देहिनाम् ।

जायते कर्मणा येन शृणुष्व तद्द्विजोत्तमा ॥२२॥

गौचर्ममात्रं मलिप्य मण्डलं गोमयेन च ।

चतुरस्रं विधानेन चाद्भिरभ्युदयं मन्त्रविन् ॥२३॥

अनवृत्त्यं वितानार्थं दध्मर्वाज्जिपि मनोहरं ।

जुद्धुर्दूरयन्तर्द्वैश्च मघर्णैरश्वत्यपत्रकं ॥२४॥

गितं विरगितं पचं रक्तं नीलोत्पलं शतधा ।

विमानेन विचित्रेण मुक्तादाम्ना द्विजोत्तमा ॥२५॥

गितमृत्पात्रकं दध्मर्वाज्जिपि मन्त्रविन् ॥

पत्रपल्लवमानाभिर्वज्रयन्तोभिरगुर्वं ॥२६॥

पञ्चाशद्दीपमालामिधूं पैंश्च विविधैस्तथा ।

पञ्चाशद्वलसयुक्तं लिखित्वा पद्ममुत्तमम् ॥२७॥

तद्वद्वर्णैस्तथा चूर्णैश्चेतचूर्णैरथापि वा ।

एकहस्तप्रमाणेन कृत्वा पद्मं विधानतः ॥२८॥

देह धारियो की मुक्ति परम दुर्लभ हुआ करती है वह भी अनायास से ही हो जाया करती है । उस कर्म के विषय मे हे द्विजैत्तमो ! अब आप श्रवण कीजिए । २२। गोमय से गोचर्म के परिणाम वाला भण्डत का भली भाँति खेप न करे । चतुरस्त्र के विधान से मन्त्र वेत्ता को जल से अभ्युष्मण करना चाहिए । २३। त्रितान आदि से अथवा भगोहर छत्रों के द्वारा उनको विभूषित करना चाहिए । बुबुडों से—अर्धचन्द्रों से—स्वर्णों से और अश्वत्थ के पत्रों से—सित-विकसित पद्मों से—रक्त कमलों से—नीलोत्पलों से—विचित्र विमान से—मुक्ताओं की लड्डियों से हे द्विजोत्तमो ! सितमृत्तिका के पात्रों से—सुलक्षणपूर्ण कुम्भों से—फल और पल्लवों की मालाओं से—वैजयन्तियों के द्वारा—अशुको से—पचास दीपों की माला से—विविध प्रकार की धूपों से—एक पचास दलों से सयुत उत्तम पद्म का लेखन करके उस वर्णों के चूर्णों से अथापि श्वेत चूर्णों से एक हाथ के प्रमाण वाला विधान पूर्वक पद्म की रचना करे । २४-२८।

कर्णिकाया न्यसेद्देव देव्या देवेश्वर भवम् ।

पर्णानि विन्यसेद्वर्णं रुद्रं प्रागाद्यनुक्रमात् ॥२९॥

प्रणवादिदमोन्तानि सर्ववर्णानि सुव्रता ।

सपूज्यैव सुरश्रेष्ठ गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥३०॥

ब्राह्मणान्भोजयत्तत्र पञ्चाशद्विधिपूर्वकम् ।

अक्षमालोपवीतं च कुण्डले च कमण्डलुम् ॥३१॥

आसनं च तथा दण्डमुष्णीषं वस्त्रमेव च ।

दत्त्वा तेषां द्विजेन्द्राणां देवदेवाय शमवे ॥३२॥

महाचसुं विवेद्यं कृष्ण गोमिथुनं तथा ।

अन्ते च देवदेवाय दत्त्वा तद्वर्णमण्डलम् ॥३३॥

यागोपयोगिद्रव्याणि शिवाय विनिवेदयेत् ।

ओंकाराद्यं जपेद्धीमान्प्रतिवर्णमनुक्रमात् ॥३४॥

एवमालिख्य यो भक्त्या वर्णमण्डलमुत्तमम् ।

यत्फलं लभते मृत्यस्तद्वदामि समासतः ॥३५॥

उस पद्य की कर्णिका में देवी के साथ देवेश्वर भव का न्यास करना चाहिए । रुद्र वर्णों से प्राग् आदि के अनुक्रम से वर्णों का विन्यास करे । २६। हे सुव्रतो ! प्रणव आदि में और अन्त में "नमः" शब्द लगाकर सर्व वर्णों का प्रयोग करे । इस प्रकार सुरश्रेष्ठ का भलीभाँति पूजन करके गन्ध आदि का क्रम से अभ्यर्चन करना चाहिए । ३०। वही पर ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिए । कम से कम पचास विप्रों का भोजन करावे और विधि के साथ ही कराना चाहिए । उन विप्रों को अक्षमाता उदवीत-दोकुण्डल कमण्डलु-आसन-दण्ड-उष्णीष-चक्र उन द्विजों को देवदेव भगवान् शम्भू का उद्देश्य करके ही अर्पित करे । ३१। ३२। महाचरु का निवेदन करके कृष्ण वर्ण की दो गौओं का दान करे और अन्त में देवदेव के लिये उस वर्ण का मण्डल-भाव के उपयोगी द्रव्यों को भगवान् शिव के लिये विशेष रूप से निवेदित करना चाहिए । धीमान् को प्रत्येक वर्ण के आदि में ओंकार लगाकर अनुक्रम से जाप करना चाहिए । ३३। ३४। जो आदमी इस प्रकार से भक्ति के साथ उत्तम वर्ण मण्डल को लिखकर अभ्यर्चन करे जो फल मनुष्य प्राप्त किया करता है उसको सन्नेप से बतलाता हूँ । ३५।

साङ्गान्वेदान्यथान्यायमधीत्य विधिपूर्वकान् ।

इष्टा यज्ञैर्यथान्याय ज्योतिष्टोमादिभिः क्रमात् ॥३६॥

ततो विश्वजिता चेष्टा पुत्रानुत्पाद्य माहशान् ।

वानप्रस्थाश्रमं गत्वा सरदारः साग्निरेव ज ॥३७॥

चान्द्रायणादिकान्कृत्वा सर्वान्सन्यस्य वै द्विजा ।

ब्रह्मविद्यामधीत्यैव ज्ञानमापाद्य यत्नतः ॥३८॥

ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य योगवित्फलमाप्नुयात् ।

तत्फलं लभते सर्वं वर्णमण्डलदर्शनात् ॥३६॥

येन वेनापि वाऽऽलिख्य प्रलिप्याऽऽयतनाश्रमम् ।

उत्तरे दक्षिणे वाऽपि पृष्ठनो वा द्विजोत्तमा ॥४०॥

चतुष्कोणेऽपि वा शूर्णोरलकृत्य समन्ततः ।

विकीर्य गन्धकुसुमैर्धूपैर्दीपैश्चतुर्विधैः ॥४१॥

प्रार्थयेद्देवमीशानं शिवलोकं स गच्छति ॥४२॥

साङ्ख्यवेदो को यद्यान्याय विधिपूर्वक पढकर और न्यायानुसार यज्ञ के द्वारा भजन करके जो कि ज्योतिष्टोमादि है क्रम से उन्हे करे । ३६॥ इसके अनन्तर विश्व जिनके द्वारा यजन करके मुक्त जैसे पुत्रों का उत्पादन करे फिर वानप्रस्थ आश्रम में गमन करना चाहिए । वानप्रस्थ में हारा के साथ और साग्नि ही गमन करे । ३७॥ हे द्विजो ! फिर चान्द्रायण आदि यज्ञों को करे और सबका अन्त में भलीभाँति न्यास कर देना चाहिए अर्थात् सन्यास घोषा आश्रम ग्रहण करे । ब्रह्म विद्या का अध्ययन करके यत्नपूर्वक ज्ञान का आपादन करना चाहिए । ३८॥ ज्ञान के द्वारा ज्ञय (जानने के योग्य) को देखकर योग का वेत्ता फल को प्राप्त किया करता है । वह सम्पूर्ण फल वर्ण मण्डल के दर्शन से प्राप्त करता है । ३९॥ जिस किसी के द्वारा अलिखन करके बीर आपतन के आश्रम को लेपकर हे द्विजोत्तमो ! उत्तर अथवा दक्षिण में अथवा पृष्ठभाग में अथवा चतुष्कोण में शूर्णों से सर्भी और अलकृत करके-गन्ध और कुसुम का विकरण करके चारों प्रकार के धूप दीपों से ईशान देव की प्रार्थना करनी चाहिए । वह आदमी शिवलोक को चला जाया करता है । ४०॥ ४१॥ ४२॥

तत्र भुक्त्वा महान्भोगान्कल्पकोटिशतं नरः ।

स्वदेहइन्धैश्च शुभे पूरयन्निश्वमन्दिरम् ॥४३॥

क्रमागदगन्धर्वमासाद्य गन्धर्वैश्च संपूजितः ।

क्रमादागस्य लोकेऽस्मिन् राजा भवति वीर्यवान् ॥४४॥

आपः पूता भवन्त्येता वस्त्रपूताः समुद्भवाः ।
 अफेना मुनिशार्दूला नादेयाश्च विशेषताः ॥४५॥
 तस्माद्धै सर्वकार्याणि वैदिकानि द्विजोत्तमाः ।
 अद्भिः कार्याणि सततं पूनाभिः सर्वमिदमे ॥४६॥
 अहिंसा तु परो धर्मः सर्वेषां प्राणिनां यतः ।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतेन कारयेत् ॥४७॥
 यद्दानमभयं पुन्यं सर्वदानोत्तमम् ।
 तस्मात्सा परिहृतं व्याहिंसा सर्वत्र सर्वदा ॥४८॥
 मनसा कर्मणा वाचा सर्वभूतहिते रताः ।
 यदा दशितपन्थानः शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥४९॥

वहाँ पर शिवजी के लोक में महा भोगों का भोग करके मनुष्य एक
 सौ कगोड़ बत्तों तक सुप्त से रहा करता है । अपने देह की परम शुभ
 जगहों से शिव मन्दिर को पूरता हुआ वहाँ निवास करता है । क्रम से
 गन्धर्व लोक में पहुँचकर गन्धर्वों के द्वारा वन्दित होता है । फिर क्रम से
 वह इस लोक में वीर्यवान् राजा होता है । जल पवित्र होते हैं और ये
 वस्त्र से भी पूत होकर समुद्रब बाले होते हैं । हे मुनि शार्दूलो ! फेन
 सहित जल भी शुद्ध होते हैं तथा नदी के जल भी विशेष रूप से पूत
 माने गये हैं । इसीलिये हे द्विजोत्तमो ! वैदिक सभी कार्य निरन्तर पूत
 जलों के द्वारा ही करने चाहिए क्योंकि सर्व सिद्धि इसीसे होती है
 ॥४३॥४४॥४५॥४६॥ क्योंकि समस्त प्राणियों की अहिंसा परम धर्म
 होता है । इसलिए सभी प्रयत्नों से जलको वस्त्र से पूछ करके कार्य में
 लाना चाहिए । अमृत का दान जो होता है वह परम प्रायमय है और
 यह सभी दानों में अत्युत्तम है । अतएव सर्वत्र और सर्वदा हिंसा का
 परित्याग कर देना चाहिए । मन-वाणी-कर्म समस्त मुणियों में रति
 रखने वाले हैं जब ये दशित पन्था बाले होने हैं तो ये शिवलोक को
 भग्न किया करते हैं ॥४७-४८॥

त्रैलोक्यमखिलं हत्वा यत्पापं जायते नृणाम् ।
 शिवालये विहृत्यैकमपि तत्पापमाप्नुयात् ॥५०॥
 शिवार्थं सर्वदा कार्या पुण्ड्रहिंसा द्विजोत्तमैः ।
 यज्ञार्थं पशुहिंसा च राजा दुष्टस्य शासनम् ॥५१॥
 न हन्तव्याः स्त्रियः सर्वा अत्रेव कुलसभवाः ।
 ब्रह्महत्यासमं पापमात्रेभ्यो वधतो भवेत् ॥५२॥
 स्त्रियः सर्वा न हन्तव्या सर्वैश्चैव द्विजातिभिः ।
 सर्वधर्मेषु मित्रेन्द्राः पापकर्मरता अपि ॥५३॥
 तस्मादहिंसादियुतः शान्तः शिवजनप्रियः ।
 भक्तिं शिवे समास्थाय तस्मिञ्जन्मनि मुच्यते ॥५४॥
 विश्वेश्वरे विरूपाक्षे विश्ववरापिनि विश्वगे ।
 सर्वमन्यत्पण्डित्यज्य भक्तिं कार्या मनीषिभिः ॥५५॥
 पुत्रवित्तादिषु यथा सदनं चित्तं सदा नृणाम् ।
 तथा सकृद्विरूपाक्षे दूरं किं शाकर पदम् ॥५६॥

त्रैलोक्य के सम्पूर्ण के हनन करने से मनुष्यों को जो पाप समुत्पन्न होना है उतना ही पाप केवल एक शिवालये का विघ्न न करने से हुआ करता है । द्विजोत्तमों को शिवार्थं पुण्य हिंसा सदा करनी चाहिये । यज्ञ के लिये पशु हिंसा सदा करनी चाहित । यज्ञ के लिए पशुहिंसा और राजा के द्वारा दुष्ट का शासन करे ॥५०॥५१॥ समस्त स्त्रियों का दमन नहीं करना चाहिए । और भक्ति के कुल में सम्भूत हुए हो उनकी हिंसा न करे । आग्नेयों के वध से यह हत्या के समान पाप हुआ करता है ॥५२॥ सभी द्विजातियों के द्वारा सभी स्त्रियों का दमन नहीं करना चाहिए । सब धर्मों में पाप धर्म में रत भी चाहे भले ही होवे ॥५३॥ इस कारण से अहिंसा से युक्त—शान्त शिव जयों के प्रिय पुरुष भले भगवान् शिव में भक्ति की समास्थान करके उसी जन्म में मुक्त हो जाना चाहिए और भक्त पुरुष उगी जन्म में मुक्त हो जाया करता है ॥५४॥ विश्व के ईश्वर—विरूपाक्ष—विश्व व्यापी—विश्व में अन्य

सभी साधनों का त्याग करके मनीषियों को भक्ति करनी चाहिए ॥१५॥
जिस प्रकार से सदा ही मनुष्यों का चित्त पुत्र और वित्त आदि में समा-
सक्त रहा करता है उसी प्रकार से एक बार भगवान् विराट् में चित्त
को समासक्त कर देवे तो भगवान् शंकर का पद कुछ भी दूर नहीं है
॥१६॥

भजन्ते ये यथा शम्भु फल तेना तथाविधम् ।
प्रयच्छति महादेवो भक्तिर्नैयास्ति निष्फला ॥१७॥
उच्छिष्ट पूजयेदीश मोहान्धो यद्द्विजाधम ।
पिशाचलोके विपुलान्भोगान्मुड्वने स मानव ॥१८॥
सक्रुद्धो राक्षसस्थानमगच्छी याक्षमाप्नुयात् ।
गान्धर्वो हि गान्धर्वं नृत्यशीलस्थं च ॥१९॥
रुपातिशीलस्तत्तत्तन्मन्त्रमन्त्रमन्त्रमन्त्रमाप्नुयात् ।
गायत्र्या पूजयेदीशमब्दमेक निरन्तरम् ॥२०॥
प्राजापत्यमथाऽऽसाद्य सृष्टिकर्ता स्वयं भवेत् ।
ग्राह्यं च प्रणवेनैव तेनैवाऽऽप्नोति वंष्णवम् ॥२१॥
श्रद्धया सकृन्नेवापि समस्त्यर्च्यं महेश्वरम् ।
ह्रस्वलोकमनुप्राप्य रुद्रं सार्धं प्रमोदते ॥२२॥
य इमं पठतेऽद्यायं श्रद्धया शिवसन्निधौ ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते । ६३

जो भी जिस प्रकार से भगवान् शम्भु का भजन किया करते हैं
उनको उसी प्रकार का फल भगवान् शम्भु प्रदान किया करते हैं ।
भगवान् शिव में की हुई भक्ति किसी भी निष्फल नहीं ठूँकी जाती है
॥१७॥ जो अधम द्विज अच्छिष्ट होकर मोह से अन्धा पुष्प शिव का
पूजन किया करता है वह मानव पिशाचों के लोक में विमुक्त भोगों का
भोग किया करता है ॥१८॥ जो सक्रुद्ध होकर अर्चन करता है वह
राक्षसों के स्थान को पाता है और अगच्छी यक्षों के स्थान को प्राप्त किया
करता है । गान्धर्वो पुष्प एवं नृत्यशील पुष्पभगवत्तत्त्वों के स्थान को पाया

करता है ॥५६॥ रयातिशील पुरुष इन्द्र का स्थान प्राप्त किया करता है और जलवा भक्षण करके जो शिव का पूजन किया करता है वह चन्द्रमा का स्थान पाया करता है । गायत्री से निरन्तर एक ही शब्द वर्ष तक ईश की पूजन करना चाहिए ॥६०॥ वह पुरुष प्राजायत्यस्या न प्राप्त कर स्वयं ही सृष्टि का कर्त्ता हो जाया करता है । केवल प्रणव के द्वारा जो भजन करता है वह ब्रह्मा का स्थान प्राप्त किया करता है और उसी से वैष्णव पद भी प्राप्त किया करता है ॥६१॥ श्रद्धा से एक बार भी महेश्वर प्रभु का भली भाँति अभ्यर्चन करके उनके ही लोक की प्राप्ति करके मनुष्य रुद्रों के साथ ही मे प्रमुदित हुआ करता है ॥६२॥ जो पुरुष इस अध्याय को श्रद्धा से भगवान् शिव की सन्निधि में पढ़ा करता है वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥६३॥

॥ सर्वात्म रुद्र-पाशुपत व्रत कथन ॥

भूयोऽपि श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं परमेश्विनः ।
 कथं सर्वात्मको रुद्रः कथं पाशुपतं व्रतम् ॥१॥
 ब्रूहि सूत महाभाग सर्वमेतदसंशयम् ।
 कथं नो जायते प्रीतिः श्रोतुं शिवकथामृतम् ॥२॥
 पुरा ब्रह्मादयो देवा द्रष्टुकामा महेश्वरम् ।
 मन्दरं प्रययुः सर्वे शमोः प्रियतर गिरिम् ॥३॥
 स्तुत्वा प्राञ्जलयो देवा हरस्य पुरतः स्थिताः ।
 तान्दृष्ट्वाथ महादेवो लीलया परमेश्वरः ॥४॥
 तेषामपहृतं ज्ञानं ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् ।
 देवा एषृन्ध्रंस्त देवमात्मानं पुरतः स्थितम् ॥५॥

आसंस्ते सकृदज्ञानात्तमाहुः को भवानिति ।

अश्वोद्भुगवानीशो ह्यहमेव पुरातनः ॥६॥

आस प्रथममेवाह वर्तामि(?)च सुरोत्तमाः ।

भविष्यामि च लोकेऽस्मिन्मतो नान्योऽस्ति कश्चन ॥७॥

श्रुतियो ने कहा—हय लोग फिर भी परमेष्ठों के माहात्म्य को सुनना चाहते हैं किम सर्वात्मक भगवान् रुद्र कैसे हैं और पाशुपत व्रत किस प्रकार का होता है ? ॥१॥ हे महामातृ सूर जी ! यह सब शशय में रहित ही आप वनसाइये और यह भी वनसाइये कि शिव के कथा-भूत को सुनतेही प्रीति कैसे उत्पन्न हुआ करती है? थी सूरजी ने कहा—प्राचीन काल में ब्रह्मा आदि समस्त देवगण भगवान् महेश्वर के दर्शन प्राप्त करने की इच्छा वाले हुए थे और वे सब भगवान् शम्भु का जो अत्यन्त प्रिय मन्दर गिरि पर गये थे ॥२॥३॥ सब देवगण भगवान् हर के सामने स्थित होकर हाथ जोड़े हुए स्तुति कर रहे थे परमेश्वर महादेव जी लीला से ही उनको देखा था । भगवान् शम्भु ने उन ब्रह्मा आदि देवों का ज्ञान अपहृत कर दिया था । देवों ने अपने सामने है ही समवर्तित उन देवेश्वर से पूछा था क्योंकि वे सब अज्ञान से ही स्थित हो रहे थे । देवों ने कहा—आप कौन हैं ? भगवान् ईश ने कहा था कि मैं ही परम पुरातन ईश हूँ । हे सुरोत्तमो ! तब से प्रथम मैं ही था और अब भी मैं वर्तमान रहता हूँ । तथा मैं ही लोक में रहूँगा मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी देव नहीं है ॥४॥५॥६॥७॥

व्यतिरिक्तं च भूतोऽस्ति नान्यत्किञ्चित्सुरोत्तमाः ।

नित्यानिर्त्योऽहमेवास्मि ब्रह्माऽहं ब्रह्मणस्मृतिः ॥८॥

दिशश्च विदिशश्चैव प्रकृतिश्च पुमानहम् ।

त्रिष्टब्जगत्यनुष्टुप् च पत्तिश्छन्दस्यमियः ॥९॥

सत्योऽहं सर्वं तं शान्तस्त्रेताग्निगौरहं गुरुः ।

गीर्यहं च परश्चाहं द्यौरहं जगतां प्रभुः ॥१०॥

यौष्टोऽहं सर्वं तत्त्वानां चरिष्ठोऽहमपा पतिः ।

आपोऽहं भगवानीशस्तेजोऽहं वेदिरप्यहम् ॥११॥

ऋग्वेदोऽहं यजुर्वेदः सामवेदोऽहमात्मभूः ।

अथर्वणोऽयं मन्त्रोऽहं तथा चाङ्गिरसां वरः ॥१२॥

इतिहास पुराणानि कल्पोऽहं ह्यहम् ।

अक्षरं च क्षरं चाहं क्षान्तिः शान्तिरहं खग ॥१३॥

गुह्योऽहं सर्वं वेदेषु आरण्योऽहमजोऽपहम् ।

पुष्करं च पवित्रं च मेघ्यं चाहं ततः परम् ॥१४॥

हे सुरोत्तमो ! मुझसे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । नित्य और अनित्य मैं ही हूँ । मैं ब्रह्मा हूँ और ब्रह्मा का भी पति हूँ ॥१२॥ विशाऐ—विदिशाऐं—प्रकृति और पुरुष मैं हूँ । त्रिष्टुप्—जगती—घनुष्टुप् और पङ्क्ति यह त्रयीमय छन्द मे हूँ और मैं सबसे सत्य—क्षान्त—श्रेताग्नि—गौ तथा गुरु मैं ही हूँ । मैं ही गौरी हूँ तथा हर भी मैं ही हूँ—मैं द्यौ तथा जगत् का प्रभु हूँ ॥१३॥ मैं सभी सत्त्वों मे परम श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ हूँ और जलो का स्वामी भी मे हूँ—मे जल हूँ भगवान् ईश—तेज और वेदि ॥१४॥ मैं ही ऋग्वेद—यजुर्वेद—सामवेद और आत्मम् हूँ । तथा अथर्वण मन्त्र और अङ्गिरा के पर भी मैं ही हूँ ॥१२॥ सब इतिहास पुराण—कल्प और कल्पना भी मैं ही हूँ । अक्षर और क्षर—क्षान्ति—क्षान्ति और खग मैं हूँ ॥१३॥ मैं सब वेदों मे भी परम गोपनीय हूँ । मैं ही आरण्य तथा अजभी हूँ । पुष्कर और पवित्र—मेघ्य तथा इससे भी परमी मैं ही हूँ ॥१४॥

वहिश्चाहं तथा चान्तः पुरस्तादहमव्ययः ।

ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥१५॥

बुद्धिश्चाहमहंकारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।

एयं सर्वं च मामेव यो वेद स सुरोत्तमः ॥१६॥

स एयं सर्ववित्सर्वः सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।

गां गोभिर्ग्राह्याणान्सर्वान्ब्राह्मणेन हवीषि च ॥१७॥

हविषा यस्तया सत्यं सत्येन च सुरोत्तमाः ।

धर्मं धर्मेण च तथा तपंप्रियं स्वतेजसा ॥१८॥

इत्यादि भगवानुक्त्वा सत्रं वान्तरधीयत ।
 नापश्यस्ते ततो देव रुद्रं परमकारणम् ॥१६॥
 त देवाः परमात्मान रुद्रं ध्यायन्ति शक्रम् ।
 सनारागणका देवाः सेन्द्राश्च मुनयस्तथा ॥
 ततोर्ध्ववाहवो (?) देवा ह्यस्तुवन्शक्र तदा ॥२०॥

बाहिर और अन्दर भी मैं हूँ । आगे तथा मध्य में हूँ । मैं ही
 ज्योति स्वरूप और घोर तम भी हूँ । ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर भी मैं
 ही हूँ ॥१६॥ बुद्धि बहुश्रुत-तन्मात्राएँ और इन्द्रियाँ भी मैं हूँ । वर्षा
 ये सभी भी मेरा ही एक भिन्न स्वरूप में रहने वाले हैं और मुझसे
 पृथक् कुछ भी नहीं है । इस प्रकार से सबको जो मुझको ही समझना
 है वही सरोत्तम होना है ॥१६॥ यही सबका ज्ञाता-सर्व-मवर्तिता-सर्वदर्शन
 होता है । गायों के साथ गौ-ब्राह्मण से सब ब्राह्मणों को-हविषों को
 हवि के साथ तथा सप्त के साथ सप्त को जो है सरोत्तमो ! देखता है
 तथा वर्म को घर्म के साथ समझता है मैं उसको अपने तेज से कृप्त
 किया करता हूँ ॥१७॥१८॥ इस प्रकार से यह सब कहकर भगवान्
 तब यही पर अन्तर्धान होगये थे । फिर जने जन देख को नहीं देखा
 था जो रुद्र परम कारण थे ॥१६॥ देवगण जन्ही परमात्मा रुद्रदेव शक्र
 का ध्यान किया करते हैं । नारायण प्रभु के सहित और इन्द्रदेव के
 महित समस्त देवगण-मुनिगण ऊर्ध्वबाहु होकर उस समय थे भावान्
 शक्र का स्तवन करने में लग्न होगये थे । २०॥

य एष भगवान् रुद्रो ब्रह्मा विष्णुमहेश्वर ॥२१॥
 स्कन्दश्चाग्निस्तथा शन्द्रो भुवनानि चतुर्दश ।
 भूतानि च तथा सूर्यः सोमाद्यष्टौ ग्रहास्तथा ॥२२॥
 प्राण कालो यमो मृत्युरमृत परमेश्वर ।
 भूत भव्य भविष्य चूर्वर्तमान महेश्वर ॥२३॥
 विश्व कृत्स्न जगत्सर्वं सत्य तस्मै नमो नम ।
 ओमादी च तथा मध्ये भूर्भुव स्वस्त्येव च ॥२४॥

अन्ते त्व विश्वरूपोऽसि शीर्षं च जगत् सदा ।

ब्रह्मं कस्त्व द्वित्रिघोर्ध्वमघस्तत्त्व सुरेश्वर ॥२५॥

शान्तिदत्त त्व तथा पुष्टिस्तुष्टिश्चाप्यहुत हुतम् ।

विश्वं चैव तथाऽविश्वं दत्त चादत्तमीश्वर ॥२६॥

ऋत वाऽप्यथवा देव परमप्यपर ध्रुवम् ।

परायण सता चैव असतामपि शक्र ॥२७॥

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।

किं नूनमस्मान्कृणवदराति किमु घूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥२८॥

देवों ने कहा—जो यह भगवान् रुद्र-ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर के स्वरूप में हैं तथा स्वन्द-अग्नि-चन्द्र और चोदह भुवनों के रूप में वर्त्तमान हैं । जो समस्त प्राणी सूर्य-सोमादि आठ तथा ग्रह हैं—जो प्राण-पान-यम मृत्यु-अमृत परमेश्वर हैं—जो भूत-भव्य और भविष्य हैं ये वर्त्तमान महेश्वर सम्पूर्ण विश्व सब जगत् तथा सब सत्य स्वरूप में हैं उही शक्र के लिये हमारा बारम्बार नमस्कार है । आदि में ऋत तथा मध्य में भूभुव स्व है तथा अन्त में आप विश्वरूप हैं एव सदा जगत् के शीर्ष हैं । आप एक ही ब्रह्म है किन्तु दो प्रकार के हैं—ऊर्ध्व में और अधोभाग में सुरेश्वर तत्त्व हैं ॥२१-२५॥ आप ही शान्ति हैं—आप ही पुष्टि हैं—आप तुष्टि हैं—अहुत और हुत भी आप ही हैं । ईश्वर आप विश्व-अविश्व-दत्त और अदत्त हैं ॥२७॥ आप ही ऋत हे देव ! आप पर और अपर ध्रुव हैं । हे शक्र ! आप परायण अमृतो म भी सत्त्व है ॥२७॥ हम सोम का पान किया और अमृत होगये—हम ज्योतिषी प्राप्त हुए और देवों का ज्ञान प्राप्त किया था । हृदयन् आराति गया हमारे लिये है हे अमृत ! मर्त्यकी घृति क्या है ॥२८॥

तत्तज्जगद्वेदितव्यमक्षरं सूक्ष्ममव्ययम् ।

प्राजापत्य पवित्रं वा सौम्यमग्राह्यमप्रियम् ॥२९॥

आग्नेयेनापि चाऽऽग्नेयं यायव्येन समीरणम् ।

सौम्येन सौम्यं प्रसते तेजसा रवेन सीलयाम् ॥३०॥

तस्मै नमोऽसहस्रं महाप्रासाय शूलिने ।
हृदिस्था देवता. सर्वा हृदि प्राणा प्रतिष्ठिता ॥३१॥
हृदि तमसि योनिस्त्व तिस्रो मात्रा परस्तु सः ।
शिरश्चोत्तरतस्तस्य पादो दक्षिणतस्तथा ॥३२॥
स यो जीवोत्तर साक्षात्स आकार मनातन ।
आकारो य स वै देव प्रणवा व्याप्य तिष्ठति ॥३३॥
अनन्तर मूढमश्च शुक्ल वैद्युतमेव च ।
परब्रह्म स ईशान एको रुद्र स एव च ॥३४॥
भवान्महेश्वर साक्षान्महादेवो न सशय ।
ऊर्ध्वमुन्नामयत्येव स ओकार प्रकीर्ति ॥३५॥

यह जगत् मे अद्वितव्य है—अक्षर-मूढम और अव्यय प्राजापत्य
अथवा पवित्र सौम्य ब्रह्माह्व और अग्नि है ॥३१॥ अग्नेय मे भी आग्नेय
है और वायव्य से समीरण है—सौम्य से सौम्य है और लीला के द्वारा
अपने ही क्षेत्र मे प्रसरे हैं । उन अप सहार करने जाने के लिये नमस्कार
है तथा महाप्रास भगवान् शूली के लिये प्रणाम है । समस्त देवगण हृदय
मे ही जिनके स्थित हैं और हृदय मे प्राण प्रतिष्ठित हैं ॥३०॥३१॥ हृदय
मे आप हैं—आप सबकी योनि हैं—तीन मात्राएँ हैं और वह आप पर
हैं । जिसका शिर उत्तर की ओर है तथा पाद दक्षिण की ओर हैं ॥३२॥
वह जो जीवोत्तर साक्षात् सनातन आकार है । जो ओङ्कार है वह देव
आप ही हैं जो कि प्रणव व्याप्त होकर स्थित रहा करता है ॥३३॥
अनन्तर और मूढम-शुक्ल-वैद्युत और परब्रह्म वह ईशान एक ही रुद्र
हैं ॥३४॥ आप साक्षात् महेश्वर हैं । आपही महादेव हैं—इसमे लशमात्र
भी तथ्य नहीं है । इस प्रकार से जो ऊर्ध्व भाग मे उन्नमित करता
है वही ओङ्कार प्रकीर्तित हुआ है ॥३५॥

प्राणात्यति यत्तस्मात्प्रणव परिभा पतः ।

सर्वं व्याप्नोति यत्तस्मात्सर्वव्यापी सनातन ॥३६॥

ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यन्तं नोपलब्धवान् ।
 यथाऽन्ये च ततोऽनन्तो रुद्रः परमकारणम् ॥३७॥
 यत्तारयति ससारात्तार इत्यभिधीयते ।
 सूक्ष्मो भूत्वा शरीराणि सर्वदा ह्यधितिष्ठति ॥३८॥
 तस्मात्सूक्ष्मः सदा ख्यातो भगवान्नीललोहितः ।
 नीलश्च लोहितश्चैव प्रधानपुरुषान्वयात् ॥३९॥
 स्कन्दतेऽस्य यतः शुक्रं ततः शुक्रमयीति च ।
 विद्योतयति यत्तस्माद्व्युत्तं परिगीयते ॥४०॥
 वृहत्त्वाद्वृंहणाह्णह्य वृंहते च परापरम् ।
 तस्माद्वृहति यत्तस्मात्परं ब्रह्मेति कीर्तितम् ॥४१॥
 अद्वितीयोऽथ भगवास्तुरीयः शिव ईशते ?) ।
 ईशानमस्य जगतः स्वहंशं बभ्रुमीश्वरम् ॥४२॥

जो प्राणो को नयन किया करता है इसी कारण से उसको प्रणव परिभाषित किया गया है । क्योंकि वह सबमे व्याप्त होकर रहा करता है अतएव वह सर्वव्यापी और सनातन कहा जाता है ॥३६॥ ब्रह्मा और भगवान् हरि ने जिनके आदि को और अन्त को नहीं प्राप्त किया है और जिस प्रकार से अन्य देवो ने भी नहीं प्राप्त किया है अतएव रुद्र अनन्त हैं और सबका परम कारण हैं ॥३७॥ जो इस घोर ससार से तार देता है अतएव उसको 'तार'—इस नाम से भी कहा जाया करता है । वह सूक्ष्म स्वरूप होकर सबका शरीरो मे अपना अधिष्ठान किया करते हैं ॥३८॥ इसी कारण से वे सदा ही सूक्ष्म ख्यात हुए हैं ऐसे वे भगवान् नील लोहित प्रभु हैं । प्रधान-पुरुष के अन्वय से ही वे नील और लोहित हैं ॥३९॥ क्योंकि यह इसके शुक्र की स्वन्दित किया करते हैं इसी से वे शुक्रमयी हैं । क्योंकि वह विद्योतित किया करते हैं इसी कारण से उनको व्युत्त गाया जाता है ॥४०॥ वृहत्त्व और वृहण होने से जोकि परापर वो वृहित किया करते हैं ब्रह्म कहा जाता है । उससे जो वृहित किया करता है इसी कारण से वह—“परब्रह्म”—इस

नाम से कीर्तित किये गये हैं ॥४१॥ अद्वितीय भगवान् तुरीय शिव इस नाम से ईश होते हैं । इस जगत् के ईशान स्वर्हंस वभ्रु ईश्वर हैं ॥४२॥

ईशानमिन्द्र तस्थुष सर्वेषामपि सर्वदा ।

ईशान सर्वविद्याना यत्तदीशानमुच्यते ॥४३॥

यदीक्षते च भगवाश्चिरीक्षयति चान्यथा ।

आत्मज्ञान महादेवो योगो गमयति स्वयम् ॥४४॥

भगवाच्चोच्यते तेन देवदेवो महेश्वर ।

सर्वलोकान्क्रमेणैव वो गृह्णाति महेश्वर ॥

विसृजत्येष देवेशो वासयत्यपि लीलया ॥४५॥

एष हि देव प्रदिशो नु सर्वा पूर्वो हि जात स उ गर्भे अन्त ।

■ एव जात स जनिष्यमाण प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुख ॥४६॥

उपासितव्य यत्नेन तदेतत्सद्भिरग्रियम् ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥४७॥

तदग्रहणमेवेह यद्वाग्वदति यत्नतः ।

अपर च पर चेति पारायणमिति स्वयम् ॥४८॥

वदन्ति वाच सर्वज्ञ शकर नीललोहितम् ।

एष सर्वो नमस्तस्मै पुरुष पिङ्गल शिख ॥४९॥

सबसे ऊपर सर्वदा स्थित रहने वाले इन्द्र भी ईशान हैं । यह सभी विद्यार्थों के ईशान हैं इसीलिये इनको 'ईशान'—इस नाम से कहा जाता है ॥४३॥ जो भगवान् देखते हैं और अभ्यसा नहीं निरीक्षण करते हैं योगी महादेव स्वयं आत्मज्ञान को कराया करते हैं ॥४४॥ इसीलिये भगवान् देवों के भी देव महेश्वर बने जाया करते हैं । जो महेश्वर सर्व लोको को क्रम से ही ग्रहण किया करते हैं और देवेश विमृजन् किया करते हैं तथा सबको निवर्तित लीला ही से कराया करते हैं ॥४५॥ यही देव सब प्रदिशायें हैं । वह पूर्व में हो जात हुए हैं । वह गर्भ में अन्दर हैं । वही जात हुए हैं और वही जनिष्य माया भी हैं ।

वे मनुष्यों के समक्ष सर्वतौमुख होकर स्थित रह कर रहे हैं ॥४६॥ अत-
एव यत्न से अग्रिम प्रभु की सत्पुरुषों को उपासना करनी चाहिए ।
वह उस स्वरूप वाले हैं जहाँ से मन के साथ वाणी निवृत्त हो जाया
करती है अर्थात् मन वाणी की जहाँ तक पहुँच नहीं होती है ॥४७॥
यहाँ पर उसी का ग्रहण है, जिसको वाणी यत्न से बनाया करती है ।
वह अपर और पर हैं और स्वयं परायण हैं ॥४८॥ वाणी भगवान् शंकर
को सर्वज्ञ और नील लोहित कहा करती हैं । इस पिङ्गल पुष्प शिव
को हमारा सबका नमस्कार है ॥४९॥

स एक स महारुद्रो विश्व भूत भविष्यति ।

भुवन बहुधा जात जायमानमितस्तत ॥५०॥

हिरण्यवाहुभगवान्हिरण्यामि चेश्वर ।

अम्बिकापतिरीशानो हेमरेता वृषध्वज ॥५१॥

उमापतिविरूपाक्षो विश्वभुग्विश्ववाहन ।

ब्रह्माण विदधे योऽसौ पुष्पमग्ने सनातनम् ॥५२॥

प्रहिणोति स्म तस्मै च ज्ञानमात्मप्रकाशकम् ।

तमेक पुरुष रुद्र पुरूत पुरुषुतम् ॥५३॥

बालाग्रमात्र हृदयस्य मध्ये विश्वदेव बहिरूप वरेण्यम् ।

तमात्मस्थयेऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिं शाश्वतो नेतरेषाम् ५४॥

महतोऽपि महीयान्स अणोरप्यणुरव्यय ।

गुहाया निहितश्चाऽऽमा जन्तोरस्य महेश्वर ॥५५॥

विश्व भूत च विश्वस्य कमल स्याद्भूदि स्थयम् ।

गह्वरं गननान्स्थ विश्वान्तश्चोर्ध्वत स्थितम् ॥५६॥

वह एक ही महारुद्र हैं जो विश्वभूत होंगे । यह भुवन बहुत प्रकार
का समुत्पन्न हो गया है और इधर-उधर जायमान है ॥५०॥ हिरण्यवाहु
भगवान् । हिरण्य भी ईश्वर हैं । अम्बिकापति ईशान हेमरेता वृषध्वज-
उमापति विरूपाक्ष विश्वभुक् विश्ववाहन है । जिन इनने अग्नि के सना-
तन पुत्र ब्रह्माजी को बनाया था ॥५१॥५२॥ और उन ब्रह्माजी को

आत्म प्रवादाव ज्ञान प्रेरित किया था अर्थात् अपने आपके स्वरूप के पहिचान लेने का ज्ञान प्रदान किया था । उन एक पुरुष रुद्र-पुरुहूत-पुरुष्मृत-हृदय के मध्य में वासाग्रमान विश्वदेव-वह्निरूप-वरेण्य उनको जो आत्मा में स्थित देखते हैं वे परमघोर पुरुष हैं और उनका शाश्वती शान्ति रहती है अन्य लोगों को नहीं होती है ॥५३॥५४॥ वह महात् से भी महापाद् अर्थात् अधिक बड़े है और अणु में भी अधिक अणु हैं-अव्यय हैं । इस जन्तु की गुदा में अर्थात् अन्तर्हृदय में महेश्वर भगवाद् निहित रहा करते हैं ॥५५॥ विश्वभूत है और हृदय में स्वयं कमल है । गह्वर भगवान्न में स्थित है और विश्वान्तक पर की ओर स्थित है ॥५६॥

तत्रापि शुभ्रं गगनमोकार परमेश्वरम् ।

वासाग्रमान मध्यस्थमृत परमवारणम् ॥५७॥

सत्यं ब्रह्म महादेव पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।

ऊर्ध्वरितसमीक्षान् विस्पाद्यमज ध्रुवम् ॥५८॥

अधितिष्ठति यो योनि योनिश्चैव स ईश्वरः ।

देहे पञ्चविधात्मानं तमीक्षानं पुरातनम् ॥५९॥

प्राणोऽप्यन्तर्मनसो लिङ्गमाहुर्गस्मिन्क्रोधो या च तृष्णा क्षमा च तृष्णा छित्त्वा हेतुजातस्य मूलं भजस्व देव हरमेव केवलम् ॥६०॥

परात्परतरं चाऽऽहुः परात्परतरं ध्रुवम् ।

ब्रह्मणो जनकं विष्णोर्लङ्घ्योर्वायो सदाशिवम् ॥६१॥

ध्यात्वाऽग्निं च समग्निं विशेद्वाचं पृथक्पृथक् ।

पञ्च भूतानि सयम्य मात्रागुणविधिक्रमात् ॥६२॥

माना पञ्च चतस्त्रद्वयं त्रिमाना द्विन्ततः परम् ।

एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्तेष्ववस्थितम् ॥६३॥

वहा पर भी शुभ गगन है और ओकार परमेश्वर हैं । वास के अर्थात् वासाग्रमान वासे- मध्य में स्थित मृत और परम कारण हैं ॥५७॥ सत्य-ब्रह्म-महादेव-पुरुष-कृष्ण पिङ्गल-ऊर्ध्व रित-ईश्वरज्ञान-

विरूपाक्ष्य-अज-ध्रुव पर वे अभिष्टित है जो योनि है और वह ईश्वर ही योनि है । वेह मे पाँच प्रकार के आत्मा को उस ईशान्य पुरातन को अभिष्टित है प्राण मे भी अन्त मन का निज्ज कहते है । जिसमे क्रोध , और जो तृष्णाव तथा क्षमा है । हेतुजात की मूल भूता तृष्णा वा छेदन करके केवल देव हर का ही भजन करो ॥५५॥५६॥६०॥ पर से मी पर , उनको कहते है और विधित रूप से वे परात्पर तर है । वे ब्रह्माजी के भी जनक हैं और विष्णु-वायु और वह्नि के जन्म देने वाले भगवान् , सदाशिव हैं । उनका ध्यान करके अग्नि के साथ अग्नि को वाणी को पृथक् २ प्रवेश करना चाहिए । मात्रा की गुण विधि के क्रम से पाँच भूतों का सममन करके पाँच मात्रा-चार-तीन मात्रा और इसके पश्चात् दो-एकमात्र और अमात्र द्वाद शान्तो मे ही स्थित हैं ॥६१॥६२॥६३॥

स्थित्यां स्थाप्यामृतो (?) भूत्वा व्रतं पाशुपात चरेत् ।

एतद् व्रतं चरिष्यामः समासतः ॥६४॥

अग्निभाषाय विधिवद्ग्यजुःसामसभगौ ।

उपोषितः शुचिः स्नातः शुक्लाम्बरधरः स्वयम् ॥६५॥

शुक्लयज्ञोपवीतो च शुक्लमाल्यागुन्नेपनः ।

जुहुयाद्विरजा विद्वान्विरजाः स भविष्यति ॥६६॥

वायवः पञ्च शुद्धधर्म वाडः प्रवचरणादयः ।

श्रोत्रे जिह्वा तथा घ्राण मनो बुद्धिस्तथैव च ॥६७॥

शिरः पाणिस्तथा पाश्र्वं पृष्ठोदरमनन्तरम् ।

जङ्घे शश्वदुपम्य च पायुं मेढ्रं तथैव च ॥६८॥

त्वक्च मास च च रुधिर मेदोऽस्थीनी तथैव च ।

शब्दं स्पर्शं च रूपं च रसो गन्धरतथैव च ॥६९॥

भूतानि चैव शुध्यन्तां मर्द्देहे दमादयस्स्थया ।

अन्तःप्राणमनोज्ञानं शुध्यतां मे शिवेन्चया ॥७०॥

स्थिति मे स्थाप्यामृत होकर पाशुपत व्रत का समा चरण करना चाहिए । यह पाशुपत व्रत है इसका सधेन से समाचरण करना ॥६४॥

ऋक्-यजु और साम वेदों के मन्त्रों से विधि पूर्वक अग्निका समाधान करके उपोषित रहे-शुचि होकर स्नान किया हुआ स्वयं शुक्ल वस्त्र धारण करने वाला होवे । ६५। शुक्ल यज्ञोपवीत धारी तथा शुक्ल ही माता धारी ए। शुक्ल श्रेयन वाला होवे । विरजा विद्वाद् हवन करे और विरजा ही हो जायगा । ६६। पाच वायु शुद्धि के लिये बाक्-मन और-चरण आदि-श्रोत्र-जिह्वा-घ्राण-मन तथा बुद्धि-शिर-हाथ-पार्श्व और अनन्तर में पृष्ठ तथा उदर-दोनों जङ्घाये-उपस्थ-पायु-भेद त्वक्-मांस-रश्मि-भेद तथा अस्थियाँ दारु-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध ये सब भूत मेरे देह में शुद्ध होंगे । तथा दमादि-अन्त प्राण और मनोज्ञान मेरे सब भगवान् शिवरी इच्छा से शुद्धि को प्राप्त होवे । ६६। ७०।

हुत्वा येन समिद्भस्व वरुणाय ययाक्रमम् ।

उपसहृत्य रुद्राग्निं गृहीत्वा भस्म यत्नत ॥७१॥

अग्निरित्यादिना धीमान्विमृज्याङ्गानि सस्पृशेत् ।

एतत्पाशुपत दिव्यं व्रतं पाशाविमोक्षणम् ॥७२॥

ग्राह्यणानां सतां प्रोक्तं क्षत्रियाणां तथैव च ।

वैश्यानामपि योग्यानां यतीनां च विशेषतः ॥७३॥

धानप्रस्थाश्रमस्थानां गृहस्थानां सतामपि ।

विमुक्तिविधिनाग्नेन दृष्टा वै ब्रह्मचारिणाम् ॥७४॥

अग्निरित्यादिना सम्यग्गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रवम् ।

सोऽपि पाशुपतो विप्रो विमृज्याङ्गानि सस्पृशेत् ॥७५॥

भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकममौ ।

पार्षविमुच्यते मत्स्यं लिप्यते च न संशयः ॥७६॥

वीर्यमग्नेर्यतो भस्म वीर्यवान्भस्मममं मतः ।

भस्मग्नानरतो विप्रो भस्मशामी जितेन्द्रियः ॥७७॥

त्रिगणे समिपाओं से वरुण के लिए ययाक्रम हवन करके रुद्राग्नि को उपसहृत्य करने भस्म को यत्न में प्रहृत्य करें । ७१। "अग्नि"— इत्यादि मन्त्र के द्वारा धीमान् पुराण को अङ्गों विमान्न करने उनका

संसार करना चाहिए—उही पाशुपत दिव्य व्रत है जो पाशो से विमोक्षदित्या ने वाला है । ७२। यह व्रत सत्पुरुष ब्राह्मणों को बताया गया है और उसी भाँति क्षत्रियों को भी कहा गया है । जो इसके योग्य वैश्य हो वे भी इसको कर सकते हैं । विशेष रूप से यह दिव्ययान व्रत यतियों के लिये ही है । ७३। जो वानप्रस्थ आश्रम में स्थित हैं उनको सत् गृहस्थों को भी यह समुचित है । इसी विधि से ब्रह्मचारियों की विमुक्ति होते हुए देख गयी है । ७४। “अग्नि” इत्यादि मन्त्र के द्वारा अग्नि होत्र को भलीभाँति ग्रहण करके उसको भी भस्म रूप में पाशुपत व्रत वाला विप्र ग्रहण कर उससे विमार्जन करके अङ्गों का सस्पर्श करावें । ७५। विद्वान् द्विज भस्म से छन्न हुआ महापातकों के करने से होने वाले पापों से विमुक्त हो जाया करता है और सत्य में लिप्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है । ७६। क्यों कि भस्म अग्नि के वीर्य है अतएव भस्म से सम्मत वीर्यवान् होता है । भस्म में स्नान करने में रत विप्र भस्मशायी और जितेन्द्रिय होवे । ७७।

सर्व पापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा स्तुत्वा देवं समप्रभुः ॥७८॥

भस्मच्छन्नः स्वयं कृत्स्नं विररामाम्बुजासनः ।

अथ तेषां प्रमादार्थं पशूनां पतिरीश्वरः ॥७९॥

स गत्वा चोमया सार्धं सान्निध्यमकरोत्प्रभुः ।

अथ त्वं निहितं रुद्रं तुष्टुवुः सुरपुंगवाः ॥८०॥

रुद्राध्यायेन देवेश देवदेवमुमापतिम् ।

देवोऽपि देवानालोक्य घृणया च वृषध्वजः ॥८१॥

तुष्टोऽस्मीत्याह देवेशा वरं दत्त्वा वरारिहा

क्षणादन्तपितः संभुर्ब्रह्मादीनां प्रपद्यताम् ॥८२॥

इमं यः पठतेऽध्यायं शुचिर्मूत्वा समाहितः ।

सर्वतीर्थफलं चैव सर्वयज्ञफलं तथा ॥८३॥

सर्वदिव्यव्रतफलं सर्वस्तोत्रफलं तथा ।

प्राप्नोति सकल विप्राः श्रद्धया निवर्तनीयौ ॥८४॥

गाणपत्य गवा प्रोनि देहान्ते मुने पुद्गवा ॥८५॥

ऐसा भस्मसेवी पुण्य सब पापों से निर्मुक्त होकर भगवान् शिव के सामुज्य को प्राप्त किया करता है । इतना कहकर ब्रह्मा भगवान् ने भगवान् समप्रभु का स्तवन करके स्वयं पूर्ण रूप से भस्म से छन होकर अम्बु जास्त (ब्रह्माजी) विराग को प्राप्त हो गये थे । इसके अनन्तर उनके प्रसाद के लिये पशुमा के पति ईश्वर ये उमा देवी के साथ गमन करके अर्थात् जानकर प्रभु सान्निध्य किया था । इसके उपरान्त सुर श्रेष्ठा ने सनिहित हुए सुन्देव की स्तुति की थी ऋषि यह स्तवन देवा के देव दवेश उमापति की उदाध्याय के द्वारा ही किया था । देव ने भी देवों की देवकर वृषध्वज प्रभु ने बहुत ही वरणा से उनके ऊपर दृष्टिपान किया था । ७८।७९।८०।८१। यहारि के हनन करने वाले देवेश ने कहा था कि मैं परम गुण्य हो गया हूँ और वरदान भी प्रदान किया था । फिर उन सभी ब्रह्मा आदि को देखते-देखते भगवान् शम्भु एक क्षण मात्र में वहाँ पर अर्वाहिन हो गये थे । ८२। श्री गूतजी ने कहा—ओ पुराण परम समाहित और शुचि होकर इस यन्त्राय की पदता हूँ वह सब तीर्थों के तथा समस्त यज्ञों के यजन करने का फल एक पुण्य एव सम्पूर्ण देव वनों का फल और सभी स्तोत्रों का फल प्राप्त कर लिया करता है । ९ विप्रो ! भगवान् शिव की तस्मिन् मही श्रद्धामात्र से करने पर प्राप्त किया करता है । फिर है मुनि श्रेष्ठो ! वह देह के अन्त हो जाने पर गान्धर्व पद को पा जाता है । ८२।८३।८४।८५।

॥ शिव माहात्म्य कथन ॥

चक्षामि शिवमाहात्म्यं शृणुष्व मुनिपुंगवा ।
यदुभयं दुष्पापान्त्रं कीर्तितं मुनिपुङ्गवै ॥१॥
गदगदगमित्यान् गदमत्तापि मग्धियाम् ।
त शिवं मुनयः केचिच्च प्रपश्यन्ति गौरयः ॥२॥

भूतभावविकारण द्वितीयेन सदुच्यते ।

अव्यक्तेन विहीन स्यादव्यक्तमसदित्यपि ॥३॥

उभे ते शिवरूपेण शिवादन्यन्न विद्यते ।

तयो पतित्वाच्च शिव सदसत्पतिरुच्यते ॥४॥

क्षराक्षरात्मक प्राहु क्षराक्षरपर तथा ।

शिव महेश्वर केचिन्मुनयस्तत्त्वचिन्तका ॥५॥

उक्तमक्षरमव्यक्त व्यक्ताक्षरमुदाहृतम् ।

रूपे ते शङ्करस्यैव तन्नाम्ना परमुच्यते ॥६॥

तयो पर शिव शान्त क्षराक्षरपरो बुधैः ।

उच्यते परमार्थेन महादेवो महेश्वर ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिपुङ्गवो ! अब मैं भगवान् शिव के महारम्य को बतलाता हूँ आप लोग श्रवण करिए । इस गाहात्म्य को मुनिथेण्डो ने और शास्त्रो ने बहुत प्रकार से बहुतो ने कीर्तित किया है । १। केचित्तु सद्बुद्धा मुनिगण जिस शिवको सूरिगण देखते हैं सद सद रूप वाला बताया है और सत् तथा असत् भी सन्स्थित हैं—ऐसा कहा है । २। द्वितीय भूतभाव विकार से सद्-यद् कहनाते हैं । अव्यक्त से विहीन हैं और अव्यक्त असत् है—यह भी बताया है । ३। ये दोनों ही शिव के रूप से युक्त हैं क्योंकि शिव से अन्य कोई भी वर्तमान नहीं है । इसी से पति होने के कारण भगवान् शिव सहसत्पति बड़े जाया करते हैं । ४। इनको क्षराक्षर स्वरूप माने कहते हैं तथा क्षराक्षर पर भी कहते हैं । ५। तत्त्वा के चिन्तन करने वाले मुनिगण शिवको महेश्वर कहते हैं । ६।

॥ और अव्यक्त कहा है और वात्ताक्षर कहा है । ये दोनों रूप हैं तान् शङ्कर के ही और उनके नाम से ये परम बड़े जाते हैं । ६। इन । त पर शिव शान्त है । बुधा के द्वारा क्षराक्षर पर बड़े जाते हैं । नाम ग महादेव महेश्वर हैं । ७।

गमाष्टिद्व्याष्टयूप ममष्टिव्यष्टिारणम् ।

वदति केचिदाचार्या शिव परमनारणम् ॥८॥

समष्टिमाहुरव्यक्तं व्याप्तिं व्यक्तिं मुनीश्वरः ।
 रूपे ते गदिते शम्भोर्नास्त्यन्यद्वस्तु किञ्चन ॥६॥
 तयो. कारणभावेन शिवो हि परमेश्वरः ।
 उच्यते योगशास्त्रज्ञैः समष्टिव्याप्तिकारणम् ॥१०॥
 क्षेत्र क्षेत्रज्ञरूपीति शिव केश्रिदुदाहृतः ।
 परमात्मा परं ज्योतिर्भगवान्परमेश्वरः ॥११॥
 चतुर्विंशतितत्त्वानि क्षेत्रज्ञशब्देन सूरयः ।
 प्राहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं परमेश्वरम् ॥१२॥
 न किञ्चिच्च शिवादन्यदिति प्राहुर्मनीषिणः ।
 केचिदेव प्रशसन्ति महादेवं मुनीश्वरम् ॥१३॥
 वेदार्थतत्त्वविदुषः सम्यक्श्रुत्यनुसारतः ।
 प्राणेन प्राणिति ह्यसावपानेन ह्यपानिति ॥१४॥

समाष्टि और व्याप्ति जो रूप है वह समष्टि-व्याप्ति का कारण ही होता है । कुछ आचार्यगण भगवान् शिव को परम कारण कहते हैं । ६। है मुनीश्वर । समाष्टि को अव्यक्त कहते हैं और व्याप्ति को व्यक्त कहा जाता है । वे दोनों रूप भगवान् शम्भु के ही कहे गये हैं क्योंकि अन्य कोई भी वस्तु है ही नहीं । ६। उन दोनों के कारण होने के भाव से भगवान् शिव परमेश्वर हैं । योगशास्त्र के ज्ञाताओं ने शिव को समाष्टि व्याप्ति का कारण बताया है । १०। कुछ निद्रानों के द्वारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ रूप वाले भगवान् शिव को बनाया गया है । भगवान् परमेश्वर परमात्मा और शर ज्योति हैं । ११। गुरिगण चौबीस तत्त्वों की ही क्षेत्र शब्द के द्वारा कहा करते हैं और क्षेत्र शब्द से मोक्ष परमेश्वर को कहा है । १२। मनीषीगण यही कहते हैं कि शिव से अन्य कुछ भी नहीं है । कुछ लोग महादेवों को मुनीश्वर कह कर प्रशंसा किया करते हैं । वेद वेदार्थ के तत्त्वों के विद्वान् पुरुष मनी-भाति श्रुति के अनुसार प्राणी में प्राण से और जवान में अपान कहते हैं । १३। १४।

व्यानेन व्यानिति तथा चोदानेन ह्युदानीति ।
 समानीति समानेन मन्वीति मनसा द्विजाः ॥१५॥
 बुद्ध्या विचारयत्येष पर एव महेश्वरः ।
 समस्त्करणयुक्तो वर्ततेऽसौ यदा तदा ॥१६॥
 जाग्रदित्युच्यते सद्भिरन्तर्यामी सनातनः ।
 यदाऽन्त करणयुक्त स्वेच्छया विचरत्यसौ ॥१७॥
 सुप्त इत्युच्यते ह्यात्मा स्वय तापविर्वजितः ।
 न बाह्यकरणयुक्तो न चान्तःकरणस्तथा ॥१८॥
 सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः पुण्यपापविर्वर्णितः ।
 स स्वरूपे सदा ह्यास्ते सुपुप्त इति गीयते ॥१९॥
 स्वप्नान्त चैव बुद्धान्त विचरत्येष शकरः ।
 नदीतले यथा मत्स्यो गत्वाऽऽगत्य निवर्तते ॥२०॥
 श्येनो यास्य सुपर्णो वा श्रान्तः पर्वतकन्दरे ।
 शेते सहस्र पक्षौ च प्रत्यगात्मा ह्यय तथा ॥२१॥

धाम से धान और उदान से उदान एवं समान से समान हे
 द्विजो ! मन से मन्वी-ऐसा कहते हैं । यह बुद्धि से विचार करता है कि
 महेश्वर पर ही हैं । जब सदा यह समस्त करणों से युक्त वर्तमान
 रहा करते हैं । १५। १६। सत्पुरुषों के द्वारा अन्तर्यामी सनातन जाग्रत—
 यह कहे जाया करते हैं । जब यह अन्त करणों से युक्त होकर स्वेच्छा
 से विचार किया करते हैं । १७। स्वयं ताप से विर्वजित होकर यह
 आत्मा सुप्त-ऐसा कहा जाया करता है । न तो यह बाह्य करणों से
 युक्त है तथा न अन्त करणों से युक्त है । १८। यह सभी उपाधियों से
 विनिर्मुक्त है और पुण्य पाप से रहित है । वह सदा स्वरूप में रहते हैं
 और सुपुप्त-इस नाम से जान किये जाया करते हैं । १९। यह भगवान्
 शङ्कर स्वप्नान्त और बुद्धान्त विचरण करते हैं । नदी के तल में जैसे
 मत्स्य जाकर और आकर निवृत्त हो जाया करता है । २०। श्येन
 भयवा सुपर्ण पर्वत की कन्दरा में श्रान्त होता है और अपने दोनों पक्षों

को स हृत करके शयन किया करता है । उसी प्रकार से प्रत्यगात्मा यह भी है । १२१।

जाग्रत्स्वप्नगता भावास्तेषु शान्तो मुहुर्मुहुः ।

संप्रसाद ततः प्राप्य परानन्दमयो भवेत् ॥२२

अविद्यैव सर्वोऽयं व्यवहारः परात्मनः ।

गुणधर्मो यदि स्यातां सुषुप्ती रहितः कथम् ॥२३

सत्या निमित्तभूतायामविद्याया द्विजोत्तमाः ।

बुद्धौ भ्रमन्त्यामात्माऽपि भ्रमतीति जना विदुः ॥२४

नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा बुद्धिसन्निधिमत्तया ।

यथा यथा भवेद्बुद्धिरात्मा तद्वदिहेष्यते ॥२५

विद्याविद्यास्वरूपीति शंकरः कश्चिदुच्यते ।

घाता विघाता लोकानामादिदेवो महेश्वरः ॥२६

भ्रान्तिविद्यापरश्चेति शिवरूपमनुत्तमम् ।

अवाप मनसा सोऽयं केचिदागमवेदिनः ॥२७

अर्थेषु बहुरूपेषु विज्ञान भ्रान्तिरुच्यते ।

आत्माकारेण सवित्तिर्बुद्धिर्विद्येति कीर्त्यते ॥२८

जाग्रत् स्वप्नगत भाव है उनमे यह मुहुर्मुहु शान्त हैं फिर सम्प्रसाद को प्राप्त करके परानन्दमय हो जाया करते हैं । १२२। परात्मा के विषय मे यह सभी व्यवहार अविद्या से ही हुआ करता है । उनमे यदि गुण और धर्म होते तो वे सुषुप्ति की अवस्था रहित कैसे हो सकते हैं । १२३। हे द्विजोत्तमो ! निमित्त भूता अविद्या के होने पर बुद्धि मे धम दिलाया करते हैं । मनुष्य ऐसा जानने हैं कि यह आत्मा भी भ्रमित होता है । १२४। १२४। नित्य और सर्वगत आत्मा बुद्धि की सन्निधि मत्वा से जैसे २ बुद्धि होती है उसी के समान आत्मा इष्ट हुआ करता है । १२५। कुछ के द्वारा भगवान् शङ्कर विद्या-अविद्या के रूप वाले हैं—ऐसा कहा जाता है । आदि देव महेश्वर भगवान् सोनों के घाता और विघाता हैं । १२६। भ्रान्ति विद्या पर शिव का अमल रूप है । १२७।

आगम के ज्ञाता लोग यह कहते हैं कि वह इन्होंने मन से प्राप्त किया है ॥२७॥ बहुत रूपा वाले व्यक्तियों में विज्ञान जो है वह भ्राति-इस नाम से कहा जाता है और आत्माकार से जो भस्मीभ्राति का ज्ञान होता है वही विद्या इस नाम से कीर्तित की जाया करती है ॥२८॥

विकल्परहित तत्त्व परमित्यभिधीयते ।

व्यक्ताव्यक्तज्ञरूपोति शिव कैश्चिन्निगद्यते ॥२९॥

धाता च सर्गलोकना विधाता परमेश्वर ।

तयोर्विशनितत्त्वानि व्यन्तिशब्देन सूरय ॥३०॥

वदन्ति व्यवतशब्देन प्रकृतिं च परा तथा ।

कथयन्ति ज्ञशब्देन पुरुष गुणभोगिनम् ॥३१॥

तत्र यच्छक्करूपं नाव्यक्तं न च शकरात् ।

यो हेतुस्त्रिगुणस्यापि सर्वस्य प्रवृत्ते पर ॥३२॥

चतुर्विधश्च त्रिविधः स एव भगवान्निश्व ।

स एव सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भव ॥३३॥

आस्तो सर्वरतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ।

योगिनामपि यो योगी कारणानां च कारणम् ॥३४॥

रुद्राणामपि यो रुद्रो देवतानां च देवता ।

ब्रह्माद्या अपि य देव न विदन्ति महेश्वरम् ॥३५॥

विकल्पी से रहित जो तत्त्व पर होता वही पर कहा जाता है ।

कुछ विद्वानों के द्वारा शिव व्यक्त-अव्यक्त रूप वाले है—ऐसा कहा जाया करता है ॥२९॥ परमेश्वर सब लोकों के धाता और विधाता है ।

उन दोनों के बीसतत्त्व व्यक्ति शब्द के द्वारा रहे जाते हैं—ऐसा सूरिगण कहते हैं ॥३०॥ तथा व्यक्ति शब्द के द्वारा परा प्रकृति को कहते हैं और

ज—इस शब्द के द्वारा गुणों का भोग करने वाले पुरुष को कहा करते हैं ॥३१॥ उसमें जो शङ्कर भगवान् का रूप है वह शङ्कर अव्यक्त नहीं होता है । जो हेतु इस त्रिगुण (सत्त्व-रजस्तम) का होता है वह भी सर्व प्रवृत्ति के पर है ॥३२॥ वह भगवान् शिव चार प्रकार के तथा तीन

प्रकार के होते हैं और वह शिवही के रूप हैं । वह ही समस्त-भूतो के आत्मा हैं और सब प्राणियों के भव की उत्पत्ति हैं । ३३। देव वैसे भी मे विराजमान-रहने वाले हैं विष्णु के सर्वत्र वर्त्तमान दिखलाई नहीं दिया करते हैं जो योगियों के भी योगी हैं और कारणों के भी कारण हैं । ३४। सब एकादश रुद्रों के भी जो रुद्र हैं अर्थात् सर्वों पर विराजमान देव हैं और सब देवों के भी जो देव हैं ब्रह्मा आदि महान् देवता भी जिस देव महेश्वर का यथार्थ रूप में ज्ञान कर पाते हैं वह महेश्वर देव ऐसे ही हैं । ३५।

यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरण वाऽपि विद्यते ॥३६॥
 यदाऽऽपदो देहभृता भवन्ति प्राणात्ययप्राप्तिकृतस्तदानीम् ।
 विहाय देवं जगदेकबन्धुं शिव न चान्यं परिहारहेतुं ॥३७॥
 आस्ते शिशुर्वरान्सर्वान्सर्वेणां देहिना सदा (१) ।
 देहभृत्कथ्यते तस्मान्निर्गुणोऽपि महेश्वरः ॥३८॥
 भूयानत्र गतः कालस्तत्रैकं जन्म गच्छतु ।
 जिज्ञास्यतामियं तावन्मृक्तिरेकेन जन्मना ॥३९॥
 भक्त्या भगवतः शमोरिति देवोऽब्रवीद्रविः ।
 सकृत्सस्मरणाच्छमोर्नश्यन्ति क्लेशसंचया ॥४०॥
 मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विघ्नोऽनुमीयते ।
 तस्मात्तडिल्लतालोल मानुष्य प्राप्य दुर्लभम् ॥४१॥
 शिवं संपूजन् नित्यं भक्त्या ह्यात्मोपलब्धये ।
 मोहनिद्राप्रसुप्तेऽस्मिन्पशुपाशशताकुले ॥४२॥

जिन महेश्वर देव का ज्ञान यथार्थ रूप में प्राप्त कर लेने पर इन ससार में पुनर्जन्म और मरण नहीं होता है । देह धारियों को जब आपदाएं होती हैं उस समय में प्राणों का विनाश कर देने वाली ही हुआ करती हैं । उस काल में जगत् के एक बन्धु शिव देव को छोड़कर अन्य कोई भी परिहार करने का हेतु नहीं दिया करता है । ३६। ३७। सदा समस्त देह धारियों के सबवरो में शिशु होना है । जहाँ जहाँ दे-

निर्गुण भी महेश्वर प्रभु देहधारी हैं—ऐसे कहे जाया करते हैं ।३८। पुनः यहाँ पर जन्म को एक काल प्राप्त होता है । उसमें यह जानना चाहिए कि यह मुक्ति एक ही जन्म से हो जावे ।३९। देव रवि ने यही बताया है कि एक ही जन्म में मुक्ति तभी हो सकती है जब भगवान् शम्भु की भक्ति होवे । क्योंकि भगवान् शम्भु के केवल एवं ही बार स्मरण करने से सम्पूर्ण बलेशो के समुदाय नष्ट हो जाया करते हैं ।४०। और वह स्मरण करने वाला मुक्ति को प्राप्त हो जाया करता है । स्वर्ग की प्राप्ति तो उस मुक्ति के पाने में विघ्न रूप ही अनुमान किया जाया करता है । इसलिए विजयो की चमक के समान यह मनुष्य का जीवन है जो परम दुर्लभ है । इस मनुष्य जीवन को प्राप्त करके नित्य ही भक्ति की भावना से आत्मा को उपलब्धि के लिये भगवान् शिव का अङ्गी तरह से पूजन करना चाहिए । यह ससार ऐसा है कि इसमें जीवन प्रायः मोह की निद्रा में प्रसुप्त रहता है और यह पशु के सैकड़ों पाशों से घिरा हुआ होता है ।४१-४२।

पुरुषा कृतकृत्यास्ते ये शिव शरण गता ।

पुत्रदारगृहक्षेत्रधनधान्यधिमेदिनीम् ॥४३॥

लब्ध्वेमा मा कृथा दर्प रे रमा क्षणभगुराम् ।

त्यक्तवा क्रोध च काम च लोभ मोह मद तथा ॥४४॥

जन्ता यजध्वमीशान समीहितफलप्रदम् ।

यावन्नाभ्येति मरण यावन्नाध्येति वै जरा ॥४५॥

यावन्नेन्द्रियवैतल्य तावदेवार्चयेश्वरम् ।

ये यजन्ति न देवेश विपयासवमोहिता ॥४६॥

शोचन्ते हि मृता पङ्कलग्ना वनगजा इव ।

काल सनिहितापाय सयद पदमापदाम् ॥४७॥

समागमा सापगमा सर्वमुत्पादित गुरु ।

यजन्ति ये विदित्वैव लिङ्गमूर्तिमहेश्वरम् ॥४८॥

लभन्ते विपुलान्कामानिह चापुत्र चाक्षयान् ।

आराधयन् विपेन्द्रा सर्वज्ञ विश्वतोमुखम् ॥४६॥

वे ही पुरण कृतकृत्य हैं अर्थात् उन्होंने मनुष्य जीवन को प्राप्त करने का वास्तविक लाभ प्राप्त कर लिया है जो भगवान् शिव के शरणागति में प्राप्त हो गये हैं ॥४३॥ महामूढ मनुष्य । पुत्र-हारा-गृह—क्षेत्र—धन—धान्य—ऋद्धि और भूमि आदि को प्राप्त करके और इस एक ही क्षण में विनष्ट हो जाने के सम्भाव वाली लक्ष्मी को प्राप्त करके स्वर्ग ही घमण्ड मत करो । काम-क्रोध-लोभ-मोह तथा मद को त्याग करके हे जनों ! भगवान् ईशान का ही भजन करो जो सभी हित फल के प्रदाता हैं । इस मानुष जीवन में जिस समय तक मृत्यु नहीं आती है और जब तक वृद्धता नहीं उपस्थित होती है । जब तक इन्द्रियो म विचलता नहीं हाती है तभी तक भगवान् शिव का अर्चन करना चाहिए । जो लोग विषयरूपी मदिरा के वारण मोहित होकर देवेश्वर का भजन नहीं किया करते हैं वे जब मृत होते हैं तो बीच में पड़े हुए हाथी के ही समान मोव किया करते हैं । महाबाल सनिहित अपायों वाला है और ये सम्प्रदाएँ परम आपदाओं का ही समागम हैं और अपगमों से युक्त हैं । सर्व गुरु उपस्थित हैं । जो लोग इस तरह का ज्ञान प्राप्त करके लिङ्ग भूति महेश्वर प्रभु का भजन किया करते हैं वे यद्वा सासार में बहुत म मनोरथा का लाभ प्राप्त किया करते हैं और परलोक में भी अक्षय भोगों को प्राप्त करते हैं । हे विपेन्द्रो ! इसलिए सर्वज्ञ विश्वतोमुख महेश्वर की आराधना करो ॥४३-४६॥

सिप्र मास्यय तेनैव सायुज्य नात्र मशय ।

भवत्या भव यजेद्यस्तु महापातनवानपि ॥४७॥

सोऽपि याति पर स्थान त्रिसप्तपुष्पान्वित ।

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥४८॥

महेशाचनपुण्यस्य वना नाहन्ति षोडशीम् ।

प्रीदन्ति शिशवो यत्र लिङ्गं धृत्वा प्रजन्ति ये ॥४९॥

सैकत मृन्मय वाऽपि ते भवन्त्येव भूभुज ।
 आध्यात्मिक चाऽऽधिदैव दुःख चैवाऽऽधिभौतिकम् ॥५३॥
 देवादीनां विदित्वैव मोक्षार्थी शिवमर्चयेत् ।
 अपारतरपर्यन्तादधोरात्ससारसागरात् ।
 महामोहजलात्कामक्रोधग्राहात्सुखोर्मिण ॥५४॥
 प्राज्ञो वेदान्तविद्योगी निर्ममो निरहकृति ।
 एको योगी प्रशान्तात्मा स सतरति नेतर ॥५५॥
 दान्त सुसयतो ध्याने निराशो विगतस्पृह ।
 सर्वसङ्गविहीनश्च निर्द्वन्द्वो निरुपल्लव ॥५६॥

बहुत शीघ्र ही उसी ही के द्वारा सामुज्य को प्राप्त होता है
 इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जो भक्ति से भव का भजन किया करता
 है वह महापातको को भी विनष्ट कर दिया करता है । ५०। वह पुरुष
 भी अपनी इक्कीस प्रश्नों के सहित परम स्थान को प्राप्त होता है । एक
 सहस्र अश्वनेघ यज्ञ और सैकड़ों राजसूय यज्ञ भी महेश भगवान् के
 अभ्यर्चन के पुण्य की सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं कर सकते
 हैं । जहाँ पर छोटे २ शिशु क्रीड़ा किया करते हैं वहाँ पर लिङ्ग की
 रचना करके जो गमन किया करते हैं । ५१। ५२। बालू का अथवा मृत्ति-
 का जो लिङ्ग बनाते हैं वे भी अगले जन्म में राजा हुआ करते हैं ।
 देवादिकों को भी आध्यात्मिक—आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख
 हुआ करता है—ऐसा समझकर मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा वाले
 पुरुष को भगवान् शिव का ही अभ्यर्चन करना चाहिए । यह ससार
 अपार तरपर्यन्त वाला है और महान् घोर सागर के ही समान है ।
 इसमें महान् जो मोह है वही जब भरा हुआ है और वाम तथा
 क्रोध जो हैं वे ही बड़े-बड़े ग्राह हैं और सुख जो विषया में मिलता
 है वे ही तरंग हैं । इस ऐसे महान् भीषण ससार सागर को प्राण—
 वेदान्त का ज्ञाता योगी—भयता से रहित—अहङ्कार से शून्य—प्रशान्त
 आत्मा वाला योगी तैरकर इससे पार जाया करता है अन्य कोई भी

इसको पार नहीं कर सकता है । दान्त ध्यान में मुसमत्—निराश और सभी प्रकार की इच्छाओं से रहित—सबके सङ्ग से विहीन—निर्वन्द उपद्रवों से रहित ही इस संसार से पार जाया करता है ।
१५३-५६।

सर्वकर्मफलत्यागी जडान्धवधिराकृति ।
मित्रारिषु समो मैव समस्तेष्वेव जन्तुषु ॥५७॥
एव सुदुर्लभो मोक्षो न स्याद्योगीव तादृश ।
सर्वे पृथिव्या पाताले मुक्ता प्रकृतिजैर्गुणै ॥५८॥
एव सुदुर्लभ ज्ञात्वा मोक्ष हि बहुसाधनम् ।
पूजयध्व महादेव कर्मयोगेण ध्यान्यथा ॥५९॥
कर्म पूजा जपो होम क्षभोर्नामानुकीर्तनम् ।
कर्मयोगा समाख्याता एतैः पूज्यो महेश्वर ॥६०॥
य य काममभिध्यायेत्तदपितमना शिवम् ।
स पूज्य त तमाप्नोति सावित्र्याह यथा पुरा ॥६१॥
तन्नामजापी तत्कर्मरतिस्तद्वदमानस ।
निष्काम पुरुषो विप्रा स रुद्रपदमश्नुते ॥६२॥
य सर्वदाऽर्चयेदीश स रुद्र इव भूतले ।
पापहा सर्वमर्त्याना दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥६३॥

जो मनुष्य सभी कर्मों के फल का त्याग करने वाला है और जैसे कोई महान् जड़ एव बहिराहो उसके ही समान आकृति रखने वाला हो वही इससे पार होता है । जो मित्र और शत्रु दोनों में समान भाव रखता हो अर्थात् सबका ही मित्र जैसा रहे तथा सब प्राणियों के हित करने वाला हो उसी को मोक्ष प्राप्त होता है । यह मोक्ष इस प्रकार से परम दुर्लभ है । वैसा ही योगी जैसा हो जैसा ऊपर बताया चुके हैं उसी को मोक्ष होता है धन्यथा नहीं होता है । सभी लोग पृथ्वी में-पाताल में प्रवृत्तिजन्य गुणों के द्वारा ही मुक्त होते हैं । इस प्रकार से परम दुर्लभ जगत्पर मोक्ष को बहुत से मायनों वाला

समझना चाहिए । कर्मयोग से श्री महादेव प्रभु का पूजन करी और अन्य प्रकार से करो ॥१५७॥१८॥१९॥ कर्म पूजाजप-होम-शभु के शुभ नामों का कीर्तन-येस भी कर्मयोग कहे गये है । इन्ही से द्वारा महेश्वर प्रभु का पूजन करना चाहिए ॥६०॥ जिस जिस काम का उत्तर प्थान करे वह सब शिव के लिये अहित मन वाला होवे । पहिने सावित्री देवी ने कहा है कि भगवान् शिव की पूजा करके उसी उसी को प्राप्त कर लिया करता है ॥६१॥ हे विप्रो ! शिव के नामों का जाप करने वाला—शिव के कर्मों में रति रखने वाला—शिव के चरणों में ही मन सलग्न रखने वाला—निष्काम पुष्ट ही रुद्र को पद को प्राप्त किया करता है ॥६२॥ जो सर्वदा ईश का पूजन किया करता है वह भूतल में रुद्र की तरह से रहता है । वह मनुष्य दर्शन और स्पर्शन से ही सब मनुष्यों के पापों का हरण कर देने वाला होता है । ६३ ।

॥ अरुन्धती-सावित्री सम्वाद ॥

पतिव्रता महाभागा सावित्री वरवर्णिनी ।
 यदाह तद्वदात्माक सूत वाक्यविशारद ॥१॥
 स्वर्गे ता शोभना दृष्ट्वा गुणै सर्वैरलकृताम् ।
 अरुन्धत्युत्तमा स्त्रीणा पर्यपृच्छच्छुचिस्मिता ॥२॥
 शतश सन्ति सावित्रि देवा स्वर्गनिवासिन ।
 देवपत्न्यस्तथैवैता सिद्धा सिद्धाङ्गनास्तथा ॥३॥
 न तेपामोदन्तो गन्धो न कान्तिर्न सरूपता ।
 नान्येषा विद्यते शोभा यथा ते पतिना सह ॥४॥
 न चैवाऽऽजल्पजातानि भ्राजन्ते सुरयोपिताम् ।
 यथा तव तथा पत्युर्भ्राजन्ते वरवर्णिनि ॥५॥
 नास्ति कान्तिविमानाना शक्रादीना दिवीवसाम् ।
 विमानस्यापि ते कान्तिस्तरुणाकाम्युतद्युति ॥६॥

तप प्रभावो दानं वा कर्म वा क्तविरतरम् ।

युवयोरतन्ममाऽऽचक्ष्व ययावद्वरवर्णिनि ॥७॥

ऋषियों ने कहा—हे वाक्य विशारद सूतजी ! महाभाग बाली पतिव्रता पर वर्णिनी सावित्री ने जो भी कहा था वह आप हमको बतलाइये । १। सूतजी ने कहा—सब गूणों से अलङ्कृता उसको स्वर्ग में देयकर जो कि परम शोभा से समन्वित थी युविसिमत वाली और सब स्त्रियों में उत्तम अरुन्धती ने उनसे पूछा था । २। हे सावित्री ! स्वर्ग में निवास करने वाले देवगण सौक्य ही हैं तथा ये देवों की पतिमा भी हैं—सिद्ध और वहाँ पर सिद्धोक्ताएँ भी हैं किन्तु उनमें ऐसी गन्ध नहीं है और न उनकी ऐसी सुन्दर कान्ति ही है और सरूपता ही है । अन्यो की ऐसी शोभा भी नहीं है जैसी कि तुम्हारी अपने पतिदेव के साथ में रहने पर हुआ करती है । ३। हे वरवर्णिनि ! आकल्प जात भी सूरों की स्त्रियों के उस प्रकार के मुग्धमान नहीं हैं जैसे तुम्हारे और आपके पतिदेव के भूषणादि भ्राजनावन हुआ करते हैं । ४। क्षत्र आदि देवों के विमानों की भी वैसी नहीं है जैसी तरुण सूर्यों की दस हजार सख्या में एकत्रित होने पर जो श्रुति होवे आपके विमान की कान्ति है । ५। हे वर वर्णिनि ! आप दोनों का क्या यह तप का प्रभाव है या दान-कर्म और ऋतुओं की अधिकता का प्रभाव ऐसा है । यह आप हमको बतलाइए । ७।

शृणु त्वैतन्महाभागे यत्कृत पूर्वजन्मनि ।

भर्त्रा सह मया भद्रे शम्भोरायतने शुभे ॥८॥

कृत समार्जन भक्त्या गोमयेनोपलेपनम् ।

स्वर्गप्राप्तिरिय तस्य कर्मण फलमुत्तमम् ॥९॥

तीर्थोदकं सुगन्धैश्च (?) स्नापितो यदुमापति ।

तेन कान्तिरतीवैषा देहेऽभूत्त्रिदशेश्वरि ॥१०॥

मन प्रसाद सौम्यत्व शारीरी या च निवृत्ति ।

यत्प्रियत्व च सर्वस्य तद्वृत्तस्नानज फलम् ॥११॥

आह्लादः परमस्वास्थ्यमारोग्य चारुवेगता ।
 प्राप्तिश्चाशेषकामाणा दधिक्षीरफल शुभे ॥१२
 सौगन्ध्य यत्पर देहे धूपदानस्य तत्फलम् ।
 गीतेनृत्येस्तथा जाप्येनियमैश्च पृथग्विधैः ॥१३
 तोषितो भगवानीशस्तस्येय पुष्टिरुत्तमा ।
 स्वर्गेप्सुता सत्यवता मया च शुभदर्शने ॥१४

सावित्री देवी ने कहा—हे महाभागे ! आप अब इसका मुझसे श्रवण कर लीजिए कि जो कुछ मैंने पूर्व जन्म में कर्म किया है । हे भद्रे ! अपने स्वामी के साथ मैंने भगवान् शम्भु के परम शुभ भागतन में भक्ति भावना से समार्जन किया था और गोमय (गोबर) से उपलेपन भी किया था । यह स्वर्ग में प्राप्ति उसी शुभ कर्म का उत्तम पुण्य फल है ॥१॥१॥ सुगन्धित तीर्थों के जलों से जो उमापति ने स्नान किया था हे त्रिदशेश्वर ! उसी से यह ऐसी उत्तम कान्ति मेरे देह में होगई है ॥१०॥ मन में प्रसाद का होना—सौम्यता और जो दारौरिक निर्वृति तथा सबका प्रियत्व जो होना है उस धुन से किये गये स्नान का ही फल है ॥११॥ आह्लाद-परमोत्तम स्वास्थ्य का होना-आरोग्य और चारुवेगता तथा वामो की प्राप्ति हे शुभे ! ये सब दधि और क्षीर का ही उत्तम फल है । हे शुभे ! मेरे देह में जो परमोत्कृष्ट सुगन्ध है वह धूप दान का ही पुण्य-फल है । गीत-जाप्य-नियम जो कि पृथक् प्रकार के हैं उनके द्वारा मैंने भगवान् ईश को तोषित किया था उसी की यह उत्तमा पुष्टि है । हे शुभदर्शने ! मैंने और सत्यवान् ने स्वर्ग की इच्छा की थी ॥१२॥१३॥१४॥

कृतमेतदतो न स्यादावयोर्भोगसदाय ।

ये निश्चिता नराः सम्यक्पूजयन्ति महेश्वरम् ॥१५

तेषा ददानि विदवेशो देवो मुक्तिमुदुलंमाम् ॥१६

संवमुक्ताऽप्य सावित्र्या मुनीन्द्रा हृष्टमानसा ।

ब्रह्मरनुषा दिव्येजानी प्रणिपत्येभब्रवीत् ॥१७

सा पूज्या सा नमस्कार्या सा साध्वी सा पतिव्रता ।

या पूजयति सावित्री सदा हैमवतीपतिम् ॥१८॥

यमाराध्य दिति. पुत्रांल्लेभे शक्रपुरोगमान् ।

दितिश्च दैत्यान्विधाध्वान्विनतां गरुडारुणी ॥१९॥

शत्रुर्वशीमुखाश्चान्याः सपूज्योमापतिं पुरा ।

प्रापुश्चाभिमतान्कामारतमीश को न पूजयेत् ॥२०॥

अभिनन्द्याथ ता चैव वसिष्ठार्धशरोरिणी ।

जगाम स्वाश्रम साध्वी सर्वदेवगणाचिता ॥२१॥

हमने मही किया है इसीलिये हम दोनों के भोग का सख्य नहीं होता है । जो विषय किये हुए नर महेश्वर भगवान् का भलीभाँति पूजन किया करते हैं विश्वेश उनको सुदुर्लभ भुक्ति का प्रदान किया करते हैं ॥१५॥१६॥ श्रीसूनजी ने कहा—सावित्री के द्वारा इस प्रकार से कही गयी थी । इसके अनन्तर मुनीन्द्र गण परम हृष्ट मन वाले होते हुए नियत होगये थे । ब्रह्मस्नुपा ने शिवाईशान दोनों का प्रणिपात करके यह कहा था ॥१७॥ अरुण्यती ने कहा—वह पूज्या है-नमस्कार करने के योग्य है-वह साध्वी और पतिव्रता है । हे सावित्री ! जो सर्वदा हैमवती के पति की पूजा किया करती है ॥१८॥ जिनका समाराधन करके दिति के शक्र जिनका अग्रणी है ऐसे पुत्रों की प्राप्ति की थी और दिति ने अनेकों दैत्यों को प्रभूत किया था तथा विनता ने गरुड और गरुड-इन दो पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥१९॥ शत्री और उर्वशी प्रथम जिनमें हैं ऐसी अन्य महिलाओं ने पहिले भगवान् उमापति का भलीभाँति पूजन करके अपने अभिमत कामनाओं की प्राप्ति की थी उस ईश को कौन नहीं पूजेगा ॥२०॥ मुनिवर वसिष्ठ जी की अर्धाङ्गिनी देवी अरुण्यती उस सावित्री देवी का इस प्रकार से अभिनन्दन करके वह साध्वी सब देवगणों के द्वारा समर्पित होती हुई अपने आश्रम को चली गयी थी ॥२१॥

एव समर्च्य गौरीं श्रद्धाणां यो वितः ।

लभन्तेऽभिमतान्भोगान्सावित्र्याह यथा द्विजाः ॥२१॥

ये नराः सकृदप्यत्र पूजयन्ति त्रिलोचनम् ।

ते धन्यास्ते महात्मानस्ते कृतार्थाश्च पण्डिताः ॥२२॥

धर्मार्थकाममोक्षा लिङ्गार्चा हेतुरुच्यते ।

सर्वेषां प्राणिनां विप्रा इन्द्रियाणां यथा मनः ॥२३॥

हृत्पथकर्णिकावास तेजोमूर्तिममङ्गिनम् ।

निर्ममा निरहंकारा व्यापन्ति ज्ञानिनः सदा ॥२४॥

शैलज वाणलिङ्गं वा पूजयेद्विविधसदा ।

मृदारुघटितं वाऽपि रत्नजं वा गृहाश्रमो ॥२५॥

साम्राज्यं मनुजैः कैश्चिद्वाराज्यं च तथा परैः ।

तथा वैराज्यमन्यैश्च लिङ्गमिष्ट्वा तदैश्वरम् ॥२६॥

शोचन्ते ते परं हीना अभाग्याश्च दिने दिने ।

प्रमादेनापि यैर्नोक्तं शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥२७॥

इस रीति में श्रद्धा करने वाले नारियों भगवान् गौरी के पति वा

अम्बुचन्दन करने अभिमान भोगों की प्राप्ति किया करती हैं जैसा कि

हे द्विजो ! सावित्री ने कहा है ॥२२॥ जो मनुष्य एक बार भी

यहाँ पर त्रिलोचन प्रभु का पूजन किया करते हैं वे पुण्य परम

धन्य हैं—महान् आत्मा वाले हैं—कृतार्थ हैं और महान् पण्डित हैं

॥२३॥ धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति

का हेतु शिवालिंग पूजा ही बतलाई जाती है । सब प्राणियों में विप्र

उत्तम होते हैं जिस प्रकार में समस्त इन्द्रियों में मन शिरोमणि है ।

हृदय स्त्री कमल की कर्णिका में आवास वाले असङ्गी-तेजोमूर्ति शिव

का निर्भय होकर और अहङ्कार से रहित होते हुए ज्ञानी पुण्य मदा ही

आपन किया करते हैं ॥२४॥२५॥ शैल से निर्मित या वाणालिङ्ग वा

जो विधि-विधान के साथ सदा पूजन करता है अथवा मूर्तिका तथा

पाठ में निर्मित या रत्नों में रचित लिङ्ग वा गृहस्थ पूजन किया करता

है तो कुछ मनुष्यों ने द्वारा साम्राज्य तथा दूसरों के द्वारा स्वराज्य और

अन्यों के द्वारा वैराग्य उस समय मे ईश्वर के लिङ्ग का भजन करके किया था । जो हीन हैं प्राप्ति वे शीघ्र ही किया करते हैं और दिन-दिन मे भाग्य रहित हैं जिन्होंने कभी प्रमाद से भी अपने मुख से "शिव" — इन दो बक्षरो को कभी भी नहीं कहा है ॥२६॥२७॥२८॥

संपूजये सर्वसामान्ये स्त्राराध्ये सर्वकामदे ।

भवेऽपि सति सीदन्ति भाविनो यत्तदद्भुतम् ॥२९॥

उपसर्गा. क्षय यान्ति चिद्वदन्ते विघ्नपल्लवा ।

मनः प्रसन्नतां याति पूज्यमाने महेश्वरे ॥३०॥

पूजितं सर्वदेवेशे सर्वदेवनमस्कृते ।

पूजिता सर्वदेवाः स्युर्यतोऽप्यो सर्वगो विभु ॥३१॥

शिवाचनरतो नित्य महापातकसम्भवः ।

दोषैर्न लिप्यते विद्वाम्पश्यन्निवाम्भसा ॥३२॥

किमत्र शास्त्रमालाभि. सक्षेपेणोपदिश्यते ।

व्यापारान्सकलास्त्यक्त्वा पूजयन्महेश्वरम् ॥३३॥

निकटा एव दृश्यन्ते कृतान्तनगरद्रुमा ।

शिवा स्मर शिवा ध्याय शिवा चिन्तय सर्वदा ॥३४॥

किं वेदं किमु वा शास्त्रं : किवा तीर्थादिसेवया ।

शिवः संपूज्यता नित्यमुपदेशोऽप्यमुत्तमः ॥३५॥

भलीभाँति पूजन करने के योग्य—सभी के लिये परम साधारण— अपने द्वारा आराधना करने के योग्य—सभी कामवाग्रो को प्रदान करने वाले भगवान् भव के विद्यमान रहने पर भी भावी वाले लोग दुःख उठाया करते हैं यह एक परम अद्भुत बात है ॥२९॥ उपसर्गं सब श्रय को प्राप्ति हो जाते हैं और विघ्न पल्लवों का छेदन हो जाता है । महेश्वर भगवान् के पूजन करने पर मन प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है । सर्व देवों के द्वारा वन्दित सर्व देवों के पूजित होने पर सभी देव पूजित हो जाया करते हैं क्योंकि यह विभु सभी देवों में निवास किया करते हैं ॥३०॥३१॥ भगवान् शिव के अर्चन में, नित्य न रहने वाला

विद्वान् पुण्य महापातको से होने वाले दोषो से लिप्त नहीं होता है जैमे पद्म का पत्र जन मे लिप्त नहीं हुआ करता है ॥३२॥ इस विषय मे शास्त्रो की भात्ताओ से क्या लाभ है । सक्षेप से ही यह उपदेश दिया जाता है कि सकल व्यापारो को त्याग करके भगवान् महेश्वर का ही पूजन करो ॥३३॥ सर्वदा भगवान् शिव का स्मरण करो—शिव का ध्यान करो और शिव का चिन्तन करो तो वृत्तान्त के नगर को द्रुमनि कर ही दिखलाई दिया करते हैं ॥३४॥ वेदो से क्या प्रयोजन है—शास्त्रो से भी क्या लाभ है अथवा तीर्थ आदि के सेवन से क्या प्रयोजन है केवल नित्य भगवान् शिव का ही पूजन करो । यही सर्वोत्तम उपदेश है ॥३५॥

अयमेव परो धर्मश्चीर्णमेमेतत्परं तपः ।

छदमेवाखिल ज्ञान पूजनं यन्महेशितुः ॥३६

शिवे दत्तं हुतं जप्तं बलिपूजानिवेदितम् ।

एकान्तोऽत्यन्तफल तद्भुवेन्नात्र संशयः ॥३७

कर्मभूमौ हि मणुष्य जन्मना नियुतोरपि ।

स्वर्गापवर्गफलद कदाचित्प्राप्यते नरैः ॥३८

तदीदृग्दुर्लभं प्राप्य नार्चयन्तीह ये शिवम् ।

तेषां हि हस्ते मूर्खाणां विवेकः कुत्र तिष्ठति ॥३९

आराधितो हि यः पुंसामैहिकामुष्मिकं फलम् ।

ददाति भगवाञ्शुभः करतं न प्रतिपूजयेत् ॥४०

यो यमिच्छति विप्रेन्द्राः समाराध्य महेश्वरम् ।

निःसंशयः तमाप्नोति पुरा वीथ्याणो यथा ॥४१

दृष्टः संपूजितो ध्यानः सस्मृतो वा स्तुतोऽपि वा ।

यो ददाति नृणां मुक्तिं तस्मात्कर्त्तव्यते शिवः ॥४२

शिव का अभ्यर्चन ही सबसे परधर्म है । इसका चीर्ण करना ही परम तप है । यह सम्पूर्ण ज्ञान है कि महेन भगवान् का पूजन किया जावे ॥३६॥ भगवान् शिव का उद्देश्य करके दिया हुआ दान-हवन-

जान-बलि-पूजा जो भी निवेदित किया गया है वह एतान्त रूप अत्यधिक फल प्रदान करने वाला होता—इसमें लेनमात्र भी संशय नहीं है ॥३७॥ यह कर्मभूमि है । इसमें मनुष्य योनि अरबों जन्मों के पश्चात् ही प्राप्ति होती है शायद कदाचिन् ही मनुष्यों के द्वारा मनुष्य-जीवन में भी स्वर्ग-अपवर्ग के फल देने वाला प्राप्त किया जाया करता है । तात्पर्य यह है कि शायद कोई ही स्वर्ग और अपवर्ग के फल को प्राप्त किया करता है नहीं तो सभी जाना यह दुर्लभ जीवन व्यर्थ ही गँवा दिया करते हैं । ३८॥ इस परम दुर्लभ मनुष्य जीवन को प्राप्ति करके भी जो मनुष्य इस समार में आकर भी भगवान् शिव का अभ्यर्चन नहीं किया करते हैं उन मूर्खों के हाथ में विवेक कहीं पर स्थित रहता है ॥३९॥ पुरुषों में जिसने भी शिव को आराधित किया है तो उस पुरुष को भगवान् शिवलौकिक और पारलौकिक फल प्रदान किया करते हैं । ऐसे भगवान् शिव को कौन महामूढ़ है जो नहीं पूजा करता है ॥४०॥ हे विश्वेश्वर ! जो महेश्वर प्रभु की समागमना करके जिसको भी चाहता है उसी को वह बिना किसी संशय के प्राप्त कर लिया करता है जैसे प्राचीन काश में वैश्रवण ने प्राप्त कर लिया था ॥४१॥ केवल दर्शन किये हुए—भक्तीभाँति पूजे हुए—ध्यान किये हुए—संस्मरण किये हुए और स्तवन किये हुए जो शिव मनुष्यों को मुक्ति देता है इससे किनके द्वारा वे शिव अर्चित नहीं किये जाते हैं ॥४२॥

श्वपक्षीऽपि मुनिर्थाष्टा शिवभक्ती द्विजाधिकः ।
 शिवभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः ॥४३॥
 यद्वा तद्वा शिवे कर्म पुमान्कृत्वा शिवालये ।
 लोभात्सङ्गात्प्रमादाद्वा पृथिव्यामेकराड्मवेत ॥४४॥
 कथं वैश्रवणः पूर्वं समाराध्य महेश्वरम् ।
 लब्ध तस्मात्कुवेरस्त्वसूत तद्वक्तुमर्हसि ॥४५॥
 शृणुध्वमृषयः सर्वे यदुक्तं सप्तमेऽन्तरे ।
 माहात्म्यमूचनकथा शिवस्य परमेष्ठिनः ॥४६॥

कश्चिदासीद्द्विजोऽवन्त्या सोमशर्मेति विश्रुतः ।

पुत्रक्षेत्रकलत्रादिव्यापारेषु रतः सदा ॥४७॥

विहायाथ म गार्हस्थ्यं धनार्थं लोभमोहितः ।

प्रचचार मही सर्वा सग्रामपुरपत्तनाम् ॥४८॥

भार्या तस्य विशालाक्षी तस्मिन्गोहाद्विनिर्गतः ।

स्वच्छन्दचारिणी नित्यं वभूवानङ्गमोहिता ॥४९॥

हे मुनि श्रेष्ठो ! स्वपत्नी चाहे भगवान् शिव का भक्त है तो द्विज से भी अधिक श्रेष्ठ है । शिव की भक्ति से विहीन द्विज भी स्वयं से भी कहीं अधिक अधम हुआ करता है ॥४३॥ शिवालय में जो कुछ भी जैसा-तैसा शिव के लिए कर्म करके समुप्य चाहे वह लोभ से किया हो या प्रमाद से किया गया हो या किसी सङ्ग से किया हो पृथ्वी में एक राट् होता है ॥४४॥ ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! वैश्रवण ने पहिले किस प्रकार से महेश्वर प्रभु की समाराधना करके उनसे कुबेरत्व के पद को प्राप्त किया था—यह ही आप बतलाने के योग्य होते हैं ॥४५॥ श्री सूतजी ने कहा—हे ऋषि गणो ! आप सब लोग श्रवण करिए जो कुछ सप्तम अन्तर में कहा गया है परमेष्ठी शिव की माहात्म्य के सूचन की कथा है ॥४६॥ कोई एक द्विज जिसका नाम सोम शर्मा प्रसिद्ध था वह अवन्ती पुरी में रहता था । वह सदा ही पुत्र—कलत्र—क्षेत्र आदि व्यापारों में निरत रहा करता था ॥४७॥ उसने अपने गार्हस्थ्य का त्याग कर धन के लिए लोभ से मोहित होकर सम्पूर्ण भूमि पर जिसमें ग्राम—नगर और प्रष्ट सभी थे प्रचरण किया था । उसके घर से विविर्गन हो जाने पर उसकी विशालाक्षी भार्या अनङ्ग (कामदेव) से मोहित होकर नित्य ही स्वच्छन्द ससाचरण वाली व भगयी थी ॥४८॥॥४९॥

तस्या कदाचित्पुत्रस्तु शूद्राज्जातो विषेवंशात् ।

दुरात्मास्तीव निर्गुणो नाम्ना दुःसह इत्युत ॥५०॥

सोऽयं कालेन महता व्यसनोपप्लुतोऽभवत् ।

सर्वेवंधुजनैस्त्यक्तः पपिपन्थिपथे स्थितः ॥५१॥

पूजोपकरणद्रव्यं (?) स कस्मिंश्चिच्छिवालये ।
 रजन्यां प्रविवेशाय व्यसनेन प्रपीडितः ॥५२॥
 यावद्दीपो गतप्रायो वर्तिच्छेदाऽभवत्किल ।
 तावत्तेन दशा दत्ता द्रव्यान्वेपणकारणात् ॥५३॥
 प्रयुद्धश्चोच्छिस्तस्तत्र देवपूजाकरो नरः ।
 कोऽय कोऽय मिति प्रोञ्चैर्व्याहरन्परिघायुधः ॥५४॥
 स च प्राणभयाघ्नष्टो वित्रस्तश्चापि मूढधीः ।
 न विन्दन्नात्मनो जन्म कर्म वाऽपि सुदुःखितः ॥५५॥
 पुरपालैर्हतोऽवन्त्या मृतं कालादभूत्ततं ।
 गान्धारारविपये राजा ख्यातो नाम्ना सुदुर्मुखः ॥५६॥

उस द्विज की भार्या ने से किसी समय में विधि के वश से एक दूध से पुत्र उत्पन्न हुआ था । वह दुष्ट आत्मा वाला—निर्गुण—और अतीव दुःसह तथा नाम भी दुःसह था ॥५०॥ वह विशेष काल के होने पर विदेश में व्यसनो में उपलप्युत हो गया था । जब वह परिपत्य में स्थित देख गया हो सभी घन्धुओं के द्वारा भी पण्डित्युक्त हो गया था ॥५१॥ छे यामतम में पूजा के उपकरण द्रव्य रहने ही हैं । वह एक बार किसी शिवालय में व्यसन से उत्पीडित होकर रात्रि के समय में प्रविष्ट हुआ था । जब तक दीपक बुझा था और दीरक की यत्ती का छेदन हुआ था तब तक द्रव्य के अन्वेपण करने के कारण से दृश्य दी थी ॥५३॥ वहा पर देवता की पूजा करने वाला मनुष्य जाग उठा । उसने 'यह कौन है—यह कौन है'—ऐसे कहते हुए जोर से चिल्लाया और हाथ में उसने परिघ ग्रहण कर लिया था ॥५४॥ वही पर वह विप्र प्राणों के भय से मूढ बुद्धि वाला नष्ट हो गया था । उसने अपना जन्म और कर्म को भी प्राप्त सही किया था और अत्यन्त दुःखिन हुआ ॥५५॥ अवन्ती पुरी में वह पुरी के पालन करने वालों के द्वारा मार दिया गया था । इसके उपरान्त कुछ बाल में वह गान्धार देश में सुदुर्मुख नाम से राजा विद्यमान हुआ था ॥५६॥

गीतवाद्यरत स्तब्धो वेषयापानरुचिर्भृशम् ।
 प्रजोपद्रवकृन्मूर्खः सर्वघर्मवहिष्कृतः ॥५७॥
 किं त्वचंपत्यसौ नित्य लिङ्गे राज्यक्रमागतम् ।
 पुष्पपुष्पसुनेवेद्यगन्धादिभिरमन्त्रवित् ॥५८॥
 स्मुरन्वै पौर्विक वमं शिवस्याऽऽप्यतनेषु च ।
 ददाति बहुशो दीनान्धर्तितैः न समुज्ज्वलान् ॥५९॥
 कदाचिन्मृगयासक्तो ममाराध स वीर्यवान् ।
 पूर्वार्तिभिर्हतो युद्ध ऐरावत्यास्तटे शुभे ॥६०॥
 शिवपूजाप्रभावेन विध्वस्ताशेषकित्त्वपि ।
 पुत्रो विश्रवसश्चाभूत्सर्वयक्षाधिपो बली ॥६१॥
 कुबेर इति धर्मात्मा श्रुतिशास्त्रसमन्वितः ।
 स पूज्याथ स चेशान विधिवत्स्वर्धुनीतटे ॥
 स्तोत्रेणानेन तुष्टाव भक्त्वा सैः सर्वकामदम् ॥६२॥

५. वह गान और वाद्य में रति रखने वाला—परम स्तब्ध और वेदया
 तथा मद्यपान करने में रुचि रखने वाला अत्यधिक था । वह इतना मूर्ख
 था कि प्रजा में उपद्रव किया करता था तथा सभी घर्म के कर्मों से रहि-
 ष्कृत हो गया था ॥५७॥ किन्तु यह राज्य क्रम से आगत शिवलिङ्ग का
 निरय ही अर्चन किया करता था । यह मन्त्रों का ज्ञाता तो बिल्कुल था
 ही नहीं किन्तु बिना ही मन्त्रों के पुष्प—धूम—नैवेद्य और गन्ध आदि के
 द्वारा अभ्यर्चन करता था ॥५८॥ वह पूर्व जन्म के कर्म का स्मरण करते
 हुए भगवान् शिव के आयतनों में बहुधा से बत्ती और तैल से समुज्ज्वलित
 दीपकों को अर्पित किया करता था ॥५९॥ किसी समय में मृगया
 (शिकार) में समासक्त हुआ वह वीर्यवान् राजा मर गया था । ऐरावती
 नदी के शुभ तट पर पहिले क्षत्रियों के द्वारा वह युद्ध में हत किया गया
 था ॥६०॥ किन्तु भगवान् शिव की पूजा के प्रभाव से उसके समस्त
 पाप नष्ट हो गये थे और फिर वह विश्रवा मुनि का पुत्र होकर समुत्पन्न
 हुआ था जो बलवान् समस्त यक्षों का अधिपति हो गया था ॥६१॥ वह

कुवेर—इस नाम वाला परम धर्मात्मा हुआ था जोकि श्रुति (वेद) और शास्त्रों के ज्ञान समन्वित था । उसमे वधुनी के तट पर विधि-विधान के साथ भगवान् ईशान की भली भाँति पूजा करके उन समस्त कामनाओं के प्रदाता शिव की भक्ति से इस निम्नलिखित श्लोक से स्तवन किया था ॥६२॥

नमाम्यहं देवमज पुराणमुपेन्द्रवेधोमरराजजुष्टम् ।
 शशाङ्कमूर्याग्निसमाननेत्र वृपेन्द्रचिह्ने विलयादिहेतुम् ॥६३॥
 सर्वेश्वरं त्रिदशैकबन्धुं ध्यानाधिगम्य जगतोऽधिवासम् ।
 त व ङ्गाधारमनन्तशक्तिं ज्ञानाणं व स्थैर्यगुणाकर च ॥६४॥
 पिनाकपाशाङ्कुशशूलहरत कपर्दिन मेघसहस्रधोपम् ।
 सकालकूट स्फटिकावभास नमामि शम्भु भुवनेकनाथम् ॥६५॥
 कपालिन मालिनमादिदेव जटाधार भीमभुजगहारम् ।
 प्रदासितार च सहस्रमूर्ति सहस्रशीर्ष पुरप वरिष्ठम् ॥६६॥
 यमक्षर निर्गुणमप्रमेय त ज्योतिरेकप्रवदन्ति सन्तः ।
 दूरगम वेदविदा च वन्द्य सर्वस्य हृतरथ पवित्रम् ॥६७॥
 तेजोनिधि बालमृगाङ्गमोलि नमामि रुद्र स्फुरदुग्रवक्ष्यम् ।
 कालेन्नन कामदमस्तसङ्ग धर्मासनस्थ प्रकृतिद्वयरथम् ॥६८॥
 अतीन्द्रिय विद्वद्भुज जितार गुणस्त्रयानीतमज निरीहम् ।
 मनोमय वेदमय च हस प्रजापतीश पुरहूतमिन्द्रम् ॥६९॥
 अनाहृतकञ्चनरुणमाद्यं ध्यायन्ति य योगविदो यतीन्द्राः ।
 संसास्पाशच्छिदुर विमुक्तये पुनः पुनरतं प्रणमामि नित्यम् ॥७०॥

कुवेर ने कहा—मैं उपेन्द्र—वेध और देवों के द्वारा सेवित—अज—प्रराण देव को नमस्कार करता हूँ । आप चन्द्र-सूर्य और अग्नि के समान नेत्रों वाले हैं और वृपेन्द्र के चिह्न से युक्त तथा सृष्टि के विलय आदि के हेतु हैं उनको मे प्रणाम करता हूँ । हे भगवान् ! आप एक ही सबको ईश्वर हैं—देवों के परम बन्धु—ध्याना के द्वारा ही अधिगमन करने के योग्य और हम जगत् के अधिवासी हैं । उन याद-

व्यय के आधार—अनात शक्ति से सम्पन्न-ज्ञान के सागर और स्थैर्य गुण के आकर आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६४॥ आप पिनाक धनुष, पाश, अंकुश और त्रिशूल इन आपुषों के धारण करने वाले हैं—कपर्दी—सहस्रो मेघों के समान घोंप वाले—बालकूरम हाविष से युक्त—स्फटिक मणि के समान भासित—भुवनो के नाथ भगवान् शम्भु को मैं नमस्कार करता हूँ ॥६५॥ कपाली—और कपालो की मालाधारी—आदि देव—जटाधारी—भीषण सर्पों के हार को पहिने वाले—प्रशासिता—सहस्र मूर्तियों वाले सहस्र शीपों वाले—वरिष्ठ पुरुष आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित करता हूँ ॥६६॥ सत्त लोग जिनको अक्षर—निर्गुण—अप्रमेय—एक उद्योति कहा करते हैं। जो बेशी के ज्ञाताओं को बहुत दूर रहने वाले हैं सबके वन्दना करने के योग्य हैं—हृदय में ही स्थित रहने वाले और परम पवित्र हैं ऐसे तेज के निधि और बाल चन्द्र को गस्तक पर धारण करने वाले स्फुरित अग्र-मुख वाले भगवान् रुद्र से लिए मैं नमस्कार करता हूँ। काल के ई धन-कामनाओं के प्रदाय करने वाले—समस्त सङ्ग से रहित—धर्म—धर्म के आसन पर समवस्थित—प्रकृति ह्य में स्थित भगवान् रुद्र को प्रणाम करता हूँ ॥६७॥६८॥ इन्द्रियो की पहुँच से परे—विश्व के भोग करने वाले—शत्रुओं के जोतने वाले—तीनों गुणों से असीत—अज्ञ—निरीह—मनोमय—वैदमय—हृत्—प्रजा पतियों के ईश—पुरूषूत—इन्द्र—अनाहत एक ध्वनि और रूप वाले—आद्य—आप हैं जिनको योग के ज्ञाता यतीन्द्र गणध्यान में लाया करते हैं। ससार के पाशों के छेदन करने वाले—विमुक्ति के प्रदान करने वाले उन भगवान् शम्भु को मैं बारम्बार नित्य प्रणाम करता हूँ ॥६८॥६९॥७०॥

न यस्य रूपं न बलप्रभावो न च स्वभावः परमस्य पुंसः ।

विज्ञायते विष्णुपितामहाद्यै रतं वामदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥७१॥

शिव समाराध्य यमृग्रभूति पपौ समुद्रं भगवानगस्त्यः ।

लेभे दिलीपोऽप्यखिलां स चोर्वी तं विश्वयोनिं शरणं प्रवद्ये ॥७२॥

समूजयन्तो दिवि देवसवा ब्रह्मेन्द्र मुख्या विविधाश्च कामान् ।
त रतीमि नौमीह जपामि शव वन्देऽभिवन्द्य शरत् प्रपद्ये ॥७३॥
स्तुतुवमीश विरराम यावत्तावत्सहस्रार्कसमानतेजा ।
ददौ स तस्मै वरदोज्ज्वकारिवरत्रय वैश्ववर्णाय देव ॥७४॥
कृत्वाऽधिराज च ततस्त्रिनेत्रो यशस्विन गृह्यकराजमत्र ।
ब्रह्माच्युतेन्द्रादिनताड् घ्रिपद्यो जगाम कैलासममोघवाक्य ॥७५॥
सख्य च दिक्पालपद चतुर्यं घनाधिपत्य च दिवौकसा स ।
तयाऽधिक चैतदनिन्द्यकीर्ति सुखी यभूवाप्रतिमप्रभाव ॥७६॥
दोषाचरेन्द्रश्च तथा दशास्य समूज्य दोषाकरचारुमौलिम् ।
दोषावरश्चाप्यजितेन्द्रियश्च मुक्तिं स लेभेऽन्तसमरतदाय ॥७७॥

जिनका कोई भी रूप नहीं है और न कोई बल का ही प्रभाव है—न स्वभाव है ऐस यह परम पुरुष हैं । विष्णु और पितामह आदि के द्वारा ही उनका ज्ञान प्राप्त किया जाता है उन आचम्य कामदेव प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥७१॥ भगवान् अगस्त्य मुनि ने भगवान् निव की ही समाराधना करके जो नि अष्टमूर्ति हैं समुद्र का पान कर लिया था । राजा दिलीप ने भी इन्हीं के अनुग्रह से सम्पूर्ण पृथ्वी का लाभ प्राप्त किया था उन्हा विद्वत् की योगि प्रभु की शरणागति या म प्रदान होता है ॥७२॥ ब्रह्मा इन्द्र जिनम प्रभु हैं ऐसे सब देवों व समुदाय ने त्रिनेत्र म भवीम नि पूजन करत हुए अन्न मनोरथा को प्राप्त लिया था उन्हा भगवान् निव का मैं तमस्कार करता हूँ— स्तवन करता हूँ—जाप करता हूँ और वन्दना करता हूँ । उन अभि- यन्दना करने व योग्य प्रभु की मैं शरण म जाता हूँ ॥७३॥ इस योगि म स्तुति करके जिस ही बुद्धि विरत हुआ था वैसे ही मन्त्रा मूर्तों व ममा नेत्र म पुन प्रपन्न के शत्रु देव के जो बरदाय दन दान हैं उन वैश्ववर्ण व निव तीन वर प्रदान दिये थे ॥७४॥ इस उतरान् मन्त्रान् विनेत्र ने उन वैश्ववर्ण को अधिराज बनाकर जोरि वर्य दान्यो और

गुह्यको का राजा या फिर ब्रह्मा—अच्युत-इन्द्र आदि वे द्वारा प्रणत चरणो वाले और अमोघ वाद्यो से युक्त प्रभु कैलाश पर्वत पर चले गये थे । ७२। सस्य—हिस्पातवापद—और वह दोनों के धन का आधिपत्य प्राप्त करके उससे भी अधिक अनिन्य कीर्ति वाला और अप्रतिम प्रभाव पे युक्त वह परम सुखी हो गया था । ७६। द्रोणाचर—इन्द्र तथा दृशास्य (रावण) ने चन्द्रदेव को मस्तक पर धारण करने वाले प्रभु शङ्कर का पूजन करके समस्त देवों का निराकरण करके उस अजित इन्द्रियो वाले और दोषो के आवरणे भी मुक्ति को प्राप्त कर लिया था । ७७।

स्वर्गस्य मार्गं बहव प्रविष्टास्ते वृच्छसाध्या बहव सविघ्ना ।

निमेषमानेन महाफलोऽयमृजुथ पन्था स्मरण पुरारे । ७८।

दृष्ट तदेवाद्भुतमत्र मर्त्या माहात्म्यमेश ससुरासुराश्च ।

त्यक्त्वाऽऽत्मयोगं च मलक्रियाश्च

यजन्त्यतस्त्र्यम्बकमेव सर्वे ॥ ७९॥

गायन्ति देवा किल गीतकानि घन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गंभूते भवन्ति भूय पुरुषा सुरत्वात् ॥ ८०।

कर्माण्यसकल्पिततत्फलानि सन्यस्य रुद्रे परमात्मरूपे ।

अवाप्य ते कर्ममहीमनन्ते तस्मिन्लैय मे त्वमला प्रयान्ति । ८१।

जानीय (?) नैताद्वि कदा विलीने शुभप्रदे कर्मणि देहबन्ध ।

प्रासाम खण्डे किल भारताख्ये कुलेऽकलङ्के शिवधर्मेनिष्ठा । ८२।

स्तोत्रेण येऽपि कचिदत्र मक्ता प्रसस्तुवन्ति प्रमथैकनाथम् ।

प्रयान्ति ते लोकेमिहान्धकारे पुरदरोद्गीतमहाप्रभावा । ८३।

एव वैश्ववणो जातो महादेवप्रसादत ।

सर्वमेतशेषेण कथितं मुनिपुंगवा । ८४।

य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापं प्रमुच्यते ।

ब्रह्मलोके वसेत्कल्मषि देवोऽप्रवीद्वि । ८५।

गो तो स्वर्ग के प्राप्ति करने के लिए बहुत से मार्गों को बताया गया है किन्तु वे सभी मार्ग कठिनाई से साधन करने के योग्य हैं और उनसे बहुत से विघ्न भी रहा करते हैं। एक निमित्त मान में ही महाव फल देने वाला—परमाधिक सरल यही एक सुगम मार्ग है जो भगवान् पुरारि का स्मरण किया जावे। ७८। यहाँ पर मनुष्य सुर और अमुर सभी ने भगवान् ईश्वर के माहात्म्य में एक परम अद्भुतता देखी है और सभी लोग आत्म योग—यज्ञादि की क्रिया इन सबका त्याग करके एक बेबल भगवान् त्र्यम्बक का ही भजन किया करते हैं। ७९। देवगण ऐसे अनेक गीतों का गान किया करते हैं कि जो भारत देश की भूमि भाग में वर्तमान प्राणी हैं वे परम धन्य हैं। यह भारत देश की भूमि स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्षपद) के मार्ग के ही समान है अर्थात् इसी भूमि में उत्पन्न होकर प्राणी स्वर्ग और मोक्ष के स्थान की प्राप्ति किया करते हैं। जो भारत में जन्म प्राप्त करते हैं वे परम धन्य हैं। अतएव देवगण की सुरतव का त्याग करके इस भारत में पुन पुरुष होकर जन्म ग्रहण करने के इच्छुक रहा करते हैं। ८०। परमात्मा के स्वरूप वाले भगवान् इन्द्र के चरणों में ही सब असङ्कल्पित फल पाने पमों की समर्पित करके वे सब इस कर्मभूमि की प्राप्ति कावे उस अनन्त में लय प्राप्त कर निर्मल होने हुए प्रपण किया करते हैं ॥८१॥ यह न जानकर कि सब शुभप्रद कर्म के विनीत होने पर देह का बन्धन होता है। अतएव भारत नाम वाले भूगण्ड में किसी बन्धु ने रहित कुल में शिव के धर्म में निष्ठा रखने वाले निवास करें। यही पर इग स्तोत्र के द्वारा जो भी वही पर भक्त लाग प्रमथा के एर नाथ प्रभू का स्तवन किया करते हैं वे अन्यकारि भगवान् शिव के स्तोत्र में प्रपण किया करते हैं और इन्द्र के द्वारा उनके महाप्रभाव के बीत गाये गये हैं। ८२। ८३। श्री भूतजी ने कहा—इस प्रकार से वैधव्य महादेवजी के प्रगाद से ही मनुष्यन्त दृष्टा था। हे मुनि पुत्रवो। मैं यह सब मूर्ख रूप से कह दिया है। ८४। जो इसकी पढ़ता है अथवा श्रवण किया करता

है वह सभी पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है। रविदेव ने यह कहा था कि वह अन्त में जाकर ब्रह्मलोक में कल्प पर्यन्त निवास किया करता है। ८५।

॥ सुदेव्युपाख्यान ॥

पुनर्वक्ष्यामि माहात्म्यं देवदेवस्य शूलिनः ।
 पठता शृण्वतां सद्योऽद्यानि हन्ति बहून्यपि ॥१॥
 जितारीन्द्रियपङ्गवा योगिनोऽप्येनहृताः ।
 यजन्ति ज्ञानयोगेन शिवमात्मस्वरूपिणम् ॥२॥
 तीर्थोदकीविशुद्धा ये दानयज्ञतपोव्रतैः ।
 ते यजन्ति महेशानं कर्मयोगेन साधवः ॥३॥
 लुब्धा व्यसन्नितोऽप्राण्य न यजन्ति जगत्पतिम् ।
 अजरामरयन्मूढास्तिष्ठन्ति नरकीटकाः ॥४॥
 शिवधर्मरताः शान्ताः शिवशास्त्ररताः सदा ।
 दैवात्केऽपीह जायन्ते पृथिव्या पुरुषोत्तमाः ॥५॥
 रूपं न शक्यते तस्य सस्थानं वा कदाचन ।
 निर्देपुं प्राणिभिः कैश्चिद्द्रष्टुं वाऽप्यकृतात्मभिः ॥६॥
 क्रियता मद्रचः कर्णे शिवे वाऽऽत्मा नियुज्यताम् ।
 आदीप्ते भवने कूपं खनितुं नैव शक्यते ॥७॥

श्रीसूतजी ने कहा—देवदेव भगवान् शूली के माहात्म्य को मैं पुनः बतलाता हूँ। इसके पढ़ने और सुनने वालों के अद्य सद्य ही नष्ट हो जाया करते हैं चाहे भले ही बहुत—से ही कपों न हों। १। पङ्गव इन्द्रियों के शत्रुओं के जीत लेने वाले-बिना अहंकार वाले योगीगण भी आत्म स्वरूपी भगवान् शिव का ज्ञान योग के द्वारा यजन किया करते हैं। २। जो साधुगण तीर्थोदकी से और दान-यज्ञ-तप और व्रतों से विशुद्ध हुए हैं

वे भगवान् महेश का कमंयोग के द्वारा भजन किया करते हैं । १३। जो सुमधकव्यसनी—अज्ञ जो हैं वे जगत् के पति का यजन नहीं किया करते हैं । वे अजरामर घृत मूढ नरकीटक स्थित रहा करते हैं । १४। भगवान् शिव के घर्म में रत—शान्त और सदा शिव के शास्त्र में निरत ऐसे उत्तम पुरुष देववश कुछ ही इस पृथ्वी में उत्पन्न हुआ करते हैं । १५। बिन्ही भी प्राणियों के द्वारा जो अहृतात्मा हैं उन प्रभू का रूप-संस्थान कभी भी निदिष्ट करना अथवा देखना नहीं हो सकता है । १६। अतएव मेरे वचन को कानों में स्थान दो और अपनी आत्मा को भगवान् शिव में नियोजित करदो । जब चारों ओर से भवन में आग लगकर वह जलने लगता है तो उस समय में अग्नि के बुझाने के लिये घुये का खोदना सम्भव नहीं हो सकता है जिसके जल से आग बुझाई जा सके । १७।

सत्या वच्मि हितं वच्मि सारं वच्मि पुनः पुनः ।
 असारं दग्धं ससारं सारं यच्छिद्यवपूजनम् ॥८॥
 तदस्या दग्धससारग्रन्थेरत्यन्तदुर्भेदः ।
 परं निर्मूलविच्छेदि क्रियतां तद्भवाचनम् ॥९॥
 मनस्तद्विद्धि कर्मज्ञ शरूरे यत्प्रवर्तते ।
 सा वाणो वाक्पतिं शम्भुं या रतौत्यच्युतमच्युता ॥१०॥
 श्रयणी तौ श्रुतौ याम्या श्रूयन्ते तत्कथा शुभाः ।
 पादौ तौ सफनौ पुंसां शिवायतनगामिनौ ॥११॥
 ते च नेत्रे शुभायाल याम्या शहस्यते जिवः ।
 सफनौ तौ स्मृतौ विप्रास्तत्पूजा कारिणौ वरौ ॥१२॥
 तदेव सफलं कर्म शिवमुद्दिश्य यत्कृतम् ।
 सेयं तदमोः पुंसां सेयं भक्तिः समीहिता ॥१३॥
 श्रेयस्वरी भक्तिर्भुंक्तैर्या गिरिजापते ।
 रिपवरं न हिमन्ति न च ग्राहन्ति मादागः ॥१४॥

मैं सबंधा सत्य कहता हूँ—हित की बात कहता हूँ और सार भूत बारम्बार कह रहा हूँ कि इस सार शून्य दग्ध ससार में सार वस्तु केवल एक भगवान् शिव का ही पूजन है । ८। अत्यन्त दुर्मिद इम रुग्ध ससार की ग्रन्थि के पर निर्मूल का विच्छेदन करने वाला भगवान् भव का अर्चन ही होता है अतः उसे करो । ९। कर्म के जाता उस मन को ही जानना चाहिए जो शंकर में प्रवृत्त हो जाता है । वाणी भी वहीं है जो वाणी के स्वामी अच्युत शम्भु को अच्युता होती हुई स्तवन बिया करती है । १०। वे ही श्रवण श्रुत हैं जिनके द्वारा उनकी शुभ कथा सुनी जाया करती है । वे ही परमनुप्य के सफल एवं सार्थक हैं जो भगवान् शिव के आपतन तक मग्न करने वाले हो । वे ही नैन शुभ एवं भूपित हैं जिनके द्वारा शिवेश्वर प्रभु का दर्शन प्राप्त किया जाया करता है । हे विप्रो ! उन भगवान् की पूजा करने वाले कहो वे ही कर सफल बताये गये हैं । कर्म भी वही सफल है जो भगवान् शिव का उद्देश्य करके ही किया गया होवे । पुत्र्यो की वही सद्गमी परा अर्थात् उत्कृष्ट कोटि वाली है जो यह भक्ति ही कही गयी है । ११। १२। १३। गिरिजापति की जो भक्ति है वही मुक्ति के श्रेय के करने वाली कल्याणकारिणी है उसको रिपुगण हिसित नहीं किया करते हैं और राक्षस लोग नहीं खाते हैं । १४।

न दशन्ति च नागेन्द्रा नर रुद्रपरायणम् ।

विषाककटुकान्तरम्यान्विषयांन्विषसनिभान् ॥

सत्यज्याऽऽराधयेद्देव शंकर लोकशंकरम् ॥ १५

अहिंसा सत्यमस्तेयं दया भूतेष्वनुग्रहः ।

यस्यैतानि सदा विप्रारनस्य तुष्यति शंकरः ॥ १६

दृष्ट्वा संपूजितं लिङ्गं भक्त्या यश्चाभिनन्दति ।

तीर्थैत्रिकं वायः कुर्यात्तस्य तुष्यति शंकरः ॥ १७

वाङ्मनःकायकर्मैच्छा यस्य भवितमहेश्वरः ।

व्यसनोपहृतमपि तस्य तुष्यति शंकरः ॥ १८

यथा द्विजा हस्तिपदे गदानि सलीयन्ते सर्वे सत्त्वोद्भवानि ।
 एव घर्मा शिवधर्मे तु सर्वे सलीयन्ते नात्र चित्र मुनीन्द्राः ॥१६॥
 अल्पाध्यानल्पफलास्त्वरश्च घर्मानन्यान्प्राहुरिह द्विजेन्द्राः ।
 महाश्रयवहुकल्याणरूप वदन्ति सन्त शिवधर्ममेकम् ॥२०॥
 सर्वे वर्णा देवदेवस्य शम्भोः पूजा कृत्वा सत्यवाक्यानि चोक्त्वा ।
 त्यक्त्वा धर्मं दारुण मृत्युलोके यान्ति स्वर्गं मात्र कार्प्यो विचारः ॥२१॥
 ये वामदेव हि यजन्ति नित्यं सद्ब्रह्मशीलाः किल लिङ्गमूर्तिम् ।
 ते ध्वस्तदोषा हि भवन्ति मर्त्या भवाय्वुराशि विषम तरन्ति ॥२२॥

भगवान् रुद्रदेव मे परायण रहने वाले नर नागेन्द्र भी नहीं हुआ करते हैं । विष्णु की दशा में अर्थात् परिणाम प्राप्त करने के समय में महान् बटुला आरम्भ काल में बड़े ही सुरम्य ऐसे विष के समान विषयो को परित्याग कर लोक के मङ्गल करने वाले भगवान् शंकर देव का आराधन करना चाहिए । १५। अहिंसा-सत्य-अस्तेय-भूतमात्र पर दया अनुग्रह-ये गुण जिसके अन्दर विद्यमान हैं हे विष्णो ! उसी पर शरकर भगवान् परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ करते हैं ॥१६॥ भलीभाँति से समचित्त शिव लिङ्ग का दर्शन कर भक्ति भाव से जो अभिनन्दन किया करता है अथवा जो तीर्थत्रिक (नृत्यगीत) किया करता है उसमें भगवान् शंकर परमसन्तुष्ट हो जाया करते हैं । १७। द्वितीय भक्ति महेश्वर प्रभु में है और वह वाक्-मन-कार्य-बर्मा और इच्छा के किसी भी रूप में हो । चाहे वह व्यक्तियों से भी उपहत भी क्यों न हो भगवान् शंकर उस पर प्रसन्न हो जाते हैं । १८। हे द्विजो ! जिस तरह से सभी प्राणियों के पैरों के चिन्ह हाथों के पैर के चिन्ह के अन्दर ही समा जाया करते हैं उसी भाँति सभी धर्म भगवान् शिव के धर्म में ही समा हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी विचित्रता की बात नहीं है । १९। हे द्विजेन्द्रो ! अन्य का आश्रय ही अल्प फल वाले ही होते हैं और यहाँ पर अन्य धर्म स्वर कहे गये हैं । मन्त्र पुण्य एवं शिव धर्म को महान् आश्रय माना और बहुत अधिक वर्णना करने के स्वप्न माना कहा करने हैं । २०।

देवदेव दाम्भुषी पूजा सभी वर्णों वाले करके तथा सत्य वचन कहकर और मृत्यु लोक में दारुण धर्म को त्याग कर स्वर्ग को जाया करते हैं इस विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥२१॥ जो नित्य ही यामदेव प्रभु का यजन किया करते हैं और सुन्दर आचरण के स्वभाव वाले लिङ्ग मूर्ति को पूजते हैं वे मनुष्य अपने समस्त दोषों को ध्वस्त कर दिया करते हैं और महाद् विषम इस ससार रूपी सागर को तैर कर पार हो जाया करते हैं अर्थात् सासारिक बन्धनों से छूटकर सुगति को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥२२॥

तैरिष्टं विविधयंज्ञं देवपितृमानवाः ।

तपिताः स्मृजंगद्वेतुर्यैरिष्टो भगवान्भवः ॥२३॥

पर्वतान्दश यदृत्वा महादानानि पांडश ।

धेनूश्च दश यदृत्वा यदृष्ट्वा लिङ्गमाप्नुयात् ॥२४॥

शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु सः ।

स्वपत्नी युवती त्यक्त्वा यथैवान्यासु रज्यते ॥२५॥

व्याजेनापि हि ये कुर्युः किञ्चित्कर्म शिवालये ।

न ते यान्तीह नरक पापात्मानोऽपि मानवाः ॥२६॥

समार्जनादिकर्तारो मार्गशोभाकराश्च ये ।

तेऽवश्य पृथिवीपाला भवन्ति त्रिदशोपमा ॥२७॥

अस्मिन्नर्थे पुरा वृत्त तच्छृणुष्व द्विजोत्तमाः ।

यच्छ्रुत्वा प्राणिन प्रायो न मोहमुश्यान्ति ते ॥२८॥

देव-ऋषि-पितृ और मानव कोई भी हो उन्होंने विविध प्रकार के यज्ञों के द्वारा यजन किया है जिन्होंने जगत् के हेतु स्वरूप भगवान् भव का यजन किया है वे पूर्णतया सभी प्रकार से तपित भी ले जाते हैं ॥२३॥ दश पर्वतों का दान करके और सोलह महादान करके तथा दश धेनुओं का दान करके जो पुण्य-फल प्राप्त होता है वही फल भग-
' ॥२४॥ जो राजा शिव का भक्त नहीं है और अन्य देवों में भक्ति किया

करता है वह इसी प्रकार का होता है जैसा कोई अपनी युवनी पत्नी का त्याग करके अन्य स्त्रिया में रमण क्रिया करता हो ॥२५॥ जो किसी बहाने भी शिवालय में कुछ कर्म किया करते हैं वे मानव पापात्मा भी हों तो भी वे नरक में नहीं जाया करते हैं ॥२६॥ जो समार्जन आदि कर्मों के करने वाले होने हैं तथा मार्गों की शोभा को करने वाले हैं है व अवश्य देवों के ही समान पुरुष हैं और पृथिवीपाल ही हुआ करते हैं ॥२७॥ हे द्विजोत्तमो ! इस अर्थ में जो कुछ भी पहिले पटित हो चुका है उसका आप लोग ध्रुवण करिये । जिसको सुनकर प्रायः प्राणी-गण मोह को नहीं प्राप्न हुआ करते हैं ॥२८॥

स्वायम्भुवेऽनरे त्वासीद्राजा परम धार्मिक ।
पञ्चालविषये विप्रा नरवर्मेति विश्रुत ॥२९॥
दैवमन्त्रविदुत्साहशक्तियुक्त प्रतापवान् ।
पाद्गुणविमहासत्त्वं स्मितपूर्वाभिभाषित ॥३०॥
तस्य भार्यासहस्राणां दर्शनीयतमावृति ।
दशानामग्रमहिषो सुदेवीत्यभिविधूता ॥३१॥
सर्वलक्षणसंपन्ना दक्षीव वरवणिनी ।
भर्तुं श्रापि प्रिया साध्वी चन्द्रकान्तिसमप्रभा ॥३२॥
करोति प्रत्यहं राज्ञी भूमिममाजनेनादिभि ।
द्वारशोभा मागशोभा शिवस्याऽऽश्रयने शुभे ॥३३॥
तां तयाऽभिरता हृष्ट्वा तस्य राज्ञं पुरोहितम् ।
पप्रच्छेद स तन्वङ्गो गान्धर्वो रहसि स्थिताम् ॥३४॥
ग्रहि भुभू महाभागे विमर्षं हरमन्दिरे ।
समाजनरता नित्यमन्यकर्मपराङ्मुखो ॥३५॥

स्वाम्भुव मन्वन्तर में एक परम धार्मिक राजा हुआ था । हे विप्रो ! वह पाञ्चाल (पञ्जाब) देश में हुआ था और नरवर्मा-दण नाम से प्रसिद्ध था ॥२९॥ वह राजा दैव मन्त्र का ज्ञाता और उरगाह दत्त से युक्त था तथा महान् प्रभाव वाला भी था । वह राजा पद् गुणों से

युक्त था—प्रह्लाद सत्त्व वाला था और मन्द मुस्कान के साथ भाषण करने वाला था ॥३०॥ उसकी एक सहस्र भार्याओं में परम-दर्शनीय आकृति वाली और दशों में भी अग्रगण्यी जो थी वह सुदेवी—इस नाम से विश्रुत थी ॥३१॥ यह सुदेवी राजा की पटरानी सभी सुलक्षणों से सम्पन्न थी तथा वह वरवर्णिनी सखी के ही समान थी । उसकी कान्ति चन्द्रमा के ही समान थी और वह अपने भर्ता की परम प्यारी थी तथा परम साध्वी थी ॥३२॥ वह रानी प्रतिदिन भूमि की समार्जना आदि के द्वारा शुभ भगवान् शिव क आयतन में द्वार की शोभा और मार्ग की शोभा किया करती थी ॥३३॥ उस रानी को उस प्रकार स अभिरत देखकर उस राजा का पुराहित गालव मुनि ने उस रानी से एकांत में स्थित हुई से यह पूछा था ॥३४॥ हे महाभाग ! हे सुभ्रु ! आप अन्य सभी कर्मों से पराङ्मुली होकर नित्य ही समार्जन के करने में किसलिये इतनी रत रहा करती हैं—यह मुझे बतनाइये ॥३५॥

सैवामुक्ता तदा तेन मुनिना विनयान्विता ।
 प्रहस्याऽऽह विशालाक्षो मुनीन्द्र गालव प्रति ॥३६
 न मेऽन्यत्र परा भक्तिर्यथा समाजनादपु ।
 तवाह कथयिष्यामि पुरा कर्म कृत मया ॥३७
 पूर्वमात्मह गृध्री पक्षिणी व्योमचारिणी ।
 कदाचिद्ध्रममाणा तु गता किष्किन्धपर्वतम् ॥३८
 सिद्धविद्याधराकीर्णं हेमकूटमिवापरम् ।
 आश्चर्यवन्निरावाध सलिङ्गं यत्र तिष्ठति ॥३९
 यस्य सदर्शनादेव स्वर्गं यान्ति मनोपिण ।
 संपूज्याथ तमेवेश पुष्पैर्घृपाक्षतादिभि ॥४०
 न्यस्त केनापि तत्पाद्वे नैवेद्य यत्तदेव हि ।
 तदादानु समागत्य लिङ्गं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥४१
 शुघातार्हाऽह महाभाग नैवेद्यं तु क्रनोद्यमा ।
 तद्गृह्णत्या क्रमादिष्वपलाभ्या समार्जनम् ॥४२

उस मुनि के द्वारा जब उस रानी से इस प्रकार से कहा गया था तो वह बहुत ही विनम्र से समान्विता होकर विशाल नेत्रों वाली उसमें हंसकर गालव मुनि से कहने लगी थी ॥३६॥ मेरी अन्य किसी भी कर्म में अधिक भक्ति नहीं है जैसी कि समार्गन आदि के कर्म में होती है। अब मैं आपको बतलाती हूँ जोकि मैंने पहिले जन्म में कर्म किया है ॥३७॥ पहिले जन्म में मैं व्योम में सचरण करने वाली गृध्री पक्षिणी थी। किसी समय में भ्रमण करती हुई किन्निन्धा नाम वाले पर्वत पर पहुँच गई थी ॥३८॥ वह पर्वत सिद्ध और विद्यायरो से घिरा हुआ था-और ऐसा प्रतीत होता था कि मानो दूसरा हेमाचल वा ही सिखर होवे। वह आश्चर्य से भरा हुआ—निरावाध था जहाँ पर खलिङ्ग स्थित था जिसके केवल दर्शन से ही मनीषी लोग स्वर्ग को प्रमाण किया करते हैं। उन्हीं ईश की पुष्प पूर और अक्षत आदि से भलीगति पूजन करके उनके पार्श्व भाग में किसी में नैवेद्य रखता था। उसी समय में उसको लेने के लिये खलिङ्ग की प्रदक्षिणा करके हे महाभाग ! मे क्षुधा से अत्यन्त आर्त वहाँ आई और उस नैवेद्य को प्राप्त करने का उद्यम करने वाली हुई थी। हे विप्र उमको जैसे ही ग्रहण करने की मैंने शपका मारा तो वहाँ पर मेरे दोनों पंखों से वहाँ की धूलि का समाजर्जन हो गया था ॥३९-४२॥

श्रुत देवस्य पुरतो देवयोगाख्याणात्ततः ।

सावत्तत्र समायातस्तस्य देवस्य पूजकः ॥४३॥

उद्गताऽह ततः कालान्मृता जाता वसोमृहे ।

नृवर्मणे च तेनाह प्रदत्ता प्रथमा वधूः ॥४४॥

दक्षराज्ञीमहस्ताणामुत्तमा मत्प्रभावतः ।

भान्या च दयिता राज्ञः पुत्रपौत्रममन्विता ॥४५॥

अणामादीद्वरागारे शूर्ययं पांनुमार्जनम् ।

दुहिताऽहं वसोर्जाता राज्ञो जातिस्मरा तथा ॥४६॥

कामात्ममार्जनं शूर्या भविष्यामि न चेपि सत् ।

एवमुक्तस्तथा राज्ञा प्रहृष्टमामयाद्वीत् ॥४७॥

समाराध्य सुरेशान सर्वद त्रिपुरान्नकम् ।

किमाश्चर्यं गुणावासे यदेतत्प्राप्तवत्यसि ॥४८॥

चक्षुषा प्रेक्षणं च नमनं च प्रदक्षिणम् ।

लिङ्गमूर्तेः शिवस्यैव राज्यावासिकरं स्मृतम् ॥४९॥

मैंने देव के ही आगे ऐसा किया था । देवयोग से एक ही क्षण भर में तब तक वहाँ पर देवकी पूजा करने वाला वहाँ पर आगया था ॥४३॥ उसी काल में मैं वहा से उदृता होगई और मृग होने के पश्चात् वसु के घर में समुत्पन्न हुई थी । उसने मुझको नुवर्णा के लिये प्रथमा बभ्रू के रूप में दे दिया था ॥४४॥ उसी के प्रभाव से मैं दश सहस्र रानियों में सर्वोत्तमा रानी हूँ । मैं महामान्या हूँ और राजा की पुत्र-पौत्र से समन्वित प्रिया रानी हूँ ॥४५॥ बिना ही किसी कामना के ईश्वर के आग्रह में इस प्रकार से धूनि का मार्जन कर देने पर मैं वसु की बेटा हुई तथा एक परम श्रेष्ठ राजा की जातिस्मरणा अर्थात् परम प्रिया पत्नी होगई हूँ ॥४६॥ यदि कामनाओं से समार्जन करके मैं क्या हो जाऊँगी—इसको मैं नहीं जानती हूँ । इस तरह रानी के द्वारा कहे गये गालब मुनि ने परम प्रहृष्ट होकर उससे कहा था ॥४७॥ सभी कुछ के प्रदान करने वाले त्रिपुरान्तक सुरेशान का समाराधन करके गुणावास में जो यह आपने प्राप्त किया है—इसमें क्या आश्चर्य की बात है ? ॥४८॥ केवल चक्षु के द्वारा देखना और प्रक्षिण देवेश को करन नमन करना लिङ्ग मूर्ति भगवान् शिव इतना ही सम्मान करना राज्य की प्राप्ति करा देना वाला बताया गया है ॥४९॥

जातिस्मरत्वमैश्वर्यं विद्याज्ञान प्रजामुत्तमम् ।

अज्ञानाद्वा भयाद्वाऽपि दृष्ट्वैवेह महेश्वरम् ॥५०॥

नाम्नाऽपि नरकच्छेदः स्मरणाद्धं बुध पदम् ।

पूजानाद्यस्य निर्वाणं तमोक्ष को न सथयेत् ॥५१॥

फात्रं प्रमादाज्जायेत घ्रृवं कालेन देहिनाम् ।

अथिना त्वस्त्रिनान्वामान्सद्यः फलति शवरः ॥५२॥

शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति महेश्वरम् ।

तेऽपि यान्ति तनुं त्यक्त्वा शिवलोकमनामयम् ॥१३॥

चराचरगुरोरस्य शंभोरमिततेजसः ।

न कृता येहं डा भक्तिर्गच्छितास्ते स्फुटं जनाः ॥१४॥

प्रमादेनाप यैः कापि प्रणामः धूमिनः कृतः ।

कल्पान्तेऽपि भयग्रन्थिर्न तं पा जायते पुनः ॥१५॥

जाति स्मरत्य-ऐश्वर्य-विद्या का ज्ञान भजा का गुण यह सब तो भगवान् से अवस्था भय से यहाँ पर महेश्वर प्रभु को देखकर ही प्राप्त हो जाया करता है । केवल नाम का उच्चारण करने से ही नरको का छेदन हो जाया करता है और शिव का स्मरण करने से विषुषो का पद प्राप्त होता है । पूजन करने से उस पुरस् को निर्वाण पद प्राप्त हो जाया करता है ऐसे महामहिम देव का कौन भूढ़ है जो समाश्रय ग्रहण नहीं करेगा ॥१०॥११॥ देहचारियों को बुद्धि वान में भगवान् के प्रसाद से फल होता है और निश्चित रूप में हुआ करता है । जो ज्योतिन हैं उनकी सम्पूर्ण कामनाओं को भगवान् वागदूर सुख ही फलित कर दिया करते हैं ॥१२॥ जो नर लक्ष्मी में भी निर ही महेश्वर प्रभु का स्मरण किया करते हैं वे भी अपने शरीर का परित्याग करने के पदवान् बना-मय शिवलोक को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥१३॥ अपरिमित तेज वाले चर-भर सबके गुरु भगवान् सम्भु की भक्ति जिन्होंने नहीं की है और कुछ नश्वर भाव हृदय में नहीं लाये हैं वे मनुष्य स्फुट रूप में बन्धित ही रह जाया करते हैं ॥१४॥ प्रमाद में भी जिन्होंने चरों पर भी धूमि प्रभु को प्रणाम किया है उनकी कल्याण में भी गौणार्थिक धन्य नहीं हुआ करती है ॥१५॥

सावन्धर्मन्ति म गारे मोरमोहशायना ।

नाप्येवन्ति विस्मयाः यावदेव धरीग्निः ॥१६॥

द्विहागपुराणादिनिबन्धनव्याचनम् ।

ये तु तुं मनुष्येव भगवान् नानि वे नरा ॥१७॥

प्रतीकान्तेषु तीर्थेभ्यो यत्नम् ।

तत्तेषा स्यान्न स देह इत्याह परमेश्वर ॥५८॥

विनष्टलोभा विषयेषु निस्पृहा प्रसन्नचिताश्च शिवार्चनोद्यता ।
ब्रजन्ति श भो परम सनातन निरामय यत्प्रवदन्ति सूरय ॥५९॥
कुल पवित्र पितर समुद्धृता वसुन्धरा तेन च पाविता द्विजा ।
सनातनोऽनादिरनन्तविग्रहो हृदि स्थितो यस्य सदैव शकर ॥६०॥

तभी तक ये श्रुणी इस ससार में शोक मोह में परायण होकर भ्रमण किया करते हैं जब तक ये शरीरधारी भगवान् विरूपाक्ष की अर्चना नहीं किया करते हैं ॥५९॥ इतिहास और पुराणादि जो भगवान् शिव के विषय में लिखित पुस्तकें हैं उनका वांचवा जो कोई एक बार भी इस जीवन में किया करते हैं और इस प्रकार से जो नर भक्ति भाव से श्रवण किया करते हैं। उनको व्रत उपवास और दानों में जो भी कुछ पुण्य-फल प्राप्त होता है वह हो जाया करता है—इसमें लेशमात्र भी सन्देह का कोई भी अवसर नहीं है—ऐसा परमेश्वर ने स्वयं कहा है ॥५८॥ विषयों में लाभ को नष्ट कर देने वाले—निस्पृह अर्थात् किसी भी प्रकार की कोई भी इच्छा नहीं रखते हैं प्रसन्न चित्त वाले और शिव के अर्चन में उद्यत रहने वाले मनुष्य भगवान् शम्भु के परम सनातन विरामय पद को प्रणाम किया करते हैं ऐसा सूरिगण कहते हैं ॥५९॥ हे द्विजो ! उस पुरुष का कुल परम पवित्र हो जाता है—उसके पितृगणों का समुद्धार कर देते हैं—और उसके सम्पूर्ण वसुन्धरा को भी पावित कर दिया है जिनके हृदय में सनातन-अनादि-अनन्त विग्रह वाले भगवान् शङ्कर सदा ही स्थित रहा करते हैं अर्थात् जो सर्वदा शिव का मन में स्थान रखता करते हैं ॥६०॥

॥ रक्तासुर वध कथन ॥

पार्वत्या श्रोतुमिच्छामो माहात्म्य रोमहर्षण ।
जघान सा यथा दैत्यान् रक्तासुरपुरोगमान् ॥१॥

प्राणिन्य महादेवी शङ्करार्घशरीरिणीम् ।
 महेन्द्राणोश्वरनुत भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥२॥
 एकाक्षरीति विरूपाता ब्राह्मो दाक्षयणीति या ।
 उमा हैमवती दुर्गा सती माता महेश्वरी ॥३॥
 आर्याऽम्बिका मृडानी च चण्डी नारायणी शिवा ।
 महालक्ष्मीजगन्माता कालिका मेनकात्मजा ॥४॥
 नानारूपधरा सौमवतीर्वै पार्वती ।
 धर्मसंस्थापनार्थाय निष्कन्ती दैत्यदानवान् ॥५॥
 परमात्मा यथा रुद्र एकोऽपि बहुधा स्थितः ।
 प्रयोजनवशाद्देवी गीयाऽपि बहुधा भवेत् ॥६॥
 आमीद्रक्तामुरो नाम महिषस्य मुतो बली ।
 महामायो महाबाहुर्हिरण्याक्ष इवापरः ॥७॥

श्रुतियों ने कहा—हे रोम हर्षणजी ! अब हम देवी जगदम्बा पार्वतीजी का माहात्म्य श्रवण करना चाहते हैं जिनमें रत्नमुर जिनमें प्रधान या ऐमे दैत्यों का हनन किया था ॥१॥ श्री मूलजी ने कहा— भगवान् रावर देव की अर्धाङ्गिनी महादेवी को प्राणपात करने जो महेन्द्राणी और ईश्वर के द्वारा भी वन्दिता हैं और अपने भक्तों पर अनुग्रह करने वाली है ॥२॥ जो एकाक्षरी—दम नाम से विख्यात है और जो ब्राह्मी-दायादनी-उमा-हैमवती-दुर्गा सती-माता-महेश्वरी-अम्बिका-मृडानी-चण्डी-नारायणी-शिवा-महानदमी-जगत् की माता-कालिका-मेनकात्मजा और अनेक रूपों के धारण करने वाली है वह ही 'पार्वती' दम नाम से अत्यन्त होकर आई हैं । उनसे धर्म की स्थापना करने के लिए दैत्य और दास्यों का निह्वन किया है ॥३॥४॥ जिस प्रकार से एक ही परमात्मा रूद्र स्थित रहा करते हैं वैसे ही प्रयोजन के मत से वह देवी भी एक ही होके हुए बहूत से स्वरूपों में हो जाया करती है ॥५॥ एक रत्नमुर नाम वाला भाई पामुर का पुत्र बहूत हो अपि

बलवान् था । वह महती माया वाला महान् भूजाओं से युक्त बहुत बलवान् था । ७।

स विजित्य सुरान्सर्वान्विजिबन्द्वाग्निपुरोगमान् ।
 त्रैलोक्येऽस्मिन्निरातङ्कश्चके राज्यं प्रतापवान् ॥८॥
 तस्यैते मत्प्रिणश्चऽऽसन्द्वात्मानो मदोत्कटाः ।
 त्रयस्त्रिंशद्विजश्रेष्ठाः सहस्राक्षौहिणीयुताः ॥९॥
 सिंहत्कन्धा महाकाया दुरात्मानो महाबलाः ।
 धूम्राक्षो भीमदंष्ट्रश्च कालपाशो महाहनुः ॥१०॥
 ब्रह्मघ्नो यज्ञकोपश्च स्त्रीघ्नो बालघ्न एव च ।
 विद्युन्माली च बन्धूकः शङ्कुकर्णो विभावसुः ॥
 देवान्तको विधर्मश्च दुर्भिक्षः क्रूर एव च ।
 हयग्रीवोऽश्वकर्णश्च केतुमान्वृषभो गजः ॥१२॥
 शलभः शरभो व्याघ्रो निकुम्भो मणिको वक्रः ।
 सूर्यको विश्रुरो माली कालो दण्डश्च केरलः ॥१३॥
 स कदाचित्ममासीनो दैत्यकोटिसमावृतः ।
 सदस्ययात्रवीहृत्यान्दानवान्सनरास्तथा ॥१४॥
 मा यजध्वं स्तुवाध च पूज्योऽहं भवतां सदा ।
 यस्तु देवान्समातिष्ठेत्स गच्छेद्ब्रह्मयता मम ॥१५॥

उगने सभी सुरों को युद्ध में जीत लिया था जिनमें विष्णु-इन्द्र और अग्नि सभी पुरोगामी थे । वह ऐसा प्रताप वाला था कि त्रैलोक्य में निरातङ्क-राज्य कर रहा था । ८। उगके द्वात्मा मदोत्कट मयी थे । हे द्विज श्रेष्ठो ! ये सब तैत्तिरीय थे जो महर्षी अशोहिणी सेनाओं से युक्त रह गये थे । ९। इनके रत्न सिंहों के समान थे—इनका शरीर विशाल था—ये सभी बड़े दुरात्मा थे और महान् बलशाली थे । उनके नाम—धूम्राक्ष-भीमदंष्ट्र-कालपाश-महाहनु-ब्रह्मघ्न-यज्ञकोप-स्त्रीघ्न-बालघ्न-विद्युन्माली-बन्धूक-शङ्कु-कर्ण-विभावसु-देवान्तक-विधर्म-दुर्भिक्ष-क्रूर-हयग्रीव-अश्वकर्ण-केतुमान्-वृषभ-गज-शलभ-शरभ-व्याघ्र-निकुम्भ-मणिक-वक्र-सूर्य-काल-दण्ड-च-केरल-स-कदाचित्ममासीन-दैत्यकोटिसमावृत-सदस्ययात्र-वीहृत-त्यान्दान-वान्सनरा-स्तथा । १४। मा यजध्वं स्तुवाध च पूज्योऽहं भवतां सदा । यस्तु देवान्समातिष्ठेत्स गच्छेद्ब्रह्मयता मम ॥१५॥

हयग्रीव-अश्वकर्जं केतुमाद्-वृषभ-यज्ञ-शयन धारण-शस्त्र-निवृत्त्य-मणिक
चक्र-सूर्यन-विश्वरु मात्मी कान दण्ड-वेग्न ये थे । वह किसी समय में
करोहो दैत्यो मे समावृत्त हुआ पैदा हुआ था । उसने सभा में सब
दैत्यो—दानको और नरो से कहा था—तुम खोण किसी का भी यजन
मत करो—ध्वन न करो क्योंकि मैं ही सदा आप सब लोगों का पूज्य
हूँ । जो कोई भी देवों का पूजनार्चन करेगा मैं उसको मार
हालूंगा । १०।१५।

दानयज्ञोपवामाश्च त्यक्त्वा देवर्षिर्दशितान् ।
प्रत्यक्षमोक्ष्यान्भुञ्जध्व ययेष्ट सुरयोपित ॥१६॥
इति दैत्येन्द्रवाक्येण नष्टा यज्ञक्रियास्तदा ।
नाधीयन्ते तदा वेदा न पूज्यन्ते च देवता
उत्सवा न प्रवर्तन्ते सर्व मासीत्तदाऽऽमुरम् ।
धर्महीनस्ततो लोको म्लेच्छाकुल इवाभवत् ॥१८॥
धर्मनाशात्सुरेन्द्रस्य बलहानिरजायत ।
ज्ञात्वा हीनबलं शक्रं दानवास्त समाद्वबन् ॥१९॥
सौर्गभिर्भूतोऽसुरैर्गाढं त्यक्त्वा राज्यं च देवराट् ।
बृहस्पतिमुनागम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥२०॥
रक्तासुराभ्यनुज्ञाता दैत्या कोटिसहस्रशः ।
आवाधन्ते स्म सर्वान् भद्रवार्थं न स शय ॥२१॥

दान यज्ञ-उपवास जो देवो ने और ऋषियो ने दर्शित किये हैं उन
सब का त्याग करके प्रत्यक्ष सुर्यो का भोग करो और ययेष्ट रूप से
देवाङ्गना का उपभोग किया करो । १६। इन दैत्येन्द्र के वचन से त्रिलोकी
में सभी यज्ञ की क्रियाओं का विनाश हो गया था । उस समय में कोई
भी वेदो का अध्ययन नहीं किया करते थे और दयताम्य का यजन भी
नहीं किये जाते थे । १७। कोई भी उत्पन्न नहीं पर प्रवृत्त नहीं होते थे
उस समय में तो महादैत्य के भय में समस्त समार ही आसुरी प्रकृति

वाला हो गया था । तब ही सब लोक धर्म से हीन म्लेच्छों के द्वारा ही धिरा हुआ सा हो गया था । १८। धर्म की हानि होने से सुरेन्द्र के बल की कमी हो गयी थी । जब दानवों ने इन्द्र को हीन बल वाला समझ लिया था तो सब दानवों ने उस पर आक्रमण कर दिया था । १९। वह देवों का राजा जब असुरों के द्वारा बहुत अधिक अभिभूत हो गया था तो उसने अपना राज्य का सिंहासन ही त्याग दिया था । इन्द्र ने सुरगुरु बृहस्पतिजी के पास जाकर यह वाक्य कहा था— २०। हे भगवद् ! रक्तासुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त किये हुए करोड़ों सहस्र दैत्याण सर्वत्र बाधाएं सब ओर से कर रहे हैं और—वे सब मेरे वध के लिए ही तैयार हो रहे हैं—इसमें तनिक भी सशय नहीं है । २१।

न स्यातुमत्र शक्रोमि न गन्तुं तैस्त्वभिद्रुतः ।

सर्वाया मोद्धुमिञ्जामि यद्भविष्यति ॥२२

नश्यतो युध्यतो वाऽपि तावद्भवति जीवितम् ।

यावत्प्रमाष्टि न विधिर्मालेऽस्य लिखिताक्षरम् ॥२३

जयमाशस मे ब्रह्मन्योत्स्येऽहमरिभिः सह ।

मूर्हतं ज्वलितं श्रेयो न तु धूमायितं चिरम् ॥२४

विकृतस्य जीवितं पुंसः शत्रूणामाततायिनाम् ।

अपकर्तुं शक्तो यो जीवामीत्यधिगच्छति ॥२५

कर्मयुक्तं किलैश्वर्यं भवायुक्तं च पौरुषम् ।

तस्माद्युद्धं करिष्यामि ध्रुव श्रेयो भविष्यति ॥२६

श्रुत्वैव मधवद्वाक्यं वाचस्पतिरथाब्रवीत् ।

न कालो विग्रहस्याद्य किं कोपेन शचीपते ॥२७

न च खेदस्त्वया कार्यः कार्याणां गतिरीदृशी ।

दैवाद्भ्रूदन्ति भूतानां संपदो विपदोऽपि वा ॥२८

मैं न तो यहाँ पर ही स्थित रह सकता हूँ और न उनके द्वारा अभिद्रुत हुआ वही अन्य स्थान पर ही जाने में समर्थ हूँ । मैं तब प्रहार से युद्ध करने की ही इच्छा करता हूँ फिर जो भी होनहार है

वही होगा । २२। नष्ट होते हुए और युद्ध करते हुए अभी तब मैं
रहूँगा तब तक मेरा जीवित शेष रहेगा मैं बराबर युद्ध करता ही
रहूँगा जब तक विधाता इसके माल में लिखे हुए अक्षरों का प्रमाजंन नहीं
करते हैं । २३। ह ब्रह्मन् ! आप मुझे विजय होने का आशीर्वाद दीजिए ।
मैं अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करूँगा । एक मुहूर्त मात्र का समय
आज्वल्यमान रहे बड़ी कल्याण करने वाला होता है और जो समय
धूमयित रहे वह अशुभ भी अच्छा नहीं हुआ करता है । २४। उस
पुरष का जीवन ही त्रिवारने के योग्य है जो आनतायी शत्रुओं के
अपकार करने में असमर्थ होवे और मैं जीवित रहता हूँ—ऐसा मन में
ममत्ता करता है । २५। ऐश्वर्य तो कर्म के ही अधीन हुआ करता है
और पौष्ट्य मदायक होता है । इस लिए मैं युद्ध करूँगा । निश्चय ही
मेरा श्रेय होगा । २६। इस तरह के इन्द्र देव के वाक्य को सुनकर इसके
उपरान्त बृहस्पतिजी ने उससे कहा था हे शचीपते ! आज तो विग्रह करने
की काल ही नहीं है । फिर इस कोप का करना भी तुम्हारा धर्म ही
है । आपको इस विषय में नेद भी नहीं करना चाहिए क्योंकि कार्यों
को हानि की गति ऐसी ही हुआ करती है । प्राणियों को ससम्पाए और
विपदाएँ देव के वध से हुआ करती हैं । २७। २८।

स्वशक्ति परशक्ति च पाङ्गुष्यविदुदारधी ।
देशकालबलोपेताञ्ज्ञात्वा विग्रहमाचरेत् ॥२९॥
देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हविरप्रयतेष्विव ॥३०॥
सम्यग्विज्ञातशास्त्रयो राजा विजयसाचरेत् ।
सप्ताङ्गराज्यत्राण च बुद्ध्वा वाऽरिविनिग्रहम् ॥३१॥
कुर्यादेवान्यथा नाशमुपयाति शचीपते ।
विश्वासयति भूतानि न च विश्वसते क्वचित् ॥३२॥
छिद्रेषु योऽन्विष्याच्छुश्रु च राज्य महदश्रुते ।
साप्रत वदमूयोऽसौ त्तं देवानवलोकित ॥३३॥

वाला हो गया था । तब तो सब तोक धर्म में हीन मोछो के द्वारा ही घिरा हुआ सा हो गया था । १८। धर्म की हानि होने से सुरेन्द्र के बल की कमी हो गयी थी । जब दानवों ने इन्द्र को हीन बल वाला समझ लिया था तो सब दानवों ने उस पर आक्रमण कर दिया था । १९। वह देवों का राजा जब असुरों के द्वारा बहुत अधिक अभिभूत हो गया था तो उसने अपना राज्य का सिंहासन ही त्याग दिया था । इन्द्र ने सुर गुरु बृहस्पतिजी के पास जाकर यह वाक्य कहा था—२०। हे भगवद् ! रक्तासुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त किये हुए करोड़ों सहस्र दैत्यगण सर्वत्र बाधाएं सब ओर से कर रहे हैं और—वे सब मेरे वध के लिए ही तैयार हो रहे हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । २१।

न स्थातुमत्र ञ्जक्रोमि न गन्तुं तंस्त्वभिद्रुत ।

सर्वथा योद्धुमिञ्जामि यद्भविष्यति ॥२२

नश्यतो युध्यतो वाऽपि तावद्भवति जीवितम् ।

यावत्प्रमार्ष्टि न विधिर्भालेऽस्य लिखिताक्षरम् ॥२३

जयमाशंस मे ब्रह्मन्योत्प्येऽहमरिभिः सह ।

मूर्तं ज्वलितं श्रेयो न तु धूमायितं चिरम् ॥२४

विकृतस्य जीवित पुंस शत्रूणामाततायिनाम् ।

अपकर्तुं शक्नोती यो जीवामीत्यधिगच्छति ॥२५

कर्मायत्तं किलैश्वर्यं मदायत्तं च पौरुषम् ।

तस्मायुद्धं करिष्यामि ध्रुव श्रेयो भविष्यति ॥२६

श्रुत्वैव मघवद्वाक्यं वाचस्पतिरथाब्रवीत् ।

न कालो विग्रहस्याद्य किं कोपेन शचीपते ॥२७

न च खेदस्त्वया कार्यः कार्याणां गतिरीदृशी ।

दैवाद्भद्रन्ति भूतानां संपदो विपदोऽपि वा ॥२८

मैं न तो यहाँ पर ही स्थित रह सकता हूँ और न उनके द्वारा अभिद्रुत हुआ वही अन्य स्थान पर ही जाने में समर्थ हूँ । मैं सब प्रकार से युद्ध करने की ही इच्छा करता हूँ । फिर जो भी लोतहार है

बहीहोगा । २२। नष्ट होते हुए और युद्ध करते हुए अभी तब मैं
रहूंगा तब तक मेरा जीवित शेष रहेगा मैं बराबर युद्ध करता ही
रहूंगा जब तक विघाता इसके भाल में लिखे हुए अक्षरों का प्रमाज्जन नहीं
करते हैं । २३। ह ब्रह्मन् । आप मुझे विजय होने का आशीर्वाद दीजिए ।
मैं अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करूंगा । एक मुहूर्त मात्र का समय
जाज्वल्यमान रहे वही कल्याण करने वाला होता है और जो समय
भूमायित रहे वह अत्यधिक भी अच्छा नहीं हुआ करता है । २४। उस
पुरुष का जीवन ही शिक्कारने के योग्य है जो आनतायी शत्रुओं के
अपकार करने में असमर्थ होवे और मैं जीवित रहता हूँ—ऐसा मन में
समझा करता है । २५। ऐश्वर्य तो कर्म के ही अधीन हुआ करता है
और पीछे सदायस होता है । इस लिए मैं युद्ध करूंगा । निश्चय ही
मेरा श्रेय होगा । २६। इस तरह के इन्द्र देव के वाक्य को सुनकर इसके
उपरान्त बृहस्पतिजी ने उससे कहा था हे शचीपते ! आज तो विप्राह करने
की काल ही नहीं है । फिर इस कोप का करना भी तुम्हारा व्यर्थ ही
है । आपको इस विषय में स्नेह भी नहीं करना चाहिए क्योंकि कार्यों
के होने की गति ऐसी ही हुआ करती है । प्राणियों को ससम्पादे और
विपदाएँ देव के वध से हुआ करती हैं । २७। २८।

स्वशक्तिं परशक्तिं च पाङ्गुण्यविदुदारधी ।

देशकालबलोपेताञ्ज्ञात्वा विग्रहमाचरेत् ॥२९॥

देशकालबिहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।

क्रियमाणानि दुष्यन्ति हविरप्रयतेष्विव ॥३०॥

सम्यग्विज्ञातशास्त्रर्थो राजा विजयसाचरेत् ।

सप्ताङ्गराज्यत्राण च बुद्ध्वा वाऽरिविनिग्रहम् ॥३१॥

कुर्यादेवान्यथा नाशमुपयाति शचीपते ।

विश्वासयति भूतानि न च विश्वसते क्वचित् ॥३२॥

छिद्रेषु योऽन्विवियाच्छुश्रु च राज्यमहदश्रुते ।

सप्रत बद्धभूयोऽसौ तत्त देवानवलोकित ॥३३॥

अतो युद्धावकाश ते न पश्यामि शतक्रतो ।

मत्सहायाश्च ये शूराः शक्तिमन्तो निरुत्सुका ॥३४॥

दुधर्पानपि ते शत्रूञ्जयन्त्येव सदा नृपा ।

पुरोधसैवमुक्तस्तु पुनराह पुरदर ॥३५॥

पाङ्गुण्य को जानने वाला उदार बुद्धि से युक्त पुरुष अपनी शक्ति और पराधी शक्ति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही देश—काल और बल से उपेतो को समझकर ही युद्ध करे ॥३४॥ देश और काल से विहीन कर्मों को विपरीत के समान किये हुए कर्म अप्रयत्नों से दबिके ही तुल्य दूषित हो जाया करते हैं ॥३५॥ जो मंत्री भाति शस्त्रार्थों को ज्ञात कर लेता है वही राजा विजय प्राप्त किया करता है । अथवा साल राज्य के प्राण करने वाले अङ्गों को समझकर शत्रुओं के साथ विग्रह करे ॥३६॥ हे शचीपते ! जो इसके विपरीत युद्ध किया करके हैं वे नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं । भूतो को विश्वास दिलाता है किन्तु स्वयं कहीं पर भी विश्वास नहीं किया करता है ॥३७॥ जो छिद्रों में शत्रु का अनुगमन किया करता है वही महान् राज्य की प्राप्ति किया करता है । इस समय में यह बड़ मून है और आप देव के द्वारा अवसोक्ति नहीं हो रहे है अर्थात् भाव्य आपके अनुकूल नहीं है । हे शतक्रतो ! अतएव इसीलिए मैं आपको युद्ध का अवसर नहीं समझता हूँ । मेरे सहायक जो शूर हैं वे शक्तिमान हैं किन्तु उत्सुकता से रहित हैं । नृप सदा तुम्हारे दुधर्पे शत्रुओं को भी जीत ही लेते हैं । इस प्रकार से पुरोहित जी के द्वारा कहे जाने पर फिर—इन्द्र ने कहा—॥३८॥३९॥४०॥

अभिभूतो भूक्ष दैत्यैर्नाह जीवितुमुत्सहे ।

शत्रुभिर्वर्तमानस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य च ॥३६॥

व्याधितस्य दरिद्रस्य श्रेयो मृत्युर्न जीवितम् ।

किमत्र बहुनोक्तेन योऽस्येह दानवैः सह ॥३७॥

नृणां कर्मसमारम्भे श्रेयसी ह्येकचित्तता ।

गुणदोषावुमावेदावेकीकृत्य विचक्षण ॥३८॥

कार्यमारभते यस्तु तस्य दोषाः पराङ्मुखाः ।
 यावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ॥३॥
 आगतं तु भयं दृष्ट्वा योद्धव्यं वाङ्मयीरुवत् ।
 मृतस्य जीवतो वाऽपि नरस्येह प्रयुध्यतः ॥४॥
 श्रेय एव महर्षि, स्नात्तस्माद्योत्स्याम्यहं परैः ।
 तयोः सवदतोरेव ब्रह्माऽऽगत्येदमब्रवीत् ॥४॥
 मा वपाद कृथा दक्ष शरणं व्रज पार्वतीम् ।
 या जघ्ने महिष दैत्य रुद्र चित्रासुर तथा ॥४॥

दैत्यो के द्वारा अभिभूत हुआ मे जो बहुत ही अधिक तिरस्कृत हो चुका हूँ । ऐसी स्थिति में मैं जीवित रहना नहीं चाहता हूँ । जो शत्रुओं के द्वारा घिरा हुआ वर्तमान हो—मूर्ख हो और स्त्री के द्वारा जिन हो—व्याधि से युक्त हो—दरिद्र हो उसका श्रेय कभी नहीं हुआ करता है और उसकी मृत्यु ही है जीवन नहीं है । यहाँ पर बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है । मैं तो दानवों के माथ अवश्य ही युद्ध करूँगा ॥३६॥३७॥ मनुष्यों के कर्मों के समारम्भ में एकचित्त का होना ही कल्याणकारी होता है । विषक्षण पुष्प को गुणों और दोषों दोनों को एकीकृत करके ही कार्यों का आरम्भ करना चाहिए ॥३८॥ जो इस रीति से कार्य का आरम्भ किया करता है उसके सब दोष पण्डुमुख हो जाया करते हैं । भय से सभी तब डरना चाहिए जब तक नहीं आया है । आये हुए भय को देखकर तो अभीरुवी भाँति ही अर्थात् शूरता से युद्ध करना चाहिए । मृत अथवा जीवित मनुष्य का जो युद्ध कर रहा हो श्रेय ही महान् ऋद्धि है । इसीलिये मैं शत्रुओं से युद्ध अवश्य ही करूँगा । वे दोनों जब इस प्रकार से सम्वाद कर रहे थे तो वहाँ पर ब्रह्माजी ने उपस्थित होकर यह कहा था ॥३६॥३७॥३८॥३९॥४०॥४१॥ हे इन्द्र ! विपाद मत करो और तुम जगदम्बा पार्वतीजी की शरण में चले जाओ जो देवी ने महिषासुर को रुद्र और चित्रासुर दैत्य को मार चुकी है ॥४२॥

सद्यो रत्नासुरं हत्वा स्व राज्यं ते प्रदास्यति ।
 एवमुक्त्वा हरिं ब्रह्मा नञ्चैवान्तरधीयत ॥४३॥
 शक्रोऽपि त्रिदशैः सार्धं जगाम हिमवान्दिरिम् ।
 स तत्र गन्त्वा शर्वाणीं निर्भयो विगतज्वरः ॥४४॥
 स्तोत्रेणानेन तुष्टाव शिवा चाकरवल्लभाम् ।
 जयाक्षरे जयानन्ते जयाव्यक्ते निरामये ॥४५॥
 जय देवि महामाये जय त्रिदशवन्दिते ।
 जय भद्रे विदेहस्ये जयाऽऽद्ये त्रिगुणात्मके ॥४६॥
 जय विश्वभरे गङ्गे जय सर्वार्थसिद्धिदे ।
 जय ब्रह्माणि कौमारि जय नारायणीश्वरि ॥४७॥
 जय वाराहि चापुण्ड्रे जयेन्द्राणि महेश्वरि ।
 जय मातृमंदाक्षि जय पावति सर्वमे ॥४८॥
 जय देवि जगज्ज्येष्ठे जयैरावति भारति ।
 मृगावति जयानन्ते तेजोवति जयामले ॥४९॥

यह जगदम्बा तुरन्त ही रत्नासुर को मार कर सुमयो तुम्हारा
 राज्य प्रदान कर देगी । इस रीति से ब्रह्माजी इन्द्र से कहकर वहाँ पर
 ही आगहित हो गये थे ॥४३॥ इन्द्र देव भी अन्य सब देवों के साथ
 हिमवान् गिरि पर चले गये । उसने वहाँ पहुँचकर शर्वाणी की सन्निधि
 में निहत् और विगतज्वर वाला होकर इस निम्न कथित श्रोत्र के द्वारा
 पादुकर गगवान् की वल्लभा शिवा का स्तवन किया था । इन्द्र देव ने
 कहा—हे जयाक्षरे ! हे जय अनन्त वाली ! हे जया व्यक्ते ! हे आभयो
 से रहित रहने वाली ! हे महामाये ! हे देवि हे देवो के द्वारा वन्द्यमान
 होने वाली ! आपकी जय हो । हे भद्रे ! हे विदेह में स्थित रहने वाली
 आरती जय होवे । हे माद्ये ! हे त्रिगुणात्मके ! आपकी जय हो ॥४४॥
 ॥४५॥ ॥४६॥ हे विश्वभरे ! हे गङ्गे ! आपकी जय हो । हे समस्त
 अर्थों की सिद्धि के प्रदाता करने वाली ! आपकी जय हो । हे ब्रह्माणि !
 रहे ! कीर्ति ! हेनिर तपोश्वरि ! आरता जय हो ॥४७॥ हे वाराहि !

हे चामुण्डे ! हे इन्द्राणि ! हे महेश्वरि ! आपकी जय होवे । हे माता महालक्ष्मि ! हे पार्वीति ! हे सर्वत्र सब में गमन करने वाली ! आपकी जय हो ॥४८॥ हे देवि ! हे जगत् मे सबसे थोड़े ! हे ऐरावति ! हे भारति ! हे अनन्ते ! हे तेजो वति ! हे प्रपले ! आपकी जय हो ॥४९॥

जयेशानि शिपे सवे जय नित्य जयाचिते ।
मोक्षदे जय सर्वज्ञे जय धर्मार्थकामदे ॥५०॥
जय गायत्रि कल्याणि जय सन्ध्ये विभावरि ।
जय दुर्गे महाकालि शिवदूति जयाजये ॥५१॥
जय दण्डमहामुण्डे जय नन्दे शिवप्रियं ।
जय क्षेमकरि शिवे जय भ्रामणि रेवति ॥५२॥
जयोमे साध्वि मङ्गल्ये हरसिद्धे नमोऽस्तु ते ।
जयाऽऽनन्दे महावर्णे महिषासुरघातिनि ॥५३॥
जयानघे विशालाक्षि जयानङ्गे सरस्वति ।
जयाशेषगुणावासे जय वृत्रासुरान्तके ॥५४॥
जय योगेशि सकल्पे जय त्रैलोक्यसुन्दरि ।
जय शुम्भनिशुम्भघ्ने जय पद्मेन्दुसभवे ॥५५॥
जय कौशिकि कौमारि जय वारुणि कामदे ।
नमो नमस्ते शर्वाणि भूयो भूयो जयाम्बिके ॥५६॥

हे इशानि ! हे शिवे ! हे सर्वे ! हे नित्ये ! हे अचिते ! आपकी जय हो । हे मोक्ष के प्रदान करने वाली ! हे सब कुछ का ज्ञान रखने वाली ! हे धर्म अर्थ और काम को देने वाली ! आपकी जय हो ॥५०॥ हे गायत्रि ! हे कल्याणि ! हे सन्ध्ये ! हे विभावरि ! आपकी जय होवे ! हे दुर्गे ! हे महा कालि ! हे शिव दूति ! हे अजये जय हो ॥५१॥ हे दण्ड महा मुण्डे ! हे नन्दे ! हे शिव प्रिये ! हे क्षेमके करने वाली ! हे शिवे ! हे भ्रामणि ! हे रेवति ! आपकी जय हो । हे उमे ! हे साध्वि !

हे मङ्गल्ये ! हे हर्षसिद्धे ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे आनन्दे !
 हे महावर्णे ! हे महिषासुर को मारने वाली ! हे अनये ! हे विशालाक्षि !
 हे अनङ्गे ! हे सरस्वती ! हे मरुत गुणों के आवास रूपे ! हे वृत्रासुर
 के अन्तकर देने वाली ! आपकी जय होवे ॥५२॥५३॥५४॥ हे योगेश !
 हे सङ्कल्ये ! हे जैलाम्य सुन्दरि ! आपकी जय हो । हे शुम्भ और निशुम्भ
 का दमन करने वाली ! हे पद्मेन्दु से उत्पन्न होने वाली ! आपकी जय
 होवे । हे कौशिकि ! हे कौमारि ! हे वारुणि ! हे कामदे ! हे क्षत्राणि !
 हे अश्विके ! आपको बारम्बार नमस्कार समर्पित है । आपकी जय हो
 ॥५५॥५६॥

ग्राहि नग्राहि नो देवि शरणागतवत्सने ।
 य इमा कीर्तयिष्यन्ति जयमाला भवानि ते ॥५७॥
 त्रिविधैरपि दुःखीर्घमुच्यन्ते परमेश्वरि ।
 सर्वपापविनिर्मुक्ताः सर्वैश्वर्यसमन्विताः ॥५८॥
 भान्ति लोके तथाऽऽदित्याः सर्वरोगविवर्जिताः ।
 देहावसाने तैऽवश्यं पश्यन्त्येव हि पार्वतीम् ॥५९॥
 नेन्द्रियाणां विकलता यथाऽऽग्नेषां भवेन्नृणाम् ।
 देवीलोक गमिष्यन्ति स्कन्दलोकोपरिस्थितम् ॥६०॥
 पुनरावृत्तिरहित रतोन्नजाप्यान्न संशयः ।
 सर्वं स्तुता भगवती महेन्द्रेणाय पार्वती ।
 आत्मानं दर्शयामास सर्वालंकरणान्वितम् ॥६१॥
 नमस्कृत्याथ ताम्भुचुः मुरास्ते भयनाशिनीम् ।
 हत्वा रक्तासुरं दैत्यं पाहि नो महतो भयात् ॥६२॥
 तेषां तद्वचनं श्रुत्वा दत्त्वा तेभ्योऽभयं ततः ।
 यभूवाद्भुतरूपा सा त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरा ॥६३॥

हे देवि ! हे शरण में समागतों पर प्यार करने वाली ! हमारा
 परित्राण करो—हमारी रक्षा करो । हे भवानि ! जो कोई भी आपकी
 जयमाला या पीर्त्तन करेगे हे परमेश्वरि ! वे तीनों प्रकार के दुःखों के

समुदायों से मुक्त हो जाया करते हैं । वे कीर्तन करने वाले लोग सभी पापों में निर्मुक्त होते हुए सब तरह के ऐश्वर्य से समान्वित हो जाते हैं । १७।१८। वे आदित्य होकर लोक में जाया करते हैं और सभी रोगों में वर्जित हो जाया करते हैं । देह के समाप्त हो जाने पर वे अवश्य ही पार्वतीदेवी का दर्शन प्राप्त किया करते हैं । १९। अन्य नरों की जैसी हुआ करती है वैसी इनको इन्द्रियों की विवशता कभी नहीं होनी है । वे सब स्वन्द के लोह में ऊपर में स्थित देवी लोक को चले जाया करते हैं । इस स्तोत्र के जाप से पुनरावृत्ति से अर्थात् ससार में फिर दूसरा जन्म ग्रहण करने से रहित हो जाया करते हैं—इस विषय में कृष्ण भी मगध नहीं है । २०। श्रीमूनजी ने कहा—महेन्द्र के द्वारा इस तरह से स्तुत हुई भगवती पार्वती ने अपने आपको दर्शन दिया था जो कि उनका स्वरूप सभी आभूषणों से समबद्ध न था । २१। पार्वतीदेवी का नमस्कार करने इसका उपरान्त मुरा न उस भय नागिनी देवी से प्रार्थना की थी कि रत्नासुर दैत्य का हनन करके महात् भय से हमारा परित्राण करिए । २२। उन देवों के भय से युक्त उन वचनों का श्रवण करने इसके उपरान्त उन सबको अमय वचन देकर वह तीन नेत्रों ताली मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करती हुई अद्भुत स्वरूप वाली हो गयी थी । २३।

मिहास्तु महादेवी नानागच्छास्त्रधारिणी ।

सुवक्त्रा विंशतिभुजा स्पृजं द्विचुल्लतोपमा ॥६४॥

ततोऽम्बिका ननादोच्चे मातृहाम मुहुर्मुहुः ।

तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरित जगत् ॥६५॥

प्रवम्पिनाऽसिया चोर्वी तदा वारिधिमेगला ।

शैवोत्पल्लवस्तनी रम्या प्रमदेव भयानुरा ॥६६॥

तेऽपि तन्नामुरा प्राप्ताश्चतुरङ्गवत्सोऽन्यथा ।

गम्यन्विदितवृत्तान्ता यालान्तरायमोपमा ॥६७॥

रक्षोदानवदंत्पाश्च पातालैष्वपि ये स्थिताः ।

ते सर्वे एव दैत्येन्द्रं कोटिशस्तमुपागताः ॥६८॥

देवारयस्तदा सर्वे सनद्धाश्चोच्च्रितध्वजाः ।

पालिता दानवेन्द्रेण नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥६९॥

तमालालिकुलाभासा जीभूतध्वनिनि स्वनाः ।

युगान्तमिव कुर्याणा नानालङ्कारभूयिताः ॥७०॥

मिह पर समास्टा हुई अनेक प्रकार के शस्त्रों और भस्त्रों को धारण करने वाली—सुन्दर मुख से सम्पन्न—बीस भुजाओं से युक्त महादेवी चमचमाती हुई विजली की लता के ही समान थी । ६४। इसके अनन्तर अम्बिकादेवी अट्टहास के साथ बारम्बार बहुत ही ऊँचे स्वर में नाद करने लगी थी । उनके उस महान् धोर नाद से सम्पूर्ण जगत् ध्वनित होकर मर गया था । ६५। उस समय में समस्त पृथ्वी कम्पित हो गई थी जिसके चारों ओर समुद्र की गेबला थी । शैल ही है उत्तुङ्ग (ऊँचे) स्तन जिसके ऐसी परम सुरम्य भय से आतुर प्रमदा के ही समान वह उर्वी बम्पायमान्त हो रही थी । वे असुर भी वहाँ पर प्राप्त हो गए थे जिनके पास चतुरङ्गिणी सेना थी और इस सेना के बल से वे बहुत ही उत्कट हो रहे थे । भलीभाँति जिनको सब वृत्तान्त विदित था और जो कालान्तक यम के समान भीषण थे । ६९। ७०। राक्षस-दानव और दैत्य जो नीचे वाले पाताल लोक में भी स्थित थे वे सबके सब करोड़ों की संख्या उस दैत्येन्द्र की सहायता करने के लिए उसके समीप में समागत हो गये थे । ६८। देवी के शत्रु उस समय में सब अपनी ध्वजाएँ ऊँची करके सन्नद्ध हो गये थे । जो कि दानवेन्द्र के द्वारा पालित थे और अनेक शास्त्रास्त्रों को हाथों में धारण किये हुए थे । ६९। तमाल वृक्ष की पत्ति तथा भौरो के समुदाय के समान एकदम कृष्णवर्णित वाले और महामेघों के समान ध्वनि करने वाले थे । वे सब अनेक अलङ्कारों से भूषित हुए युग के अन्त जैसा करने के लिये प्रस्तुत हो रहे थे । ७०।

गजघण्टारवौघ्नोग्रं हंयानामय हेपितैः ।
 मिहनादैश्च दूराणां शस्त्राणां वरुणितेन च ॥७१॥
 रयनेमिनिनादैश्च कम्पयन्तो वमुधराम् ।
 ततस्ते दानवाः सर्वे देवो दृष्ट्वा प्रहृषिताः ॥७२॥
 आम्फोटयन्तः पटहान्भेरीजर्जरिणीमुत्तान् ।
 अनेकान्वादयन्तोऽप्ये दारुदमरुटिण्डमान् ॥७३॥
 मनोजयैर्हंयैर्गजैश्चाचलननिभैः ।
 अत्यैर्विचित्रैराम्बा विरेजुर्देत्यपुंगवाः ॥७४॥
 एवविधे समाजे ता भवानी त्रिदशारयः ।
 सर्वा एव समाजघ्नुः शर्वाणी सर्वतोमुखीम् ॥७५॥
 द्याणैर्नानाविधैर्घोरैर्यमदण्डोपमैः सितैः ।
 कुठारचक्रारणुमुसलाङ्कुशनाङ्गलैः ॥७६॥
 पाशतोमरधूलैश्च दण्डपट्टिशमुद्गरैः ।
 परिघप्रासशफट्पट्टिशतघ्नीकण(पाद)पोपलैः ॥७७॥

हाथियों के घण्ट में बँधे हुए घण्टाआ के महान् उग्र घनघनाहट से तथा अश्वों के हिनहिनाहट से और दूरों के सिंह के समान गर्जन की ध्वनि से एव दैत्यों की रनखनाहट से—रथों की नेमियों के शब्दों से वे सब दैत्य दानव भूमि को प्रवर्णित कर रहे थे । इसके पश्चात् वे सब दानव समक्ष में देवी को देखकर अत्याधिक प्रहर्षित हो गये थे । ७१। वे सब दैत्य पटहों को पीट रहे थे—कुछ भेरी और जर्जरिणी के मुणों पर डट्टों की चोट मार रहे थे । अन्य लोग शङ्ख—डमरू और टिण्डल आदि अनेकों वाद्यों को बजा रहे थे । ७२। वे सब दैत्य श्रेष्ठ बहुत उत्तम मन के समान वेग वाले अश्वों के ऊपर तथा पर्वतों के समान गजों पर एव अन्य चित्र-विचित्र वाहनो पर समारूढ हुए उस समय में शोभित ही रहे थे । ७३। इस प्रकार के दैत्यों के समाज में वे देवी के शत्रुगण उस भवानी शर्वाणी और सर्वतो मुखी के ऊपर एक साथ सबके सब दैत्यास्त्रों के प्रहार करने के लिये द्रुत पड़े थे । ७४।

उन दैत्यों के पास प्रहार करते के लिये अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे जो नाना प्रकार के वर्षों वाले महान् घोर और मनराज के दण्ड के समानसित थे । कुठार—चक्र—परशु—भुसल—अंकुश—लाङ्गल—पाश—तोमर—शूल—दण्ड—पट्टिश—मुद्गर—परिध—प्रास—शक्ति—ऋषि—शतघ्नी—तथा पापल आदि अनेक दस्त्रास्त्रों से दैत्य आक्रमण कर रहे थे । ७५।७६।७७।

आयोगुडंभृं शुण्डीमिदचक्रकुन्तगदादिभिः ।
 छादयन्तो महादेवी सिंहनादान्विनेदिरे ॥७८॥
 सा हन्यमाना रायेण जज्वाल समरेऽम्बिका ।
 अग्रस्तसाऽय शर्वाणी शस्त्रास्त्राणि सुरद्विपाम् ॥७९॥
 शैलेन्द्रतनया देवी स्तूयमाना सुरपिभिः ।
 युयुधे दानवीः सार्धं महासमरदुदिने ॥८०॥
 ते हन्यमाना पार्वत्या तामेवाभिप्रदुदुवुः ।
 परिपूर्णं यथा काले दलभा जलवेदसम् ॥८१॥
 सैका प्रव्रवता तेषा बहूनामाततापिनाम् ।
 दधार वेग सर्वेषा मरुतामिव पर्वतः ॥८२॥
 पार्वतीशस्त्रनिभिन्ना दैत्यास्ते क्षतजेक्षणाः ।
 अलिङ्ग्य शेरते क्षोणी रते कान्तामिव प्रियाम् ॥८३॥
 मण्डलीकृतकोदण्डा ददृशुश्चाम्बिका तदा ।
 मृत्युजिह्वोदिताकारा प्राणकर्षणतत्पराम् ॥८४॥

आयोगुड—मृशुण्डी—चक्र—कुन्ता और गदा आदि के द्वारा महादेवी को छादित करते हुए उन दैत्य-दानवी ने सिंहनाद किये थे । ७८। उस समर में वह देवी जब दैत्यों के द्वारा हन्यमान हुई तो वह रोप रो अम्बिका जल उठी थी । और उस शर्वाणी ने सुरद्विपियों के सब शस्त्रास्त्रों को ग्रहित कर लिया था । ७९। उस महासमर के दुदिन में शैलेन्द्र की तनया देवी सुर और ऋषियों के द्वारा स्तूयमाना होती हुई दानवी के साथ युद्ध किया था । ८०। वे सब पार्वती के द्वारा हन्य-

मान होते हुए उसी देवी पर अभिद्रुत हुए थे । जिस तरह मे काल के परिपूर्ण होने पर शलभ (पतङ्ग) अग्नि में जाकर एक साथ गिरा करते हैं । वह एक ही थी और उन पर आक्रमणकारी के सभी थे तो उन समस्त प्रद्रुत हुए बहुत से आतातायियों का वेग मरुतो का वेग पर्वत के ही समान देवी न धारण कर लिया था । ॥८१॥८२॥ पार्वतीदेवी के हाथ से क्षिप्त-भिन्न हुए सब के दैत्य क्षतज्वलण हो गये थे और रति में प्रियवान्ता की तरह मे भूमि का आलिङ्गन करके सो रहे थे । ॥८३॥ मण्डली वृत्त कोदण्ड वाली अम्बिका को उस समय मे उन्होंने देखा था जो कि मृत्यु की जिह्वा के समान ही समुदित आगार वाली थी और प्राणा के अपकर्षण करने के यम परायण हो रही थी ॥८४॥

जघ्नुस्ते कोटिशो दैत्या पार्वती समाराङ्गणे ।
 हु कारेण निनादेन पातयन्ती सहस्रश ॥८५॥
 प्रचिच्छेद रणोऽरीणा शिरासि निक्षते शरै ।
 देवीकामुं कनिमुं वर्तदिव्यैर्नानाविधै शरै ॥८६॥
 दह्यन्तेऽसुरसैन्यानि तृणानीव दवाग्निना ।
 सिंहवेगानिलोद्धृताश्चूर्णयन्ती महारथान् ॥८७॥
 चवर्षं शरवर्षाणि युगान्ताम्बुदसनिभान् ।
 गजवाजिरथाना च द्रवता पतता तथा ॥८८॥
 दैत्येन्द्राणा च भारेण श्वसतीव वसुधरा ।
 समृत्पित रजो घोर सस्पृश्यार्कुन्दुमण्डलम् ॥८९॥
 गजाश्चदैत्यरक्तोर्ध्वं प्रशान्तिमगमत्तत ।
 प्रावर्तन्त नदी तत्र शोणितोदतरङ्गिणी ॥९०॥
 हयमत्स्या गजग्राहा चर्मैर्लर्मास्थिसकुला ।
 महारथमहावर्ता पताकाद्यत्रफेनिला ॥९१॥

उस समाराङ्गण मे उन करोडो दैत्यो ने मिलकर पार्वती देवी पर हनन करने के लिये प्रहार किये थे किन्तु पार्वती देवी ने अपने

हुत्कार के निनाद से ही सहस्रो भूमि पर गिराती हुई रणभूमि में शत्रुओं
मस्तकों को अपने पैने पञ्जों से काट कर फेंक दिया था । देवों के
धनुष से निकले हुए दिव्य नाना प्रकार के शरों के द्वारा दवाग्नि के
द्वारा तृणों के समान ही असुरों की सेनाएं दग्ध होगयी थीं । सिंह के
वेग से उत्थित वायु के शोको से बड़े-बड़े महारथों को चूर्ण कर रही थी
॥८५-८७॥ युगान्त में होने वाले मेघों के समान ही शरों की वर्षा की
थी । गज-अश्व और रथों के द्रविण एव पतित होने वालों के-दैत्यों
के भार से भूमि साँसें सी ले रही थी । उप युद्ध क्षेत्र में महान् घोर
रज उठकर छा गयी थी जो सूर्य और चन्द्र मण्डल तक व्याप्त होगई
थी ॥८८॥८९॥ वह उड़ी हुई धूल हाथी घोड़े और दैत्यों के शिर के
प्रक्षल बहाव से प्रक्षालित हुई थी और वहाँ पर क्षोणित रूपी जल की
एक नदी बहने लग गयी थी ॥९०॥ उसमें जो घोड़े बह रहे थे वे ही
मत्स्य के समान दिखाई देते थे और हाथी ग्राह जैसे प्रवाहित हो रहे
थे तथा चर्म कूर्म जैसे थे । इस तरह से वह अस्थियों से सकुल हो रही
थी । बड़े-बड़े रथ ही उस नदी में महान् आवर्त जैसे दिखलाई पड़
रहे थे एव पताकाए और छत्र जो उसमें बहे चले जा रहे थे वे ही
मानों केन जैसे थे जिससे वह नदी केनिल हो रही थी ॥९१॥

बहन्ती यमलोकान्त दैत्यासुरतटद्रुमान् ।

तद्वल च वभी शीघ्र शस्त्रास्त्रक्षतकधरम् ॥९२॥

गलद्रुधिरकेनीघ घूर्णिताण्वसनिभम् ।

बध्यमान स्वक सैन्य दृष्ट्वा देव्याश्च विक्रमम् ॥९३॥

रक्तासुरोऽभ्युवाचेद सैनिकास्त्रातविस्मय ।

हन्यता हन्यता शीघ्र भवानीकालसनिभा ॥९४॥

परिवृत्य रथैर्नागैर्हयैश्चैव पदातिभिः ।

दानवेश्वरवाक्येण ततस्ते तस्य सैनिका ॥९५॥

त्यक्तत्वाऽऽत्मान महारमानो देवीमापुर्बलान्विता ।

पूग्राक्षप्रमुखा धीरा षोडशीव महारथा ॥९६॥

शरशक्तिगदाशूलैस्ताडयन्तोऽम्बिकां रणे ।

श्वसन्त इव नागेन्द्राः प्रज्वलन्त इवाग्नयः ॥६७॥

जम्भन्त इव शार्दूल गजन्त इव तोयदाः ।

युयुधुरते स्थिरीभूता विविधायुधयोधिनः ॥६८॥

दैत्य और असुर रूपी तट के ऊपर रहने वाले द्रुम जैसे ये जिनको यह खदिर नदी यमलोक के अन्न तक ही बहाकर पहुँचा रही थी । उस समय में उस दैत्येन्द्र की सेना दीघ्र ही शस्त्रास्त्रों के द्वारा कटी हुई कन्धराओं वाली होकर एक विचित ही शोभा से युक्त हो गयी थी ॥६२॥ बहते हुए खदिर के केनो के समुदाय वाली और घूर्णित अर्धवृत्त के सदृश वध्यमान होती हुई अपनी सेना को देखकर और जगदम्बा देवी के महान् विक्रम को देखकर विस्मित होकर रक्तामुर अपने सैनिकों से यह बोला—अरे ! आप सब मिलकर इस काल के सदृश भवानी का हनन शीघ्र कर डालो ॥६३॥६४॥ इसके अनन्तर दानवेश्वर के इस वचन से उसके सब सैनिक रथ-गज-अश्व और पैदल कीरों के साथ चापिम लौट पड़े और अपने आपने जीवन की आशा छोड़कर सब महारथा वल से समन्वित होकर देवी पर आक्रमण करने लगे थे । घुम्राक्ष जिनमें प्रधान था ऐसे उस सेना में परमवीर सोलह ही महारथ थे । उन्होंने रणक्षेत्र में देवी पर शर-शक्ति-गदा और शूलों के द्वारा ताडन कर रहे थे । बड़े-बड़े नागेन्द्र अन्तिम भाँस लेते हुए जलती हुई अग्नियों के समान थे । बड़े-बड़े शार्दूल सिंहनाद करते हुए गर्जन करने वाले मेघों के सदृश दिखाई दे रहे थे । वे अनेक प्रकार के धातुधो से युद्ध करने वाले स्थिरीभूत होकर युद्ध कर रहे थे ॥६५-६८॥

नृत्यन्तीव च रुद्राणी नून भाति महाहवे ।

पावन्ती चण्डकोदण्डनादापूरितदिङ्मुखी ॥६९॥

पट्टिशामिहतान्काश्चिन्मुसलोन्मयितारतथा ।

सारोहान्पातयामास गजानन्वाच कीटिशः ॥१००॥

कालपाशशिरस्छित्त्वा सार्धचन्द्रेण भासुरम् ।

गदया प्रभमायाऽऽशु देवान्तकमहाहनुम् ॥१०१॥

ब्रह्मघ्नस्यासिना कायात्पातयामास चाम्बिका ।

धूम्राक्ष कालदण्डेन वज्रेण क्रूरमेव च ॥१०२॥

यज्ञद्रष्टृ यज्ञकोप विधमं च चमूनिम् ।

रोद्रानन्यास्त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥१०३॥

सशङ्कुकर्णदुर्भिक्षविद्युन्मालिविभावसून् ।

दुर्वारपीरुपाश्चके चक्रेणोत्कृत्तमस्तकान् ॥१०४॥

रक्तासुरानुजौ चोभौ महाबलपराक्रमौ ।

कूष्माण्डशुभकाक्षौ तु जघनतुर्गुणादमभि ॥१०५॥

उम महा सग्राम मे हृद्राणी मृत्यु सा करती हुई शोभित हो रही थी । पार्वती देवी ने अपने प्रचण्ड धनुष के निनाद से सब दिवाभा के मुखों को आपूरित कर दिया था ॥१६॥ देवी ने कुम्भ को पट्टिश के द्वारा निहत्त किया था तथा कुछ सैनिकों को मुसल से मार गिराया था । बहुत से सैनिकों को उनके बाहनों के ही सहित भूमि पर गिरा दिया था । ऐसे करोड़ों ही गजों और बंदों को भूमिशायी कर दिया था ॥१००॥ सार्धचन्द्र के द्वारा कालपाश के शिर का छेदन कर दिया था और भासुर को-देवान्तक-महाहनु को गदा से बहुत ही छोटी प्रमाणात कर दिया था ॥१०१॥ उस अम्बिका ने ब्रह्मघ्न का शिर खड्ग के द्वारा शरीर से अलग कर गिरा दिया था कालदण्ड से धूम्राक्ष को और वज्र के द्वारा क्रूर को तथा यज्ञद्रष्टृ यज्ञकोप-विधमं और चमूनि को और दूसरे रौद्रों को विशूल के द्वारा परमेश्वरी ने हनन कर दिया था । ॥१०२॥१०३॥ शङ्कु, कर्ण दुर्भिक्ष विद्युन्माली-विभावसु के मस्तकों को चक्र के द्वारा काटकर दुर्वार पीरुप वाले बना दिये थे ॥१०४॥ रक्तासुर के दो अनुज थे जो महाबल और पराक्रम वाले थे । उन कूष्माण्ड शुभकाक्षों को भूषल और पापाणों के द्वारा मार गिराया था ॥१०५॥

महाबली महाकायी घोरौ तत्र महासुरी ।

घारै राक्षीविपाकारैर्जघानाथ तदा द्विजा. ॥१०६॥

तत स्त्रीधनोऽभ्यधावत्ता दृष्ट्वा तौ त्रिनिपातितौ ।

तमभ्यपातयद्भूमौ खड्गेनाभिहत रपा ॥१०७॥

घण्टकश्चाथ दैत्येन्द्रो गिरीन्द्र सहशो वली ।

परिधेणाऽऽयसेनाऽऽजौ देवी क्रुद्धोऽभ्यस्ताडयत् ॥१०८॥

तत सपरिघश्चासौ दैव्या करतलापत. ।

म पपात तदा भूमौ वज्राह्न इवाचल ॥१०९॥

प्रापश्चिह्नो महाबाहुश्चक्रीकृतशरासनः ।

शक्त्या दग्धतनुनाथो जगामान्तकमन्दिरम् ॥११०॥

अष्टादशैव दुर्धर्पाग्निहत्यासुरसैनिकान् ।

सानन्दा विननादौर्ध्वं सवर्तकघनोपमा ॥१११॥

जघान दानवानीकमेकाऽनेकस्वरूपिणी ।

विद्युत्सपातनिह्लादा विद्युत्सपातश्चला ॥११२॥

महान् बल वाले और महान् घरीरो वाले वहाँ पर अति घोर महा-
सुर दो थे । हे द्विजो ! उसी समय में तपों के समान आशर वाले
याणों के द्वारा उनका हनन दिया था ॥१०६॥ उन दोनों को विधि
पतित हुए देखकर स्त्रीधन नाम वाला देख उस अभ्यिका के ऊपर
आक्रामक हुआ था । उसको भी देवी ने क्रोध से तल्ल के द्वारा मारकर
भूमि पर गिरा दिया था ॥१०७॥ घण्टक नामक दैत्येन्द्र बहुत बलवान्
गिरीन्द्र के सहस्र था । उस युद्ध भूमि में लोहे के परिधि
से उसको भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर मार गिराया था ॥१०८॥
इसने पद्म्यान् परिघ के सहित इसको देवी ने करतल से आहत
कर दिया था और वह भूमि पर वज्र से आहा पर्वत के समान
गिर गया था ॥१०९॥ महान् बाहुओं वाला एक प्रापश्चिह्न दैत्य
था जिसने अपने घुण के चक्र के समान कर रफगा था । यह भी शक्ति
के द्वारा दग्ध घरीर वाला होकर ममपुरी को गमन कर गया था ॥११०॥
इस तरह से अष्टादह बहुत ही दुर्धर्ष अगुर सैनिकों को मारकर वह

अम्बिका देवी आनन्द के साथ प्रलयकाल में होने वाले सम्प्रसारण मेघ के समान बहुत ही ऊँचे स्वर से नाद करने वाली हो गयी थी ॥१११॥ इस एक ही देवी ने जो अनेको रूपों वाली थी दागवों की सेना का हनन कर दिया था । वह देवी विद्युत् के सपन्न के ही समान निह्लाद वाली थी और विजली के सम्प्रसारण के ही तुरन्त चञ्चल थी ॥११२॥

पातयन्ती चचाराऽऽजौ साऽमुरेन्द्रमहाचमूम् ।

तन्नातुलश्च तुमुलो नादो बाध्येषु शत्रुषु ॥११३॥

बभूव येन ब्रह्माण्डमकाण्डाकुलता ययौ ।

जघानेव चतुस्रं त्रिदशेस्त्रिदशाद्विषाम् ॥११४॥

अक्षोहिणीमहत्याणि त्रयस्त्रिंशत्पुरेश्वरो ।

एकत्रिंशत्सहस्राणि शतोन्यष्टौ च ममनि ॥११५॥

सानुगानां सयोधानां रथानां वातरक्षसाम् ।

सख्यैर्वैषां गजेन्द्राणामक्षोहिण्यां महौजसाम् ॥११६॥

त्रिगुणं चतुरङ्गाणां पञ्च चैव पदानिनाम् ।

ववच्चिद्रथस्थिता संव त्रिविद्यायुधधारिणी ॥११७॥

जघानामुरसैन्यानि हयहस्तिगता कचित् ।

कचिच्च महिषारूढा वृषभे च स्थिता कचित् ॥११८॥

वेतालैः प्रेतभूतैश्च स्वेच्छासृष्टैर्वृताऽद्भुतैः ॥११९॥

वह देवी युद्ध में असुरेन्द्र की महाचमूकां निपानन करती हुई सञ्जरण कर रही थी वहा पर अनुल-तुमुल नाद उन बाध्य शत्रुओं में हो रहा था ॥११३॥ जिस निनाद से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आकुलता को प्राप्त होगया था । इस प्रकार से देवों के शत्रुओं को अठ्ठाईस देवों के द्वारा हनन किया था ॥११४॥ सुरेश्वरी ने सैतीस सहस्र अक्षोहिणी-इकतीस सहस्र आठ सौ सत्तर को अनुगों के और योधानों के सहित तथा वायु के तुल्य वेग वाले रथों की यह सख्या थी और महाद ओज वाले गजेन्द्रों की अक्षोहिणी में यही सख्या थी ॥११५॥ ११६॥ चतुरङ्गों का त्रिगुण और पदानियों का पञ्च गुण वही पर रथ में स्थित वही विविध आयुधों

वे धारण करने वाली किसी जगह पर रथों में स्थित और बली पर
अश्व और हाथियों पर स्थित वह सेना अमुरों की थी । किसी रथन
पर महिषों पर समारूढ़ और वही पर वृषभों आरूढ़ वेताल-श्रेय-भूतों
में परिवृत्त थी जो स्वेच्छा से समुत्पन्न हुए थे और अत्यन्त अद्भुत थे
॥११७-११८॥

पयन्धनरथमंगुले ह्यमृत्वमाम्बियदंभे
रणाजिरे निशाचराम्नतो विरेजुर्जिता ।
शृगान्मृध्रवायमा, पर प्रपानमादधु-
मचिह्नरेतसायवा, प्रतीतगोणिता वभु ॥१२०॥
मयचित्पनाहपाणय पिशाचयक्षगक्षमा,
प्रत्यं वामृजा रिदृन्मचयन्नयाऽमिपं ।
गजान्तराग्नुरन्माम्प्रभक्षयन्ति निघृंशा-
ग्नदोदृपेन्नपागरे तर्गनि गोणितापगाम् ॥१२१॥
एति प्रगाढमगरे गुगाग्निमधमृद
त्रिराजोऽम्बिता धनु जगामिशूवपाग्निनी ।
गजेन्द्रवृन्दमदिनी मुरन्मयूषगोथिनी
महागयोषणादिनी गुगाग्निमन्यनादिनी ॥१२२॥

नममृत्य रक्तासुर तेऽभ्यधावन्नरसो
पार्वती ताडयन्तोऽश्वपूगैः ॥१२५॥

समुद्धृत्य नेत्राणि किञ्चिदसन्ती
द्विपत्संन्यसघानि मा सहरन्ती ।
न्यमुञ्चततोऽश्रागि दिव्यानि देवी
नदत्स्वार्यन्तूर्येषु सेज्जन्तसत्त्वा ॥१२६॥

कथन्थो (घड़ो) के नृत्य से मकुन तथा रुधिर और अस्थियों के
बर्दम वाले रणाङ्गण में फिर निशाचर अत्यन्त अजित होते हुए क्षोभित
हो रहे थे । गीदड़ गिद्ध और बौए परमाधिक प्रपान को प्राप्त कर रहे
थे । वही पर मृत पुरुष के शव प्रतीत क्षोभित क्षोभायमान हो रहे
थे । १२०। वही पर हाथों में धनुष धारण किये हुए पिशाच-यक्ष और
राक्षस रुधिर से अपने पितृगणों का तर्पण करते उनको मांस से समर्चित
कर रहे थे । निर्घण लोग गजों को—अश्वों को भक्षण कर रहे थे ।
दूसरे लोग उन मृत गजादिक के उड्डों के द्वारा उस रुधिर की नदी को
पार कर रहे थे । १२१। इस रीति से सुरों के शत्रुओं के सघों से सकुल
उस प्रगाढ़ युद्ध में अम्बिका देवी धनुष—शर—सङ्ग—शूल—इन
आयुधों को धारण किये हुए विराजमान थी । वह अम्बिकादेवी बड़े-बड़े
गजों के वृन्दों का मर्दन करने वाली—तुरङ्गों के शूरो का पोषण करने
वाली—महान् रथियों के समुदाय के धात करने वाली और सुरों के
अस्थियों की सेना का विनाश कर देने वाली थी । १२२। इसके पश्चात्
चण्डिका देवी के धनुष से छूटे हुए बाणों से दिवलोक के हरण करने
वालों के सोलह करोड़ दैत्य हत किये गये थे और पट्टिशों के द्वारा तीन
साठ अठारह करोड़ और नेतीस मारे गये थे । इसके अनन्तर दानवों
के स्वामी पर रण क्षेत्र में तर्जना करती हुई देवी नृत्य करने लगी थी
जो विलास से ही उल्लासित बाहुओं में शास्त्रों का धारण करने वाली
थी । ऐसी प्रमेय प्रभाव वाली भवानी देवी आनन्द से महेन्द्र आदि देवों
को हर्षित कर रही थी । १२३। १२४। फिर हयग्रीव जिनमें प्रमुख था

ऐसे दैत्या के सघ महारौद्र रूप वाले केवल दश ही दोष रह गये थे । उन्होंने रक्तासुर को प्रणाम किया था और फिर वे अस्त्रों के समुदाय से पार्वती देवी पर ताडन करते हुए घावमान हुए थे । १२५। नेत्रों का निफाल कर कुछ ह सती हुई वह देवी शत्रुओं की सेना के समुदायों का महार कर रही थी इसके अनन्तर वह दिव्य अस्त्रों को छोड़ रही थी । आकाश में अनन्त सत्त्व वाले आर्य तुर्ग का नाद कर रहे थे । १२६।

ततो गिरीन्द्रजाऽरीणा चक्रे सैन्यानि भस्मसात् ।
रक्तासुरमथाम्यंत्य शस्त्रास्त्रवृत्तपाणिनम् (?) ॥१२७॥
पादाक्रान्त्यानतभुव सक्षोभितजगन्नयम् ।
मण्डलीकृतकोदण्ड गर्जन्त कालमेघवत् ॥१२८॥
शरवर्षाणि मृच्चन्त पार्वती तमुवाच ह ।
कृत्वोपताप देवाना जीवन्क्वाद्य गमिष्यमि ॥१२९॥
देष्टेत्युक्त्वाऽथ सा देवी शूलेनाभिहनद्धृदि ।
समिन्नहृदयो दैत्यो मूर्ति चक्रे सुदारुणाम् ॥१३०॥
रक्तबिन्दुसमो दैत्यो देवी ध्यामोहयन्निव ।
जगामानेकरूपोऽग्नौ निहतोऽम्बिकया रणे ॥१३१॥
रक्तासुरोऽपि निघन गत्वा त्रिदशकण्टकः ।
पपात मृनिश दूर्वा प्रज्वलज्ज्वलनोपम ॥१३२॥
हाहाकार प्रकृर्वाणा दैत्यस्तेऽथ प्रदुद्रुवु ।
केचिच्छिष्टा भयत्रस्ता विमृष्टायुधजीविता ॥१३३॥

इसके उपरान्त गिरीन्द्रजा न. अरिया की सेनाओं को भस्मसात् कर दिया था । इसके अनन्तर वह उसे रक्तासुर के समीप में प्राप्त हुई थी जो हाथों में शस्त्र और अस्त्र धारण किये हुए था । १२७। अपने चरणों की आक्रान्ति से भूमि को नत कर देने वाले—तीनों लोकों को मशो-भित कर देने वाले—पशुप को मण्डलीकृत करके रखने वाले तथा वायुमेघ के समान गर्जने हुए और शरों की वर्षा को मोचन करते हुए उमगे देवी पार्वतीजी ने रहा—अरे दुष्ट ! देवों का जगन्नाथ करके

जीवित रहने हुए तू आज यहाँ पर जायगा ? इतना ही कहकर उस अम्बिका देवी ने उसके हृदय में धूल से अभिहनन किया था । सभिन्न हृदय वाले दैत्य ने अपनी मूर्ति का परम दारण बना लिया था । १२८। १२९। १३०। रक्तविन्दु के समान दैत्य देवी को व्यामोहित सा करता हुआ यह अनेक रूपों वाला हो गया था और उस रण में अम्बिका के द्वारा निहत कर दिया गया था । १३१। वह देवी का कटक स्वरूप रक्तासुर भी निधन (मृत्यु) को प्राप्त होकर हे मुनि शार्ङ्गलो ! जलती हुई अग्नि के ही सदृश भूमि पर गिर पड़ा था । इसके अनन्तर वे सब दैत्य हाहाकार करते हुये प्रद्रुत हो गये थे । कुछ बचे हुए भय में डर गये थे जो आयुष्य जीवित विगृष्ट कर दिये गये थे । १३२। १३३।

केचित्समुद्रं विविशुरन्द्रीन्केविच्च दानवाः ।

केचित्लुब्धितमूर्धानो नग्ना भूत्वा बनेऽवसन् ॥१३४॥

दयाधर्मं ब्रुवाणाश्च निर्ग्रन्थग्रतमाश्रिताः ।

केचित्प्राणगरा भीताः पाखण्डग्रतमाश्रिताः ॥१३५॥

हेतुवादपरा मूढा निःशोचा निरपेक्षकाः ।

असुरस्य जनस्यैते क्षपणा इव लक्षिताः ॥१३६॥

ते चाद्यापीह दृश्यन्ते लोके क्षपणकाः किल ।

अर्हन्तश्च तथैवान्ये शिवशास्त्रबहिष्कृताः ॥१३७॥

मन्त्रीपधप्रयोगैश्च जनवश्वनकारकाः ।

समुत्पत्तस्यन्ति दैत्याश्च घोरेऽस्मिन्वै कलौ युगे ॥१३८॥

शिवोक्तं कर्मयोगं च द्विषन्तश्च कुर्यात्किमि ।

देव्याः क्रोधाग्निं दग्धा वेदमार्गविनिन्दकाः ॥१३९॥

शास्यन्ते नरकाम्नी ते निःशेषाः पापकर्मिणः ।

न दृष्टा निष्कृतिस्तेषां शास्त्रेषु परमर्षिभिः ॥१४०॥

कुछ दैत्य समुद्र में प्रवेश कर गये थे और कुछ दानव महारण क्षेत्र से भागकर पर्वतों की गुफाओं में जाकर छिप गये थे । कुछ कटे हुए मस्तक वाले थे और नग्न होकर वन में निवास करने लगे थे । १३४।

वे दयाघमं को बोलते हुए निर्भ्रंश्य व्रत के आश्रित हो गये थे । कुछ प्राणों की रक्षा में ही तत्पर हुए भयभीत होते हुए पाखण्ड व्रत का आश्रय लेने वाले हो गये थे । १३५। हेतुवाद में परायण—महामूढ—शौचरहित—निरपेक्षक ये अमुर जन के लोग थे किन्तु क्षपणा के समान लक्षित हुआ करते थे । १३६। वे आज इस समय में भी इस ससार में क्षपण निश्चय ही दिखलाई दिया करते हैं । तथा अन्य लोग अहंन्त हैं और शिवशास्त्र से बहिष्कृत हुआ करते हैं । १३७। ये लोग मन्त्रों और औषधियों के प्रयोगों के द्वारा साधारणजनों को बञ्चित करने वाले ही हुआ करते हैं । इस घोर कलियुग में ये ही दैत्यगण सर्वत्र समुत्पन्न हो जायेगे । १३८। अपनी कुरिसत युक्तियों के द्वारा भगवान् शिव के द्वारा वर्णित कर्म योग की ये बुराई किया करते हैं । देवी के क्रोध रूपी अग्नि के द्वारा दग्ध हुए ये लोग वेदमार्ग के विशेष निन्दा करने वाले होते हैं । १३९। ये सभी पाप कर्मों के करने वाले नरकों की अग्नि में पड़े हुए शासित किये जाया करते हैं । उनकी निष्कृति परमपियों ने शास्त्रों में कही पर भी नहीं देखी है ॥१४०॥

रराजाचिन्त्यमाहात्म्या चिद्रूपा परमेश्वरी ।

हृत्वाऽरिं जगदंश्वर्यं दत्त्वा नमुचिः शत्रवे ॥१४१॥

जगामादशान् देवी व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।

शक्रोऽपि तां प्रणम्याथ सर्वज्ञा विश्वरूपिणीम् ॥१४२॥

प्रययी विबुधैः सार्धं स्वां पुरीममरावतीम् ॥१४३॥

अचिन्तनीय माहात्म्य वाली ज्ञानस्वरूप बानी परमेश्वरी ने शत्रु का हनन करने नमुचि शत्रु के लिए जगत् का ऐश्वर्य देकर वह परम दीप्तिमती हो गयी थी । १४१। वह व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाली वह देवी अदर्शन को प्राप्त हो गयी थी । इन्द्रदेव ने भी विश्वरूपिणी सर्वज्ञा उस जगदम्बा की प्रणाम किया था । १४२। फिर वह इन्द्रदेव देवों के ही साथ में अपनी पुरी अमरावती को प्रस्थान करने चले गये थे । १४३।

॥ पार्वती प्रभाव कथन ॥

अथोपविश्य सुरराट् पूज्यमानो वरासने ।
 अप्सरोगणगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ॥१॥
 सहस्रानुचराणां च देवतानां महोजनानाम् ।
 निजंराणां त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिः परिवारितः ॥२॥
 सोऽभिषिष्यन्त्यदा सर्वैर्बृहस्पतिपुरोगमैः ।
 त्रैलोक्येऽस्मिन्पुनः सकृच्चक्रो राज्यमकण्टकम् ॥३॥
 समाजामुत्सदा इषुं प्राप्तंराज्यं सुराधिपम् ।
 गुनयश्चाङ्गिरा दक्षधनिष्ठक्रनुगीतमाः । ४
 पुलस्त्यपुलहागस्त्यविश्वामित्रात्रिशीनकाः ।
 जमदग्निभरद्वाजभृगुभागुरिगालवाः । ५
 ऋभुः क्षण्डित्यदुर्वासो गगर्जंमिनारदाः ।
 दास्यूहोद्दालवाभ्रव्यशरभङ्गनिदाकराः ॥६॥
 मरीचिच्यवनोत्तङ्ककात्यायनपराशराः ।
 सवतंसहृल्लिखितदेवभागमुपेणकाः ॥७॥
 त्रितरुंभ्ययवक्रीतश्चेतकेतूपमन्यवः ।
 शाकटायनकौण्डिन्यकचगृत्समदासिताः ॥८॥

श्री मृत जी ने कहा—इसके पश्चात् अपने वरासन पर बैठकर वह
 पुरो के राजा पूज्यमान हुए थे । और अप्सराओं के समुदाय—गन्धर्व-
 सिद्ध—विद्याधर और उरगों के द्वारा वह सेन्य मान हुए थे ॥१॥ सहस्रो
 अनुसर—देव गण—महान् भोज वाले निजंरगण जो सख्या तेनीस करोड
 थे वह महेन्द्र देव उन सबसे परिवारित हो रहे थे ॥२॥ थे फिर उस
 समय मे बृहस्पति जिनमे अग्रणी थे ऐसे महर्षियों के सबके द्वारा अभि-
 पिष्त हो गये थे । पुनः त्रैलोक्य मे इन्द्रदेव ने अकण्टक राज्य कर दिया
 था ॥३॥ उस समय मे राज्य की प्राप्ति कर तेने वाल सुरो की अधिप
 के दर्शन पाने के लिए मुनि लोगो ने भी वहाँ पर आगमन किया था ।

उन मुनिगणों में अङ्गिरा—दस—वसिष्ठ—ऋतु—गीतम—पुलस्त्य—
पुलहा—अगस्त्य—विश्वामित्र—अत्रि—शैब्य—जमदग्नि—भरद्वाज—
भृगु—भागुरि—गानव—ऋभु—शाण्डिल्य—दुर्वासा—गर्ग—जैमिनि—
नारद—दासपूह—उज्जाल—वाध्वय—वरमङ्गल—निसाकर—मरीचि—अयव—
अतद्ध—कारपाय—गरागर—संवत्स—सह—लिखित—देव—भाग—
मुपेक्ष—प्रित—रंम्य—यवं—क्रीत—इवेतकेतु—उपमन्यु—शाकरायन—
नीगिम्य—वचगुन—समद—अमित ॥४॥५॥६॥७॥८॥

देवरातश्च जावालिहरीतश्चै कश्यपः ।

बृहदश्वामित्रकौतुभ्या जातूरुर्ण्यः पराशरः ॥९॥

पैटीनसिर्वाघ्रपादो धीतिहोषाश्वलायनो ।

शातातपो मधुच्छन्दा ऋचोकक्रतुदेवताः ॥१०॥

यामदेवदन मन्त्रेयमाफण्डेयपुरोगमाः ।

कृष्णाजिनोत्तरीयास्ते जटिला भस्मभूषिताः ॥११॥

रुद्रा इव महात्मानो वेदवेदाङ्गपारगाः ।

सानागतान्मुमुक्षुष्य कृतासनपरिग्रहान् ॥१२॥

अक्षरान्पान्पोन्मर्चन्प्रच्छेद पुरदरः ।

कथमाराध्यते देवी वरदाऽवलकन्यका ॥१३॥

ते धन्यास्ते कृतार्थाम्ने ये सभ्यव्रजिता शिवा ।

यस्या प्रसादाद्भूयोऽपि राज्यं प्राप्तमिदं मया ॥१४॥

देवरात—वाकानि—हारीत—कश्यप—बृहदश्व—अश्विर—औनस्य—
जातूरुर्ण्य—गरागर—गंकीन—मिथ्याप्रजाद—धीतिहोष—अश्वलायन—
शातातपस्य मधुच्छन्द—ऋचोक—ऋतु—देवत—यामदेव—मन्त्रेय—महं
विद्य विन मुनिगणों में पुरोगामी ये । ये सब कृष्ण मृग चर्म का उत्तरीय
धारण करने करने वाले—जटापारी और भस्म से विभूषित भूषों वाले
ये । ये सब रुद्रों के ही समान महान् आत्मा वाले ये और सभी वेद—
वेदाङ्ग शास्त्रों के पारंगामी विद्वान् ये । उन समान कृष्ण मुनिधों का
भारी भारी अत्यर्थन शिवा का और फिर अत्यन्त ही अत्यन्त ही

गये थे ॥६॥१०॥११॥१२ इन सब ब्रह्माजी के सहस्र मुनियों से पुरन्दर ने पूछा था—कृपया आप लोग यह बतलाइये कि वरदा अचल कन्या जगदम्बा की आराधना कैसे की जाया करती है ? ॥१३॥ वे ही पुरुष परमधन्य एवं वृत्तायं हैं जिन्होंने देवी शिवा का अन्धी तरह से पूजन किया है । उन्हीं देवी का यह प्रमाद है जिसके प्रभाव से मैंने पुनरभि अरुणा राज्यासन प्राप्त कर लिया है ॥१४॥

भवान्या. सर्वमेवैतद्वक्तुमर्ह्य सत्तमाः ।

ते चैवमुक्ताः शक्रेण मुनयो मुनिपुंगवाः ॥१५

प्रत्यूचुस्ता नमस्कृत्य शर्वाणी शिवरूपिणीम् ।

ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च साधवस्ते शचीपते ॥१६

भक्त्या यजन्ति ये नित्य पार्वती परमेश्वरीम् ।

कुर्वन्तोऽपीह कर्माणि चण्डिकापिनमानसाः ॥१७

सूर्याश्व इव जालेन वाध्यन्तेऽत्र कित्विपैः ।

आयुरारोग्यसौख्यानि सौभाग्य च वरस्त्रिधः ॥१८

भवन्ति तेषां ये नित्य स्तुवन्ति परमेश्वरीम् ।

सर्वसरास्तथा मासा विफला दिवसाश्च ते ॥१९

नराणां विषयान्धाना येषां गेहे न पार्वती ।

यत्र यत्राच्यते देवी वरदा परमेश्वरी ॥२०

तत्र तत्राक्षय पुण्य त्यादित्याह प्रजापतिः ।

नामोक्तचारणमात्रेण यस्याः क्षीणावसव्य ॥२१

हे श्रेष्ठतमो ! आप भवानी का यजनार्चनाराधन सभी कुछ बताने के योग्य हैं । इन्द्र देव के द्वारा इस प्रकार से पूछे गये उन मुनियों से परमश्रेष्ठ मुनियों ने सर्व प्रथम उस शिव के स्वरूप वाली शर्वाणी देवी को नमस्कार किया था और फिर उत्तर दिया था हे शचीपते ! वे पुरुष परमधन्य और वृत्तायं जीवन वाले है तथा परम साधु हैं जो भक्तिभाव से नित्य ही परमेश्वरी पार्वतीदेवी का नित्य ही यजन किया करते हैं । चण्डिका में समर्पित मनवाले यहां पर कर्मों को करते हुए भी इनका

यजन करते हैं वे यहाँ ससार में कित्विषो के द्वारा वाधित नहीं हुआ करते हैं जैसे जालो के द्वारा सूर्य की किरणें कभी वाधित नहीं हुआ करती हैं । जो लोग नित्य ही परमेश्वरी का स्तवन किया करते हैं उन-को आयु-आरोग्य-सुख-सौभाग्य और वर स्त्रीयाँ लिया करती हैं । प्रजा-पति ने यही बताया है कि उस—उसमें अक्षय पुण्य होता है । जिसके केवल नाम के उच्चारण से ही सब अबोधों का सघय क्षीण हो जाता है। ॥१५—२१॥

भवत्यवाप्नक्त्याण कस्ता नाऽऽराधयेच्छिवाम् ।
पशुभिस्त्रिह तुस्यास्ते मूढैर्वा ते शवा इव ॥२२
ये मूढा नाचंयन्त्यार्या पार्वती परमेश्वरीम् ।
अचिन्त्या सात्स्वरूपा ता शाश्वती विश्वतोमुखीम् ॥२३
ये यजन्तीह धन्यास्ते शिवा स्वर्गपवर्गदाम् ।
तपस्तीर्थप्रदाननैश्च यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः ॥२४
न ता गतिं लभन्नेज्ज या स्तुत्वाऽवलकन्यकाम् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति यान्यानिच्छति मानवः ॥२५
अनोपवासपूजाभि समाराध्य महेश्वरीम् ।
अतेन येन देवेन्द्र प्रमीदयामु पावती ॥२६
यच्चोत्कानवमीसन शुणु सर्वफलप्रदम् ।
तस्या नवम्या शर्वाणी महिषादीन्महासुरान् ॥२७
जघान समरे शक्र तेन सा नवमी प्रिया ।
अश्वपुङ्गवशुल्करादस्य नवम्या प्रयतत्सवान् ॥२८

मनुष्य देवी के यजन से कल्याण प्राप्त करने वाला हो जाया करता है । ऐसी उस देवी शिवा का कौन मूढ होगा जो आराधना नहीं करेगा । ॥२२॥ जो मूढता से दूराव समाराधन नहीं करते हैं वे पशुओं के ही तुल्य मानव हुआ करते हैं जबकि वे मृत के पक्षों की ही भाँति हैं जो कि सभी चेष्टाओं से शून्य हुआ करते हैं । जो महामूढ आर्या—परमेश्वरी—पार्वती देवी का अश्वर्चन नहीं किया करते हैं जोकि अचिन्तनीया—सात्स्वरूपा

वाली — शाश्वती और विश्वतोमुग्नी है ॥२३॥ जो लोग यहा संसार मे स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) दोनो का प्रदान करने वाली शिवा देवी का समर्चन किया करते हैं वे परम धन्य एवं महान् भाग्यशाली प्राणी होते हैं । तप—तीर्थ—दान— और बहुत अधिक दक्षिणा वाले यज्ञो के करने से उस गति को यहाँ नहीं प्राप्त किया करते हैं जिसको कि केवल गिरि कन्या अम्बिका के स्तवन करने से ही प्राप्त किया जा सकता है । जग-दम्बा के भजन से मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त कर लिया करता है जिन-जिनकी वह मनमे इच्छा किया करता है ॥२४॥२५॥ व्रत उपवास और पूजाओं के द्वारा महेश्वरी का समाराधन करके मनोरथो के पाने का परम लाभ होना है । हे देवेन्द्र ! जिस व्रत के द्वारा वह देवी पार्वती बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाया करती हैं और जो उत्कानवमी नाम वाला है और सभी पुण्य—फलों के प्रदान करने वाला भी है । अब आप उसका श्रवण करिए । उस नवमी तिथि मे भगवती शर्वाणी ने महिष आदि महान् असुरो का समर मे हनन किया था । हे इन्द्र ! इसी कारण से वह नवमी तिथि उनकी प्रिय होती हैं । आश्विन के शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन मे प्रयत आत्मा वाला होवे ॥२६॥

स्तात्वाऽऽभ्यर्च्य पितृन्देवान्मनुष्यांश्च यथाक्रमम् ।
 यजेत्पश्चान्महादेवी महिषामुरघातिनीम् ॥२६॥
 पुष्पधूर्पैश्च नैवेद्यैः पयोदधिकलादिभिः ।
 भक्त्या सपूजयित्वैव स्तुत्वा सप्रार्थयेत्ततः ॥२७॥
 मन्त्रेणानेन वृत्रारे श्रद्धावान्प्रयतो ब्रती ।
 महिषघ्न महाभागे चामुण्डे मुण्डघातिनि ॥२८॥
 द्रव्यमारोग्यविजय देहि देवि नमोऽस्तु ते ।
 भूतप्रेतपिशाचेभ्यो रक्षोभ्यश्च महेश्वरि ॥२९॥
 देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च भयेभ्यो रक्ष मा सदा ।
 सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥३०॥
 उमे ब्रह्माणि कौमारि विश्वरूपे प्रसीद मे ।
 कुमारीर्भोजयित्वा वा कुर्यादाच्छादनादिभिः ॥३१॥

यथावर्णं कुमारीश्च भोजयित्वा क्षमापयेत् ।

नव सप्ताथ एका वा चित्तवित्तानुसारतः ॥३५

श्रद्धया प्रीतिमान्पोति देवी भगवती शिवा ।

अनेन विधिना वर्षं मासि मासि समाचरेत् ॥३६

नवमो तिथि मे प्रातः स्नान करके पितृगण और देवों का यथा क्रम अर्घ्यर्चन करके तथा गुरु वर्ग मे जो मनुष्य हो उनका भी यजन करके पीछे से महिषासुर के घात करने वाली महादेवी का अर्चन करना चाहिए ॥३६॥ पुष्प धूप-दीप नैवेद्य-दूध-जल दधि और फल आदि के द्वारा भक्तिभाव से इस प्रकार से अर्चन करके फिर प्रार्थना करनी चाहिए ॥३७॥ श्रद्धा से सम्पन्न प्रयत्न धनधारी को अमृत मन्त्र से प्रार्थना करनी चाहिए—हे धृत्रारे ! हे महिष के हनन करने वाली ! हे महामाये ! हे कामुण्डे ! हे मुण्ड दंष्ट्र का घात करने वाली ! मुझे द्रव्य-आरोग्य और विजय प्रदान करो । हे देवि ! आपको नमस्कार है हे महेश्वरि ! भूत-प्रेत-निगाव-राक्षस-देव मनुष्य और सम्पूर्ण भयों से मेरी सदा रक्षा करिए । सभी मङ्गल के मङ्गल करने वाली ! हे शिवे ! आप सब अर्थों के साधन करने वाली हैं । हे उम् ! हे प्रह्लाणि ! हे पौमारि ! हे विश्व रूपे ! आप मृत पर प्रसन्न होइये । फिर इस प्रार्थना करने के पश्चात् कुमारियों को भोजन कराकर उक्त आच्छादा वस्त्रा आदि का दान करना चाहिए । वर्ष के अनुसार कुमारियों को भोजन कराकर उनसे देवी के स्वरूप वाली समस्त कर क्षमापन कराव । कुमारी सभ्या में नो हो या सात हो वे अथवा एक ही होवे जैसी भी अपनी आविर्भाव स्थिति हो उसी के अनुसार करें भगवती शिवा देवी तो श्रद्धा के भाव मे ही प्रीति को प्राप्त हुआ करती हैं । इस विधि से एक वर्ष पर्यन्त प्रदिग्ग माम म दम दन को करना चाहिए ॥३८-३९॥

सत सावत्सरम्यान्ते भोजयित्वा कुमरिणाः ।

वसं राभरणं पूज्या प्रणिपत्य विमर्जयेत् ॥३७

मन्त्रमशृङ्गा गा दद्यात्सुविप्राय शुशोभनाम् ।
 नरो वा यदि वा नारी व्रतमेतत्करोति च ॥३८॥
 उत्कावत्सा सपत्नीना तेजसा भाति भूतले ।
 श्रीमहानवमीत्येषा ख्याता सुरपतेऽधुना ॥३९॥
 सर्वसिद्धिकरी पुण्या सर्वोपद्रवनाशिनी ।
 नाऽऽध्यात्मिक तस्य भय दैव स्यात्त आधिभौतिकम् ॥४०॥
 रक्षत्येव सदा शक्र सर्वापरमु च चण्डिका ।
 शान्तिपुष्टिकरी पुण्या पुन्नारोग्यार्थलाभदा ॥
 अनुष्ठेया सदा पु भिश्चतुर्वर्गफलार्थिभि ॥४१॥
 यश्छद्मनाऽपि कुरुते व्रतमेतदित्य
 चण्डीप्रिय सुरपते मुनिसिद्धजुष्टम् ।

रुद्राङ्गनाकुलवराकुलित विमान

मारुह्य याति स सुखेन शिवस्य लोकम् ॥४२॥

फिर जब एक वष पूरा हो जावे तो सम्बत्सर के अन्त में छोटी-छोटी कुमारिकाओं को भोजन कराकर वस्त्र और यथा शक्ति आभरणों के द्वारा उनकी पूजा करके फिर उनको प्रणिपत्य करे और विसर्जन कर देना चाहिए ॥३७॥ किसी परम अच्छे योग्य विप्र को एक सुवर्ण के सींगे वाली गौ का दान करना चाहिए जो कि गौ परमशोभना हो । मर हो अथवा नारी हो जो भी कोई हो इस दान को किया करता है वह अपनी सपत्नियों के मध्य में उत्कावत्सा भूतल में तेज से सुभासित रहा करती है । हे सुरपते ! अब यह श्री महानवमी के नाम से विख्यात है यह महानवमी समस्त सिद्धियों के करने वाली पुण्यमयी और सम्पूर्ण उपद्रवों के विनाश कर देने वाली होती है । इसके दान को करने या न पुरुष को वसी भी आध्यात्मिक-आधिदैविक और आधिभौतिक भय नहीं हुआ करता है ॥४०॥ चण्डिका देवी हे शक्र ! सभी आपदाओं में सदा उसको रक्षा किया करती है । जो मनुष्य चतुर्वर्ग के पदों का प्राप्त करने की इच्छा धारण हो उनको यह व्रत सदा ही करना चाहिये क्योंकि यह नवमी शान्ति और पुष्टि

धाना स्वहस्तलिखितानि लताटपट्टे

दैवाक्षराणि दुरितैकनिबन्धनानि ।

गौरीप्रसाद्रजनितेन जन समस्त-

स्तान्येकत सपदि भार्जयतीति चित्रम् ॥४८॥

ते समता जनपदेषु धनानि तेषा

तेषा यशसि न च सीदति बन्धुवर्ग ।

धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा

येषा सदाऽभ्युदयदा गिरिजा प्रसन्ना ॥४९॥

निघ्न के अग्रभाग से भिन्न बिये हुए सहिषानुर के पादसीठ पर मुखात् खड्ग और रुचिर अङ्गदो से शोभित बाहुदण्डो वाली देवी को नवगी तिथि मे जो रात्रि को भोजन करने वाले मनुष्य अभ्यर्चित किया करते हैं वे मनुष्य दुर्गति गहन-दुर्ग मे कभी भी प्रवेश नहीं किया करते हैं ॥४३॥ महात्मा भगवान् कपिल ने जो एक अन्य व्रत बतलाया है और मेरु पर्वत पर दैत्यो के गुरुदेव भृगुनन्दन को बताया है । उसको भी आप सुन्दर मन वाले होकर ध्वज कर लीजिये । हे मधवन्म ! तीनो जगता की जननी का कितना ही महान् आराधन होता है ॥४४॥ जो भक्ति के करने वाले मनुष्य हैं उनके लिये तो देवी कामधेनु के ही समान सकल मनोरथो को पूर्ण करने वाली है । और जो मुहूर्तिया के लिये वरपवृक्ष के समान है अथवा घन के इच्छुको के लिये यह चिन्तामणि ही जानी गयी हैं हे भृगु सुत ! यहाँ पर ऐसी उस गौरी को या क्यो नहीं यजन किया करते हैं ॥४५॥ तिमिहो के द्वारा बंधे हुए पैरो वाले भी जो उस देवी का स्मरण किया करते हैं और जो व्याघ्र अहि-धोर-नृप-अग्नि आदि के भय उपस्थित होने पर दुर्गा का यजन किया करते हैं उा मनुष्यो को वृद्ध भी शत्रुओ मे भय नहीं होता है और जो वृद्ध होत हैं वे भी शक्ति की प्राप्ति करके सुख प्राप्त किया करते हैं ॥४६॥ हे भार्गव ! आर्य । गिरिजा के प्रणति के प्रसाद यावे मनुष्य पर निरन्तर देव भी अवश्य ही वृद्ध प्रभात्र नहीं किया करता है । मेधा का समस्त

जिनका समीप है ऐसी वनराजि को ऊँचे दरजे की श्रेष्ठा भी पल्लवों के उपपद्य से उपचित कर दिया करती है ॥४७॥ विद्यादा ने ललाट पट्ट में अपने हाथ से जो दँवाखर लिख दिये हैं जो कि ब्रिये हुए पापों के लिए एक निवन्धन स्वरूप ही होते हैं उन सब को भी भगवती गौरी के प्रसाद में जनित प्रभाव से मनुष्य समस्तों को सुरन्त ही एक बार में परिमार्जित कर दिया करता हैं—यह एक अत्यन्त विचित्रता है क्योंकि भाग्य में लिखा हुआ जो कभी भी मिटा नहीं करता है और अवश्य ही भोगना पड़ता है वह भी गौरी के प्रसाद के प्रभाव से सुरन्त ही नष्ट हो जाया करता है । ऐसी देवी के प्रसाद में अद्भुत शक्ति है । ये देवी के प्रसाद प्राप्त करने वाले मनुष्य जनपदों में समस्त होते हैं—उनके पास अनुल धन होता है—उनका बहूत धन भी हुआ करता है और उनका यन्त्रु यमं कभी सीमित नहीं होता है । वे ही पुण्य परम पण्य हैं जिनके निम्न आत्मन-भृत्य और शरणे है और ये सब जिनके लिए सदा ही अभ्युदय के प्रशान करने वाले हैं जबकि गिरिजा देवी उन पर प्रसन्न हो जाया करती हैं ॥४६॥

यः कारयेद्वरपताकसिताभगौर

तद्गोपुरं च मुघयाऽऽपतनं भवान्याः ।

धन्वावदातभवने विपुले च सोऽथ

राज्यं श्रियं च भुवि काममूर्पति मायम् ॥४७॥

ये कारयन्ति भवनं भृगुनन्दनाऽऽर्षा

धर्म्या मुत्तर्जयतायसनाश्रितम् ।

रागन्तमौलिम परदिग्गमुज्ज्वले ते

गिहातनेऽद्भुतकिरोटभूमो रमन्ते ॥४८॥

ये मेरुमूर्ध्नि गुरुमघट्टनाभिषेका

पञ्चामूर्तगिरिगुणामिषेवयन्ति ।

ते दिग्गवत्पुण्यभूष मुरेन्द्रराज्यं

राज्याभिषेकमनुनं पुनराप्नुवन्ति ॥४९॥

ये देवदारुमलयोद्भवचन्दनेन

ये कुङ्कुमेन च शिवाम्बुपलेपयन्ति ।

ते दिव्यगन्धपटवाससुगन्धदेहा

नन्दन्ति नन्दनवनेषु सहाप्परोभिः ॥५३

दिव्यैश्च पद्मकरवीरकजातिपुष्पै-

गौरी शुभैरनुदिन मनु येऽर्चयन्ति ।

ते भूतले नरपतित्वमवाप्य योगा-

द्यास्यन्ति सौख्यमचिरेण परां च सिद्धिम् ॥५४

आमोदिभिर्मंरुकपुष्पसुगन्धधूपै-

र्यैलोकनाथदयितामिह धूयन्ति ।

वर्षासारासमगन्धवराः सुरामा

र्वालिङ्गयन्ति दयिता. सुरराजलोके ॥५५

दोधूयते कनकदण्डविराजितैश्च

सत्त्वामरैः प्रचलकुण्डलसुन्दरीभिः ।

दिव्याम्बुस्त्रगनुलेपनभूषिताङ्गः

वृत्त्वा मृडानिभवेन वरवस्त्रपूजाम् ॥५६

देदीप्यते स कनकोज्ज्वलपद्मराग-

रानप्रभाभरणहेममये विमाने ।

दिव्याङ्गनापरिवृतो मनसोऽभिरामः

प्रज्वाल्य दीपममलं भवने भवान्याः ॥५७

जो पुराण भवानी के आयतन और मं.पुर को ध्येष्ट पताराओ से सिताभ्रगीर बनवाया करता है और मफेरी में लिप्य कराया करते हैं यह चन्द्र के समान अथवात भवन में जो व्यक्ति विशाल होता है उसमे गोप्य-राज्य-त्री-मरय काम सबही दृगी दत्त भूमण्डल में प्राप्ति किया करता है । ५०॥ हे भृगुनन्दन ! जो मनुष्य आर्या देवी का भवन गुवर्ण-चाँदी-मोह और पापाप में निर्माण कराया करते है ये सामन्तो के मन्त्रो की मणियों की किरणों में समुज्ज्वल निहासन पर अद्भुत और

किरीट के धारण करने वाले रमण किया करते हैं ॥५१॥ जो लोग सुमेरु पर्वत पर अर्थात् गिरि के शिखर पर सुरों के समुदाय के द्वारा अभिषेक की गई गिरि मुना का पञ्चामृत से अभिषेक किया करते हैं वे दिव्यकल्प-पर्यंत सुरेन्द्र के राज्यासन-मुख का अनुभव करके पुनः अतुल राज्याभिषेक प्राप्ति किया करते हैं ॥५२॥ जो लोग देवदाह और मलय से समुद्रमग्न चन्दन से और कुङ्कुम से शिवा देवी का उरलेपन किया करते हैं । वे दिग्बर मुग्ध से युक्त पट और देहों वाले होकर अम्बरारो के समूह के साथ नन्दन (देवों का उद्यान) वन में आनन्द किया करते हैं ॥५३॥ जो लोग दिव्य पद्म-करवीर-जानी के पुष्पों से जो कि परम शुभ होते हैं प्रतिदिन गौरी की अर्चना किया करते हैं वे लोग इस भूतल में नरपति के पद की प्राप्ति कर योग से सौख्य को प्राप्त करते हैं और थोड़े से ही समय में परासिद्धि की प्राप्ति किया करते हैं ॥५४॥ जो लोग आमोद वाले मरुआ को पुष्प और मुग्धधृत धूप से भगवान् सोन नाथ की दयिता को धूपित किया करते हैं अर्थात् धूआ आघ्राण कराया करते हैं वे कपूर के सार के समान गन्ध में श्रेष्ठ सुराभा दयिताओं का गुरुराज के लोक में आतिथ्य किया करते हैं ॥५५॥ सुवर्ण के दण्ड में शोभित श्रेष्ठ चमरो को जो देखी पर दुपाता है वह हिलने कुण्डलों वाली मुन्दरियों के द्वारा दिव्य अम्बर-ज्वर और अनुलेपन आदि में भूषित अङ्गो वाला होकर मृदानी के भवन में सर वस्त्र पूजा करता है वह कनक के सधान उज्ज्वल और पद्मराग रत्न की प्रभा वाले आभरण युक्त मुखर्गमय विमान पर दिव्याङ्गनाओं से परिवृत्त हुआ मन में मुन्दर हो भवानी के भवन में दीपक को जलाया करता है वह देशीय-मान होता है ॥५६॥५७॥

यो जागर गिरिमुताभवने ददाति

चंद्रोत्सवादिदिवसेऽङ्गधि तूर्यनादम् ।

धीणा मृदङ्गमधुरम्बरभाषिणीभिः

सगीयते स हि जगदीशविजरीश्वर ॥५८॥

कुर्वन्ति ये सदुपलेपनवासचित्रं

समाजंन गिरिसुतायत्तनेऽनुरक्ताः ।

मुक्ताकलापमणिकाञ्चनभित्तिविलै-

वैदूर्यकुट्टिमतले भवने वसन्ति ॥५६

दद्याच्च यः परमभक्तियुतो भवान्या

घण्टावितानमथ चामरमातपत्रम् ।

केयूरहारमणिकुण्डलमण्डितोऽसौ

रत्नघियो भवति भूतलचक्रवर्ती ॥५७

अभ्यर्चयन्ति विधिवद्विधोपचारै-

गन्धर्वसिद्धविबुधस्तुतपादपद्यान् ।

भक्त्या प्रहृष्टमनसः प्रणमन्ति देवी

ते भूभुवःस्वमहिमाप्तफला (?) भवन्ति ॥५८

गायन्ति ये गिरिमुता च विलोकयन्ति

व्यायन्ति वाऽमलधियश्च शिवां स्मरन्ति ।

गौरीमुमां भगवती जगदेकदेवी

ते वै प्रयान्ति परम पदमिन्दु गीलेः ॥५९

देवी समस्तभुवनादिविचित्रदेहा

सूर्याग्निचन्द्रनयनामिह कालवक्त्राम् ।

दीर्घाष्टदिभुजचया मृदुभावहासा

येऽभ्यर्चयन्ति हृदि हन्त त एव धन्या ॥६०

इक्ष्वाकूपुरुषयुराधवधुन्धुमार-

माघातृहैहययात्यजमीढमुह्यैः ।

आरोग्यसत्ततघराजयसौख्यलुब्धं

संपूजिता भगवती मनुजैर्भवानी ॥६१

जो गिरि सुता के भवन में जागरण किया करता है और चंद्र के उदयव आदि के दिवस में मध्य में सूर्यनाद किया करता है तथा शीणा-मृदङ्ग से मधुर स्वरो में भाषण करने वाली वृन्तोदरी किन्नरियो के

साथ में गान किया करता है ॥५८॥ जो भक्त सोंग मदउपलेपन के द्वारा वासको चित्र किया करते हैं और समार्जन करते हैं तथा गिरि मुता के आयतन में अनुराग रखने वाले होने हैं वे लोग मुता कलाप-मणि-काञ्चन की भित्तियों से चित्रित वेदूयंकुट्टिम तन वाले भवन में जाकर नियाम किया करते हैं ॥५९॥ जो परमाधिक भक्ति से युक्त होकर भवानी को घण्टा बितान-चामर और मातपत्र समर्पित किया करता है वह केपूर-हार-मणि-मुण्डलो से मण्डित होकर रत्नों का स्वामी और भूतल पर चक्रवर्ती राजा हुआ करता है ॥६०॥ जो सोंग गन्धर्व मिद्धि-त्रियुषो के द्वारा स्तुति किये गये चरण कमला वाली देवी हैं उन देवी को भक्ति भाव से प्रणाम करके विधिपूर्वक अनेक उपचारों में अभ्यर्चन किया करते हैं और प्रसन्न मन वाले होकर प्रणाम करते हैं वे भूभुव स्व की महिमा के प्राप्त फल वाले हुआ करते हैं ॥६१॥ जो गिरिसुता के गुणों का गान किया करते हैं जो उनका विलोकन करते हैं और ध्यान किया करते हैं अथवा अमस बुद्धि वाले सोंग शिवा का स्मरण किया करते हैं जो गौरी उमा भगवती जगत् की एक ही करने वाली है वे इन्दु मोलिके परम पद को प्राप्त किया करते हैं ॥६२॥ समस्त भुवन आदि से विचित्र देहवानी सूर्य अग्नि और चन्द्र के नयना वाली-काल रूपी मुख वाली दीर्घ आठ दिशाया के भुजाओं के समुदाय वाली मृदुभाव हास से सम्पन्ना की हृदय में जा अभ्यर्चन किया करते हैं वे ही परम धन्य होत हैं ॥६३॥ इक्ष्वाकु पूरु-पृथु-राघव धु-धुमार माघाता-हैहय-नयाति और अजामोड जिनमें प्रमुक्त हैं जो कि आरोग्य पन्तनि-पृथ्वी जय-सौख्य के सुदधक थे उन मनुष्यों के द्वारा भगवती भवानी भलीभाँति पूजित हुई है ॥६४॥

योगेश्वरी वेदवती भवानी ब्राह्मी

कुमारी सुभगा च वाणीम् ।

नारायणी हैमवतीमनन्ता

विश्वादिभूता भज भार्गवाऽऽर्याम् ॥६५॥

यशासि विद्या सुखमर्घ्यमायुर्विभूतय
पुष्टिनर्थहानि ।

तद्भक्तिभाजा भविना विमुक्तये
भवन्ति योगानेगता समाधय ॥६६॥

नीचोऽपि मन्दमतिरल्पकुलोद्भवोऽपि
भीरु शठोऽपि चपलोऽपि निरुद्यमोऽपि ।

गौरोपदाब्जयजनार्थमिहोद्यतश्च
सदृश्यते ननु सुरैरपि गौरवेण ॥६७॥

तावत्कृताकृतमपि प्रतिघातमेति
कमार्जितेन विधिनाऽपि कृतोद्यमेन ।

आर्यापदाम्भुजरजो विरज प्रणम्य
यावन्नवत्स शिरसा ध्रियते जनेन ॥६८॥

विद्या तप कुलजनिविविध च शिल्प
शौर्यं मतिश्च विनयस्तु विदग्धता च ।

एते गुणागुणावता परमे च भद्रा
गौरीप्रसादरहितस्य तृणी भवन्ति ॥६९॥

तावन्य सिध्यति रसो न रसायनानि
मन्त्रा महोदयफला विलसत्प्रवादा ।

विलसन्ति साधकजना भुवि वर्तिवाश्च
यावन्न तुप्यति कवे वरदा भवानी ॥७०॥

हे भाग्येव । योगेश्वरी—वेदवती—भवानी—ब्राह्मी—कुमारी—
सुमागा—वाणी—नारायणी—हैमवती—जनन्ता—विश्व की आदि—
भूता—आर्या का सेवन करो ॥६५॥ उस दवी की भक्ति करने वाले
मनुष्यो ने यश—विद्या—सुख—अर्घ्य—आयु—विभूति—पुष्टि—
अनर्थों की हानि ये सब योगानुगत समाधियाँ हुआ करती हैं ॥६६॥ चाहे
कोई अत्यन्त नीच भी हो—मन्दमति—छोट कुल में उत्पन्न—भीरु—
शठ—चपल—निरुद्यम भी कोई हो वि-तु गौरी के चरण कमल के

भजन के लिये यहाँ सत्कार में उद्यन रहना हो तो देवों के द्वारा भी बड़े गौरव के साथ देखा जाया करता है । १६७। तब तक भी कृत और अकृत भी प्रतिघात को प्राप्त हुआ करता है । कर्म के द्वारा अर्जित विद्या भी कृत उद्यम वाता हुआ करता है जब तक आर्या के चरण कमलों की प्रणाम करके विरज अर्थात् निर्मल हो जाता है और हे धर्म । जब तक चरण कमलों को मनुष्य अपने शिर से धारण नहीं किया करता है । १६८। विद्या—तप—कुल—जन्म—विविध सिन्धु—शूरता—मति—विनय—विदग्धता—ये सभी गुण गुणवानों के परम भद्र होते हैं किन्तु इन सबके होने पर भी यदि मनुष्य देवी गौरी के प्रसाद से रहित है तो ये सब सृष्टि के ही समान हो जाया करते हैं । १६९। तब तक न तोर ससिद्ध होता है और रमायन ही सिद्ध हुआ करती हैं । महाद् उदय के पनो वाले मन्त्र और विनय प्रवाद भी सिद्ध नहीं होते हैं और इनके साधन करने वाले मनुष्य और वृत्तिष्व दम भ्रमण्डन में क्लेश ही उठाया करते हैं जब तक हे कवे । वरदा भयानी तुष्ट नहीं हुआ करती है । १७०।

गोत्राह्यणाचनपरादच रता स्वधर्मे

ये मद्यमासविमुक्ता शुचयश्च शैवा ।

सत्यप्रिया सवसभूतहिने रताश्च

तेषा च तुष्ट्यति मदा मुमते मृडानी ॥७१॥

भूतादिभूता विपयेन्द्रियाणा परा

तथाऽन्त वरणात्मन्पाम् ।

म्पदाऽज्ञाया वायमनोवचोभि

मचिन्तयाऽऽर्या सवनायदात्रीम् ॥७२॥

अजामेवा मोहिनशुक्लवर्णा

वह्नी प्रजा मृजमाना मुरूपाम् ।

अजो ह्येवो जुषमाणोऽनुशेने

जहात्येना भुक्तभोगामजोऽप्य ॥७३॥

प्रभावमेतं त्रिजगज्जनन्यास्तवोदितं
भार्गव वेदगुह्यम् ।

श्रोतुं यदिच्छा तदुदीरयस्व विप्रेषु
किं वाक्कथनीयमस्ति ॥७४॥

शृण्वन्ति ये वाऽयं पठन्ति मर्त्याः
स्तवान्विताख्यानमिव भवान्याः ।

भुक्त्वाऽक्षयान्कामसुखांश्च तेऽत्र
प्रयान्ति शंभोः परमं पदं च ॥७५॥

एवं मुनीनां गदितं भवान्याश्चरितं शुभम् ।
श्रुत्वा पुरंदर श्रोमान्भक्त्या परमया द्विजाः ॥७६॥

आराधयामास तदा पार्वती परमेश्वरीम् ।
वरांश्च विविधाल्लब्ध्वा चक्रो राज्यमकण्टकम् ॥७७॥

हे सुमते ! मुहानी देवी उन्ही के ऊपर सदा प्रसन्न हुआ करती हैं जो गी-ब्राह्मण के अभ्यर्चन में तत्पर रहा करते हैं तथा अपने धर्म में निरत रहा करते हैं—जो मद्य-मांस से सर्वदा पराङ्मुख रहा करते हैं—धुवि-शंख अर्थात् शिव के भक्त हैं तथा सत्य से प्यार करने वाले और सकल भूतो के हित में रति रखता करते हैं ॥७१॥ सतस्त भूतो की आदि भूता-विषयेन्द्रियों में परा अर्थात् विषयेन्द्रियों से परे रहने वाली—अन्तःकरण के आरम्भ स्वरूप वाली—सदा अक्षय—सकलार्थ दात्री आर्ष्या का मन-वाणी और शरीर से भलीभाँति चिन्तन करी ॥७२॥ अजा—मेका—सोहित तथा शुक्ल वर्ण वाली बह्वी-प्रजा पौ सृजन करने वाली—मुन्दर रूप से सम्पन्न-मुक्त भोगों वाली उमवो त्याग देते हैं वो अन्य-अज-एक सेवमान होना हुआ अनुसयन किया करता है ॥७३॥ तीनों जगतों की जननी वा यह प्रभाव वेदों में भी परम गोपनीय है और मैंने हे भार्गव ! आपको बतला दिया है । यदि श्रवण करने की इच्छा है तो उसे बतलाओ । विप्रों को बुद्ध भी न कहने के योग्य नहीं होता है ॥७४॥ जो मनुष्य इस वितानास्य नामक भवानी के स्तव वा

श्रवण करते हैं अथवा पढ़ने हैं वे यहाँ पर अक्षय काम मुग का मोम बरके अन्त समय में मगवान् शिव के परम पद को प्रमाण किया करते हैं । ७५। श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार के मुनिगणों के कहे हुए को भवानी को शुभ चर्चित को पुरन्दर ने श्रवण किया था । हे द्विजो ! इन्द्रदेव ने श्रीमान् होते हुए भी इसको परम भक्ति के साथ सुना था । और उसी समय में उम महेन्द्र देव ने परमेश्वरी पार्वती देवी का समा-राधन किया था । उमने देवी से विविध वरदान भी प्राप्त किये थे और फिर कण्ठरु रहित राज्य लिया था । ७६। ७७।

॥ तिथि निर्णयादि कथन ॥

तिथिना निर्णय मूत प्रायश्चित्तातिथि तथा ।
 वक्तुमर्हसि चास्माक व्यामशिष्य महामते ॥१॥
 शृणुध्वमृषय भवे तिथीना निर्णय परम् ।
 अनिर्णीतासु तिथिषु न किञ्चित्कर्म सिध्यति ॥२॥
 श्रोत स्मार्त व्रत दान मन्त्रान्यत्कर्म वैदिकम् ।
 निर्णीतासु तिथिष्वेव कर्म कुर्यात् नान्यथा ॥३॥
 प्रायः प्रान्तमुजोष्य स्यात्तिथेर्देवकनेप्सुभि ।
 मूत्र हि पितृनुट्ययं पित्र्य चोक्त महर्षिभिः ॥४॥
 या प्राप्याम्नमुपेत्यर्क मा चेत्स्याम्निमूर्हति ।
 धर्मवृत्तेषु भवे षु मपूर्णा ता विदुस्तिथिम् ॥५॥
 क्षये पूर्वा प्रवर्तय्या वृद्धो वायो तयोत्तरा ।
 तिथेस्तस्याम्निक्षणया । क्षयवृद्धत्वज्ञारणम् ॥६॥
 अटम्येनादशो षष्ठी मृत्रीया च चतुर्दशी ।
 पतञ्ज्याः परममुक्ता अपराः पूर्वमिध्रिनाः ॥७॥

ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! तिथियो का निर्णय तथा प्रायश्चित्त की विधि आप हम लोगो को बताने के लिये परम योग्य है क्योंकि एक तो वैसे ही महती मति वाले हैं और आप महामनीषी व्यासदेवजी के प्रमुख शिष्य हैं । १। सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! आप सब लोग तिथियो के विषय में जो परम निर्णय है उसका अब मुझसे श्रवण कीजिए । जो तिथियाँ निर्णीत नहीं हैं उनमें किया हुआ कर्म कभी भी सिद्ध नहीं हुआ करता है । १। कर्म श्रुति प्रतिपादित हो चाहे स्मृति प्रतिपादित हो—भले ही कोई दत्त या दान हो और जो कोई भी वैदिक कर्म हो इन सभी को निर्णय की हुई तिथियो में करना चाहिए । इसके विपरीत कभी भी नहीं करना चाहिए । २। दैवफलो की इच्छा रखने वालों के द्वारा प्रायः तिथि के प्रान्त का ही उपवास करना चाहिए । मूल पितृगण की तुष्टि के लिये ही होता है और महर्षियो ने उसे विध्य-इस नाम से कहा है । ४। जिस तिथि शासन काल में सूर्यदेव अस्नाचल की जाते हैं वह तिथि यदि तीस मुहूर्त वाली हो तो समस्त धर्म सम्बन्धी कृत्यों में उस तिथि को सम्पूर्ण ही समझना चाहिए । ५। क्षय में पूर्वा तिथि ही करनी चाहिए और तिथि की वृद्धि में उत्तरा तिथि को मानना चाहिए । तीन क्षण वाली उस तिथि का कारण क्षय और वृद्धि का हो जाना ही हुआ करता है । ६। अष्टमी—एकादशी—चण्डी—तृतीया और चतुर्दशी इन तिथियो को पर से संयुक्त ही करना चाहिए । और दूसरी तिथियाँ पूर्ण मिश्रित करनी चाहिए । ऐसा शास्त्रों का सिद्धान्त होता है । ७।

बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी ।

कृष्णाष्टमी च भूता च वर्तव्या समुखी तिथि ॥८॥

शुक्ले द्वे द्वे तथा कृष्णे युगादी कवयो विदुः ।

शुक्ले पूर्वाह्निके नाये कृष्णे चैवापरार्ह्निके ॥९॥

नागविद्धा तु या पक्षी शिवविद्धा तु सममी ।

दशम्यैकादशी विद्धा नोशोष्यैव कथंचन ॥१०॥

ज्ञात्वेव सूर्यचन्द्राम्या तिथि स्फुटतरं व्रती ।
 एकादशी तृतीया च पष्टी चोपवसेत्सदा ॥११॥
 फलमेकादशी हन्ति विहित दशमीयुता ।
 पारण तु त्रयोदश्यामुल्लङ्घ्य द्वादशीव्रतम् ॥१२॥
 पारणाहे न लभ्येत द्वादशी सकलाऽपि चेत् ।
 तदानीं दशमीविद्धा ह्युपोष्यैकादशी तिथिः ॥१३॥
 शुक्ले वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशीद्वयम् ।
 उत्तरा तु यतिः कुर्यात्पूर्वमेव सदा गृही ॥१४॥

गृह्यतया—रम्भा—सवित्री—बह पंख की—वृष्णाष्टमी—मृता—
 इनको सभी करे जब तिथि समुपरी होवे ॥८॥ दो शुक्ल और दो वृष्णा
 को बवि लोग युगादी कहा करत हैं । जो शुक्ल हो उन्हें पूर्वाह्निक में
 करना चाहिए । और जो वृष्ण हो उन्हें अपराह्निक में करना चाहिए
 ॥९॥ जा पष्टी नाग मे विद्धा हो और जो मघमी शिवविद्धा हो और
 दशमी मे विद्धा एकादशी हो तो इनका उपवास कभी भी नहीं करना
 चाहिए ॥१०॥ इन चार नाम व्यति को गूर्य और चन्द्र के द्वारा स्पष्ट
 रूप से तिथि का ज्ञान प्राप्त करके एकादशी-तृतीया और पष्टी का
 सदा ही उपवास करना चाहिए ॥११॥ दशमी से युक्त एकादशी
 विहित पत्र का दमन कर दिश करतो हैं । द्वादशी व्रत का उल्लङ्घन
 करके त्रयोदशी में पाग्न होता है । पारण के दिन मे यदि द्वादशी
 सम्पूर्ण न भी मिले तो उस समय मे दशमी से बेध पायी हुई एकादशी
 तिथि का ही उपवास कर लेना चाहिए । शुक्ल पक्ष मे अथवा वृष्ण
 पक्ष मे यदि दो एकादशी होव तो उत्तरा एकादशी व्रत तो यति को
 करना चाहिए और गृहस्थों को सदा पूर्वा ही एकादशी का व्रत करना
 चाहिए ॥१२॥१३॥१४॥

दशं च पीलमाम न सप्तमी पितृवासरम् ।
 पूर्वविद्धमनुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥१२॥

सिनीवाली द्विजग्राह्या साग्निकैः श्राद्धकर्मणि ।

बृह स्त्रीभिस्तथा शूद्रैरपि चान्यैरनग्निकं ॥१६॥

पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।

निशाव्रतेषु च ग्राह्या प्रदोषव्यापिनी सदा ॥१७॥

उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः ।

यच्च वा युज्यते विप्रः प्रदोषे हिमरश्मिना ॥१८॥

सर्वाविषोडशं नाड्यस्तु परतश्चैव षोडशं ।

पुण्यकालोऽर्कसक्रान्ती स्नानदानजपादिषु ॥१९॥

आसन्नसक्रमं पुण्यं दिनाद्यं स्नानदानयोः ।

राक्षी सक्रमणे भानोर्विषुवत्ययने दिने ॥२०॥

सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम् ।

न त्वप्यान्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः ॥२१॥

दशं—पौर्ण मास—सप्तमी और विष्ट वासर इनका जो पूर्व तिथि से विद्वान् नहीं किया करता है वह नरक को प्राप्त किया करता है ॥१५॥ साग्निक द्विजों के द्वारा श्राद्ध कर्म में मिनी वासी का ही ग्रहण करना चाहिए । स्त्रियों के द्वारा और शूद्रों के द्वारा और अनातिक अग्नियों के द्वारा भी बृह का ग्रहण करना चाहिए ॥१६॥ पारण में और मनुष्यों के मरण में तात्कालिकी अर्थात् उस समय में वर्तमान रहने वाली ही तिथि ग्रहण करनी चाहिए—ऐसा बताया गया है । रात्रि काल के जोव्रत होवें उनमें सदा बहो तिथि ग्रहण करनी चाहिए जो प्रदोष काल में व्यापिनी होवे ॥१७॥ जिसके द्वारा भगवान् भास्कर अस्ताचल को गमन किया करते हैं वही नक्षत्र उपवास में ग्रहण करे । हे विप्रो ! और जो प्रदोष में हिमरश्मि (चन्द्र) के द्वारा युज्यमान किया जाना हो ॥१८॥ सोलह नाडियों के पूर्व और षोडश नाडियों के परे अर्क (सूर्य) की सक्रान्ति में स्नान-ज्ञान और जप आदि कर्मों के लिए पुण्य काल माना जाता है ॥१९॥ जो समीप में ही रहने वाला सक्रमण है । वही पुण्य है और समान-दान में दिन का आधा भाग लेने

आदि का कर्म करना चाहिए क्योंकि दीक्षा में स्थित होने पर उनको न तो दाव अर्थात् मृतक का आशौच लगता है और न आत्माओं का सूतक ही होता है ॥२५॥ जिसका देवार्चन शिव में है अथवा जिसका अग्नि गरिग्रह होता है तथा ब्रह्मचारी और मत्तियों को शरीर में कभी सूतक नहीं होता है ॥२६॥ जो महत् शक्त से प्रयुक्त हो और जो उपपदा के सहित तिथि हो वह अभावस्या के ही समान होनी है और दान तथा अध्ययन कर्मों में उसे ऐसा ही माना जाया करना है ॥२७॥ अपर पक्ष में मार्ग और पूर्व मन्त्रा शक्तिता ये तीन चतुरष्ट का होने हैं और सप्तमी आदि में अनुक्रम से हुआ करते हैं ॥२८॥

माघे पञ्चदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी ।

तृतीया माघवे शुक्ला नभो कार्तिके सिता ॥२९॥

एता युगादय प्रोक्ता सर्वाश्च क्षयपुण्यदाः ।

सिंहवश्रिकयो कुम्भसक्रान्तिषु (१) भवन्त्युत् ॥३०॥

क्रमात्कृतयुगादीना युगान्ताश्च महर्षय ।

श्राद्धपक्षे त्रयोदश्या मघास्विन्दु करे रवि ॥३१॥

यदा तदा गजच्छाया श्राद्धे पुण्यैरवाप्यते ।

धनुस्त्रोगीनयुग्माङ्कः पञ्चशीतिमुखा स्मृता ॥३२॥

अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके सिता ।

तृतीया चत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥३३॥

फाल्गुनस्य त्वमावास्या पीपस्यैकादशी तथा ।

आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥३४॥

माघ में कृष्ण पक्ष की पक्ष दशमी और नभस्य में त्रयोदशी—माघ में शुक्ल पक्ष की तृतीया—कार्तिक मास में शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि—ये तिथियाँ युगा के आदि मानी गयी हैं और ये सब अष्टय पुण्य प्रदान करने वाली मानी गयी हैं । सिंह और वृश्चिक की सक्रान्तियाँ में और कुम्भ की सक्रान्तियाँ में हानी हैं ॥२९॥३०॥ हे महर्षियों ! क्रम से इन युगादि के युगान्त होने हैं । श्राद्ध पक्ष में त्रयोदशी में—मघाओं में

चन्द्रमा और पर में रवि हो । अब ऐसा हो तब गजसप्त होनी है और पुण्यो के द्वारा ही प्राप्त की जाया करनी है । धनु-म्यो-मीन युमाद्ध पक्षणी ये प्रमुख बताई गई हैं ॥२१॥३२॥ अथ युवन मास की युवन पक्ष की नवमी तथा कार्तिक मास के युवन पक्ष की द्वादशी—चैत्रमास की और भाद्रपद मास की तृतीया—फाल्गुन मासकी अमावस्या तथा पौष मास की एकादशी—आषाढ की दशमी और माघ मास की सप्तमी तिथि ॥३३॥३४॥

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाऽष्टादो च पूर्णिमा ।

कार्तिकी फल्गुनी चैव ज्येष्ठे पञ्चदशी सिता ॥३५॥

मन्वन्तरादयस्त्वंता दत्तस्याकारिका ।

मङ्गन्तयस्तथा पुण्या भाम्बनो द्वादशीव हि ॥३६॥

पवंस्वेतैष दानानि धेनुर्जनादिकानि च ।

प्रयच्छन्ति 'द्विजैर्द्वेभ्यो लभन्त चाक्षया गतिम् ॥३७॥

पानायमप्येषु तन्निविमिश्र दद्यात्स्वितुम्य प्रयतो मनुष्यः ।

श्राद्धं कृतं तेन समाप्तहस्यं रहस्यमेतत्पिनरो वदन्ति ॥३८॥

श्रावण की अष्टमी जो कि कृष्ण पक्ष में हो—आषाढी पूर्णिमा जो मिनाक्ष में आती है और कार्तिकी फाल्गुनी और ज्येष्ठ में मिनपक्ष की पंचदशी ये मत्र तिथियाँ मन्वन्तर होने की आदि होने की तिथियाँ होती हैं । इन तिथियों में दिये हुए दान अक्षय होने वाले माने जाया करते हैं । सूर्य देव की जो वर्ष में सार्व गक्रान्तियाँ होती हैं वे तिथियाँ भी परम पुण्य मयी हुआ करती हैं ॥३५॥३६॥ इन उपर्युक्त पर्वों में जो दान दिये जाते हैं और द्विजैर्द्वो की धेनु तथा नीव आदि दिये जाते हैं वे अक्षय गति को प्राप्ति हुआ करते हैं ॥३७॥ इन पर्वों में तिनो के माघ विमिश्रित करने अथ प्रयत्न मनुष्य करने विनृपनो को देना है उनसे द्रव्य एव महस्र वर्ष तथा वे श्राद्धों के ही समान होते हैं—ऐसा यह रहस्य विनृपन कहा करके है ॥३८॥

पार्वती के पनि देव भगवान् के माहात्म्य को भतीभाँति जानते हैं । आपने अतिरिक्त दूसरा कोई भी अन्य इमका ज्ञाता नहीं है—ऐसा श्रुति ने कहा है । ४) क्यों कि आप तो ईश्वर की ही दूसरी भूति हैं और परमेश्वर ही हैं । अतएव आप ही महेश्वर की महिमा को जानते हैं । ५) मैं आर ही की शरण में जाता हूँ क्यों कि आप ही वरद हृद-सिन्धु और परम कारण हैं । आप तपन हैं—ज्योतियो के भानु हैं और अमय ज्योति हैं । आप ही अम्बिका के पनि-ईशान-ज्योतिष्मान् और दिवाकर हैं । ६।७।

हिरण्यवाहु जटिलमोरारस्य प्रचेतसम् ।
 ब्रूहि मे देवदेवेश विद्याह परमोष्ठिन ॥८॥
 कानी हैमवती गौरी पुनर्जिता ~ । गिगो ॥९॥
 पृष्ट यत्तत्प्रवक्ष्यामि षण्णुज्ज मनुजेश्वर ।
 सर्वपापक्षयकर पर ब्रह्म मनात्तनम् ॥१०॥
 नीलग्रीवो महादेव शरण्यो गोतिविराट् ।
 प्रपद्ये त्वा महेशानमग्र दार्व कपदिनम् ॥११॥
 त्वा नमामि पर हम् पशुभर्दारमेश्वरम् ।
 गर्जेश स्मरणादेव देहिना मोक्षमाधनम् ॥१२॥
 य एतं नमिभि रतीति प्रात मप्रयतात्मवान्
 तस्य पाप क्षय यानि लक्ष्मीर्नैव पवर्धने ।
 सर्वगोविनिभुं त्तो जीवेद्वर्षे दत्त नर ॥१३॥

गति न जाता हूँ ॥११॥ मैं पशुभर्ता-ईश्वर-परम हूँ आपको प्रणाम करता हूँ । सब देहधारियों को स्मरण मान से ही मोक्ष का साधन हुआ करते हैं ॥१२॥ जो कोई इन नामों के द्वारा सम्प्रपन्न आत्मा वाला होकर प्रातःकाल में स्तुति किया करता है उसके समस्त पाप दाय को प्राप्त हो जाया करते हैं ओष सद्मी की वृद्धि हुआ करती है । वह मनुष्य सभी रोगों से निर्मुक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है ॥१३॥

एव मनोर्वच श्रुत्वा यदुवाच दिवाकर ॥१४॥

तदहं सप्रवक्ष्यामि शृणुस्व मुनिपुंगवा ॥१५॥

या सा दक्षसुता देवी सती नैलोक्यपूजिता ।

त्यक्त्वा दाक्षशरीरं च बभूवाचलकन्यका ॥१६॥

नाम्ना कालीति विख्याता विश्वरूपा महेश्वरी ।

जगच्चेतन्यरूपा च जगच्चेतन्यबोधिनी ॥१७॥

अधिश्रितरतया काल्या हिमवान्पर्वतोत्तमा ।

पुण्यस्थानमभूद्विप्रा मोक्षद सर्वदेहिनाम् ॥१८॥

सिद्धानां च मुनीनां च गन्धर्वाणां दिवौकसाम् ।

भावात् किंनराणां च स्मरणात्पुण्यदो नृणाम् ॥१९॥

शिव भर्तारमिच्छन्ती तस्मिन्निरिवरोत्तमे ।

तपस्तप्तुं गता काली शिवा पित्रोरनुज्ञया ॥२०॥

अथास्मिन्नन्तरे दैत्यस्तारको लोककण्टकः ।

जातो दैत्यबुधो वीरो मृत्युरूपो दिवौकसाम् ॥२१॥

श्री सूतजी ने कहा — इस प्रकार के अनुमहाराज वचन को सुनकर भगवान् दिवाकर ने जो कुछ भी कहा था हे मुनि अच्छो ! वही मैं अब आप लोगों को बतलाता हूँ आप लोग उसका श्रवण करिये ॥१५॥ जो दक्ष की सुता देवी थी वह सती नैलोक्य के द्वारा पूजित थी । उसने दक्ष से समुत्पन्न शरीर का त्याग करके पुनः, अचल (हिमालय) की कन्या होकर वह समुत्पन्न हुई थी ॥१६॥ वह विदयरूपा महेश्वरी काली इस नाम से विख्यात हुई थी । वह जगत की चैतन्य

रूपा और जगत् के चैतन्य के बोध करने वाली है । १७। उस काली के द्वारा पर्वता में उत्तम हिमवान् अधिष्ठित हो गया था । ह विप्रो ! सब देह धारिया क लिये मोक्ष देन वाना परम पुण्य स्थान हो गया था । वह हिमवान् गिरिराज मिद्धा का मुनिया का- गन्धवा का और देवा का तथा किन्नरो का आवास स्थल हो गया था और स्मरण करने से मनुष्यों को पुण्य देने वाना था । १८-१९। उस उत्तम गिरिवर में शिव को अपना भर्ता चाहती हुई वह कानी शिवा माता पिता की आज्ञा प्राप्त करके तपस्या करने को चली गयी थी । हमारे अनन्तर हमी बीच में तारक दैत्य हुआ था जो समस्त लोका के लिए बन्धक स्वरूप था अर्थात् महादुःखदायी था । वह दैत्य दवा का मृत्यु स्वरूप ही वीर दैत्य कुल में समुत्पन्न हुआ था । २०-२१।

ग्राह्याण तपसाऽऽराध्य वर तस्मादवाप ह ।

देवा पलायिनारतेन तारकेण बलीयसा ॥२२॥

देवाना घोषितो याश्च वनादपहृताश्च ता ।

दुःखगिना मुमतता शक्राद्या प्रयितोजस ॥२३॥

गता सशवा शरण ग्राह्याण त्रिदशेश्वरम् ।

आगताश्च सुरान्दृष्ट्वा तत्र प्राश्नाच पचज ॥२४॥

वरमात्रता सुरा यूयमागता वी ममान्तिके ।

व्रूत तत्सर्वत्र देवा उपाय वच्मि व स्फुटम् ॥२५॥

तारकाद्भयमत्रस्ता शरण देवमागता ।

यथा मृत्योर्भय देव तस्मान्नस्नातुमहमि ॥२६॥

अपि क्षण मुरध्रेष्ठ न लभामो वय मुखम् ।

प्रिशद्वर्षमहच्छाणि हगितारवयास्तदा ॥२७॥

वहनिगमस्थान युद्धमाभीत्पुदाग्णम् ।

तयार्जुन न जिनस्तेन देवदेवेन चक्रिणा ॥२८॥

तस्मात् व द्वारा ब्रह्माग्नी की आराधना करके उनमें उन्हीं वरदान प्राप्त किया था । उन वही तारक व देवा को भया दिया था । २२। २३।

पी जो स्त्रियाँ भी वे मय दग देता के वन से अग्रहण कर लिया था ।
 इन्द्र आदि प्राच्य और याने मय दुःख ही अग्नि में गुनगुन हो गये थे
 ॥२३॥ इन्द्रदेव व महिष तार देस्ता देवों ने ईश्वर ब्रह्माजी की शरण में
 गये थे । ब्रह्माजी ने जब समागत हुए देवों को देखा था तो वे उन में बोले
 ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा-हे सूरगणों ! आप लोग जिस कारण से मेरे
 समीप में समागत हुए हैं । हे देवों ! यह सब मैं आप यतना दूँ जितने
 मैं मैं आपकी स्पष्ट कोई उपाय बनलादूँ ॥२५॥ देवों ने कहा-हम लोग
 तारक देवों के भय से डरे हुए हैं और अब आपकी शरणगति
 उपस्थित हुए हैं । हे देव ! उससे मृत्यु जैसा भय है उससे आप रक्षा
 करने के योग्य होते हैं ॥२६॥ हे मुरश्रेष्ठ ! हम लोग एक क्षण मात्र भी
 सुख प्राप्त नहीं करते हैं अर्थात् एक क्षण को भी हमको घैन नहीं
 मित्रता है । उक्त समय में तोस सप्त वर्ष तब अहनिषा निरन्तर-परम
 दारुण युद्ध हुआ और तारक इन दोनों का हुआ था । तो भी देवों के
 देव चक्षी प्रभु ने उसको नहीं जीता था अर्थात् इतने लम्बे समय तक
 युद्ध होने पर भी विष्णु भगवान् ने उक्त पर विजय प्राप्त नहीं की
 थी ॥२७॥२८॥

अवध्योऽयोमिति ज्ञात्वा ययौ त्यक्त्वा महोदधिम् ।

भ्रान्तचित्तस्तदा शार्ङ्गं गतस्तूर्णं महाबल ॥२१॥

वयमप्यवमेव हि भीमास्त्वा शरण प्रभो ।

जागतास्त्राहि नस्तस्मात्सुखदो भव पञ्चज ॥३०॥

शृणुष्व मेऽमरा सर्वा युष्माक सुखद मल्लम् ।

योऽसौ दृप्तस्तारकायस्तताप परम तप ॥३१॥

तस्य दैत्यस्य तनसा दह्यमान चरान्तरम् ।

दृष्ट्वा तद्भरदानार्थं गतोऽह तारकान्तिकम् ॥३२॥

उक्त मया वर वत्स वरयेति महासुर ।

अग्रवोहेत्यराजो मामभिवन्द्य कृताञ्जलि ॥३३॥

अवध्योऽहं सुरैः सर्वैर्विष्णवाद्यैः पद्मसम्भव ।

भवाम्यहं यथा देव तथा त्वं देहि मे वरम् ॥३४॥

एवमस्त्वित्यहं तस्मै वरं दत्त्वा मुरोत्तमा ।

अन्यच्चोत्तम इत्यर्थं यं कस्माद्वच्योऽस्ति तद्वद ॥३५॥

यह तारक दैत्य बध करने के योग्य नहीं है—वहाँ समझाकर महान् बलवान् माता भगवान् भ्रान्त चित्त वाले होकर महा देवि का त्याग करके वहाँ से क्षीघ्र ही चले गये हैं । ३२। हे प्रभो ! हमी प्रभार से हम भी भयभीत हुए आपकी शरण में नम्रगत हुए हैं । हम लोग आपके समीप समुपास्थित हो गये हैं । हे पद्म ! आप हमारी रक्षा कीजिए और हमको सुख प्रदान करने वाले होइये । ३३। श्री ब्रह्माजी ने कहा— हे अमरगणो ! आप मम लोग मेरी बात सुनिये । मैं तो आपको महान् सुख देने वाला हूँ । जो यह तारक दैत्य है उगने परम तप दिया था । ३४। उग दैत्य के तप से यह ममस्त घराबर दृश्यमान हो रहा है । उगको तप करते हुए देगकर उगको वरदान देने के लिये मैं स्वयं तारक के समीप में गया था । ३५। हे ब्रह्म ! मैंने उगसे कहा था— महामुर वरदान माँग लो । उग दैत्यगज ने मुझसे प्रणाम करके हाथ जोड़कर मुझसे बोला था । ३६। तारक ने कहा— हे पद्म सम्भव ! मैं विष्णु जादि ममस्त गुरो के द्वारा नदण्ड हो जाऊँ । मैं हे देव ! तेगा हो जाऊँ । तेगा ही वरदान आप मुझसे प्रदान कीजिए ॥३४॥ हे गुरोनाम ! तेगा शायना—यह मैंने उगका वरदान दिया था । आपने तब के तब मैंने अन्य बात भी कही थी कि तुम यह बात श्रो कि तुम्हारा वध निश्चय होता चाहिए । ३५।

याज्य देवा घिदेदन् वषट्ती नीललोहित ।

तस्य रेता मुरा पीत्वा मगर्मा विष्णुना गत ॥३६॥

भविष्यन्ति तथा जानात्सृष्टिर्गुणो न याज्य ।

तथाऽस्मिन्वति तनूनोमना ततोऽहं मेरुमूर्धेति ॥३७॥

मत्तान् मत्तं तन्मात्तं मत्तं नन्देहिनाम् ।

चिन्तयन्नुमात्तान् मत्तं तौरात्तम् ॥३८॥

मक्त्वा हरात्मन देव त्रैलोक्ये मचराचरे ।
 न त पश्यामि भो देवास्तारक यो वधिष्यति ॥३६॥
 ब्रह्माणो वचन श्रुत्वा सहस्राक्ष शचीपति ।
 कथं भविष्यतीत्येवमालोक्य मनमा द्विजा ॥४०॥
 गुरुणा क्षेत्रे सावे पुनरेव स देवराट् ।
 हरमयैव सुतोत्पत्तावुपायश्चिन्त्यता सुरा ॥४१॥
 इत्युदत्वा प्रययुर्देवा शक्राद्या ब्रह्मणा मह ।
 मेरोरुत्तरत शृङ्ग यत्र तिष्ठति माधव ॥४२॥
 गुप्तरितष्टत्यमेयात्मा तारकाद्भयपीडित ।
 सब्रह्मकान्पुरान्दृष्ट्वा हृष्ट प्रोवाच माधव ॥४३॥

तारक ने कहा—जो यह देवाधिदेव न पढ़ीं नीम लोहित प्रभु हैं
 उनके रेत को विष्णु के साथ सुरों ने पीकर वे सब सगर्म हो गये हैं ।
 इसके पश्चात् जात हुए से मृत्यु अभीष्ट है । दूसरा कोई भी नहीं है ।
 ऐसा ही होवेगा—यह कहकर मैं इसके उपरान्त मेरु की शिखर पर
 गमन कर गया हूँ । सब देहधारियों के शरण्य—विश्वेश्वर—उमाकान्त
 लोक का श्रेय करने वाले भगवान् शंकर के समीप गया या १.८॥
 चरान्तर त्रैलोक्य में हरात्मक देव को छोड़कर हे देवो ! मैं उसको नहीं
 देखता हूँ जो इस तारक का वध कर देगा । तात्पर्य यह है कि पाँचूर
 के शिवाय अन्य कोई भी देव नहीं है जो तारक को मार देवे । इस
 प्रकार के ब्रह्माजी के वचनों को सुनकर शचीपति सहस्राक्ष ने कहा—
 यह कैसे होगा—यही मन से विचार करके हे द्विजो गुरुजी के और
 अन्य देवों के गाय देवों का राजा पुन कहा—हे सुरों ! अब तो आप
 लोग यही विचार करो कि भगवान् हर के मुत की उत्पत्ति हो जावे ।
 यह कहकर समस्त देवगण ब्रह्माजी के ही साथ म मेरु पर्वत के उत्तर
 की ओर शिखर पर चने गये थे जहाँ पर माधव स्थित रहा करते हैं ।
 वे अमेय आत्मा वाले प्रभु तारक के भय में पीडित होकर गुप्त रूप से
 ही बड़ा पर अवस्थित रहा करते हैं । माधव ने जब ब्रह्माजी के साथ

मे से गणदेवों को देया तो बहुत ही हर्षित होकर बोले—१३६।४०।
४१।४२।४३।

उपायश्चिन्तितः कोऽत्र वचार्थं तारकस्य हि ।
अस्ति चेदुच्यता देवा. शर्शं नो जायते यथा ॥४४॥
एव विष्णोर्वच. श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ।
यथोक्तं ब्रह्मणा तेभ्यस्तथोक्तं विष्णवे सुरैः ॥४५॥
क्रियिदानीं तु कर्तव्यमिति सचिन्त्य देवराट् ।
सोऽस्मरन्मनसा काममजेयमसुरैः सुरैः ॥४६॥
शक्रस्य चित्तित ज्ञात्वा कामो रतिपति. स्वयम् ।
शचीपतिं समागम्य प्राह पुष्पधनुर्धर ॥४७॥
किं कार्यं त्रिदशश्रेष्ठ कर्तव्यं किं मया प्रभो ।
तीक्ष्णेण तपसा को हि स्थानमीहेत तावकम् ॥४८॥
किं वा काचित्तवाऽऽदेश कर्तुं नेच्छति चाङ्गना ।
ता कामिनी करोम्यद्य तव ध्यानपरायणाम् ॥४९॥

भाष्य प्रभु ने कहा—इम विषय मे इस तारक के वच के लिये क्या उपाय सोचा है ? यदि कोई भी ऐसा उपाय हो तो हे देवों ! यत्नाइये जिससे आपका कल्याण हो जावे ।४४। श्रीमूतजी ने कहा— इस प्रकार मे भगवान् विष्णु के वचन को सुनकर ब्रह्मा आदि सय श्रेष्ठ सुरों ने जैसा कि ब्रह्माजी ने उनसे कहा था वह उन्होंने विष्णु के लिये वह दिया था ।४५। देवराज ने यह सोचा था कि अब क्या करना चाहिए । उसने मन मे स्मरण किया था कि यह कामदेव असुरों और गुरों के द्वारा अजेय ही है ।४६। इन्द्रदेव की इस चिन्ता का विचार करके रतिवा पति स्वय ही शची के पति के समीप मे उपस्थित हो गया था और वह गुरों के धनुष को धारण करने वाला कामदेव ने कहा—हे देवों मे परमश्रेष्ठ ! हे प्रभो ! क्या कर्त्तव्य मुझे करना चाहिए । यह कौन है जो तीव्र तप मे आपन स्थान को प्राप्त करना चाहता है ।४८। अबया कोई अङ्गना ऐसी है जो आपके आदेश करना

नहीं चाहती हो । तो मैं उसी वामिनी को ऐसा बना सबता हू जो आपके ही ध्यान परायण हो जाये ॥४६॥

न कश्चिदरित मे सूरो न माभी न च पण्डित ।
 व्यापयाज्ञि जगत्कृत्स्न ब्रह्माद्य स्तम्बगोचरम् ॥५०॥
 अथ किं बहुनोक्तेन दुर्वासा वा महामुनि ।
 सोऽपि विद्व पतत्याशु मद्गार्जनंरुता पते ॥५१॥
 जानाम्यह रतेर्माथ सामर्थ्यं पुष्पधन्विन ।
 नून हि सर्वकार्याणि त्वत्त सिध्यन्ति नान्यया ॥५२॥
 गच्छ पार्श्वं महेशस्य सुरार्णा हितराम्यया ।
 चित्त हरस्य सक्षोम्य पार्वत्या सगम कुरु ॥५३॥
 एतधुव हि मे कार्यमिष एव मनोरथ ।
 एतस्मात्कारणात्त्व हि स्मृत पुष्पधनुर् ॥५४॥
 एग शक्रवच श्रुत्वा बलमग्निमकरध्वज ।
 मधो सखा रतीयुक्त पञ्चबाणो मनोभव ॥५५॥
 यत्राऽस्ते भगवाञ्शुभुर्ध्यानदृष्ट्या समाहित ।
 निष्क्रम्य स्वात्मनाऽऽत्मान चिन्तयानो महेश्वर ॥५६॥

मेरे सामने कोई भी ऐसा शूर नहीं है न कोई मानी है और न कोई ऐसा पण्डित है । मैं तो सम्पूर्ण जगत् में व्यापक रहता हू ब्रह्मा से आदि लेकर जो भी कुछ स्तम्ब पर्यन्त है मैं सभी में व्यापक रहता हू । ५०। हे मरुता पते । इस विषय में अत्यधिक कथन निष्प्रयोजन ही है । जयवा महामुनि दुर्वासा बहुत शक्तिशाली हैं किन्तु वे भी मेरे बाणों से नीचे ही विद्व होकर गिर जाया करते हैं ॥५१॥ इन्द्रदेव ने कहा— हे रति के नाथ । पुष्पो के धनुर्गरी आनकी सामर्थ्य मैं खूब जानता हू । यह गवया निश्चिन्त है कि आपसे ही समस्त कार्य सिद्ध हुआ करते हैं अन्य किसी भी साधन से असम्भव ही है ॥५२॥ अब तुम सूरों की हित वामना के लिये महेश भगवान् के पास में जाकर पहुँच जाओ वहाँ पर

तुम्हारा इतना ही कर्त्तव्य है कि महादेवजी के चित्त में शोभ करदो कि पार्वती का सङ्गम करो ॥५३॥ मेरा यही कार्य है और मेरा यह ही मनोरथ है । हे पुष्पधनुर्धर ! इसी कारण से मैंने तुम्हारा स्मरण किया था ॥५४॥ इस रीति से महेन्द्र के वचन को सुनकर बलवान् मकरध्वज—मधुरा सया—रति से युक्त—पाँच बाणों वाला—मनोभक्त ने जहाँ पर भगवान् शम्भु ध्यान की दृष्टि से समाहित थे और अपनी आत्मा से आत्मा का चिन्तन करने हुए महेस्वर निष्कम्प थे उनको देखा था । ॥५५॥५६॥

प्राप्य शम्भोरायतनमपश्यन्मकरध्वज ।
 शैलादि द्वारदेशे तु मेरुशृङ्गमिवोदितम् ॥५७॥
 सर्वाभरगमयुक्त सहस्रादित्यवर्चसम् ।
 दूतहन निनेत्र च चन्द्राययत्रभूषणम् ॥५८॥
 वज्रपाणिं चतुर्बाहुं द्वितीयमिव शबरम् ।
 त दृष्ट्वा मदनो विप्रादिन्यत्ताक्रान्तस्तदाऽभवत् ॥५९॥
 कथं प्रविश्य वक्ष्यामि शम्भु त्रिदशवान्दतम् ।
 कथं कार्यं करिष्यामि सुराणां प्रीतिवर्धनम् ॥६०॥
 चिन्तयित्वा तु बहुधा वञ्चनार्थाय नन्दिन ।
 वायुरूपे तन उत्त्वा मुगन्ध मृदुशीतलम् ॥६१॥
 प्रविवेश तदा वामो दक्षिणा दिशमाश्रयम् ।
 तेन याम्या दिशि गतो वायुर्वाणि सुग्रावह ॥६२॥
 अद्यापि कारणात्मोऽय मुगन्धो मृदुशीतल ।
 अपश्यत्तत्र मदनं नूर्यं तोटिमिवोदितम् ॥६३॥

मारुध्यत्र ने भगवान् शम्भु के जागृत में पहुँचकर देखा था कि द्वार देश में मेरु को शिखर के समान ही उन्नत शींगरि मिला थे जो आसरा में मग्निया—महत्त मूर्तों के समान वर्णम् वाले—हाथ में त्रिशूल विधे—तीव्र नेत्रों से मधुरा—इय हाथ में धारण विधे हुए—

चन्द्रकला के मस्तक भूषण वारे—चार भुजाओं से युक्त दूसरे शरर की ही भांति विराजमान थे । ३ विप्रों । उस खैलादि का देखकर मदन उस समय में चिन्ता से समाक्रान्त हो गया था । ५७।५८।५९॥ कामदेव को यही चिन्ता हुई थी कि मे किस प्रकार से अन्दर प्रवेश करके देवा से वन्दित भगवान् शम्भु को बोलूंगा । और सूरों की प्रीति का बढ़ाने वाला कार्य करूंगा । ६०। नन्दी के वञ्चन करने के लिये बहुत सी रीतियों से सोच करके उस मदन वायु का स्वरूप धारण किया था जो परम सुन्दर गन्ध वाला—मृदुल और शीतल था । ६१। उस समय मे कामदेव ने दक्षिण दिशा का आश्रय ग्रहण करके अन्दर प्रवेश किया था । उसके द्वारा याम्य दिशा में जाकर वहाँ पर सुख देने वाली वायु बहान करने लगा था । ६२। आज भी इसी कारण से वह यह सुगन्ध मृदु और शीतल वायु है । वहाँ पर मदन ने उदित करोड़ों सूर्यों के सदृश भगवान् शम्भु को देखा था । ६३।

सहस्रनयन देव सहस्रतनुमीश्वरम् ।

नीलकण्ठ गुधाभास शुभ्रखण्डेत्बुधारिणम् ॥६४॥

जगदुत्पत्तिसंहारम्वित्यनुग्रहकारिणम् ।

शुद्धस्फटिकसकाश विद्युन्मामिव पावकम् ॥६५॥

रण्डमालाचित देव सूर्यमालाविभूषितम् ।

अनौपम्यमसादृश्यमप्रमेयमनाकुलम् ॥६६॥

जयञ्चक्षुर्जगद्वाहु जगच्छीर्षं जगन्मयम् ।

जगत्पाद जगच्छ्रोत्रं भूदमस्थूल परात्परम् ॥६७॥

रुद्र अर्धं पशुपतिमुग्र भीम भव द्विजा ।

महादेव महेशानमष्टमूर्ति जगत्पतिम् ॥६८॥

व्यक्ताव्यक्त त्रिलोकेश पूजित च सुरासुरैः ।

अथ दृष्ट्वा महादेव प्रहृष्टो मनरध्वज ॥६९॥

निवृत्त्य चापमापूर्य स्थित पश्यन्भवोद्भवम् ।

एव स्थितस्य क्रामस्य सहस्राण्ययुतानि पट् ॥७०॥

भगवान् शम्भु को स्वरूप जो कामदेव ने वही पर देया था वह मह्य नयनों से युक्त था और ईश्वर मह्य शरीर वाले देव थे—नीले वण्ट वाले और मुद्रा मास तथा परम शुभ्रचन्द्र की कला को मस्त वपट धारण करने वाले थे । इस जगत् की उत्पत्ति महार तथा स्थिति का अनुग्रह करने वाले थे । शम्भु का स्वरूप शुद्ध स्फटिक मणि के समान स्वच्छ एव घूमरहित पावन व गदग तेज युक्त था । ६४।३५। गरमुण्डों की मालाओं से चिन्मय मूर्तों की मालाओं से विभूषित शिव का स्वरूप था । उन भगवान् शम्भु का स्वरूप ऐसा विलक्षण था कि अनुपम सादृश्य से मुक्त-अप्रमेय एव अनाकुल था । वे इस जगत् के नेत्र थे—जगत् बाहु थे—जगत् क्षीपं और जगन्मय थे । जगत् पाद-जगत् श्रोत्र-सूक्ष्म एव सूत्र तथा परमे भी पर थे । ६६।६७। रद्रक्ष-पशुपति-उग्र-भीम-भव गहसान-अष्टमूर्ति-जगत्पति-व्यक्ताव्यक्त-तीनों लोगों के ईश और मुर-अमुरों के द्वारा पूजित महादेवजी का दर्शन करके मकराब्ज बहुत प्रसन्न हुआ था । ६८।६९। मदन ने आप धनुष निकालकर उस चाप को आवूरित किया था तथा इस मत्तार को उत्पन्न करने वाले भगवान् शम्भु को देवत हुए यह स्थित हो गया था । इसी तरह से स्थित हुए कामदेव को छे महान् अयुध बाण व्यतीत हो गए थे । ७०।

गतानि तस्य वर्षाणि मुनीन्द्रादिचक्राजन्मन ।

तत म भगवान्देवो नेत्रे उन्मील्य शङ्कर ॥७१॥

अपश्यदिरिजा देवीमग्रे निश्वश्वर निव ।

गिरीन्द्रपुत्रां तपस मि) प्रमक्ता नज्जयाज्ज्विताम् ॥७२॥

दृष्ट्वा तिमिरेति विक्पबुद्ध्या कामोज्यमग्रेति विचिन्त्य शत्रं ।

शात्वा त्रिनोक्य प्रविकृष्टचाप नेत्राग्निनाज्मी भदनोऽपि दग्ध ॥७३॥

हे मुनीन्द्रा ! मन में समुत्पन्न हान वात मदन को दग्गी तरह से स्थित रहते हुए बहुत से बाण व्यतीत हो गये थे । हमने परवान् भगवान् शम्भु दब ने नेत्रों का उन्मीलित करके विश्वेश्वर देव ने आगे देवी गिरिजा को देया था यह गिरीन्द्र की पुत्री पार्वती तप में स्थित थी और मत्तार से मगन्विन थी । ७१।७२। उन्मीलित देया था कि यह यही पर बना है और निश्चय बुद्धि से विचार किया

था कि यह तो कामदेव है । भगवान् शर्व ने यह विचार कर उस काम को चाप चढाये हुए देखकर और भलीभाँति जानकर उनने अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से उस मदन को दग्य कर दिया था ॥७३॥

॥ महादेव वर प्रदान ॥

दग्धे रतिपतौ शभुखाचाचलकन्यकाम् ।

किमह तव देवेशि करोमि मनासि स्थितम् ॥१॥

वर ग्रहि महादेवि दास्याम्यद्य सुरेश्वरि ।

मयि प्रसन्ने देवेशि किं दुर्लभतिहास्ति ते ॥२॥

हते तु कामे वद नीलकण्ठ वरेण किं देव करोमि तेऽद्य ।

विनैव कामेन न चास्ति भाव स्त्रीपुंसयोभास्कारकोटिकल्प ॥३॥

भावस्य हाने सुखमनिकर्षं कथं भवेद्ब्रूहि सुरेश्वरन्ध्र ।

उवाच भूयो मदनान्तकारी देहे न चाह मदन सुनेत्रे ॥

नेत्रस्य चैव ज्वलनात्मकस्य स्वरूपमेत्तादृढ किं करोमि ॥४॥

वालैति मत्वा भव भूतनाथ व्यामोह(गुह्य)से किं त्वमनिन्द्यवर्य ।

स्वतन्त्रवृत्तिर्यदि वा तवैषा तदा दहेसमपि चाग्रसस्याम् ॥५॥

यदि विश्वेश्वरो देवो ब्रह्मादीनां हर शिव ।

प्रतारणं प्रवृत्ताश्चेत्को निवारयितुं क्षम ॥६॥

नाहं प्रतार्या भगवस्त्वामहं क्षरणं गता ।

गतिर्नान्याऽस्ति मे देव तस्मात्मा त्रातुमर्हसि ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—रति के पति कामदेव के दग्ध हो जाने पर भगवान् राम्भु ने अञ्जल कन्या पार्वती से कहा था—हे देवेशि ! मैं आपको मन में स्थित जिस मनोरथ को पूर्ण करूँ ? हे महादेवि ! आप अब मुझमें वरदान माँग लो । हे सुरेश्वरि ! मैं आज जो भी आप याचना करेंगे दे दूँगा । हे देवेशि ! आप यह समझ लो कि मेरे प्रसन्न हो जाने पर इस समारंभ कुछ भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहा करता है तो फिर आपको भी किसी की भी कमी नहीं रहेगी ॥१२॥ श्री पार्वती देवी ने कहा—हे नील कण्ठ ! कामदेव के निहत हो जाने पर मैं आज आपको दिये हुए वरदान से क्या करूँगी । बिना कामदेव के रहे स्त्री-पुरुष का भास्कार कोटि कल्प भाव ही नहीं होता है ॥३॥ हे गुरेश्वर ! भाव की हानि से गुह्य का गन्धिवर्ष बँस होगा—यह आप ही मतलाइये ।

इसके अनन्तर मदन के अन्न कर देने वाले प्रभु ने कहा—हे सुनेत्रे ! मैं और मदन देह मे नहीं हूँ । मेरा जो ज्वननात्मक नेत्र है उसका ही यह स्वरूप मैं क्या कहूँ । ४ देवी ने कहा—हे भूतो के स्वामी भव ! आप तो अनिन्द्य वर्य हैं । आप मुझको वाचा मानकर क्यों व्रामोहित कर रहे है ? यदि आपकी ऐसी ही स्वन्न वृत्ति है तो मैं जो आपके सामने न स्थित हूँ मुझको भी आप दग्ध कर दीजिएगा । यदि विश्व का स्वामी देव हर शिव ब्रह्मा आदि देवों के भी प्रनाम्न मे यदि प्रवृत्त हैं तो फिर आपको निवारित करने में क्यों गमय हो सक्ता है । ५ ६ । हे भगवान् ! मैं आपके द्वारा प्रतारण करने याग्य नहीं हूँ । मैं तो आपकी शरण मे प्राप्त हो गयी हूँ । हे देव ! मेरी अन्य कोई भी गति नहीं है । इसलिये आप मेरा परिनाम करने के योग्य होते है । ७ ।

त्वमेव चक्षुर्जगतस्त्वमेव वचसा पति ।

त्वमेव धाता जगतो विधाता विश्वतोमुखः ॥८॥

नमाम्यहं देववरं पुराणशुपेन्द्रवेधोमरराजजुष्टम् ।

शशाङ्कसूर्याग्निमय त्रिनेत्र ध्यानाधिगम्य जगतं प्रकाशम् ॥९॥

त्वा वाङ्मनयाधारमनन्तवीर्यं ज्ञानार्णव चैव गुणार्णव च ।

परापर धामनिधि सुसूक्ष्मनादिमव्यान्तविहीनरूपम् ॥१०॥

हिरण्यगर्भं जगतं प्रसूतिं नमामि देव हरिणाङ्कचिह्नम् ।

पिनाकपाशाङ्कुशशूलहस्त कर्पदिन मेघमहस्त्रघोषम् ॥११॥

तमालकण्ठ स्फटिकावदात नमामि शशु भुवनैकसिंहम् ।

यशार्धवक्त्र सुरमिन्धुशीर्षं शशाङ्कचिह्नं नरसिंहदारणम् ॥१२॥

त्वा नमामि शरभरूपधरोरगेन्द्रराजहार चलद्वलमभूषण हरम् ।

चरविभुधनुकुटाचिताङ्घ्रि नमामि हि हरिचर्मवसन त्वाम् ॥१३॥

यदक्षरं निर्गुणमप्रमेयं यज्ज्योतिरेकं प्रवदन्ति सन्न ।

दूरगमं देवमनन्तमूर्तिं नमामि मूढमपरमं पवित्रम् ॥१४॥

नमामि रत्नप्रथमाधिनाथं धर्मासनस्थं प्रवृत्तिद्वयस्थम् ।

तेजोनिधिं बालशशाङ्कमोनिं बालेन्धनं बह्मिखोन्दुनेत्रम् ॥१५॥

हे भगवान् ! आप ही इस जगत् के नर है और आप ही वाणिजा के स्वामी हैं—आप ही इस जगत् के धाता हैं और आप विश्वतोमुख विधाता हैं । ८ । मैं परम पुराण देव वर को जो उपेन्द्र वेदा और देवों के द्वारा तेषा चन्द्र-सूर्य और अग्नि भय तीन नेत्रों धारे—ध्यान के

द्वारा अधिगमन करने के योग्य और जगत् के प्रकाश है उन आपकी नमस्कार करती हूँ । १६। आप इस वाङ्मय के आधार है—अनन्त वीर्य वाले है—ज्ञान के सागर है—गुणों के अणव हैं—परसे भी पर है—धाम के निधि है । आप सुसूक्ष्म हैं और आदि-मध्य और अन्त से विहीन रूप वाले है ऐसे आपको मैं प्रणाम करती हूँ । १७। आप हिरण्य गर्भ हैं—आप इस जगत् की प्रसूति हैं—हरिणाङ्क (चन्द्रमा) के निह्न शक्ति है ऐसे देव को मैं नमस्कार करती हूँ । आपके हाथों में पिनाक-पाश, अक्षुष, शूल धारण किये हुए है—वर्षा और सहस्रों मेषों के समान शोष वाले हैं—आप तमाल के सहस्र नीलकण्ठ वाले तथा स्फटिक मणि के समान अवदात हैं ऐसे भुवन के एक मित्र आपकी मैं प्रणाम करती हूँ । आपके पाँच मुख है—युरामिन्वु (गङ्गा) को मस्तक पर धारण किये हुए है—चन्द्र के पिप्पल वाले है तथा गरुड के समान परम दारुण है । आप शरम रूप के पारी उरगेन्द्र राज के हार धारण करने वाले—चत्रायमान बलय धूपण से युक्त हर आपकी सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है मित्र के चर्म के वसन वाले तथा श्रेष्ठ देवों के मुकुटों से सम-चित्त चरण वाले आपको मैं प्रणियत करती हूँ । जिसको मरुत पुरुष भक्षर-निर्गुण-अप्रमेय एक ज्योति कहा करते हैं उन दूरगम-अनन्त मूर्ति सूक्ष्म चरम पवित्र-प्रमथों अधिनाथ धर्म के आसन पर विराजमान-परम पवित्र प्रकृतिद्वय में स्थित रुद्रदेव को मैं प्रणाम करती हूँ । तैम के निधि-बालचन्द्र को गरुड पर धारण करने वाले बाल के ईधन और अग्नि रवि और चन्द्र के तीन नवी बाने आपकी सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है । १५।

प्रसन्नोऽयात्रवीर्देवी वाली त्रिपुरहा हर ।

वरयस्व वर देवि ददामि तव सुव्रते ॥१६॥

जीवत्वय महादेव कामो लोकप्रतापन ।

विना कामेन भगवन्नाह याचे नयवन ॥१७॥

भवत्वनङ्गो गदनस्त्वत्प्रियार्थं सुलोचने ।

तेन रूपेण लोचन्त क्षोभणाय भवत्वलम् ॥१८॥

तदोत्थितो वायुरिवाप्रमेयस्त्वनङ्गरूपो मकरध्वजश्च ।

हरस्य वाक्पादुमयोरितश्च सचापयाण भरतिर्बभूव ॥१९॥

इति प्रीत्या महेशानी वर दत्त्वा हर स्त्रयम् ।

रमरम्य पञ्चवाणम्य तत्रैवान्तरधीयत ॥२०॥

य पठेदिममध्याय भक्त्या देवस्य म निधौ ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥२१॥

सूतजी ने कहा—इस प्रकार की स्तुति करने के बाद में त्रिपुर दैत्य के हान करने वाले भगवान् हर परम प्रसन्न होकर कानी देवी से बोले—हे मुन्ने ! हे देवि ! आप वरदान मांगो । मैं आपकी जो भी चाहोगी प्रदान कर दूँगा । १६। देवी ने कहा—हे महादेव ! गर्व प्रथम तो मैं यही चाहती हूँ कि यह कामदेव जीवित हो जाय जो लोकों की प्रतपन कराने वाला है । हे भगवन् ! कामदेव के जीवित हुए बिना मैं किसी भी प्रकार में कुछ भी पाचना नहीं सकती हूँ । १७। ईश्वर ने कहा—हे मुनोचने ! आपका प्रिय करने के लिए मदन अनङ्ग हो जावेगा । वह उषी बिना अङ्ग वाले स्वरूप के ही द्वारा लोका के हृदय में क्षोभ समुत्पन्न करने के लिये पयामगति वाला हो जायगा । १८। उगी समय में वायु की तरह मैं अप्रमेयनाय है व उत्स्थित हो गया था उतगमय में वह मत्तरश्च बिना अङ्ग के स्वरूप वाला ही था । भगवान् हर के वाक्य से उमा देवी के द्वारा ईश्वर कह मदन चाप आर बाण के सहित औचित्य के साथ म रहने वाला हो गया था । १९। दूसरी गीति में भगवान् महेश्वर हर स्वयं गीति के साथ वरदान देकर तथा यक्ष बाण समर की अङ्ग के स्वरूप में जीवित करके यही पर अङ्गीकृत हो गये थे । २०। जो पुष्प इस अध्याय की भक्ति के साथ पाठ किया करता है और देवेश्वर की मन्त्रिणी में पढ़ता है । वह सब पापों से मुक्तप्राप्त प्राप्त करके अन्त में ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है । २०। २१।

॥ माहेश्वर ज्ञान कथन ॥

नङ्कगच्छ यः सन्ना देवी त्रैलोक्यगता ।

उतः भगवती तानी गप्रत्ता त्रिमन्दिरम् ॥१॥

आव्यदित्तिगजम् ॥ न द्वागिर्नात्मानाम् ।

दीपयन्ती जगत्पथं त्रिभुवनमप्रभायम् ॥२॥

अङ्गे कानी मगापात निगम्यानाय न द्विजा

उवाच परमा श्री या विद्वन्ती पर्वोद्वर ॥३॥

तपसा तोषितं श भुरमेयात्मा सनातन ।
 कीदृशश्च वरो लब्धस्त्वया देवान्महेश्वरात् ॥४॥
 तपसाऽऽराध्य विश्वेश गोपति शूलपाणिनम् ।
 तमेवेश पति लब्ध्वा कृतार्थाऽस्मीति मे वर ॥५॥
 भेदोऽस्ति तत्त्वतो राजन्न मे देवान्महेश्वरात् ।
 सिद्धमेवाऽऽवयोरैक्य वेदान्तार्थानिचारणात् ॥६॥
 यदेतदैश्वर तेजस्तन्मा विद्धि नगेश्वर ।
 सर्वभूतात्म शान्त विद्वन् यत्र प्रतिष्ठितम् ॥७॥

श्री मृतजी ने कहा—श्रीलोक्य की पूजित देवी पार्वती ने भगवान् शङ्कर से धरदान प्राप्त करके यह भगवती उमा वाली अपने पिता के मन्दिर में प्राप्त हो गयी थी । १। चन्द्रमा की शान्ति के सदृश मुग्न वाली उम उमा को गिरिराज हिमाचल ने देखा था जो कि सम्पूर्ण जगत को दीप्त कर रही थी और विद्युत् के समान प्रभाव वाली थी । २। हे द्विजो ! गिरिराज ने अपनी गोद में वाली को बिठाकर उसके शिर पर आघ्राण किया था । फिर पर्वतेश्वर ने परमप्रीति के साथ विश्वेश्वरी से पूछा था । ३। हिमानय ने कहा—अमेय आत्मा वाले वाले भगवान् शम्भु जो कि सनातन प्रभु है तुम्हारी तपस्पर्या में तोषित हो गये हैं । हे पुत्रि ! यह बतलाओ कि तुमने महेश्वर देव से किस प्रकार का वरदान प्राप्त किया है । ४। देवी ने कहा—मैंने अपनी तपस्या के द्वारा विश्वेश्वर पशुपति शूलपाणि का समाराधन करके और उन्हीं ईश को अपना पति प्राप्त करने में शून्य हो गयी हूँ—यही मेरा याचन किया हुआ वरदान था । ५। हे राजन् ! तात्त्विक रूप में महेश्वर देव से मेरा भेद नहीं है । हम दोनों की एतता तो सिद्ध ही है और यह अभेद वेदान्त के अर्थ के विचार करने से ही होता है । ६। हे नगेश्वर ! जो यह ईश्वरीय तेज है उमी को मुझे आज गमन मौजिए । जिस तेज में सर्व भूतात्मन परम शान्त विषय प्रतिष्ठित रहा करता है । ७।

अहं सर्वान्तरा शक्तिर्माया मायी महेश्वरः ।
 अहमेका परा शक्तिरेक एव महेश्वरः ॥५॥
 नाऽऽवयोविद्यते राजन्भेदो वै परमार्थतः ।
 एकाऽहं विश्वगाऽनन्ता विश्वरूपा सनातनी ॥६॥
 पिनाकपाशोर्दयिता नित्या गिरिवरोत्तम ।
 ज्ञातुं न शक्ता प्रह्लाद्या मत्स्वरूपं हि तत्त्वतः ॥१०॥
 इच्छाशक्तिरहं राज्ञानशक्तिरहं पुनः ।
 क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिः शक्तिमान्भगनेत्रहा ॥११॥
 क्लृप्तम्यमचलं सूक्ष्मं यत्पुं निगुणमव्ययम् ।
 आनन्दमक्षरं ब्रह्म तत्तज्जानीहि मत्पदम् ॥१२॥
 तत्पदं ते प्रपश्यन्ति येषां भक्तिर्मयि स्थिरा ।
 नान्यथा कमवाण्डैश्च तयोभिश्चापि दुष्करं ॥१३॥
 शिवस्य परमा शक्तिर्नित्याऽऽनन्दमयी ह्यहम् ।
 ब्रह्मणो वचनाद्वाजन्तभव दक्षकन्यका ॥१४॥

मैं सर्वान्तरा शक्ति माया हूँ और महेश्वर मायी है । मैं ही एक परा शक्ति हूँ और महेश्वर देव भी एक ही हैं ॥५॥ हे राजन् । हम दोनों का परमार्थ रूप से कोई भी भेद नहीं है । मैं भी एक ही हूँ जो कि विश्व में गमन करने वाली—अनन्ता—विश्वरूपा और सनातनी हूँ । हे गिरिवरो मैं उत्तम । पिनाक पाशिकी मैं नित्या दायिता हूँ । ब्रह्मा आदि देवगण भी तात्त्विक रूप से मेरे स्वप्न को जानने में समर्थ नहीं हैं ॥६॥ हे राजन् । मैं ही इच्छा शक्ति हूँ और पुनः ज्ञान की शक्ति भी हूँ । मैं क्रिया करने की शक्ति हूँ—प्राण शक्ति हूँ और भग के नेत्रों के हनन करने वाले महेश्वर पूर्ण शक्तिमान् हूँ ॥११॥ हे तात । मेरे पद को आप क्लृप्त—अचल—सूक्ष्म—यत्पुं—निगुण—अव्यय—आनन्द अक्षर और ब्रह्म जानिये ॥१२॥ उक्त पद को वे ही मनुष्य देख सकते हैं जिनकी मेरे विषय में स्थिरा भक्ति होती है । अन्य किसी भी प्रकार के

साधनों से नहीं देख साने है । बड़े-बड़े कर्म बाण्डों के द्वारा तथा परम दुष्टर तर्कों से भी उसे नहीं देख पाते हैं । ११। भगवान् शिव की परमा नित्या और आनन्दमयी शक्ति मैं ही हूँ । हे राजन् ! ब्रह्माजी के वचनादेश से मैं उस ममता से प्रजापति दक्ष की कन्या हुई थी । १४।

शूलिनो देवदेवस्य निन्द्रक परमेष्ठिन ।
 विनिन्द्य शितर दक्ष जानाऽस्मितव कन्यका ॥१५॥
 स्वेच्छयैवावतारो मे नैव चान्यवगात्पित ।
 तस्मान्मा परमा शक्तिमिति ज्ञात्वा मुखो भव ॥१६॥
 नाशयामि तवाज्ञान भवबन्धनकारणम् ।
 दिव्य ददामि ते ज्ञान दुःखत्रयविनाशकृत् ॥१७॥
 एव देव्या प्रसादेन हिमवान्पर्वतेश्वर ।
 लब्ध्वा माहेश्वर ज्ञान जीवन्मुक्तस्तदाऽभवत् ॥१८॥
 अपश्यदाखिल विश्वमुमामहेश्वरात्मकम् ।
 नित्यानन्द निर्विभागमात्मान च तदात्मकम् ॥१९॥
 मानमेयादिरहित भेदाभेदविर्ब्रजितम् ।
 बाह्याभ्यन्तरनिर्मुक्त शुद्ध निर्गुणमव्ययम् ॥२०॥
 न समीप न दूरस्य न स्थूल नापि वा कृष्णम् ।
 न दीर्घं नापि वा ह्रस्व न पीत नापि लोहितम् ॥२१॥

त्रिगुलघारी देवों के भी देव परमेष्ठी की निन्दा करने वाले पिता दक्ष को विनिन्दित करने मैं आपनी कन्या के रूप में सगुत्पन्न हुई हूँ । १५। हे पिताजी ! मेरा यह अवतार स्वेच्छा ही से हुआ है अन्य किसी वश से नहीं हुआ है । इस कारण से मुझको परमाशक्ति समझकर आप मुची होइये । १६। सांसारिक बन्धन का कारण जो आपका अज्ञान है उसका मैं नाश कर देती हूँ । और फिर मैं आपको परम दिव्य ज्ञान दे दूंगी जो तीनों प्रकार के दुःखा का विनाश करवा वाला है । १७। इस प्रकार से देवी के प्रसाद में पर्वतेश्वर हिमवान् महेश्वर ज्ञान को प्राप्त

करके उगी समय में जीवन मुक्त हो गया था । १८॥ फिर तो उसने सम्पूर्ण विश्व को ही उमा महेश्वरात्मक देखा था । और अपने आप को भी नित्यानन्द से युक्त—निर्मिभाग तथा तदस्मक देखा था । १९॥ उसने शिव को किम रूप में देखा था यह बतलाने हुए कहते हैं कि शिव का स्वरूप मानमोहादि में रक्षित है—भेदाभेद में वञ्चित है—ब्रह्मायाम्यन्तर से निर्मुक्त है—शुद्ध—निर्गुण और अव्यय है । २०॥ न वे समीप में हैं और न दूर में ही स्थित हैं और न स्थूल हैं और न सूक्ष्म ही हैं । न वे दीर्घ हैं और न ह्रस्व हैं—न पीत हैं और न शोका हैं । २१॥

न नील न च कृष्ण च न शुक्ल नापि वर्चुरम् ।
पाणिपादविनिर्मुक्त न श्रो (श्री) न न च चाक्षुषम् ॥२२॥
अनामिकमजिह्व च मनोऽद्विविजितम् ।
वस्त्रमोक्षविनिर्मुक्त बोधाद्योचविविजितम् ॥२३॥
नाऽऽधारम्य न नाभिम्य न हृदिम्य न कण्ठगम् ।
नापि नामाग्रग विप्रा न धूमध्यगत हि तत् ॥२४॥
न नाडीत्रयमध्यम्य द्वादशान्तगत न च ।
नोर्णातन्तुनिभ तत्तु विद्युत्पुञ्जनिभ न च ॥२५॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्त चैतन्य सवग शिरम् ।
तदेवेदमिद विश्व तस्मादन्यन्न विद्यते ॥२६॥
आम्नाय परमा भक्ति शिवयो पादपङ्कजे ।
पित्रोर्हिरण्यगर्भस्य शान्तिरश्वा प मुनेनी ॥२७॥

शिव का स्वरूप न नील है—न कृष्ण है—न शुक्ल है और न वर्चुर ही है । पाणि और पाद में विनिर्मुक्त हैं—न श्रोत्र है अर्थात् श्रोत्र का विषय है और न चाक्षुष अर्थात् चक्षुओं के द्वारा देने जान पाने है । २२॥ नाभिका में रक्षित—विज्ञा से हीन तथा मन और बुद्धि से वञ्चित है । २३॥ न शरीर आधार पर स्थित है—न नाभि में स्थित है और न कण्ठ में गगना करने वाले ही है । २४॥ विद्यो ! नाभिका में अग्र

भाग में ही रहने वाले है और न भीहो के मध्य में ही रहने वाले है ॥२४॥ उनका स्वरूप तीनों नाडियों के मध्य में भी स्थित रहने वाला नहीं है और द्वादशान्तगत भी नहीं है । न तो ऊर्णाकेतन्तु के ही सदृश है और न विद्युत् के पुञ्ज के तुल्य ही है ॥२५॥ सर्वेश्वर गमन करने वाले—चैतन्य स्वरूप शिव सभी उपाधियों से विनिर्मुक्त है । वही मद् विश्व है क्योंकि उनसे अन्यत् कुछ भी नहीं है ॥२६॥ शिवा और शिव इन दोनों के चरण कमल में परमोत्कृष्ट भक्ति को समास्थित करके ही जीवन बिताना चाहिए । ये दोनों हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी थे और हे सुप्रत ! भगवाद् शास्त्री के भी माता-पिता है ॥२७॥

॥ साम्ब विवाह मंडप वर्णन ॥

अह्वानयत्ततो विश्वकर्माणं पर्वतेश्वरं ।
 विवाहमण्डपं कर्तुं नानास्त्रचर्यविभूषितम् ॥१॥
 तेनाऽऽहूतस्ततः श्रीधरं विश्वकर्मा महामतिः ।
 प्रययी हिमवत्पार्श्वं कुशलो विश्वकर्मणि ॥२॥
 दृष्ट्वाऽथ विश्वकर्माणं हृष्ट पर्वतराट् स्वयम् ।
 आगतासनपाद्याद्यैः सादरस्तमपूजयत् ॥३॥
 विधिवत्पूजयित्वा तु विश्वकर्माणमग्रवीत् ॥४॥
 विश्वकर्मेन्महाप्राज्ञं सर्वशास्त्रविशारदं ।
 यत्कारणादिहाऽऽहूतो मया त्वं तद्ब्रवीम्यहम् ॥५॥
 विश्वेश्वरो महादेवो भगवान्नीललोहितः ।
 आगमिष्यति विश्वं शी परिणेतु शिवः स्वयम् ॥६॥
 मण्डपरतश्च कर्त्तव्यो यजार्थं हि हिरण्यमयः ।
 योजनायुनविरतीर्णमनेकास्त्रचर्यसयुतम् ॥७॥

श्री भूतजी ने कहा—इसके पदचातु पर्वतेश्वर हिमालय ने विश्व-
कर्मा को बुनवाया था और उसे आज्ञा दी थी कि वह अनेक अद्भुत
आश्चर्यों से विभूषित विवाह का एक मण्डप विरचित करें । १। हिमाचल
के द्वारा बुलाये गये विश्वकर्मा ने जो महनी मनि वाला था शीघ्र ही
हिमाचल के समीप में गमन किया था । विश्वकर्मा ने विश्व के सम्पूर्ण
कर्मा में बहुत ही पुमान था । २। विश्वकर्मा को गमागत हुए देवदेव
पर्वता का राजा स्वयं अत्यन्त हर्षित हुए थे । विश्वकर्मा का स्वागत-
आसन आदि के द्वारा बड़े ही आदर के साथ उनका अभ्यर्चन किया
था । ३। हिमाचल ने विधान के साथ उनका अर्चन करके विश्वकर्मा से
पह रहा था—। ४। पर्वतराज ने कहा—हे विश्वकर्मा ! आप तो
महान् मनीषी और मेधावी हैं और सभी शास्त्रों के आप पण्डित भी
हैं । जिस कारणवश मैं आज आपको यहां बुलाया है उसे भी मैं
आपको यत्नशाली हूँ । ५। विश्व के ईश्वर महादेव जो विनोबन भगवान्
हैं नील लोहित हैं के माध्याग शिव स्वयं ही विश्वेश्वर पार्वती के साथ
परिणय करने के लिये यहाँ पर पदार्पण करेंगे । अतएव यहाँ पर उम
विवाह मण्डप के कार्य का सम्पादन करने के लिये एक द्वितीय मण्डप की
रचना करनी चाहिए । वह मण्डप हम इन्द्रास रोजन के बराबर
विस्तीर्ण और अनेकानेक आश्चर्यों से समविन होना चाहिए । ६। ७।

दृग्मंत्रेण मर्मस्य प्रीतिर्भवति यै यथा ।

तथा तत्र मण्डप शीघ्रं कुरु विश्वेश्वरप्रियम् ॥८॥

एवमुक्त्वा तदा तेन गिरिणा विश्वामंरु ।

दीवाह मण्डप शीघ्रमवृजद्रव्यनविग्रहम् ॥९॥

मर्मभर्तुं ममगेद्वयं मं जमि मूर्धमनिर्भ ।

दन्द्रनीलमयीदम्भीरुधुविभूमेरपि ॥१०॥

मीनानि वज्रगीनंश्च चन्द्रास्तमयेरपि ।

मार्दिनिद्रुमेरुनामि मुक्तारामविजम्बि ॥११॥

चामरालकृतैरुच्चैर्दण्डैर्विविधैरपि ।

सूर्यविम्बप्रतीकाशैश्चन्द्रविम्बसमप्रभैः ॥१२॥

ध्वजमालाकुल दिव्य पताकानेकशोभितम् ।

रत्नजैः सिंहशार्दूलैर्गजवर्णैर्निरन्तरम् ॥१३॥

रचित मण्डप दिव्य प्रिय त्रिपुरविद्विष ।

रुद्राणां च तथा रूपैर्गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥१४॥

आप यहाँ पर एक ऐसा उत्तम मण्डप बनाइए कि जिसे देखते ही सबकी प्रीति उत्पन्न हो जावे । आप वृषया ऐसा ही एक मण्डप बहुत ही शीघ्र निर्मित कर बीजिए जो भगवान् प्रभु को भी बहुत प्रिय लगे ॥१२॥ गिरिराज हिमालय के द्वारा जब हम रीति से कहा गया तो वह विश्वकर्मा ने विवाह के मण्डप को जो रत्नों के द्वारा विरचित विग्रह बना था बहुत ही शीघ्र बना दिया था ॥१३॥ वह मण्डप ऐसा बनाया गया था जिसमें सुवर्णमय बहुत से स्तम्भों से युक्त था—विचित्र मणियाँ जो सूर्य के सदृश दीप्ति वाली थी उस मण्डप में जड़ी गयी थी । दिव्य इन्द्रनील मणियाँ वैदूर्य विद्रुम-मोती वज्रनील मणि और चन्द्रकान्त मणियाँ भी उसमें खचिन की गयी थी । स्फटिक-विद्रुम मणियाँ उसमें लगाई गयी थी जो मोतियों की झालरों के सहित सटरी हुई थी ॥१०॥११॥ वह मण्डप चमरो से अलङ्कृत था और अनेक भाँति के ऊँचे-ऊँचे दण्ड उसमें लगे हुए थे । जो सूर्य विम्ब के तुल्य थे और चन्द्र विम्ब के समान प्रभा से युक्त थे ॥१२॥ वह मण्डप दिव्य मालाओं से परिा हुआ था और वह अनेक पताकाओं से भी शोभा वाला था । उस मण्डप में रत्नों ने बने हुए अनेक सिंह शार्दूल और गज विद्यमान थे जो निरन्तर ही शोभायमान हो रहे थे ॥१३॥ वह रचित मण्डप परम दिव्य और भगवान् शिव का बहुत ही प्रिय था तथा गन्धर्व-अप्सरार्यों और कन्नो के रूपों से भी युक्त था ॥१४॥

देवैश्चैव मनोहार्यैर्मत्स्यैश्च तथा परैः ।

मालाभिः स्तम्भैर्विप्रा रत्नजैः कुमुदैर्भृशम् ॥१५॥

ववचिच्चामीकरेणाय हृद्या भूमि विनिर्ममे ।
 ववचित्पद्मदलाकारा मन्द्रायुधसमप्रभाम् ॥१६॥
 ववचिद्योलोत्पलाभासा नीलजीमूतसप्रभाम् ।
 मनसंव यथा ब्रह्मा विश्वमेतद्वि निर्ममे ॥१७॥
 ववचिद्वन्धूकसकाशा दीप्ता विद्रुमसनिभाम् ।
 अनेकाकारविन्यासेस्ततो धात्री विनिर्ममे ॥१८॥
 ववचित्कलशविन्यासैः ववचित्स्वस्किभूपितैः ।
 हरिचन्दनगन्धाद्यैः कपूरोद्गारगन्धिभिः ॥१९॥
 जातीपाटलपद्माना चम्पकाना मुग्धगन्धिभिः ।
 आसनैर्विविधैः पूतैश्चन्द्रजीमूतसनिभैः ॥२०॥
 उदयाकतमाकारैर्मैरुशृङ्गोपमैर्भृशम् ।
 तमालचम्पकाभैश्च इन्द्रनीलमयैस्तथा ॥२१॥

देवी के द्वारा-मनोहारी मर्त्यों के द्वारा तथा परो के द्वारा मालाओं से—स्वको से तथा रत्नों से निर्मित कुमुमों से बहुत अधिक शोभित था । उस मण्डप में किसी स्थल सुवर्ण से एक बहुत मनोहर भूमि का निर्माण किया था । किसी जगह पर पद्म दल के आकार वाली तो किसी स्थान पर इन्द्र धनुष के समान प्रभा वाली भूमि का निर्माण किया था ॥१५॥१६॥ वहीं पर नीलोत्पला भा वाली बनाई थी जो वही पर नीले मेघों की प्रभा के तुल्य भूमि की रचना की गयी थी जिस प्रकार से मन के द्वारा ही थी ब्रह्मा जी ने इस सम्पूर्ण विश्व की रचना की थी ॥१७॥ वही पर धधूक पुष्प के महदा दीप्ता तथा बिम्बी जगह पर विद्रुम के समान भूमि की रचना की थी । ऐसे अनेक आकारों के विन्यासों के द्वारा उस धात्री का निर्माण किया था ॥१८॥ वहीं पर कलशों के तुल्य विन्यासों से तथा वही पर स्वास्तिकों में भूषित विन्यासों से—हरि चन्दन गन्ध आदि से तथा कपूरोद्गार के गन्धों में और जाती-पाटल-गंधों की एक चम्पकों मुग्धों में उनकी रचना की गयी थी । चन्द्र और जीमूनों के सुन्दर विविध आसनों के द्वारा जो परम पून के

निर्माण किया गया था ॥१९॥२०॥ उदय के समय में जैसा सूर्यदेव का आवार होता है उनके समान विन्यासों से तथा मेरु पर्वत के शिखरों के सदृश विन्यासों से और समाल-चम्पा के आभास वाले तथा इन्द्र नीलमय आभासों वाले विन्यासों से रचना की गयी थी ॥२१॥

मिन्दूरचयसंकाशैर्जंपाकुसुमसनिभैः ।

संव्यारागनिभैश्चायै × द्वाडिमिकुसुमप्रभं ॥

हेमकुम्भनिभैश्च न्यैर्मुक्ताफलनिभैरपि ॥२२

तारकापुष्पमकाशे पद्मनीलेन्द्रनीलजैः ।

तत्रैव मण्डपे दिव्ये तोयस्थानान्यकलरयत् ॥२३

दीर्घिकास्तोयपूर्णाश्च क्षीरपूर्णास्तथैव च ।

दधिहृदाननेकाश्च सुधासंपूरितानि वै ॥२४

घृतपूर्णा महानद्यो रत्नमपानमण्डिताः ।

वृक्षाश्च कामिकान्दिव्यान्दीर्घिकाणा तयोभयोः ॥२५

असृजरकीडनार्याय सदा पुष्पाफजान्वितान् ।

भक्ष्यैर्नानाविधैर्दिव्यैः फलितान्मुनिपुग्वाः ॥२६

कदलीलण्डमध्ये तु तमान्मगहनेर्षाणि ।

क्रीडावापीः सुशोभाढ्यास्तथैवाशोकसकुलाः ॥२७

दीर्घिकाणा तटे रम्ये तरुणाः स्निग्धशाल्विषु ।

दोलाश्चऽऽबन्धयामासुर्मुक्तादागभिरुज्ज्वलैः ॥२८

मिन्दूर के समूह के सदृश-जया के कुमुमों के समान-संघातकाल के राग के तुल्य-द्वाडिम के पुष्पों के सदृश-सुवर्ण के कुम्भों के समान-अग्न्य मुक्ताफलों के समान-तारकाओं के समुदायों के सदृश और पद्म नीलेन्द्र नीलजों के तुल्य विन्यासों से उस भूमि की अनेक प्रकार की भूमि का निर्माण वही पर दिव्य मण्डप में करके जल के स्थानों की भी कलरना की गयी थी ॥२२॥२३॥ वहाँ पर ऐसी दीर्घिकाएँ बनायी थी जो जल से परिपूर्ण थी और क्षीर से भरी हुई थी । वहाँ पर अनेक हृदयों से पूर्ण एवं गुधा से संपूरित थे ॥२४॥ बहुत सी महा नदियाँ बनायी थी

जो घृत में परिपूर्ण थी और जिनके सोपान रत्नों से मण्डित बनाये गये थे । उन दीर्घकाओं के दोनों ओर उत्तम एवं दिव्य कामिक वृक्षों की रचना की गयी थी ॥२५॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! सदा पुष्पो और फलों से युक्त क्रीडा करने के लिये नाना प्रकार के भक्ष्य एवं दिव्य फलों से लदे हुए वृक्षों की रचना की थी ॥२६॥ कहीं पर केलों के खण्डों के मध्य में और तमालों के वृक्षों के भुरमुट में क्रीडा करने के लिये बापी बनायी गयी थी जो सुन्दर शोभा से युक्त और अशोक के वृक्षों से सकुल थी ॥२६॥२७॥ उन दीर्घकाओं के सुरम्य तट पर स्निग्ध शाखियों पर उज्ज्वल मोतियों की लड़ियों से दोलाओं का बन्धन किया था अर्थात् झूले डाले गये थे ॥२८॥

रमणीयानि दिव्यानि मनस्तुष्टिकराणि च ।

उद्यानवनखण्डानि स्थाने स्थाने ह्यकल्पयत् ॥२९॥

त्रैलोक्यतिलके तस्मिन्हेमपीठस्य मध्यगाम् ।

सिंहैश्च विधृता श्वेतैः सहस्रदलमण्डिताम् ॥३०॥

पारिजातद्रुमाणा च मञ्जरीमिरलकृताम् ।

इन्दनीलमयी वेदि चारसोपानभूषिताम् ॥३१॥

शतयोजनविस्तीर्णा स्तम्भैश्च कलशान्विताम् ।

नानानैकाप्सरोभिश्च रत्नजा दिव्यरूपिणीम् ॥३२॥

पीनोदजघनास्ताश्च पीनोन्नतपयोधरा ।

चामराग्रकरास्तास्तु हारावलिबिभूषिताः ३३

वीणावेणुकराश्चान्गा काञ्चीगुणविराजिताः ।

चञ्चलायतनेत्राश्च तिलकालकमण्डिताः ॥३४॥

मध्यक्षमाश्च त्रिम्बोष्ठीः कमलोत्पलमालिका ।

अनेकाकारविन्यासैर्निर्मिताः पृथक्पृथक् ॥३५॥

एव हि दिव्ये. सुरमुन्दरीभिर्नानाप्रयोगैर्विविधैश्च चित्रैः ।

अनेकैश्च रत्नैर्नैर्नानाभिराभ्यर्ण्यैश्च । वेदि स्वस्तितत्त्वकार ॥३६॥

इस तरह से परम स्मणीय-अत्यन्त दिव्य मन की तुष्टि करने वाले उद्यान बनो के खण्ड थे जो कि स्थान-स्थान पर विरचित किये गये थे ॥२६॥ अलोक्य मे प्रमुख उसमे हेमपीठ के मध्य मे स्थित श्वेत सिंहो से विधृत और सहस्र दंतो से मण्डित-पारिजात दुमो की मञ्जरियो से अलंकृत वेदी इन्द्र नील मणियो से परिपूर्ण थी और परम सुन्दर सीढियो मे भूषित थी ॥३०॥३१॥ वह वेदी एकसौ योजनो के विस्तार से युक्त थी और तनूमो तथा कलशो से समन्वित थी । उस पर अनेक प्रकार की अनेक अप्सराएं भी विद्यमान थी और वह रत्नो के द्वारा निमित्त की गयी थी तथा दिव्य रूप वाली थी ॥३२॥ जो अप्सराएं वहाँ पर थी वे पीन अदृजघनो वाली थी तथा पीन एवं उन्नत स्तनो वाली थी । उनके हाथो के अग्रभाग मे वमर लगे हुए थे और वे हारो की पक्तियो से विभूषित थी ॥३३॥ अन्यो के हाथो मे वीणा तथा वेणु था और वे काञ्ची गुणो से विराजित हो रही थी, इनने नेत्र बहुत ही चञ्चल तथा आयत थे और तिलक तथा अलङ्कारो से मण्डित थी ॥३४॥ जिनके मध्य भाग क्षाम थे—विम्ब फल के समान जिनके ओष्ठ थे—जो कमलोत्पल की माला धारण करने वाली थी ऐसी अनेक आकारो और विन्यासो से पृथक्-पृथक् निमित्त की गयी थी ॥३५॥ इस प्रकार से परम दिव्य मुरो की मुन्दरियो से-अनेक तरह के प्रयोगो से और विविध भाँति के चित्रो से जो मन को अभिराम लगने वाले थे और नेत्रो को भी सुन्दर प्रतीत होते थे उनसे युक्त वेदी बहुत ही शीघ्र तैयार करदी थी ॥३६॥

॥ कालाग्न्याद्यागमन कथन ॥

मण्डप निर्मितं श्रुत्वा शंकरो विश्वकर्मणा ।
 शैलादिमण्डपवीहो विश्वेशो विश्वपूजितः ॥१॥
 हितार्थं सर्वदेवानामस्माकं च विशेषतः ।
 विवाहयज्ञ आरब्धो नगराजेन धीमताः ॥२॥
 दानार्थमद्रिकन्यायां प्रस्थितो हिमवान्स्वयम् ।
 अहं तत्र गमिष्यामि सुरैर्ब्रह्मादिभिः सह ॥३॥
 स्वमिहाऽऽवाहय सुरांकालाग्न्यादीन्दिजास्तथा ।
 द्वीपाश्च सागराश्चैव पवताश्च नदीस्तथा ॥४॥
 मण्डप सुन्दरं यत्र निर्मितं विश्वकर्मणा ।
 तत्र तिष्ठत्युमा देवी मम ध्यानपरायणा ॥५॥
 विद्युत्स्रुतेव भागन्ती चन्द्रकोटिनिमानना ।
 एवमुक्तो महेशेन नन्दी सूर्यापुनःप्रभ ॥६॥
 नन्दा विदवेश्वर देव ध्यानाच्छस्नदाऽभयत् ।
 ध्यात क्षणात्मभागात् कालाग्निर्विश्वदाहक ॥७॥

श्रीगुनजी ने कहा—भवया । गङ्गूर ने विश्वकर्मा के द्वारा निर्माण
 लिये हुए मण्डप का कृतान्त गुनकर विश्वपूजित विश्वेश्वर श्रुत्वा ने
 शैलादि से कहा था—श्री नगवान् ने कहा—तमस्त देवों की मलाई के
 लिये ओर विशेष रूप से हमारे ही हित के सम्पादन करने के लिए
 नगराज ने जो बहुत ही धीमान् है विवाह यज्ञ का आरम्भ किया है
 ॥१॥॥॥ अद्रि कन्या के दान करने के लिये श्रियान् स्वयं प्रस्थित हुए
 हैं । अतएव मैं ब्रह्मा आदि तमस्त गुरो के ही साथ मैं यहाँ पर गमन
 करूँगा ॥३॥ अतएव गुप्त यज्ञ पर जानाग्नि यदि सब गुरो का ओर
 द्वीपो का, द्वीपो का, सागरों का, पर्वतों का तथा नदियों का आवाहन
 करो । जहाँ पर विश्वकर्मा के द्वारा एक सुन्दर मण्डप का निर्माण किया
 गया है वहाँ पर उमादेवी मेरे ही ध्यान में परायण होकर स्थिता है ।

वह देवी विद्युत् की लता के समान दीप्तिमती हो रही है और उनका मुख करोडा चन्द्रमाओं के समान सुन्दर है । इस प्रकार से जब नन्दी से कहा गया गया था तो वह नन्दी जिसकी छटा दस हजार सूर्यों की प्रभा के समान थी । उसने विश्वेश्वर देव को प्रणाम किया था और फिर वह उस समय में ध्यान में समाकूट होगया था । जैसे ही ध्यान किया गया था वैसे ही विश्व का दाहक कालाग्नि वहाँ पर क्षणमात्र में ही समागत हो गया था ॥४-७॥

रुद्रैः परिवृतो देवः कोटिकोटिगणैश्वरैः ।

सतोऽब्रवीत्स कालाग्निः सर्वज्ञ नन्दिकेश्वरम् ॥५॥

किमर्थमहमाहूना देवदेवेन शम्भुना ।

उपस्थितो वा प्रलयः सह्रिप्यामि तत्क्षणात् ॥६॥

एवमुक्तस्तदा तेन शैलादिस्तमथाब्रवीत् ।

प्रलयार्थं न चाऽऽहूतस्त्वं विश्वेशेन शम्भुना ॥७॥

ग्रहीष्यति गिरेः पुत्री पत्नीत्वेन महेश्वरः ।

तदर्थं त्वमिहाऽऽहूतो ब्रह्माद्याश्च दिवोकसः ॥८॥

नन्दिनो वचनं श्रुत्वा कालाग्निरिदमब्रवीत् ।

द्रष्टुकामा वयं सर्वे ब्रह्माद्याः शूलपाणिनम् ॥९॥

शीघ्रं दशंय शैलादे निर्वृताः स्मो यथा वयम् ।

विज्ञापय महादेव ब्रह्माद्याश्चाऽऽगता इति ॥१०॥

सर्वे त्वद्वचननिरताः सर्वे त्वदर्शनोत्सुकाः ।

कालाग्निप्रमुखाणां च वचः श्रुत्वा गणाग्रणीः ॥

प्राह विश्वेश्वर देव स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥११॥

वह देव रुद्रों से परिवृत तथा और उसके चारों ओर करोडों गणेश्वर विद्यमान थे । इगके पश्चात् वह कालाग्नि ने सर्वज्ञ नन्दिकेश्वर से कहा था—मुझे यहाँ किस प्रयोजन के लिये बुलाया गया है जो कि देवों के भी भगवान् राम्भु ने मुझे याद किया है ? मैं उपस्थित होगया हूँ नि तरक्षण में ही मैं सहार कर दूंगा और प्रलय हो जायगा । जब

इस रीति से कालाग्नि ने कहा वो शैलादि ने उससे कहा था कि इस समय मे विद्वेश देव शम्भु ने तुमको प्रलय करने के लिये नही बुलवाया है । आज तो महेश्वर द्रमु गिरिराज की पुत्री पार्वती देवी को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करेगे । उसी के लिये आपको यहाँ पर बुलावा गया है । और ब्रह्मा आदि सब देवगण भी बुलाये गये हैं ॥८॥६॥१०॥ ११॥ नन्दी के इस वचन का श्रवण करके कालाग्नि ने नन्दी से यह कहा था कि हम ब्रह्मा आदि सभी देव धूलपाणि प्रभु के दर्शन करने की इच्छा करते हैं ॥१२॥ हे शैलादे । आप बहुत ही शीघ्र भगवान् शम्भु के दर्शन करीये । जिससे हम सब निर्वृत्त हो जावें । आप जब महादेव जी को विज्ञापित कर दीजिए कि ब्रह्मा आदि सभी देव समागत होगये हैं ॥१३॥ ये सभी आपके ही ध्यान में निरत हैं और सभी आपके दर्शन करने के लिये बहुत ही उत्सुक भी हो रहे हैं । उस गणी के मुक्तिपा ने कालाग्नि प्रभुओं के इस वचन का श्रवण किया था और फिर जाकर विद्वेशदेव स बहुत ही मित्र और गम्भीर वाणी से कहा था—॥१४॥

ब्रह्माद्याद्याऽऽगता सर्वे गूढराणे तत्राऽऽज्या ।
 द्रष्टुमिच्छन्ति ते सर्वे नमस्कृतुं तथा मुदा ॥१२॥
 दिशाऽऽदेश पुराणे मा नि वक्ष्यामि गुरुरासुरान् ।
 वारिता द्वारदूतेषु द्रष्टुकामास्तथ सस्थिता ॥१६॥
 यत्ते निरवम रूपं तेजोमयमनिन्दितम् ।
 यदयोभागमाश्रित्य रद कालाग्निमजित ॥१७॥
 पश्यन्तु चैते भूतेश धूल चैव सदोज्ज्वलम् ।
 ततो विवेक कालाग्निर्विष्णुर्ब्रह्मा शनक्रतु ॥१८॥
 अन्ये च देवगन्धर्वा ऋषयो मनवस्तथा ।
 सर्वे गोत्राहू नृत्वा देवागुरमपोरणा ॥१९॥
 विविमुहंरमग्यानं नयाद्या इव गागरम् ।
 प्रविश्य भवने रम्ये नानाधानुविनिविने ॥२०॥

गणकोटिसमाकीर्णं रुद्रकोटिसुसेविते ।

अग्रजन्मगुरु पूर्वं रुद्रैर्देवैर्बृत्तस्तदा ॥२१॥

नन्दिश्वर ने कहा—हे शूलपाणे ! आपकी आज्ञा से ये ब्रह्मा आदि सब देवगण आकर उपस्थित हो गये हैं । ये सब आपका दर्शन करने की इच्छाकर रहे हैं और आपको प्रणाम करना आनन्द के साथ चाहते हैं ॥१५॥ हे पुरारे ! मुझको अपना आदेश प्रदान कीजिए कि मैं सब सुरासुरों को क्या कहूँ ? मैंने इन सबको द्वार मूल में ही वारित कर कर दिया है और वे सब आपके दर्शन करने की इच्छा वाले हैं तथा वहीं पर खड़े हुए हैं ॥१६॥ ओ आपका यह निरुपम-तेजोमय एव अनिन्दित स्वरूप है जिसके अधोभाग में आश्रय ग्रहण करके कालाग्नि से सजा वाला रद्र है ॥१७॥ ये सब भूतों के ईश और सदा उज्ज्वल शूल का दर्शन प्राप्त करें । इसके अनन्तर कालाग्नि ब्रह्मा-विष्णु और शतव्रतु ने अन्दर प्रवेश किया था । तथा अन्य देव गन्धर्व-ऋषिगण-मनुगण-इतने की अन्दर प्रवेश किया था । सब देव-असुर और महोरगों ने बड़ा भारी आनन्दोत्साह में कोलाहल किया था ॥१८॥१९॥ जैसे नदी-नद आदि सब सागर में प्रवेश करके उसमें ही मिल जाते हैं वैसे ही सबने हर के सस्थान में प्रवेश किया था । वह भवन जिसमें उन्होंने प्रवेश किया था अनेक घातुओं से विचित्र घातुओं से विचित्र था और करोड़ों गणों से समाकीर्ण था तथा करोड़ों रुद्रों के द्वारा वह सेवित था । उस समय में रुद्रों और देवों से परिबृत्त पूर्व में अग्र जन्माओं के गुरु थे ॥२०॥२१॥

भवारिभन्धकारि तमपश्यदन्तकानलः ।

मुक्ताचलप्रतीकाशं शशाङ्कचयसनिभम् ॥२२॥

नीलवण्ठ त्रिनेत्रं च शूलिन सर्वतोमृगम् ।

कोटिसूर्यप्रतीकाशं गजदानन्दकारिणम् ॥२३॥

कपालमानिनं देवं कपर्दकृतभूषणम् ।

दशबाहु दम्भार्घ्यस्यमनन्तं तेजसां निधिम् ॥२४॥

जगदुत्तिसिंहारस्वित्यनुग्रहकाणरिम् ।

मनावास्मप्रपञ्चमनाकुलम् ॥२५॥

सिंहासनस्थमचल चराचरविभूतिदम् ।

क्षीरोदमिव निष्कम्प त्रिलोक्यप्रभव शिवम् ॥२६॥

सर्वत पाणिपादान्त सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।

सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य स स्थितम् ॥२७॥

सुरासुरेन्द्र्यमान ध्यायमान मुमुक्षुभिः ।

इदं रूपं समानोक्त्य देवदेवस्य शूलिनः ॥२८॥

दन्तकानन ने भव के शत्रु और अन्धक के अरि उन त्रिकोटी देवा
या जो मुक्ताभा के पर्वत के तुल्य थे और शम्भु (चन्द्रमा) के समूह
के सदृश थे ॥२२॥ शिव का स्वरूप नीलकण्ठ वाला तीन नेत्रों से युक्त-
घूलघारी-सब ओर मुखों वाला—करोड़ों सूर्यों के सदृश—जगत् के
आनन्द को करने वाला—कपालों (नरभुजों की माला को धारण करने
वाला—कपर्दों से भूषण करने वाला—दशबाहुओं से युक्त पांच मुखों
वाला अनन्त और तन्मा की निधि था ॥२३॥२४ इस जगत् की उत्पत्ति-
स्थिति और सहार और अप्रग्रह करने वाला—अपमेय—अनाकाश—
प्रपद्य रहित और अनाकुल भगवान् शम्भु थे ॥२५॥ सिंहासन पर स्थित
—चर और अचर को विभूति के प्रदान करने वाले—क्षीर सागर की
भाँति निष्कम्प त्रिलोकी के प्रभव अर्थात् उत्पन्न करने वाले—सभी
ओर हाथ और चरणों वाले तथा सब ओर नेत्र—शिर और मुख वाले—
सभी ओर लोक में श्रुति रखने वाले—सबको ममावृत करके मस्थित—
सुरों और असुरों के द्वारा वन्द्यमान तथा मुमुक्षुओं के द्वारा ध्यायमान
शिव हैं । देवों के देव शूली प्रभु के इस रूप का अवलोकन करके वह
कालाग्नि उनके मभय में सस्थित हो गया था ॥२६॥२७॥२८॥

अग्रे स्थित स कालाग्निमरौ मेरुरिवापर ।

अयोवाच स शैलादि प्रणिपत्य सनातनम् ॥२९॥

नरकाणाधोभाग पुरत्रय प्रतिक्षितम् ।

योजनायुतविस्तीर्ण कामद शुभलक्षणम् ॥३०॥

यस्यैवैध्व निरालम्ब शतयोजनमानत ।

ज्वालाभालाकुल दिव्य सर्वलोकभयकरम् ॥३१॥

प्राकाराट्टालकैर्युक्त गोपुरैस्तोरणान्वितम् ।
 रक्तनीलसमानाभं भीमघोषैर्दुरासदै ॥३२॥
 वृतो रुद्रसहस्रैस्तु सिंहरूपैर्महाबलैः ।
 नियम्य च स्वक तेज प्रीत्यर्थं तेऽधुनाऽऽगत ॥३३॥
 ध्वान्तचामीकराभासश्चन्दनागरुगन्धयुक् ।
 नीलकण्ठस्त्रिनेत्रश्च वृषकेतुर्महाबल ॥३४॥
 द्वीपिचर्मपरीधान पञ्चवक्त्रेन्दुभूषण ।
 अनन्तमेखलाधारी कुण्डलीकृततक्षक ॥३५॥

भगवान् शिव के सामने स्थित हुआ वर कालाग्नि मेरु पर्वत पर दूसरे मेरु के ही समान था । इसके अनन्तर वह शैलादि मनातन प्रभु को प्रणिपात करने बोला ॥३२॥ नरकों के नीचे वाले भाग में तीन पुर प्रतिष्ठित हैं । वे दश हजार योजन पर्यन्त विस्तीर्ण हैं—वामनाओं के प्रदान करने वाले हैं और परम शुभ लक्षणों में युक्त हैं ॥३०॥ जिसके ही ऊर्ध्व भाग में बिना अवलम्ब वाला—मान में दश योजन धारा—ज्वालाओं की मालाओं से—समाकुल परम दिव्य और सब लोका को भय देने वाला प्राकार (बहार दीवारी) अट्टालकों से युक्त—गोपुरों वाला तथा तोरणों में समन्वित—रक्त, नील के समान आभा वाले भीम घोष में युक्त—दुरासद—मिह के रूप वाले—महान बलवान् सहस्रों रत्नों से समावृत अपने तेज को नियमित करते वह आपसी प्रीति के लिये इस समय में समागत हुए हैं ॥३१॥३२॥३३॥ ध्वान्त चामी करके समान आभा में—चन्द्रन और अमर की गन्ध से युक्त—नील कण्ठ—तीन नेत्रों वाले—वृष केतु—महान बनबारा—हाथी के चर्म का परिधान रखने वाले—पाँच मुख से मुखा—चंद्रकाभूषण मस्तक पर धारण करने वाले—अनन्त—मेखना के धारी और तक्षक सर्प का कुण्डली के रूप में रखने वाले हैं ॥३४॥३५॥

दशबाहुर्महातेजा पीनवक्षा महामुज ।

प्रतमोदनिधेर्घोषो रवननीनमहातनु ॥३६॥

आगत मौम्यरूपेण तव देव ममीपत ।

पश्यता मृदुभावेन देवदय जगताते ॥३७॥

एते चैव महावीर्याः कालाग्नेस्तु समीपतः ।
 तिष्ठन्ति ज्वलनाभासा रुद्राश्च शतकोटयः ॥३८॥
 त्वयि योगान्महादेव कालाग्न्यादेशकारिणः ।
 तिष्ठन्ति स्वपुरे रम्ये क्रीडमाना मनोरमे ॥३९॥
 तवानुज्ञागता ह्येते शशाकमीलिनोऽमलाः ।
 शुद्धस्फटिकसकाशा पद्मरागसमप्रभा ॥४०॥
 तडिद्भ्रमरसकाशा वज्रशूलधनुर्धराः ।
 नीलकण्ठास्त्रिनेत्राश्च सुखदुःखविजिता ॥४१॥
 सर्वाभरणसपन्ना अनन्तबलविक्रमाः ।
 जरामरणनिर्मुक्ता शार्दूलचर्मवाससाः ॥४२॥

दशबाहुओ वाले—महान् तेज मे सयुत पीन वक्ष स्थल वाले—महान्
 भुजाओ वाले—प्रलय काल के उदधि के घोष से मुक्त—रक्त—नील वर्ण
 के महान् शरीर वाले वे हे देव आपके समीप में समागत हुये हैं ।
 हे देवो के देव । हे जगत् के स्वामिन् । आप मृदु भाव से ही देखिये
 ॥३९॥३७ ये महान् वीर्य वाले जो इस का वाग्नि के समीप में स्थित हैं
 और जो अग्नि के समान आभा वाले हैं वे सैकड़ों करोड़ रुद्र हैं ॥३८॥
 हे महा देव । ये आपके वियोग से कालाग्नि के आदेश के करने वाले
 हैं । य सब भगने परम मनोरम एवं रम्य पुर में क्रीडा करने वाले हैं
 ॥३९॥ ये शशाङ्कमीलिनी—अमल सब आपकी अनुज्ञा में रहने वाले हैं ।
 ये विन्दुद स्फटिक के समान—पद्मराग के तुल्य प्रभा वाले—तरित्
 भ्रमर के महेश—वज्र, शूल और धनुष के धारण करने वाले—नीले कठ
 वाले तीन नेत्रों से युक्त—सुख-दुःख से रहित—समस्त आमरणों से
 सम्पन्न—अनन्त बल और विक्रम वाले जरा मरण से निर्मुक्त और
 शार्दूल के चर्म के वस्त्र धारी हैं ॥४०॥४१॥४२॥

इमानपि महादेव पश्यन्प्रीतिकरो भव ।

हरिचन्दनलिप्ताङ्गानशोवकमलार्चितान् ॥४३॥

देव्याधिपतयश्चैव प्रह्लादाद्या महाप्रतापः ।

समागता महादेव नागाः शेषादयः शिव ॥४४॥

सर्वा पातालवासिन्यो रूपयौवनगविता ।
 आगता देवदेवेश द्वीपैश्च सह सागरा ॥४५॥
 गन्धर्वा किनरा यक्षा सिद्धविद्याधरा शिव ।
 उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो नद्य पापहरा शुभा ॥४६॥
 एते च मुनयो देव भृगवाद्या प्रथितौजस ।
 संप्राप्तानि पुराणीह शक्रादीना महात्मनाम् ॥४७॥
 एते लोका समायात सत्यान्ता सप्त शकर ।
 भूर्तयस्तत्र देवेश भवाद्याप्य समागता ॥४८॥
 आदित्या वसवो रुद्रा साध्याश्चैव मरुद्गणा ।
 सनकाद्या महात्मान सत्यलोकन्यासिन ॥४९॥

हे महादेव ! इनकी भी आप देखते हुए अर्थात् कृपा पूर्ण दृष्टिपात करके प्रीति के करने वाले हो जाइए । ये सब हरिचन्दन से प्रलिप्त अङ्गो वाले हैं और अशोक तथा कमलो से समन्वित हैं ॥४३॥ महान् बलवान् प्रह्लाद आदि दैत्यों के अधिपतिगण हे महादेव जी ! समागत हुए हैं—नाग भी शेष प्रभूति हे शिवजी ! आपके समीप से आकर उपस्थित हुए हैं ॥४४॥ हे देव देवेश ! सभी पाताल के निवास करने वाली—रूप और यौवन में सम्पन्न एवं गवित द्वीपों के साथ साथ सागर भी समागत हुए हैं ॥४५॥ हे शिवजी ! गन्धर्व—किन्नर—यक्ष—सिद्ध—विद्याधर—उर्वशी आदि अप्सराएँ और परम सुभ वापों के हरण करने वाली नर्तिका भी आयी हैं ॥४६॥ हे देव ! ये सब प्रथित बोज वाले भृगु आदि मुनिगण आये हैं और महात्मा इन्द्र आदि के पुर भी सम्प्राप्त हुए हैं ॥४७॥ हे शङ्कर ! ये सत्य के अन्त तट वाले सप्तस्त लोक भी समायात हुए हैं हे देवेश ! आगती भव आदि जो मूर्तिर्मा हैं वे भी समागत हुई हैं ॥४८॥ आदिप—वसुगण—रुद्रगण—साध्यगण—मरुद्गण और सनकादि महात्मा लोग जो सत्य लोक के निवास करने वाले भी यहाँ आये हुये हैं ॥४९॥

सर्वा पातालवासिन्यो रूपयीवनमविता ।
 आगता देवदेवेश द्वीपैश्च सह सागरा ॥४४॥
 गन्धर्वा किनरा यक्षा सिद्धविद्याधरा शिव ।
 उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो नद्य पापहरा शुभा ॥४५॥
 एते च मुनयो देव भृग्वाद्या प्रथितोजस ।
 संप्राप्तानि पुराभीह शक्रादीना महात्मनाम् ॥४६॥
 एते लोका समायात सत्यान्ता सप्त शकर ।
 मूर्तयस्तत्र देवेश भवाद्याश्च समागता ॥४७॥
 आदित्या वसवो रुद्रा साध्याश्चैव मरुगदणा ।
 सनकाद्या महात्मान सत्यलोकनिवासिन ॥४८॥

हे महादेव ! इनको भी आप देखते हुए अर्थात् कृपा पूर्ण दृष्टिपात करके प्रीति क करने वाले हो जाइए । ये सब हरिश्चन्दन से प्रलिप्त अङ्गो वाल हैं और अशोक तथा कमलो से समन्वित हैं ॥४३॥ महान् बलवान् प्रह्लाद आदि दैत्यो के अधिपतिगण हे महादेव जी ! समागत हुए हैं—नाग भी घोष प्रभूति हे शिवजी ! आपके समीप में आनन्द उपस्थित हुए हैं ॥४४॥ हे देव देवेश ! सभी पाताल के निवास करने वाली—रूप और यौवन से सम्पन्न एवं गदित द्वीपों के साथ साथ सागर भी समागत हुए हैं ॥४५॥ हे शिवजी ! गन्धर्व—किन्नर यक्ष—सिद्ध—विद्याधर—उर्वशी आदि अप्सराएँ और परम द्रुम वायो के हरण करने वाली नदियाँ भी आयी हैं ॥४६॥ हे देव ! ये सब प्रथित ओज वाले भृगु आदि मुनिगण आय हैं और महात्मा इन्द्र आदि क पुर भी सम्प्राप्त हुए हैं ॥४७॥ हे शङ्कर ! ये सत्य के अन्न तक वाले समस्त लोक भी समायात हुए हैं हे देव ! आगती सब आदि जो मूर्तियाँ हैं वे भी समागत हुई हैं ॥४८॥ आदित्य—वसुगण—रुद्रगण—साध्यगण—मरुद्रण और सनकादि महात्मा लोग जो सत्य लोक के निवास करने वाले भी यहाँ आये हुये हैं ॥४९॥

पद्मरागनिभो देवो बन्धूककुसुमद्युति ।
जटाभिस्तु शिरोनद्धो रत्नमालाविभूषित ॥५०॥
कमण्डलुधर श्रीमान्दण्डहस्त सुलोचन ।
कृष्णाजिनोत्तरीयेण रक्तमात्याम्बरेण च ॥५१॥
सुवर्णमेखलाधारी रौप्यमकुण्डलमण्डली ।
हनध्वजश्चतुर्बाहु सुरासुरनमस्कृत ॥५२॥
सावित्र्या सहितो देव पद्मगोनिरिहाऽऽगत ।
अतसीपुष्पसकाशस्तमालदनवर्चस ॥५३॥
पीताम्बरधर श्याम पीतगन्धानुलेपन ।
शङ्खचक्रगदाधारी शार्ङ्गी गरुडवाहन ॥५४॥
किरीटी कुण्डली हारी कौस्तुभाभरणान्वित ।
केयूरवलयापीड पीनवक्षा गदान्वित ॥५५॥
चामीकरसुमालाभिर्दीप्यमानो विराजते ।
सूर्यायुतप्रतीकाशो नीलोत्पलदलक्षण ॥५६॥

पद्मराग के सदृश—बन्धूक के कुसुम के तुल्यद्युति वाले—जटाओं के द्वारा नद्ध शिर वाले—रत्नमाल से विभूषित—कमण्डल के धारण करने वाले—हाथ में दण्ड धारण किये हुए श्रीमान्—सुलोचन—कृष्ण मृग के धर्म के उत्तरीय से युक्त और रक्त मान्‍य और अम्बर से मयुक्त—सुवर्ण की मेखना के धारण करने वाले—रौप्य के कुण्डलों के मण्डल धार—हस्त की ध्वजा से युक्त चार बाहुओं वाले—सुर—असुरों के द्वारा नमस्कृत—सावित्री देवी के सहित पद्मरागि देव भी यहाँ पर आये हुए हैं । अतसी के पुष्प के सदृश—तमाल के तरु के वर्चस वाले पीताम्बर के धारी—श्याम—पीतगन्ध के अनुलेपन वर्त्ता—शङ्ख चक्र, गदा के धारण वर्त्ता—शार्ङ्गीधनुष वाली—गरुड के वाहन वाले किरीट धारी—कुण्डल धारी—हार के पहिन ने वाले—कौस्तुभमणी के आभरण वाले—केयूर—वलय और आर्ष ड वाले—पीनवक्षस्थल से युक्त—गदा से सभूत—स्वर्ण की मालाओं से दीप्यमान होकर विराजित

हैं । अयुत (अश्वत्थार) मूर्तों के समान—नीलरत्न के दल के सदृश लोचनो से सम्पन्न विष्णु देव है । १५० १६।

क्षीरोदाणवशायी च नीलजीमूतानि स्वन ।

रमामदितसर्वाणि शेषपर्यङ्कुलालम् । १५७

गुरुणां च गुरुदेव ईश्वराणामपीश्वर ।

वरदो भव वात्सल्यो दैत्यकोटिक्षयकर । १५८

आगमोऽय महादेव विष्णु प्रियतरस्तव ।

तप्तचामोकरप्रख्यो वज्रहस्तो महागल ॥

पट्टाशुकपरोधामो हेममालाविभूषितः । १५९

प्रख्यातवीर्यो बलवृत्रहन्ता बालार्कभासो हरिचन्दनाङ्ग ।

पुत्रागनागंबकुलेश्च जुष्टो मुक्ताफलालकृतकण्ठदेश । १६०

अय समागत शक्रो वह्निर्वैवस्वतस्तथा ।

मर्द्धतिर्वरुणो वायु कुबेरश्च समागत । १६१

ईशानश्च महाभागस्त्रिशत्कोटिगणवृत्त ।

आगतस्त्रिजगद्योने मिनाकी च गणेश्वर । १६२

दशकोटिगणयुक्त कालकण्ठस्तथैव च ।

सप्तकोटिगणयुक्तो घण्टाकर्णो महाबल । १६३।

क्षीर सागर में क्षयन करने वाले—नीलमेघ के समान गर्जन करने वाले—रमा के द्वारा समस्त अङ्गों का मर्दन किये गये—शेष की शय्या पर क्षयन की इच्छा वाले—गुरुओं के भी गुरुदेव—ईश्वरो के भी ईश्वर—वरद—भव—वात्सल्य स्वी—बरोडा दैत्यो के क्षय की करी लाले—हे महादेव जी ! आपके अधिक प्रिय यह विष्णु भगवान आये । तपे हुए गुवण के सदृश—हाथ में वज्र धारण करने वाले—महा-लवान्—पट्ट वस्त्र के धारी—हेम की माला से विभूषित प्रख्यात वीर्य वाले—बल वृत्र के हनन करने वाले—गान सूर्य के समान आभा वाले—हरिचन्दन के निवह वाले—पुत्राग—नाग और वज्र के द्वारा सेविन—मोनियो अनृत कण्ठ भाग वात यह इन्द्र—अग्नि और वैवस्वत आ

गये हैं । निम्न—वर्ण—वायु—कुवेर भी आ गये हैं । महामाग ईशान जो तीस करोड़ गणों से परिवृत्त थे—हे त्रिजगत् की योनि । पिनाकी और गणेश्वर आ गये हैं । दस करोड़ गणों से युक्त बालकण्ठ तथा सात करोड़ गणों से समन्वित महा बलवान् घण्टा कर्ण आ गये हैं । १५७-६३।

दशकोटिगणैर्मुक्तो वमुर्धं पो महाबल ।

चतुष्कोटिगणैर्दण्डी शिखण्डी दशकोटिभिः । ६४।

पट्भिर्मयूरवदन मिहास्यो दशकोटिभिः ।

सप्तकोटिगणैर्बुध्न किरीटी च समागतः । ६५।

कालान्तवस्तु दशामनकुली दशकोटिभिः ।

पट्भिस्तु मुण्डमाली च त्रिभूली पञ्चकोटिभिः । ६६।

अष्टाभिर्विद्वमाली च त्रिमूर्तिर्नवकोटिभिः ।

एते ऋषोऽवरा सर्वे तथा चान्ये गणेश्वरा । ६७।

येषां सस्या न जानन्ति ब्रह्मसा देवतागणा ।

आगतानां महादेव शरणं कोलाहल विभो । ६८।

अमरेश प्रभासश्च पुष्करो नैमिषमथवा ।

अपाटी दण्डी मृण्डी च भारभूतिस्तथा कुली । ६९।

तीर्थाधिपतयो देवा आगता दिव्यमूर्तयः ।

एते गुह्याष्टरा देव कामरूपा महाप्रजाः । ७०।

दस करोड़ गणों के सहित महा बलवान् वमुर्ध—पार करोड़ गणों के साथ दण्डी—दस करोड़ गणों के सहित शिखण्डी—छे करोड़ों के साथ मयूर वदन—दस करोड़ गणों से समुत्ता मिहास्य और सात करोड़ गणों से समन्वित किरीटी समागत हुए हैं । ६४-६५। दस करोड़ गणों के साथ बालकण्ठ—दशकोटि और नकुली समागत हुए हैं । छे करोड़ गणों से युक्त मुण्डमाली—पांच करोड़ गणों से युक्त त्रिभूली अष्ट करोड़ गणों के सहित विद्वमाली—नौ करोड़ गणों से युक्त त्रिमूर्ति—ये सब गणेश्वर तथा अन्य गणेश्वर दूत ने अधिप मत्स्या से हे

कि जिस सस्या को ब्रह्मा आदि देवतागण भी नहीं जानते हैं अन्य की तो बात ही क्या है । हे विभो ! हे महादेव जी ! इन आये हुआ का कोलाहल का श्रवण कर लीजिये । अमरेश—प्रभास—पुष्कर—नैमिष—आपाढी—दण्डी—मुण्डी—भारभूति—कुली ये दिव्य मूर्तियों वाले तीर्थों के सब अधिपतिगण आये हैं । हे देव ! ये गुणाटक हैं जो काम रूप और महान् बन वाले हैं । ६६-७० ।

तवाऽऽज्ञयाऽऽगता देव ब्रह्माण्डान्तरवासिनः ।

कोटिकाटिगणैर्युक्ता देवदेव महेश्वर । ७१ ।

विश्वेश्वरजटोद्भूता सिन्धुश्चैव सरस्वती ।

यमुना गण्डकी नागा विपाशा नर्मदा शिवा । ७२ ।

रुक्मा घण्टा च निर्विन्द्या देविका च हृषद्वती ।

शतद्रुश्च पयोष्णी च चन्द्रभागा च गोमती । ७३ ।

चर्मण्वती च कावेरी सरयूश्च परावती ।

धूतपापा च सारथ्या भागा माला सुगन्धिका । ७४ ।

जम्बू तापी वनी शूरा कौशिकी कुमुदा करा ।

मन्दाकिनी चन्द्रलेखा चम्पकाऽऽमोदवाहिनी । ७५ ।

ऐरावती कामवगा प्रेङ्खला कामचारिणी ।

पूर्णभद्रा महामोदा गम्भीरावर्तिनी स्तुता । ७६ ।

मधमाला मेघवर्णा सदानोरा च नन्दिनी ।

वेदा वेदवती घोणा सीता चित्रोत्पला तथा । ७७ ।

हे देव ! ये सब अन्य अन्य ब्रह्माण्डों के निवास करने वाले आपकी ही आज्ञा में यहाँ पर समागत हुए हैं । हे देवों के भी देव महेश्वर ! य सब करोड़ों करोड़ों गणों से युक्त हैं । ७१। विश्वेश्वर प्रभु के जटाओं से समुत्पन्न हुई (गंगा)—सिन्धु—सरस्वती—यमुना—गण्डकी—नागा—विपाशा—नर्मदा—शिवा—रुक्मा—घण्टा—निर्विन्द्या—देविका—हृषद्वती—शतद्रुश्च—पयोष्णी—चन्द्रभ.गा—गोमती—चर्मण्वती—कावेरी—सरयू—परावती—धूतपापा—सारथ्या भागा—माला—सुगन्धिका—

जम्बू—तापी—वनी—शूरा—कौशिकी—कुमुदा—वरा—मन्दाकिनी—
चन्द्रलेखा—चम्पका—आमोदवाहिनी—ऐरावती—वामवेमा—प्रेङ्गला—
वामचारिणी—पूर्वभद्रा—महामोदा—गम्भीरावर्तिनी—मेघमाला—मेघवर्णा—
मदानीरा—नन्दनी—वेदा—वेदवती—वीणा—मीता—चित्रोत्पला । ७२। ७३।

वेत्रवती न घृत्रघ्नी पिप्पला जञ्जली तथा ।
सरजा कुमुदा शिक्षा कौशिकी निपथा सिता । ७८।
वैतरणी मिनीवाली वेगवती पुन. पुना ।
गौरी कृष्णा तथा दुर्गा तुङ्गभद्रोत्पलावती । ७९।
स्वर्णा भीमरथी शुद्धा कृतमाला तरङ्गिणी ।
एता देव महानद्य पावना वल्मपापहा । ८०।
मूर्तिमत्यरतवेशान रत्सवे त्विह आगता ।
सर्वा एता महादेव पश्य कारण्यवारिधे । ८१।
भवन्ति कृतिन सर्वे त्वयि दृष्टे महेश्वर ।
एयमुषत्वा तदा नन्दी देवदेवस्य चाग्रत । ८२।
पपात दण्डवद्भूमौ भवत्या परमया युत ।
नन्दिन त्र महात्मान दृष्ट्वा विश्वेश्वरः प्रभु । ८३।
प्रीतो भूत्वाऽऽह कालारिमन्दरे चारुन्दरे । ८४।
इदं य गच्छेन्नित्यं शुश्रूषाद्वाजी भक्तिन ।
प्रीता स्पृष्टेवना सर्वारतस्याभीष्टफलप्रदा । ८५।

वेत्रवती—घृत्रघ्नी—पिप्पला—जञ्जली—सरजा—कुमुदा—शिक्षा—
कौशिकी—निपथा—सिता—वैतरणी—मिनीवाली—वेगवती—पुन
पुन—गौरी—कृष्णा—दुर्गा—तुङ्गभद्रा—उत्पलावती—स्वर्णा—भीम-
रथी—शुद्धा—कृतमाला—तरङ्गिणी—ह देव । ये सब परम पावन
नदियाँ हैं और वल्मपो के अपहरण करने वाली हैं । हे ईशान ! ये सब
भूमिमयी नदियाँ आपके लगव मे ही समाप्त हुई हैं । हे कल्या के
मागर । हे महादेव श्री ! इस सब पर आप अवता दृष्टिमान कीजिये ।
७८। ८०। हे महेश्वर देव । आपसे दोगे जाने पर सब कृपी हो जायेंगे ।

इस प्रकार से कह कर नन्दीदेव देव के आगे भूमि में दण्ड के समान गिर गया था और परमा भक्ति से युक्त होकर उसने साष्टांग प्रणाम किया था । विश्वेश्वर प्रभु ने उस महात्मा नन्दी को देखा और उस चारु कन्दराओ वाले मन्दराचल पर ये कालारि परम प्रसन्न होकर बोले—इसको जोभी कोई पढ़ना है या सुनता है और निरर्थक भक्ति से श्रवण करता है उस पर सब देव प्रसन्न होते हैं और उसे अभीष्ट देने वाले होते हैं ।

॥ साम्ब विवाह वर्णन (१) ॥

अथासौ हिमवान्विप्रा देवीमात्मसुतामुमाम् ।
 प्रदानार्थं महेशाय सप्राप्तो मन्दर क्षणात् ॥१॥
 आह दृष्ट्वा गिरिं नन्दी देवदेव पिनाकिनम् ।
 वक्तुकाम समायातो भगवान्पर्वतेश्वर ॥२॥
 श्रुत्वा तु वचनं श्लक्ष्णं व्यक्तं नन्दीमुत्तात्तदा ।
 मेघगम्भीरया वाचा महादेवोऽब्रवीदिदम् ॥३॥
 ब्रवत्वयं गिरिश्रेष्ठो हृदये यत्प्रतिष्ठितम् ।
 कामस्तस्य (स्या) चिरादेव भविष्यति न संशय ॥४॥
 एवमुक्तस्तदा विप्रा देवदेवेन शम्भुना ।
 उवाच गिरिशार्दूलो भूत्वाऽग्रेऽवनताञ्जलि ॥५॥
 याऽऽप्तीत्पूर्वं च ते पत्नी साऽवतीर्णा गृहे मम ।
 तामेव तव दानार्थमागतोऽस्मि महेश्वर ॥६॥
 गमी ब्रह्मादयो देवास्त्वत्समीपमिहाऽऽगता ।
 किं गोनमिति मृच्छामि ह्येषामग्रे विभो वद ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर हे विप्रो ! वह हिमवान् अपनी पुत्री देवी उमा को महेश के लिये प्रदान करने के वास्ते क्षण मात्र में

ही मन्दराचल पर प्राप्त हो गये थे ।१। नन्दी ने गिरिराज हिमवाद् को देखकर देवों के देव पितावधारी से कहा—यह कुछ कहने की इच्छा वाला भगवाद् पर्वतेश्वर समागत हुए हैं ।२। उस समय में नन्दी के मुख में परम लक्षण वचन व्यक्त रूप में श्रवण करके भेष के सदृश परम गभीर वाणी से महादेवजी ने यह कहा था ।३। यह गिरियों में श्रेष्ठ वहें जो बुद्ध भी इनके मन में प्रतिष्ठित है । उनका मनोरथ शीघ्र ही हो जायगा—इसमें सशय की कोई भी बात नहीं है ।४। हे विप्रो ! उस समय में देवदेव के द्वारा इस प्रकार से कहने पर गिरि शार्ङ्गल उनके आगे प्रणत अञ्जलि वात्सा होकर यह बोला—।५। हिमवाद् ने कहा—जो पूर्वजन्म है आपकी पत्नी थी वही अब मेरे घर में अवतीर्ण हुई हैं । हे महेश्वर ! उमी को आपके लिये दान देने के उद्देश्य से मैं वहाँ पर समागत हुआ हूँ ।६। ये ग्रहा आदि सब देवगण भी यहाँ पर आपके समीप में समुपरिष्ठित हो गये हैं । हे विप्रो ! आप यह वतलाइये कि आपका गोत्र क्या है ? आप इन सबके समक्ष में वता दें ।७।

श्रुत्वा तु भारती तस्य विश्वेशो विश्ववन्दित ।
 किं गोत्रमिति सचिन्त्य नोत्तरं प्रमसर्ज ह ॥८॥
 हृष्टो निरुत्तरं शम्भुं जहमुर्देवदानवा ।
 एष एव जयद्योनिर्गोत्रमस्य कथं भवेत् ॥९॥
 इत्युचुर्विबुधा भवें हिमवन्तं नगोत्तमम् ।
 देवानां च वचं श्रुत्वा गिरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥१०॥
 विश्वेश्वर पर धाम परमात्मानमव्ययम् ।
 शाश्वतं गिरिशं स्थाणुं विश्वाकारं सनातनम् ॥११॥
 दत्ता दत्ता पुनर्दत्ता उमा सत्येन ते प्रभो ।
 ततो महान्तरवो विप्रा जयशब्दादिमङ्गवै ॥१२॥
 दुन्दुभीनां च वाद्यानामभवत्पागरोपम ।
 गृहीतेति शिवं प्राह पार्वती पर्वतेश्वरम् ॥१३॥

तद्धरते भगवाञ्शभुरङ्ग लीय प्र(न्य)वेशयत् ।

इमं च कलशं हैममाद्राय त्वं नगोत्तम ॥१४॥

विश्व के ईश और विश्व के द्वारा वन्दित प्रभू ने उस हिमवान् की भारती का श्रवण करके मेरा क्या गोत्र है—इसका चिन्तन करके कुछ भी उत्तर नहीं दिया था । ८। जब शम्भू को बिना उत्तर वाला देता तो सभी देवगण और दानव हस गये थे । उन्होंने कहा यह ही तो सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करने वाले है । इनका गोत्र कैसे हो सकता है । ९। यही बात सब देवों ने नगो मे उत्तम हिमवान् से कही थी । देवों के इस वचन का श्रवण करके गिरिराज यह बोले—१०। विश्वेश्वर—परमधाम—परमात्मा—अव्यय—शाश्वत—गिरिश—स्थानु—विश्वकार—सनातन को मैंने अपनी पुत्री उमा दे दी—और पुन दे दी है—यह है प्रभो ! यह मैं सत्य निवेदन कर रहा हूँ । हे विप्रो ! इसके पञ्चात् जय शब्द आदि क मङ्गल सूचक शब्दों से महान् ध्वनि हो गयी थी । ११। १२। उस समय म मुन्दुभियो तथा अन्य बाघों का भी मागर की गर्जना के समान बहुत भारी ध्वनि उत्पन्न हो गयी थी । तब भगवान् शिव ने पञ्चतेश्वर हिमवान् से कहा था कि मैंने पार्वती को ग्रहण कर लिया है । उसके हाथ में भगवान् शम्भू ने अङ्गलीय का प्रवेश करा दिया था । हे नगोत्तम ! आप इस हैमवल्लभ को सागर जाइये । १३। १४।

याहि गत्वा त्वनेनेव तामुमा स्नापय त्वरा ।

अन्येषा परिहारार्थमेव एव विधिं सदा ॥१५॥

जगत्त्रयेऽपि नूनं स्याद्ब्रज तूर्णं नराधिप ।

ततस्तुष्टो महासौलोऽभोजयत्सुसमाहित ॥१६॥

तव यत्नरतो विप्रारतपण्य चराचरान् ।

अभवद्देवमुद्दिश्य शंकर ग गिरिस्तदा ॥१७॥

तथाऽस्मिन्नन्तरे देवो धर्मकेतुमहेश्वर ।
 उत्थितो मुनिशार्दूला समाप्तोक्त्य च शार्ङ्गिणम् ॥१८॥
 अभवज्जयशब्दानां तुमुलो हि महारतदा ।
 पुष्पवृष्टिनिपातश्च सत्यलोकाद्विजोत्तमा ॥१९॥
 नानावनाधिपाञ्चैव कनकश्च मुदान्विता ।
 कुसुमैर्दिव्यगन्धाढ्यैर्वैष्णवैर्वृन्दवत् ॥२०॥
 वीणीवैष्णुमृदङ्गानां दुन्दुभीनां ततो रवः ।
 हरिविरश्चिशक्रपत्ताः पूरयन्ति सुरास्तदा ॥२१॥

आप जाइये और जाकर दौघ ही अपने से ही उस उमा का स्तन कराइये । अन्यो के परिहार के लिये यह ही सदा विधि है । यह तीनो जगत् म भी निश्चय ही होती है । अतएव हे नराधिप ! दौघ ही गमन करो । इसके अनन्तर परम तुष्ट होकर महाशैल ने सुममाहित होने हुए भोजन कराया था । इस प्रकार से हे विप्रो ! चर और बचरो को तर्पण करने के लिये यज्ञ में रत हो गया था । उस समय म वह गिरिराज भगवान् शङ्कर का उद्देश्य करके ही रत हो गया था । १५।१६।१७। हे मुनि शार्दूलो ! तथा इस अन्तर म देवधर्म केतु महेश्वर उत्थित हुए और शार्ङ्गी भगवान् को देखा था । १८। उस समय ने महान् जय-जय शब्दों का तुमुल हो गया था । पुष्पों की वृष्टि का विपात हुआ । हे विजोत्तमो ! कुसुमों की वर्षा सत्य लोक से हुआ था । अनेक प्रकार के वना क अविष और आनन्द से समन्वित ऋतुओं ने दिव्य गन्ध से युक्त कुसुमों के द्वारा मेघों के समुदाय के ही समान वर्षा की थी । उस पुनः समय म हरि-ब्रह्मा और महेन्द्र आदि सुरा ने वीणा—वेणु—मृदङ्ग और दुन्दुभियों की ध्वनि को पूरित किया था । १९। २०। २१।

विप्रास्त्र्यलोक्यनादेन वेदघोष प्रचक्रिरे ।

गायत्री चैव सावित्री रुद्रकन्यारतयैव ॥२०॥

विद्याधर्योऽथ नागिन्यो देवानां च तथाऽङ्गना ।

सिद्धकन्या मनोहार्या यक्षकन्यारतयैव च ॥२३॥

मातरं सप्त याश्चैव याश्च नक्षत्रमातरं ।

गिरीणां च तथा नार्यं समुद्राश्च सरांसि च ॥२४॥

मङ्गल गायत्र्यानाश्च अर्धमष्टाङ्गसमुत्तमम् ।

सुप्रहृष्टा ददुः सर्वा देवदेवस्य पादयो ॥२५॥

एतस्मिन्तन्त्रे विप्रा हिमवत्सप्रणोदित ।

मौनवस्तन संप्राप्तो हेमकुम्भकर सुधी ॥२६॥

सालङ्कायनपीठरय गत्वा तस्याग्रतः स्थित ।

तेनापि देवदेवस्य ज्ञापितो गिरिरग्रतः ॥२७॥

अथासौ भगवान्देवो मङ्गलेशो जलाशय ।

स्नापयद्देवसा युक्तं समुद्रं शूलपाणिनम् ॥२८॥

विप्रो नेत्रं लोचय नाद से वेदघोष अर्थात् वेदों के मन्त्रीष्चारण की ध्वनि को किया था । गायत्री—सावित्री—रुद्रों की कन्याएँ—विद्याधरी—नागिनी—देवों की अङ्गनाएँ—मनोहर सिद्धों की कन्याएँ तथा यक्षों की कन्याएँ—सात माताएँ जो थी उन्होंने और जो नक्षत्र माताएँ थी—पर्वतों की स्त्रियाँ—समुद्र मर सब मङ्गल गान कर रहे थे और परम प्रहृष्ट होते हुए सबने देवदेव के चरणों में अष्टाङ्ग समुत्तम अर्घ्य दिया था ॥२३॥२४॥२५॥ इसी बीच में हे विप्रो ! हिमवान् ने द्वारा प्रेरित होकर मैं नाव सुधी हेम का कुम्भ हाथ में ग्रहण करके वहाँ पर सम्प्राप्त हुआ था ॥२६॥ सालङ्कायन पीठ के आगे जाकर वहीं स्थित हो गया था । उसके द्वारा भी देवदेव के आगे गिरि ज्ञापित हुआ था ॥२७॥ इसके अनन्तर भगवान् देव मङ्गलेश जलाशय न वेधा से युक्त होकर समुद्रों के द्वारा शूलपाणि का स्नपन कराया था ॥२८॥

स्नाप्यमाने तदा देवे नद्यो वी सागरा द्विजा ।

यभूयु सलिलैर्युक्ता कृशाङ्गा स्वेदसमुत्ता ॥२९॥

अथ ते त्रिदशाः सर्वे सनारायणका द्विजाः ।
 परं विस्मयमापन्ना भर्गं पश्यन्ति चाद्भुतम् ॥३०॥
 ततो निलीयमानास्तु शरीरे शकरस्य तु ।
 नद्यः सर्वाः समुद्राश्च प्रपश्यन्ति सुविस्मिताः ॥३१॥
 योगमायाहतं वीक्ष्य ततोऽयं जगति स्थितम् ।
 अस्तुवन्पशुमर्तारं ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥३२॥
 ततस्तैरनु स्तुतो देवः प्रहस्य भगवान्भवः ।
 विमृज्य च तदा तोयमभवत्पूर्णरूपवृत् ॥३३॥
 एव साम्बे स्थिते तस्मिन्देवदेवे पिनाकिनि ।
 स्नापितोऽसौ विरञ्चाद्यं स्निग्धमतिर्भगवान्भवः ॥३४॥
 मृनाकोऽप्यञ्जलिं कृत्वा देवदेवस्य चाग्रतः ।
 सस्थितो हर्षसमुत्तो निर्धिं लब्ध्वा यथाऽधन ॥३५॥

उस समय मे देव के स्नप्पमान होने पर नदियों और सागर हे द्विजो ! कृशाङ्ग और स्वेद स समुक्त सलिलो से समन्वित हो गये थे । ३०। इसके उपरान्त सब त्रिदशगण नारायण के सहित परम आश्चर्य को प्राप्त हो गये थे और अद्भुत स्वरूप वाले भगवान् भव भी देख रहे थे । ३०। इसके उपरान्त भगवान् शङ्कर के शरीर मे विलीन होती हुई समस्त नदियों और सब समुद्र सुविस्मित होकर देख रहे थे । ३१। जगत् मे स्थित उस जल को योगमाया से हूत देखकर ब्रह्मा आदि देवगणो ने पशुपति प्रभु का स्तवन किया था । ३२। इसके अनन्तर उन सबके द्वारा स्तुति किये गये देव भगवान् भव हँसकर उमी समय मे जल का विसर्जन करके पूर्व रूप के धारण करने वाले हो गये थे । ३३। इस रीति से साम्ब दशा मे स्थित उन देवों के देव विनाशी के वह त्रिमूर्ति भगवान् भव ब्रह्मा आदि के द्वारा स्नापित किये गये थे । ३४। मृनाक पर्वत भी देवदेव के आगे अञ्जलि करके गस्थित हो गया था । उस समय मे वह इतना अधिक प्रदर्शित हो रहा था जैसे कोई बहुत

निधन पुरुष धन की निधि को प्राप्त करके खुश हो जाया करता है ।

॥३५॥

विसर्जितस्ततस्तेन देवदेवेन शम्भुना ।

त्रैलोक्यपतिलके तस्मिन्ययी तूर्णं नगात्मज ॥३६॥

तदगुक्त परिधाप्य देवी तामरसेक्षणाम् ।

स्नापयस्तेन कुम्भेन हराङ्घ्रिपतितेन च ॥३७॥

नीरपात द्विजश्रेष्ठा कृतमेतत्कर्पदिना ।

पार्वतियविधिनूनं कुलजाना सदाजनघ ॥३८॥

ततो भगवती देवी हृष्टपुष्टा तपोमयी ।

पितुरभ्यादागा भूत्वा विवेश परमासने ॥३९॥

इसके उपरान्त देवदेव शम्भु ने उसे विदा कर दिया था । त्रैलोक्य के तिलक उसके जाने पर बहुत शीघ्र नगात्मज अर्थात् हिमवाद् का पुत्र गया था । तामर के समान नेत्रों वाली उस देवी को ग्रह उनका वस्त्र पहिनाकर शिव के चरणों के ऊपर से गिरे हुए उसी कुम्भ के द्वारा स्नान करते हुए है द्विज श्रेष्ठों । कपदा प्रभु ने यह नीरपात किया था । कुलजों की सदाजनघ पार्वतिय विधि निश्चय ही सम्पन्न हुई थी ॥३६॥३७॥३८॥ इसके पश्चात् तपोमयी भगवती देवी परम हृष्ट-पुष्ट होती हुई पिता के समीप शक्तिनी होकर परमासन पर प्रवेश कर बैठ गयी थी ॥३९॥

॥ साम्ब विवाह वर्णन (२) ॥

अथाऽऽयान्त शिव हृष्टा हिमवान्पतिश्चर ।

मेरुश्चैव यथासक्यं रविचन्द्रदिवाकरं ॥१॥

तथा देवी स वेषाद्यवृत छत्रेण समुतम् ।

जयेत्युक्त्वा नगेन्द्रस्तु ह्यात्मात्साम्बरस्तदा ॥२॥

उत्थित. सहसा विप्राः पुष्पहस्तो महेश्वरः ।

मुदा परमया युक्तो भवन्या चानन्यया द्विजाः ॥३॥

वक्षन्नाविधैश्चक्रं मार्गभूषां तदा गिरिः ।

पताकाभिर्जयन्तीभिः स्रग्दामैर्दिव्यगन्धिभिः ॥४॥

ध्वजैश्च विविधाकारैः पञ्चवर्णैर्मनोरमैः ।

चामरैश्चन्द्ररम्यैस्तु तन्वकैश्च समन्ततः ॥५॥

मुक्तानां प्रकरैश्चैव पुष्पाणां तु तथैव च ।

एवमार्थरनेकैश्च शोभां कृत्वा नगोत्तमः ॥६॥

स्थितस्तु वीक्षमाणोऽसौ विश्रव्यापिनमीश्वरम् ।

संपूर्णचन्द्रवदना मदनानलदीपिताः ॥७॥

श्रीभूतजी ने कहा—इसके अनन्तर पर्वतेश्वर हिमवान् ने आते हुए भगवान् शिव को देखकर और मेरु ने भी यथामय रविचन्द्र दिवाकरो के तथा वैशा आदि देवों के द्वारा पवित्र और छत्र से समुत्त थे। उस समय में नगराज ने “जय हो”—यह कहकर उग समय में हाथ में वस्त्र और माल्य लेकर सहसा उत्थित हो गया था। हे विप्रो! महेश्वर पुष्प हाथ में लेने वाले हो गये थे। हे द्विजो! उस समय में गिरिराज परम आनन्द से युक्त और अनन्य भक्ति से समुत्त होकर उन्होंने उस समय में नाना प्रकार के वस्त्रों से मार्ग की सजावट की थी। पताकाओं से—जमान्तियों से—दिव्य गन्ध वाली मालाओं से विविध आकार वाले ध्वजों से—मनोरम पाँच वर्णों वाले चमरों से जो सभी ओर लम्बे और चन्द्रमा के समान सुरम्य थे। मोतियों के तथा पुष्पों के प्रकारों से इस प्रकार के अनेक पदार्थों के द्वारा नगोत्तम ने मार्गों की शोभा की थी। फिर वह स्थित होकर विश्रव्यापी ईश्वर को देखते हुए विराजमान थे। फिर मदन को अनन्त में दीपित हुई सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवापी अप्सराओं वहाँ पर निजमान थी ॥१-७॥

शतकोट्योऽप्सरणां तु निर्ययुः समुखाश्च तम् ।
 हेमपात्रकरासक्ताः पद्मेन्दीवरहस्तकाः ॥८॥
 मणिपात्राणि पूर्णानि दूर्वातिद्वार्थकाङ्क्षितैः ।
 दधिरोचनमादाय व्रीहिभिश्चम्पकैर्यवैः ॥९॥
 हरिचन्दनलिप्ताङ्गा हरिचन्दनहस्तकाः ।
 विद्रुमाङ्कुरहस्ताश्च सथैवोत्पलशेखराः ॥१०॥
 × चूतमञ्जरिहस्ताश्च पारिजातकराः पराः ।
 स्वादूदकेन सपूर्णभृङ्गारकरपल्लवाः ॥११॥
 हावभावविलासिन्यो मदनातुरह्विताः ।
 मदनारिं प्रणमुस्ता गायमानास्त्रिलोचनम् ॥१२॥
 अथासौ भगवाञ्शूलो चाग्न्यर्षामी महेश्वरः ।
 त्रैलोक्यतिलके तस्मिन्क्षणादाविर्बभूव ह ॥१३॥
 ततो घनबहुविधैः पूजयामास पर्वतः ।
 स्तुत्वा च पूजयित्वा च ननाम च पुनः पुनः ॥१४॥

सैकड़ों करोड़ अप्सरायें उनके सामने में निकली थीं । उनके हाथों में सुवर्ण के पात्र थे । कुछ के हाथों में इन्दीवर पद्म थे । कुछ के हाथों में दूर्वा-तिद्वार्थ काङ्क्षितों से युक्त पूर्ण मणियों के पात्र थे । व्रीहि-चम्पक और यवों से युक्त दधिरोचन लेकर हरिचन्दन से लिप्त भङ्गी वाली थीं और कुछ अप्सराएँ हरिचन्दन को हाथों में ग्रहण किये हुए थी । उन अप्सराओं में कुछ विद्रुमों के अङ्कुर हाथों में ग्रहण किये हुए थी तथा कुछ उत्पलों को मस्तक पर धारण किये हुए थी ॥८-१०॥ कुछ अप्सराओं के हाथों में आस्र मञ्जरियाँ लगी हुई थीं और दूसरी अपने करों में पारिजात तिये हुए थीं । कुछ स्वादिष्ट उदक से पूर्ण भृङ्गारक अपने कर पल्लवों में ग्रहण किये हुए थी ॥११॥ ये सब अप्सराएँ कामदेव से अत्यन्त आनुर और विह्वल हो रही थी । ये सब गान, गीत, नृत्य, के, अति श्रम, के, निमित्त थक, के, पणाम कर रही थीं ॥१२॥ इससे अनन्तर भगवान् शूलो अग्न्यर्षामी महेश्वर त्रैलोक्य

तिलक उसमे क्षणभर म ही आविर्भूत होगये थे ॥१३॥ इसके उपरान्त बहुत प्रकार के धनो के द्वारा पत्रताराज ने भगवान् शिव की पूजा की थी । स्तुति करके और अभ्यञ्जन करके बारम्बार प्रणाम किया था । १४ ।

गोतंश्च विविधैर्वाक्यै प्रविवेज हस्तदा ।
भयाऽभवत्तदा बालो द्व्यष्टवर्षीकृति स्वयम् ॥१५॥
हेमाङ्गा भगवाञ्शम्बु विरीटी कुण्डली हर ।
सुरासुराश्च विप्रेन्द्रा दृष्ट्वा रूप पिनाकिन ॥१६॥
अवलोक्य मुष्पाऽन्योन्य जहमुस्ते मुदाऽन्विता ।
आतने हेमजे विशा नानारत्नेश्च भूषिते ॥१७॥
विवेश भगवाञ्शुली महादेवा जगत्पति ।
हरस्य दक्षिण वेश्वा त्रामभाग जनादन ॥१८॥
शैलादिरथत शगो बालरुश्च सुप्रता ।
रत्नैर्गंगोश्चरैर्देवै सिद्धैश्च मुनिभिस्तथा । १९॥
उपविष्टेषु सर्वेषु गन्धर्वाणां समन्तत ।
जगुर्गीत च हिन्दोल तुम्बुरुनारदादय ॥२०॥
मत्तमातङ्गगामिन्यो गेय तालनयान्वितम् ।
रम्भाद्यन्तरस सर्वा भिनवो ननृतुद्विजा ॥२१॥

उस समय म हर भगवान् ने विविध प्रकार के शीतों के द्वारा तथा वाक्यों के द्वारा प्रवेज किया था । उस समय म सोनहू वप की आकृति वाले भगवान् भव स्वयं बनने होगये थे ॥१५॥ भगवान् हर देव के समान अङ्ग वाले—विरीट की धारण किये हुए और कुण्डली को पहिने वाले होगये थे । हे विप्रेन्द्रो ! समस्त गुरु और असुरा ने भगवान् पिनारी के सुन्दर स्वरूप को देखा था । शिव के रूप को देखकर आपस म एक दूसरे की ओर मुग भर के आगद से युक्त होकर हँसने लग गये थे । हे विप्रो ! नाग प्रकार के रत्नों से विभूषित मुषण विमित आसा पर जगत् के स्वामी भगवान् शूरी महादेव जी विराजमान होगये

थे । हर के दक्षिण भाग में वेधा विराजमान हुए थे और वामभाग में जगदीश प्रभु समवस्थित हुए थे ॥१६-१८॥ हे सुव्रतो ! शम्भु भगवान् के आगे शैलादि विराजमान थे और कालरुद्र स्थित हुए थे । रुद्रो-गणो-ईश्वरो-देवो-सिद्धो और मुनियों के द्वारा सबके उपविष्ट हो जाने पर चारों ओर गन्धर्व आदि विराजमान हुए थे । नारद आदि ने तथा दुम्बर ने हिन्दोल गीत का गान किया था । इस ताल और लय से मुक्त भेय पर हे द्विजो ! मस्त गज के समान गमन करने वाली सब रम्भा आदि अप्सराएँ और किन्नरियाँ नृत्य करने लग गयी थी ॥१७-२१॥

वीणावल्लकिवेणुना मृदङ्गानां विशेषतः ।

ध्वनिभिर्मनसस्तुष्टिर्जज्ञे सुमनसा तदा ॥२२

अथ विदवेश्वरः शम्भुर्मूर्ध्नि नर्भास स्थितम् ।

प्रायञ्छगिदरिजायं तदाह्लादजनक मुदा ॥२३

अनेनालकृता देवि मम योग्या भविष्यसि ।

पितुर्दक्षस्य यः कोपः पूर्वजस्य वरानने ॥२४

प्रहृष्ट्यसि तमेवाऽऽशु भाव चैव तु तामसम् ।

ततः सा पार्वती देवी गृहीत्वाऽऽकाशमण्डलात् ॥२५

पितुः समीपमगमद्वस्त्राभरणमुत्तमम् ।

महता ह्युत्सवेनाऽऽशु भूषयित्वा शिवा नगः ॥२६

वर्षा राभरणं देवी दिव्यैर्वेत् सिंहवाहिनीम् ।

मेनोत्पङ्गुगता भूयश्चन्द्रलेखेय तोयदे ॥२७

दधती निर्वृता देवी वभौ तामर सेदया ।

अथ देव परिवृतो विष्णोर्वास्त्रिपुरान्तकः ॥२८

उद्य सगय मे वीणा-वल्लकी-वेणु और विशेष रूप से मृदङ्गों की ध्वनियों से सुन्दर मन वागों के धन की तुष्टि उत्पन्न हो गई थी ॥२२॥ हमारे पदों की विजय के ईश्वर भगवान् शम्भु ने नभ में स्थित मूर्ध्नि विरिञ्चा के लिये प्रदान किया था । वह आनन्द के साथ बहुत ही आह्लाद का उत्पन्न करने वाला था ॥२३॥ हे देवि ! इस भूषण से

समलङ्कृत होती हुई आप मेरे योग्य हो जाओगी । हे वरानने ! जो तुम्हारा पूर्वज पिता दक्ष प्रजापति था उसके ऊपर उत्पन्न हुए कोप को बहुत ही शीघ्र त्याग दोगी और जो तामस भाव उस पर समुत्पन्न हुआ था उसका भी त्याग कर दोगी ॥२४॥ इसके पश्चात् पार्वती देवी ने आकाश मण्डल से उसका ग्रहण किया था और फिर वह अपने पिता के समीप में गयी थी । पर्वतराज ने महान् उत्सव के साथ बहुत शीघ्र शिवादेवी को उत्तम वस्त्राभरणों से भूषित कर दिया था ॥२५॥२६॥ वह देवी वस्त्रों और आभरणों से जो कि परम दिव्य थे भूषित होकर सिंह गामिनी वह देवी मेना के गोद में स्थित हुई पुनः मेघ में चन्द्रमा की लेखा के ही तुल्य भासित हुई थी ॥२७॥ भूषणों को धारण करती हुई देवी परम निर्वृता हो गई थी और तामरस के तुल्य नेत्रों वाली अत्यन्त राजित हुई थी । इधर देवगणों से परिवृत त्रिपुरान्तक थे जिनमें विष्णु आदि सभी थे ॥२८॥

वभ्राम मुनिशार्दूलो क्रीडास्थानानि कृत्स्नशः ।

भगवन्देवदेवेश विश्वेशान्धकसदन ॥२९॥

प्रणम्य परया भक्त्या शैलादिरिमङ्गवीत् ॥३०॥

वेदीयमिन्द्रनीलाभा भाति विश्वभरा शिव ।

सेय जलमयी नाथ निमिता विश्वकर्मणा ॥३१॥

या चेय परमा रम्या नोयाना भ्रान्तिकारिणी ।

सेय भाति महादेव रत्नानामीदृशी प्रभा ॥३२॥

इदं च द्वारस्थानं दृश्यते लम्बकैर्वृतम् ।

कुड्यस्य रत्नविन्यासे लक्ष्यते द्वाररूपता ॥३३॥

इदं चित्ररथाकारं दृश्यते वनमुत्तमम् ।

प्रतिबिम्बं महादेव रत्नभूमेर्न सशय ॥३४॥

इदं च मन्दिराकारं सापानचयमडिष्ठम् ।

प्रतिबिम्बमिदं चैव दृश्यते नवमडिष्ठम् ॥३५॥

हे मुनि शार्दूलो ! फिर वे सम्पूर्ण क्रीडा के स्थानों में भ्रमण करने

लगे थे । शैलादि ने पराभक्ति से प्रणाम करके यह कहा था—हे भा-
वन् ! हे देवदेवेश्वर ! हे विश्व के स्वामिन् ! हे अन्धक के सूदन करने
वाले ! नन्दिकेश्वर ने कहा—हे शिव ! इन्द्रनील की आभा वाली यह
वेदी शोभित हो रही है जो कि विश्वम्भरा है । हे नाथ ! वहाँ यह वेदी
विश्वकर्मा के द्वारा जलमयी निर्मित की गयी है ॥२६-३१॥ जो यह
परम रम्या है वह जलो की भ्रान्ति समुत्पन्न कर देने वाली है । हे
महादेव जी ! रत्नों की ऐसी ही प्रभा है कि यह वेदी ऐसी ही शोभा
वाली प्रतीत होनी है सम्बको संयुत यह द्वार का संस्थान दिखाई देता
है । भित्ति के अन्दर जो रत्नों के विन्यास में द्वार रूपता लक्षित हुआ
करती है । यह चित्र रथ के आकार वाला उत्तम वन दिखाई दे रहा
है । हे महादेवी जी ! यह रत्नों की मृमि का प्रतिबिम्ब है—इसमें बुद्धि
भी सशय नहीं है । और यह जो मन्दिर के आकार वाला है वह सोपानों
के समुदाय से मण्डित है । यह भी गवमण्डित प्रतिबिम्ब ही दिखलाई
दे रहा है ॥३२-३५॥

या चेय सागराकारा दृश्यते सोयरूपिणी ।
एषाऽपि परमेशान रत्नभूमिर्जलोपिता ॥३६॥
यदिव गङ्गाभास मूर्तिद्रव्यैरिवोजितम् ।
क्रीडामण्डपमेतस्मिन्प्रदेशे देव तिष्ठति ॥३७॥
अम्बराभैर्महारत्नैर्वाह्यदेशे विनिर्मितम् ।
अनेकवाद्यसमुक्त रमणीय ययो हरः ॥३८॥
एव क्रीडति देवेशे सुरासुरमहोरगा ।
विद्याधरास्तथा यक्षा गन्धर्वाप्सरसादयः ॥३९॥
दीधिकासु तडागेषु नदीषु च ह्रदेषु च ।
क्रीडावापीषु ते रम्यैर्यन्त्रैर्नानाविधैर्भुषम् ॥४०॥
बभूवुर्देवताः सर्वाः क्रीडारतिषु लालसाः ।
अथ सक्रीडन् विश्वात्मा निवृत्तस्तत्प्रदेशतः ।
वेद्याः समीपमगमत्सुयमानो मुनीश्वरः ॥४१॥

प्राप्याऽऽरुरोह प्रसभ सुरेशस्तदिन्द्रनीलामलवेदिकान्तम् ।

सहस्रपत्रवकुलैश्च नामः कीण हि यत्काञ्चनपारिजाते ॥४२॥

जो यह सागर के से आकार वाली जलके स्वरूप वाली सामने दिखलाई दे रही है । हे परमेशान ! यह भी जलोपिता रत्नभूमि हो है ॥३६॥ जो यह गगन के आभास वाला भूति द्रव्यो से अजित के ही समान है । हे देव ! इस प्रदेश में क्रीडा का भण्डप ही म्यित है ॥३७॥ अम्बर के समान आभा वाले महा रत्नो से विरचित बाहु, दश में जो अनेक बाधों से समन्वित और परम रमणीय था वहाँ पर सम्भु गये थे । इस प्रकार से देवेश्वर के क्रीडा करने पर समस्त सुर-असुर-महोरग-विद्याधर-यक्ष गन्धर्व और अप्सरा आदि समस्त देवगण दीधिकाओ में-तडागो में नदियो में-हरी में और क्रीडा बापियो में अनेक प्रकार के मुन्दर यन्त्रो के द्वारा अत्यन्त ही क्रीडा की रति में सातसा वाले होगये थे । इसके अनन्तर विश्वात्मा उस प्रदेश में निवृत्त होगये थे और मुनीश्वरो के द्वारा स्तुति किये गये प्रभु वेदी के समीप में गये थे । उस इन्द्रनील के समान निर्मल वेदिका के समीप में सुरेश प्राप्त होकर बल पूर्वक आहूत हुए थे जो कि सहस्र पत्रो-वकुलो-नागो और काञ्चन पत्र जातो से समाकीर्ण था ॥३८-४२॥

तत प्रविष्टो हरिणाङ्गुचिह्न सरश्मिजालाकुलवेदिकान्तम् ।

विवेश सूर्यायुतसुप्रभासो बतो विरञ्ज्यादिसुरै समन्तात् ॥४३॥

अथोपविष्टं सवीक्ष्य विश्नेश पर्वतेश्वर ।

तस्य सस्थाप्य पुरतो ऽनेशीमघ्नवीदिदम् ॥४४॥

त्वमेवैक पर धाम अघ्ननारीश्वरस्तत ।

देवताना हितार्थाय जातो ह्यर्घतनु पृथक् ॥४५॥

दक्षस्य दुहिता देवी जगद्धात्री ह्युमा सती ।

वितिन्य च ततो दक्ष त्यक्त्वा देहं निज पुन ॥४६॥

तथैव पत्नी देवेश जाता मम सूता सती ।

तत श्रुत्वा गिरीन्द्रस्य वचस्त्रिभुवनेश्वर ।

प्रसन्नो वरद शम्भुरध्ववीत्पर्वतेश्वरम् ॥४७॥

जानाम्यह येन ममैव माया शक्तिर्वरेषा नजराजनिह ।

सत्यज्य देह तव घाम्नि जाता योगात्स्वय चारुशशाङ्कवक्त्रा ॥४८॥

आचारार्थं गिरिस्थेष्ट दत्ता गृह्णामि पार्वतीम् ।

अदत्ता यदि गृह्णामि तथा लोकेऽपि वर्तते (वर्तते वी जन) ॥४९॥

इसके पश्चात् हरिणाङ्क के चिह्न वाले भगवान् शिव जो अमृत (शश सहस्र) सूर्यों की प्रभा से युक्त-विरञ्चि आदि सूरों से चारों ओर परिवृत ये प्रभु शिव किरणों के जाल से समाकुल उस वेदी के समीप में प्रविष्ट हुए थे ॥४८॥ इसके अनन्तर पर्वतो के स्वामी हिमवान् ने विश्वेश्वर को वेदी के समीप में प्रविष्ट हुए देखकर उनके आगे देवीशी के संस्थापित करके उस समय में यह कहा था ॥४९॥ हिमवान् ने कहा—आप ही एक परमेश्वर और अर्ध सारीश्वर हैं। देवताओं के हित करने के लिये ही आपने पृथक् शरीर धारण किया है ॥४९॥ यह वक्ष प्रजापति की पुत्री जगत् की धानी सती उमा है। उसने अपने पिता वक्ष को विनिन्दित करके और अपने देह का त्याग करके यह है देवेश्वर। यह आपकी ही पत्नी फिर सती मेरी पुत्री होकर समुत्पन्न हुई ॥। इसके उपरान्त तीनों भुवनों के ईश्वर प्रभु शिव ने गिरीन्द्र हिमवान् के इस वचन का श्रवण करके वन्दता भगवान् शम्भु परम प्रसन्न हुए थे और पर्वतेश्वर से बोले—॥४७॥ ईश्वर ने कहा—हे नगराज सिंह। मैं यह सब कुछ भलीभाँति जानता हूँ कि यह मेरी बरा शक्ति माया है जिसने अपने देह का त्याग किया था और अब आपके यहाँ समुत्पन्न हुई है। और चारु शशाङ्कवक्त्र के द्वारा स्वयं ही योग से प्रसूत हुई हैं ॥४८॥ हे गिरि श्रेष्ठ। इस समय में मैं प्रदान की हुई पार्वती को केवल आचार के लिये ही ग्रहण कर रहा हूँ अर्थात् यह विवाह का कृत्य सब लोकाचार की रक्षा के लिये ही हो रहा है। यदि बिना दान किये हुए श्री इस का ग्रहण करता हूँ तो लोक के लोग भी क्रिश्मान हैं उनके आचार की रक्षा नहीं हो सकती ॥४९॥

अथ दिव्योदकं पूर्णमादाय कलशं गिरि ।

परिपूर्णस्य नित्यस्य नित्यानुग्रहकारिण ॥५०॥

प्रक्षाल्य पादौ शिरसा प्रणम्य भृङ्गारमादाय स शैलराजः ।
मुमोच तोय भवपाणिपद्मे दत्तेति दत्तेति तदा प्रजल्पन् ॥५१॥
ततो मञ्जलनिर्घोषः समभूक्षिदिवीकसाम् ।
वीणावेणुमृदङ्गानां काहलानां च निस्वनः ॥५२॥
सा हारकण्ठी कटिसूत्रदामा मुभ्रूलता चारुविलोलनेत्रा ।
मेरायंयैवोपरि चन्द्रलेखा तथा वमो पर्वतराजपुत्री ॥५३॥
अथ वेद्या गतो ब्रह्मा विश्वमाया स्मरारणिम् ।
ददर्शोदकपात्रेण विभावसुपुरस्थितः ॥५४॥
माहेश्वरी काममयी दृष्ट्वा तां तु पितामहः ।
अक्षरत्सहसा शुक्र भग्नकुम्भादिवोदकम् ॥५५॥
पादेन तन्ममर्दाऽऽशु शुक्र तत्पद्मसंभवः ।
पद्मजोऽपि महातेजा देवदेवस्य पश्यतः ॥५६॥

इसके अनन्तर दिव्य जल से पूर्ण कलश को हिमवान् ने लिया था और निश्चय ही परिपूर्ण और अनुपम करने वाले प्रभु के चरणों को धोकर शिर के बल प्रणाम करके फिर शैलराज ने भृङ्गार को ग्रहण किया था । भगवान् शिव के हस्त कमल में "दत्ता-दत्ता" अर्थात् प्रदान कर रही है ऐसा कहते हुए जल छोड़ दिया था ॥५०॥५१॥ इसके पश्चात् देवगणों में मञ्जल सूचक निर्घोष हुआ था तथा वीणा-वेणु-मृदङ्ग और बहलो की ध्वनि भी हुई थी ॥५२॥ वह देवी कण्ठ में हार धारण करने वाली-कटि में सूत्रशाम पहिने हुए-सुन्दर भृकुटियों से सम्पन्न-चारु और विशाल नेत्रों वाली पर्वतराज की पुत्री ऐसी शोभित हुई थी जैसे मेरु पर्वत पर चन्द्रमा की लेखा शोभित हुमा करती है ॥५३॥ इसके उपरान्त वेदीश्वर ब्रह्माजी गये थे और विभावसु के आगे स्थित उनमें विश्वमाया को तथा स्मरारणि को उदक पात्र से युक्त देखा था ॥५४॥ पितामह ने उन काममयी माहेश्वरी देवी का दर्शन किया था तो उसी समय में छूटे हुए कुम्भ से जल की ही भांति सहसा उनका शुक्र शरित होगया था । पद्म सम्भव ब्रह्माजी ने उस शरित शुक्र

को पाद से ही मर्दित कर दिया था । देवों के देव यह सब देख ही रहे थे कि महातेज वाले पद्मज क्या कर रहे थे ॥५५॥५६॥

मैवं मर्देति तं दृष्ट्वा त्रिपुरारिः पितामहम् ।

कुरुष्वे (जुहुधी) तीति पोवाच भगवाग्नीललोहितः ॥५७

अमोघं तत्तदा विप्रोः शुक्रमग्नौ प्रजापतिः ।

जुहोति व (अजुहोद्ध) चनाच्छंभोवमिनाऽऽदाय पाणिना ॥५८

हवनाच्च ततः प्राप्ताः सवितारं वियद्धतम् ।

तेजोमयाश्च ते सर्वे तपोनिष्ठाः सभन्ततः ॥५९

अष्टाशीतिः सहस्राणि मुनयस्तूष्र्वरेमसः ।

माने त्वङ्ग छमात्रास्तु जाता ह्यथ मुवर्चसः ॥६०

बभूवुस्ते महात्मानः पतङ्गसहचारिणः ।

निस्पृहा रश्मिपाः सर्वे सर्वे ज्वलनसंनिभा ॥६१

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च मुनयस्तथा ।

पिशाचा दानवा दैत्याः किन्नराश्च महोरगाः ॥६२

विद्याधराश्चाप्सरसस्तथा चान्ये सुरासुराः ।

प्रहृष्टाः सर्वे एवैते पार्वत्या हरसगमात् ॥६३

त्रिपुरारि प्रभु ने पिता मह को देखकर उनसे कहा था इस प्रकार से मर्दन मत करो । भगवान् नील लोहित ने कहा था कि हवन करो ॥५७॥ उस समय उस अमोघ शुक को हे विप्रो ! प्रजापति न अग्नि मे भगवान् शम्भु के वचन से बाँये हाथ से लेकर उसका हवन कर दिया था ॥५८॥ इसके उपरान्त वे सब तेजो मय—तपोनिष्ठ चारों ओर से आकाश मे स्थित सविता को प्राप्त हो गये थे ॥५९॥ इसके अनन्तर अष्टासी हजार ऊर्ध्वरेता मूर्तिवा जो परिमाण मे अङ्गुष्ठ के बराबर सुन्दर वर्चस वाली समुत्पन्न हो गयी थी ॥६०॥ वे सब महान् आत्मा वाले सूर्य के सहचारी हो गये थे जो निस्पृह और सब रश्मियों के पान करने वाले और अग्नि के ही सदृश थे ॥६१॥ इसके पश्चात् समस्त देव-गन्धर्व-सिद्ध-मुनिगण-पिशाच-दैत्य-दानव-किन्नर-महोरग-विद्याधर-अप्सरा

गण और अन्य सुरासुर बहुत ही प्रसन्न होते हुए पार्वती का भगवान् हर के साथ सङ्गम होने से आनन्द में निमग्न हो गये थे ॥६२॥६३॥

मुमोच वृष्टिं क्रनुराट्मुतुष्ट पुष्परनेकैर्भ्रमरावुलैश्च ।

वाद्यं विचित्रं वंरशङ्खनादैः सुगीतगानैर्वरमङ्गलैश्च ॥६४॥

वीणारवैर्दुन्दुभिर्वेणुनादैः समन्ततः कर्णमुख प्रजज्ञे ।

आनृत्यतीभिः सुरमुन्दरोभिर्जङ्गीयतीभिर्वरकिनरीभिः ॥६५॥

दैत्याङ्गनाभिश्च वसोदतीभिः कामायतेऽस्तीव तदुत्सव च(धश्च)॥

काञ्चीरवेणाथ नितम्बिनीना मनोभिरामेण च नूपुराणाम् ॥६६॥

सामा स्मितेनाथ मुनीन्द्रवर्या वभूव कामानलदीपचर्या ।

होमावसाने मधुपर्कयुक्त देवाय तस्मै मधुभाजन च ॥६७॥

ततो निवेद्य प्रमथाधिपाय चत्वार तुष्टि परमा विरञ्चि ॥६८॥

अथ देवेषु विश्वेशो वरदोऽभूद्विजोत्तमा ।

वराश्च विविधान्दत्त्वा ग्रहादिभ्यो महेश्वर ॥६९॥

व्यसर्जयत्ततः सर्वान्स्थावराञ्छङ्गमास्तथा ।

विसर्जिता प्रणम्येश प्रीति ते परमा गता ॥७०॥

ऋतुराज ने गरम सन्तुष्ट होकर भ्रमरो से समावृत्त अनेक प्रकार के पुष्पो की घर्षा की थी । विचित्र वाद्यो से—नर शङ्खों के नाद से—सुगीत मान श्रुष्ट मङ्गल गानों से—वीणा की ध्वनियों से—दुन्दुभि के तथा वेणु के शब्दों से चारों ओर वानों को सुख समुत्पन्न हुआ था । चारों ओर नृत्य करने वाली सुरों की मुन्दरियों से और गान करने वाली किन्नारियों से और वसोदती दैत्यों की अङ्गनाओं से वह उत्सव अत्यन्त ही कामायमान हो गया था । नितम्बनियों की वाञ्छी के शब्द से तथा नूपुरों के मनोभिराम शब्द से तथा उन अङ्गनाओं के मन्द मुखान से बड़े बड़े मुनीन्द्र गण भी कामाग्नि के प्रदीप्त घर्षा वाले हो गये थे । होम के अन्त में ग्रहाजी ने मधुपर्क से युक्त मधु भाजन को उन देवेश्वर को प्रमथों के अधिप के लिये निवेदन करके परमाधिक तुष्टि को प्राप्त किया था ॥६४॥६५॥६६॥६७॥६८॥ हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर

देवों ने ऊार विश्वेश वरदान देते बाने हो गये थे । महेश्वर ने ब्रह्मा आदि देवों को अनेक वरदान देकर वहाँ में बिदा करा दिया था । वे भी सब ईश्वर को प्रणाम करने परमाधिक प्रीति को प्राप्त हुए थे ॥६६॥७०॥

एव स क्षेपतो विप्रा विवाहो गिरिजापते ।

कथितो रविणा पूर्वं यथावत्समुदीरित ॥७१॥

शृणोति श्रद्धया यस्तु पठेद्वा प्रयतात्मवान् ।

सर्वान्कामानवाप्नोति वर्षादर्वाङ्मनसशय ॥७२॥

सर्वं पापविनिर्मुक्तस्तेजस्वी प्रियदर्शन ।

जीवेद्विपंशत साग्र गच्छेद्ब्रह्मपद तत ॥७३॥

हे विप्रो ! इस प्रकार से परम सज्जन से गिरिजा ने पति का विवाह वर्णन कह दिया है जैसा कि पहिले रवि देव ने कृतका वर्णन किया था ॥७१॥ जो इस भगवान् शङ्कर के विवाह का वर्णन प्रमत्त आत्मा वाला ब्रह्मा से श्रवण किया करता है या पढ़ता है वह एक वर्ष से ही पूर्ण अपने मन की सब कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है—इसमें तनिक भी मग्य नहीं है ॥७२॥ वह मनुष्य समस्त पापों से विनियुक्त होकर परम तेजस्वी—प्रिय दर्शन सौ वर्ष तक इस ससार में जीवित रहता है और अन्त में ब्रह्मपद को प्राप्त हो जाता है ॥७३॥

॥ साम्ब कीडादि वर्णन ॥

विवाह्याद्रिसुता शम्भुयंघो कैलासपर्वतम् ।

क्रीडा वै वर्षसाहस्रीमकरोत्तत्र श कर ॥१॥

गणैर्नानाविधैश्च वसिष्ठास्यै शरभाननै ।

कैश्चिद्ब्रह्माघ्रमुखैर्भीमै कैश्चिन्दध्रमुखैरपि ॥२॥

कैश्चिन्दमुखैरन्यै कैश्चिन्मृगमुखैरपि ।

कैश्चिदुष्टमुखैर्दीर्घै कैश्चिद्द्वयमुखैरपि ॥३॥

कैश्चिच्चित्रमुरीरन्यो कैश्चिद्वृकमुनेरपि ।

मूपकाम्यैस्तथा=चान्यैर्मार्जारवदनैरपि ॥४

सर्पास्यैर्नकुलास्यैश्च जम्बुकास्यैस्तथाऽपरैः ।

शिथुमारमुत्तैश्चान्यैश्चक्षववत्रैस्तथाऽपरैः ॥५

मयूरवदनैरन्यैर्वक्त्रैस्तथाऽपरैः ।

शास्त्रामृगमुत्तैश्चान्यैः खरास्यैश्च तथाऽपरैः ॥६

अन्यैरसस्यैः प्रमथैर्जंरामरणवर्जितैः ।

नित्यतृप्तोन्निरातङ्कः कालसहरणक्षमैः ॥७

श्री सूत जी ने कहा—भगवान् शम्भु ने अद्रि की पुत्री के साथ विवाह करके वे फिर अपने कैलास पर्वत पर चले गये थे । वहाँ पर नाना सहस्र वर्षों तक क्रीडा करते रहे थे ॥१॥ वहाँ पर नाना प्रकार के स्वरूप वाले गणों के साथ भगवान् शम्भु क्रीडा किया करते थे । कुछ गण सिंह के समान मुखों वाले थे—कुछ शरभ के तुल्य आननों वाले थे । कुछ ऐम गण भी थे जिनके मुख व्याघ्र के तुल्य थे । कुछ के मुख बहुत भयानक थे तथा मृध्र के समान मुख थे—कुछ ऊट के से मुखों वाले थे—कुछ के मुख बहुत बड़े तथा अश्वों के समान थे—कुछ विचित्र मुखों वाले और अन्य वृत्ता के तुल्य मुखों वाले थे—भूपिकों के समान मुखों वाले—मार्जार जैसे वदनो वाले—सर्पास्थि और नकुल के तुल्य मुखों वाले—जम्बुकों के सदृश आननों वाले—दूसरे शिथुमार के समान मुखों वाले—अन्य रीछों के सदृश आननों वाले गण थे—मोर के समान मुखों वाले—तथा वगुलाओं के सदृश मुखों वाले—बन्दरों जैसे मुखों वाले—गधे के समान मुख से युक्त ऐसे बहुत से गण थे तथा अन्य असंख्य प्रमथ थे जो जरा मरण से रहित थे—योग्ण नित्य तृप्त—निरातङ्क और काल का भी सहार करने में समर्थ थे ॥२॥ से ॥७॥ तक

सहस्रकोटिसस्याकैः स्वच्छन्दगतिचारिभिः ।

क्रीडा विधाय भगवान्कैलासे पर्वतोत्तमे ॥८

तपसा महता शभुरनुगृह्य च मन्दरम् ।

कैलासं स परित्यज्य मन्वरे चारुक्न्दरे ॥९

तत्रापि रममाणस्य गते वर्षं सहस्रके ।
 देवताना हितार्थाय प्रकृत्या सह शूलभृत् ॥१०॥
 प्रक्रीडतीह विश्वात्मा कामासक्तश्च सर्वथा ।
 प्रार्थितोऽहं सुरैः पूर्वं तारकस्य बधोप्सया ॥११॥
 मद्रेतसः समुत्पन्नस्तारकं स हनिष्यति ।
 इति मत्वा मपादेवे रममाणे सहोमगा ॥१२॥
 उत्पाताश्च महाघोराः संप्रवृत्ताः सुदारुणाः ।
 रुधिराम्भीनि वर्षन्ति नदन्तो मेघसकुलाः ॥१३॥
 वायव्यश्च महानेगा पर्वाताश्चालयन्ति ते ।
 विमानानि सुराणां च निपेतुर्गमुघातले ॥१४॥

ऐसे गणों की सहस्रों करोड़ मर्या थी और ये सब स्वच्छन्द गति के चरण करने वाले थे । इन सबके साथ भगवान् शम्भु पर्वतो में उत्तम कैलास पर क्रीड़ा किया करते थे । ८। भिर भगवान् शम्भु ने महान् तप के द्वारा प्रसन्न होकर मन्दर पर्वत पर अनुग्रह किया था और कैलास का त्याग करके सुन्दर बन्दराओं वाले मन्तप गिरि पर जाकर क्रीड़ा करने लग गये थे । वहाँ पर भी रमण करते हुए भगवान् शङ्कर को एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे । यह इस प्रकार की क्रीड़ा शूली प्रभु ने प्रकृति के साथ देवों के ही हित सम्पादन करने के लिये की थी । ९। १०। यहाँ पर विश्वात्मा सर्वथा काम से आसक्त होकर ही क्रीड़ा कर रहे थे क्योंकि मैं तारक बध की इच्छा से सुरों के द्वारा प्रार्थित किया गया था । ११। क्योंकि मेरे वीर्य से जो समुत्पन्न होगा वही तारक दैत्य का हनन करेगा । यह मानकर ही उमादेवी के साथ रममाण महादेवजी के होने पर महान् घोर एवं परम दारुण उत्पात संप्रवृत्त हो गये थे । साकुल हुए मेघ गर्जन करते हुए रुधिर और अस्थियों की वृष्टि करने लगे थे । उस समय में वायु भी महान् वेग वाली चलने लगी थी जो पर्वतों को भी चालित किया करते हैं । सुरगणों के विमान वमुघा तल में गिर गये थे । १२। १३। १४।

उल्काभिर्गगन व्याप्तं पतन्तीभिर्द्विजोत्तमा ।
 केतवश्चोदिता सर्वे जृम्भन्त इव पावका ॥१५॥
 दिग्दाहाश्च महाघोरा दावाग्निरिव सक्षये ।
 मृत्युकाले यथा जन्तुर्नैव सौख्यमवाप्नुयात् ॥१६॥
 जगत्प्रमिदं कृत्स्नं न लभेत तथा सुखम् ।
 न वेदा पठितास्तस्मिन् विप्रा जजपुर्जपम् ॥१७॥
 पार्वत्या कम्पमानाया कम्पमाने च शकरे ।
 त्रैलोक्यमभवन्नूनं कम्पमानं भयातुरम् ॥१८॥
 कालाग्निकम्पितो देवो विरश्चिर्मुनिभि सह ।
 चक्रायुधोऽपि चात्यर्थमिन्द्रार्घ्यं परिवारित ॥१९॥
 ये केचिद्देवगन्धर्वा सिद्धा गगनचारिण ।
 विद्याधराश्च यक्षाश्च संप्राप्ताश्च वभु धराम् ॥२०॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तं शक्रं देवर्षिमत्तम ।
 यथावन्मधुपर्वाद्यं शक्रस्तमभ्यपूजयत् ॥२१॥

ह द्विजोत्तमो ! गिरने वाली उल्काआ मे सम्पूर्ण गगन व्याप्त हो गया था । तब वेनु उड़िन हा गर ये जा कि जुम्भा सेने हुए पावको के ही समान थे ।१५। साथ ये समय मे हाहाग्नि व ही तुल्य महान् घोर दिग्दाह होने लग गये थे । जिस प्रकार मे मृत्यु के समय मे जीव सुख प्राप्त नहीं किया करता है ।१६। य तीना भुवन सम्पूर्ण सुख प्राप्त नहीं किया करता था वह ऐसा समय समाप्त हो गया था कि उमम न तो वेदा वा ही पाठ किया जाता था और न विप्रगण जाप किया करते थे ।१७। पार्वती देवी के कम्पमान होने पर तथा प्रभु शङ्कर के प्रवृत्त हो जाा पर पूरा त्रैलोक्य निद्रित रूप मे भयातुर और प्रवृत्त हो उठा था ।१८। देव विरश्चि मुनिया के साथ कालाग्नि से वृम्भित हो गये थे—मुद्गलन चक्र को धारण करा यान विष्णु भी इन्द्र आदि व माघ परिवर्ग होकर अत्यधिक कम्पमान हो गये थे ।१९। जो कुछ देव गन्धर्व गिद्ध गगन मे सम्बरण करने वाले थे और ये सब

विद्याधर और यक्ष वसुन्धरा पर आकर प्राप्त हो गये थे । २०। इसी बीच में देवर्षिया में परम श्रेष्ठ नारद मुनि इन्द्र के समीप में समागत हुए थे । इन्द्रदेव ने जब तक भृगुपर्क आदि के द्वारा उनका अभ्यर्चन किया था । २१।

अब्रवीद्देवराजस्तमपविष्ट महामुनिम् ।
 त्रिकालदर्शिन शान्तमात्मनिष्ठ तपोनिधिम् ॥२२॥
 उत्पाताश्च महाधीरा सप्रवृत्ता सुदारुणा ।
 कारण वद मे सर्व शान्तिश्चैव यथा भवेत् ॥२३॥
 उमया सह विश्वेश पर ज्योतिर्ममश्वर ।
 अहर्निशमविश्रान्त युक्त एव प्रवर्तते ॥२४॥
 तस्माद्धेतो प्रवर्तन्त उत्पाता वृत्रहन्किल ।
 विघ्न तस्य प्रकर्तव्य यदीच्छसि पर सुखम् । २५।
 उमागर्भसमुत्पन्न सर्गस्मादधिको हि स ।
 कथ धारयितु शक्ता ब्रह्माद्या ससुरासुरा । २६।
 जगन्ममिद कृतस्त्वं धरणी धारयिष्यति ।
 नापत्यधारणो शक्ता सजात शिवयो खलु । २७।
 नारदस्य वच श्रुत्वा शक्रो विस्मयता गत ।
 तदा चिन्तार्णवे मग्नो देवो सह पुरंदर । २८।
 पङ्क्ये गौरिव सीदत्सु देवेष्वथ जनार्दन ।
 उवाच दलक्षण्या वाचा देवाना हितकाम्यया । २९।

जब देवर्षि अपने आसन पर समापित होकर उपविष्ट हो गये थे तो देवराज ने उन महामुनि स जो त्रिकाल की बातें जानने वाले थे तथा परम शान्त—आत्मनिष्ठ और तपो निधि थे । २२। शक्रदेव ने कहा—
 मे महामुने ! परम कारण महान् धीर उत्पात धारो ओर प्रवृत्त हो गये हैं । इन सबका क्या कारण है ? उसे आप बतनाइय जिससे कि यह सब शांत होवे और हम सबको शान्ति की प्राप्ति हो सके । २३।
 श्री नारदजी ने कहा—पर ज्योति महेश्वर विश्वेश उमा के साथ अवि-

श्रान्त रूप से अहर्निश युक्त होकर ही प्रवृत्त होते रहे हैं । ॥२४॥
हे वृत्रहन् ! उसी हेतु से ये सब उत्पात प्रवृत्त हो रहे हैं । उसका विघ्न
करना चाहिए यदि परम सुख की इच्छा करते हो । २५। उमा के गर्भ से
समुत्पन्न जो है वह सबसे अधिक है । ब्रह्मा आदि सुरासुर कैसे धारण
करने के लिए समर्थ हो सकते हैं । धरणी इस तीनों जगतों के सम्पूर्ण
समूह को धारण करेगी । शिव और शिवा इन दोनों के अपन्य के
धारण करने से सज्जात को शक्त नहीं है । श्री नारदजी के इस वचन को
सुनकर महेन्द्र विस्मय को प्राप्त हो गये थे । इसने अनन्तर पुरन्दर
देवों के साथ चिन्ता के सागर में निमग्न हो गये थे । २६। २७। २८।
इसके अनन्तर पद्म में गौ के ही समान देवों के अवसग्न होने पर
भगवान् जनार्दन ने देवों की हिन की कामना से परम इच्छा वाणी से
पढ़ा था । २९।

शृणुष्व देवता सर्वा कामासक्तो न शङ्कर ।

युष्माक हितवामाय भोगयुक्तोऽभवच्छिव । ३०।

स्वतन्त्रशक्तिविश्वात्मा जितकाम स्वभावत ।

सपूर्णकामः स विभु कथ वामेन वाध्यते ॥३१॥

तद्रैतसा समुत्पन्नस्तारक स वधिष्यति ।

एतस्मात्तारणाद्देवो देव्या युक्तोऽभवत्सुरा ॥३२॥

किंतु तत्केवलोत्पन्न सेन्द्रैरपि सुरासुरै ।

तेजोधारयितु तस्य न शक्यमिति निश्चितम् ॥३३॥

इद यत्कार्यमुत्पन्न व्याधिरूप दिवौनसाम् ।

उपेक्षित न सदेहो हन्यान्नुन जगत्रयम् ॥३४॥

यदि तत्केवलो जातो भविष्यति सुराम्स्तादा ।

असह्यो दुर्धरो घोर इति तथ्य न सगय ॥३५॥

भगवान् श्री विष्णु ने कहा—हे समस्त देवों के समुदायो ! आप
श्रवण कीजिए—भगवान् शङ्कर वाम में गमासक्त नहीं होते हैं ।
भगवान् शिव आपने साथ सोचो वे हित की कामना के लिये भोग में
युक्त हुए थे । ३०। स्वतन्त्र शक्ति वाले विश्वात्मा स्वभाव से ही काम

को जीतने वाले हैं। वह विष्णु सम्पूर्ण काम हैं वे काम के द्वारा वैसे वाधित किये जा सकते हैं। ३१। उनके वीर्य से जो समुत्पन्न होगा वही तारक का वध करेगा। हे सुरगणो! इसी कारण से देवेश्वर देवी के साथ समुत्त हुए हैं। ३२। किन्तु उनसे ही केवल उत्पन्न वो इन्द्र के सहित सुरामुरो के द्वारा भी उसका तेज धारण नहीं किया जा सकता है—यह सर्वथा निश्चित है। ३३। यह जो व्याधिरूप जो देवों का कार्य समुत्पन्न हो गया है वह उपेक्षित नहीं है—इसमें कोई सन्देह भी नहीं है यह निश्चय ही जगत्त्रय का हनन कर देगा। ३४। यदि वह केवल ही समुत्पन्न होगा तो हे सुरो! उस समय में वह अमहा—दुर्धर—घोर होगा—यह तथ्य है और इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ३५।

स एव विष्णुर्वलवानिन्द्रश्चैव प्रजापति ।

स चाऽऽदित्यः कुवेरश्च ईशानो वरुणस्तथा । ३६।

स यम स च सोमश्च स वायु स्वर्गवासिन ।

स एव सर्वं भविता भवद्भिश्चैदुपोक्षित । ३७।

दृश्यतेऽग्राप्युपायश्च कार्यस्यास्य सुरोत्तमा ।

यस्मादग्निमुखा यूय तस्मादग्निर्हि नान्यथा । ३८।

यदुग्र गहन घोरमप्रधृष्यमगोचरम् ।

हृदि यद्भवता कार्यमग्निस्तत्साधयिष्यति । ३९।

एवमुक्त्वाऽथ विश्वादि शङ्खचक्रगदाधर ।

अब्रवीत् ऋणवर्त्मनि देवाना सदसि स्थितम् । ४०।

शृणु मद्बचन बह्वे देवाना यदुपस्थितम् ।

त्वया तत्साधनीय हि हितार्थं त्रिदिवीकसाम् । ४१।

योऽसौ देव पर ज्योतिर्नीलश्रीवो विलोहित ।

रमते चोमया साधं चराचरपति शिव । ४२।

वह ही बलवान् विष्णु देव हैं और वही इन्द्र और प्रजापति है। वह आदित्य हैं—वही कुवेर हैं वही ईशान और वरुण है। ३६॥ वह यम—वह सोम वह वायु और स्वर्गवासी हैं। वह ही सब होगा। यदि

आप लोगों के द्वारा उपेक्षित है ॥३७॥ हे सुरोत्तमो ! यहाँ पर भी उपाय इस कार्य का दिखाई देता है । जिससे तुम लोग अग्नि मुख हैं इससे अग्नि ही है अन्यथा नहीं है ॥३८॥ जो आप लोगों के हृदय में अत्यन्त उग्र—गहन—घोर अप्रघृष्य और अगोचर है उस कार्य को अग्नि मिट्ट करोगे ॥३९॥ इस तरह से कह कर विश्व के आदि—शस्त्र, चक्र और यदा के धारण करने वाले देवों के सभा में स्थित कृष्णवर्मा से बोले ॥४०॥ श्री विष्णु भगवान् ने कहा—हे बह्ने ! आप मेरे वचन का श्रवण करो जो कि कार्य इस समय में देवों का उपस्थित हुआ है । देवों के हित के लिये वह आपको सापित करना ही चाहिये । जो यह देव परम् ज्योति—नीलम्रोव—खिलोहित है वे चराचर पति शिव उमा देवी के साथ रमण कर रहे हैं ॥४१॥४२॥

भयं तस्मात्समुत्पन्नं कारणाद्धि दिवौकसाम् ।
तस्माद्धिताय गच्छ त्व महादेवम्य सनिधौ ॥४३॥
मुक्त त्वमेव सर्वेषां कार्याणां चैव साधक ।
इत्येवं वचन श्रुत्वा पावक केशवात्तदा ॥
उवाचेद मुनिश्रेष्ठा श्रीवत्माद्भितवदासम् ॥४४॥
यदुक्तं भवता देव किं त्वयुक्तं सनातन ।
महेशस्य रहस्यस्य प्रवेष्टुं नैव साधतम् ॥४५॥
ध्यानयुक्तो जनः कश्चिन्मन्त्रभोजनतत्पर ।
रहः स्योऽयं च दानस्थरतदयुक्तं प्रवेशनम् ॥४६॥
जाप्योपहारयुक्तो वा होमयुक्तोऽन्यथा भवेत् ।
अर्चनाभिरत कश्चित्तदयुक्तं प्रवेशनम् ॥४७॥
प्राकृतम्यापि देवेश रहस्यस्य रमापते ।
तस्मिन्गाने सुरेशान गहितं तु प्रवेशनम् ॥४८॥
किं पुनर्भगवान्भीमस्तिग्मरश्मिमहेश्वर-
देवानां च हिनापि प्रकृष्या सह गतः ॥४९॥

उस कारण से देवों को भय समुत्पन्न हो गया है । अतएव देवगण के हित के लिये आप इस समय में महादेव जी की सन्निधि में गमन कीजिए ॥४३॥ आप ही सब के मुख हैं और देवों के कार्य के साधक भी हैं । उस समय में इस वचन को पावक ने वेशभूषण के मुख से श्रवण किया था । हे मुनि श्रेष्ठो ! पावक देव ने शीवरात्र के अङ्क से विहृत वरुण स्थल वाले समुद्र से यह वचन कहा था ॥४४॥ अग्नि देव ने कहा— हे देव ! हे सनातन ! आपने जो भी कुछ कहा है वह अयुक्त है । रश्मि में अर्थात् बिल्कुल एकान्त में स्थिति महेश के समीप में प्रवेश करना उचित नहीं है ॥४५॥ कोई भी जन ध्यान में युक्त हो अथवा मन्त्र, जाप और भोजन में परायण—एकान्त स्थल में स्थित हो और दान में समवस्थित हो तब उसके समीप में प्रवेश करना युक्त नहीं होता है ॥४६॥ जाप्योपहार से कोई युक्त हो अथवा होम के कार्य में व्यस्त हो तथा देव की अर्चना करने में निरत हो तो उसके समीप में प्रवेश करना उचित नहीं होता है ॥४७॥ कोई साधारण मनुष्य भी जब एकान्त सीला में नरत हो तो देव रमायते ! उसके पास जाना अनुचित ही हुआ करना है । हे सुरेशान ! उस समय में प्रवेश करना तो उचित नहीं है और गृहित भी माना जाता है ॥४८॥ फिर भगवान् के विषय में तो कहने की बात ही क्या है । भगवान् तो बहुत ही भीम है—स्तिग्म राक्षसों वाले है । वे महेश्वर तो देवों के हिन सम्पादन करने के लिये प्रकृति के साथ सङ्गत हुए हैं ॥४९॥

नाह सख विशे नून विभेमि मधुमूदन ।

आगत मा समालोक्य क्षणाञ्छुर्भुङ्निष्यति ।५०।

जुगुप्सितमिदं कार्यमिति कष्टं भयावहम् ।

विवस्त्रा जननी देवी कथं द्रक्ष्यामि केशव ।५१।

किं वक्ष्यति प्रविष्टस्य वक्ष्यामि किमहं विभो ।

जल्पयिष्यति मा देवो घिङ्मूर्खोऽयमिति घ्रुवम् ।५२।

यद्भाष्यं तदभवस्तद्य न अरोमिह च निन्दितम् ।

अग्निना चैवमुक्तरतु विष्णुर्दानवसूदनः ।५३।

भयदं मोहदं श्रुत्वा वाक्ययं हृदयकम्पनम् ।

उवाच भगवान्विष्णुः पुनर्वाह्निमिति स्तुवन् ।५४।

त्रैलोक्यरक्षणार्थाय शक्रादीनां च सन्निधौ ।५५।

हे मधुसूदन ! वहाँ पर मे निश्चय ही प्रवेश नहीं कर सकता हूँ—
मैं तो डरता हूँ । मुझको आया हुआ यदि शिवजी ने देख लिया तो एक
ही क्षण में शम्भु मेरा हनन कर देंगे ।५०। यह कार्य बहुत ही निन्दित है
अतएव कष्टप्रद है, भया वह भी है । हे केशव ! मैं आप यह तो विचारि-
ए नग्न हुई जननी को कैसे देखूँगा ।५१। प्रविष्ट हुए मुझसे वे क्या
कहेगी और हे विमो ! मैं फिर क्या उत्तर दूँगा । देव मुझसे यही
कहेगे—घिनकार है—तू बड़ा निश्चय मूर्ख है ।५२। जो भी कुछ होन-
हार हो वह होवे, इस समय मैं बुरा काम नहीं करता हूँ । अग्नि देव के
द्वारा दानवसूदन विष्णुभगवान् अब इस प्रकार से कहा गया तो भय
देने वाला और मोह देने वाले वाक्य को सुनकर हृदय में कम्पन होता
है । भगवान् विष्णु ने पुनः वह्नि की स्तुति करते हुए कहा था जो त्रैलोक्य
की रक्षा करने के लिए इन्द्र आदि देवों की सन्निधि में ही कहा था ।
॥५३॥५४॥५५॥

यदुक्तं भवता बह्वे सत्यमेतन्न सशय ।

आत्महेतोर्विरुद्धं स्यात्परार्थं नैव दुष्यति ॥५६॥

प्रदिष्टो देवदेवेन सहारार्थं कर्षदिना ।

प्रविश त्वमणो रूपमादाय न हि दुष्यसि ।५७।

प्रस्तुताप्रस्तुत नास्ति तेजोमूर्तेस्तवानध ।

सर्वदा सर्वंगस्त्व हि न क्वचित्प्रतिहन्यसे ।५८।

भूतग्रामं समस्त वै त्वमेको व्याप्य तिष्ठसि ।

उदरस्थः पचरपन्न प्राणिना मेपवाहन ।५९।

त्वयैकेन जगत्कृत्स्नं गोप्यते यदि पावक ।

किं न प्राप्तं त्वया ब्रूहि दोषः कः स्याद्धृताशन ।६०।

जुगुप्साऽस्मिन्न कर्तव्या त्वया वै हव्यवाहन ।

उत्पन्नस्यास्य कार्यस्य काल एष तत्रानघ ।६१।

त्रिदशाः शरणं प्राप्ता हृतभुक्त्वा विभावसो ।

अहो धन्यतरश्चासि श्लाघ्यो यदि करिष्यसि ।६२।

कुरु कार्यं सुराणां त्वं मग्नानां करुणां कुरु ।

सर्वकाले यथा मर्त्या वीक्षमाणास्तु भास्कगम् ।६३।

भगवान् श्री विष्णु ने कहा—हे बहने ! तुमने जो कहा है यह सर्वथा सत्य ही है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है किन्तु ऐसा करना अपने स्वार्थ के लिये तो अवश्य दोष होता है पर यदि दूसरों की भलाई के लिये किया जावे तो यह कोई दोष नहीं हुआ करता है ।५६। देवों के देव कैपदी ने यह सहार के लिए प्रदिष्ट किया है । अनएव आप अणु रूप को ग्रहण करके प्रवेश करिये तो कोई दोष से युक्त नहीं होओगे ।५७। हे अनघ ! आप तो तेज की मूर्ति हैं अतएव प्रस्तुत और अप्रस्तुत कुछ भी नहीं है । आप तो सर्वदा सर्वत्र गमन करने वाले हैं और कहीं पर भी आप प्रति हनन नहीं किये जाते हैं ? ।५८। आप एक ही समस्त भूतों के समुदाय को व्याप्त करके स्थित रहा करते हैं । हे मेघवाहन ! आप प्राणियों के उदर में स्थित होकर अन्न को पचाते हैं ।५९। हे पावक ! यदि आप एक के ही द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् की रक्षा की जाती है तो आपने क्या प्राप्त नहीं किया है—यह बतलाइये । हे हृताशन ! कौन सा दोष होता है ? ।६०। हे हव्यवाहन ! इस कार्य में आपको जुगुप्सा नहीं करनी चाहिये । हे अनघ ! यह कार्य उत्पन्न हो गया है इसको करने के लिये आपका यह समय ही है । ।६१। हे विभावसो ! ये सब देवगण आपकी शरण में प्राप्त हुए हैं । हे हृतभुक् ! आप इसके रक्षक हैं ? अहो ? आप यदि इस कार्य को कर देंगे तो अधिक धन्य और श्लाघा करने के ही योग्य होंगे ।६२। आप इस समय में

सुरगणों का यह कार्य्य कर दीजिये और आप दुःख में मग्न हुए इनके ऊपर कृपा करिए । जिस तरह से सभी कष्टों में मनुष्य भास्कर भगवान् को देखा ही करते हैं । ६३।

तथा तवाऽऽनं वह्ने प्रक्ष्यन्ति मुरसत्तमाः ।

चारुचन्द्रप्रतीकाशं कुण्डलाम्यामलकृतम् । ६४।

अनेन किं न पर्याप्त वद नून विभावसो ।

एवं सवोध्यमानोऽग्निर्विष्णुना द्विजसत्तमाः । ६५।

हृदये चिन्तित तेन यास्यामि हरसंनिधौ ।

ततो वनोगत ज्ञात्वा अग्नेर्देवास्तदाऽनघाः । ६६।

सेन्द्राः सवरुणादित्याः सयक्षोरगराक्षसाः

तुष्टुवुस्ते शुभैर्वारिष्यैः पावक द्विजसत्तमाः । ६७।

हे वह्ने ! उसी प्रकार से सब सुर श्रेष्ठ आप का मुख देखते हैं । जो सुन्दर चन्द्रमा के समान प्रकाश वाला है और दो कुण्डलों से अलंकृत है । ६४। हे विभावसो ! क्या इससे पर्याप्त नहीं है ? आप ही निश्चित रूप से बतलाइये । हे द्विज श्रेष्ठो ! भगवान् विष्णु के द्वारा इस प्रकार से सम्बोध्यमान अग्नि हुआ था । ६५। उस अग्नि देव ने अपने हृदय में सोचा था कि मैं भगवान् शिव की सन्निधि में गमन करूँगा । उस समय मे अन्नदादेवो ने अग्नि के मन में रहने वाले भाव का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । ६६। हे द्विज श्रेष्ठो ! उस समय में इन्द्र—वरुण—आदित्य—राक्षस—यक्ष और उरगों के सहित सब देशों में परम शुभ वाक्यों के द्वारा पावक की स्तुति की थी । ६७।

॥ पावक स्तुत्यादि कथन ॥

जलभीरो जलोत्पन्न जलाजल जलेचर ।
 जलजामलपत्राक्ष यज्ञदेव हुताशन ।१।
 कृष्णकेतो कृष्णवर्त्मन्स्वर्गमार्गप्रदर्शक ।
 यज्ञाद्भुतिहुताहार यज्ञाहार हराकृते ।२।
 पूर्णगर्भं गवा गर्भं जय देव महाशन ।
 तमोहर महाहार स्वाहाभर्तनंम ऽस्तु ते ।३।
 हव्यवाहन सप्ताचै चित्रमानो महाद्युते ।
 अनलाग्ने यज्ञमुख जय पावक सर्वग ४।
 विभावसो महाभोग वेदभापार्थभापण ।
 कृशानो क्रनुसभारप्रिय विश्वप्रभावन ।५।
 सागराम्बुघृत देव त्वमश्वमुखसश्रितः ।
 विवश्र्वो गिदरश्चैव न तृप्तिमधिगच्छसि ।६।
 त्व वाक्येऽब्रनुवाक्येषु निपत्सूपनिपत्सु च ।
 ब्राह्मणा ब्रह्मयोनि त्वा स्तुवन्ति त्वत्परायणा ।७।

देवगण ने कहा—हे हुताशन ! आप जल से ही समुत्पन्न हुए हैं और आप जलाजल हैं तथा जलेचर भी हैं किन्तु आपको जल से भय होता है अर्थात् जल से डरे हुए रहते हैं । हे जलज के अमल दल के समान नेत्रों वाले । आप तो यज्ञों के देवता हैं ।१। हे कृष्ण वर्त्मन् । आप कृष्ण केतु हैं और स्वर्ग के मार्ग के प्रदर्शक हैं । आप यज्ञों की आहुतियों के हुत का आहार करने वाले हैं—यज्ञों के आहार हैं और आप हर की आकृति वाले हैं ।२। हे देव महाशन । आप पूर्ण गर्भ—गौओं के गर्भ हैं । आपका जय हो । आप तम के हरण करने पर महान् आहार वाले और स्वाहा देवी के भर्ता हैं । आपको हम सबका नमस्कार है ।३। हे हव्य वाहन ! आप सात अर्चियों से युक्त हैं । हे चित्रमानो ! आप महतीद्युति से

सम्पन्न हैं । हे अनलग्ने ! आप यज्ञ के 'मुख' हैं । हे सर्वत्र गमन करने वाले पावक देव ! आपका जय हो । ४। हे विभावसो ! हे महाभागा ! आप वेदों की भाषा के अर्थ का भाषण करने वाले हैं । हे वृशानो ! आप ऋतुओं के सम्भार से प्यार करने वाले हैं और समस्त विश्व के ऊपर कृपा करने वाले हैं । ५। हे देव ! सागर के जल के घृत स्वरूप हैं और आप अश्व मुख में सञ्चित हैं । आप उसका पान करते हुए और उसका उग्निरण करते हुए भी कभी तृप्ति की प्राप्ति नहीं होते हैं । ६। आप ही मैं परायण रहने वाले ब्राह्मण ब्रह्मयोनि आपका स्तवन किया करते हैं । आप वाक्यों में—अनु वाक्यों में—निपदों में और उपनिपदों में हैं । ७।

तुभ्य कृत्वा नमो विप्रः स्वकर्मविहिता गतिम् ।

ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राणां लोकान्सप्राप्नुवन्ति च । ८।

त्वमन्तः सर्वभूतानां भुवत भोक्ता जगत्पते ।

पचसे पचतां श्रेष्ठ श्रीलोकान्संक्षयिष्यसि । ९।

साक्षी लोकत्रयस्यास्य त्वया तुल्यो न विद्यते ।

शरणं भव देवानां विश्वनयमहेश्वर । १०।

इत्येव स्तूयमानोऽमावुत्थाय ज्वलनस्तदा ।

देवान्प्रदक्षिणीकृत्य ययौ शभुगृहं द्विजाः । ११।

तस्मापश्यत्प्रतीहारं महादेवसमं बले ।

पूजितं सेन्द्रकंदं वैर्महादेवदिदृक्षुभिः । १२।

कपीन्द्रवदनं देव कुलिशोद्यतपाणिनम् ।

शूलहस्तं महावीर्यं सूर्यायुतमिवोदितम् । १३।

नन्दितं तु तदा दृष्ट्वा पावकस्य द्विजोत्तमाः ।

वेगस्तस्यातुलस्तीक्ष्णः सहस्रं व्यहन्त्यत । १४॥

हे विप्रो ! उन्होंने कहा—आपको नमस्कार करके प्राणी ब्रह्मा—
इन्द्र—विष्णु और रुद्रों के लोकों को जाकर अपने कर्मों द्वारा विदित
गति को प्राप्त किया करते हैं । ८। हे जगत्पते ! आप समस्त प्राणियों के

अन्त करण है—आप ही मुक्त हैं और आप ही भोक्ता है । हे पचन करने वालो मैं परम श्रेष्ठ । आप ही पाचन किया करते हैं और आप तीनों लोको का सक्षय कर देंगे ॥६॥ आप इस त्रिलोक्य के साक्षी हैं और आपके महेश अन्य कोई भी नहीं है । आप इस समय में सब देवो के शरण अर्थात् रक्षक हो जाइये । आप तीनों विश्वो के महेश्वर हैं ॥१०॥ इस रीति से स्तुति किये हुए अग्नि देव उस समय में उठकर खड़े होगये थे । हे द्विजो ! फिर अग्नि ने देवो की परिक्रमा करके फिर अग्निदेव शम्भु के घर में चले गये थे । वहाँ पर बल में महादेव जी से भी अधिका द्वारपाल को देखा था जो इन्द्र के साथ समस्त महादेव जी के दर्शन करने की इच्छा वाले देवो के द्वारा पूजित थे ॥११॥१२॥ वह द्वारपाल कपीन्द्र के समान मुख वाले और हाथ में कुलिश ग्रहण करके उद्यत, शूल में हाथ में ग्रहण किये हुए, महान वीर्य से युक्त और दश सहस्र उदित सूर्यो के तुल्य नन्दी को वहाँ पर देखा था हे द्विजोत्तमो ! उसी समय में पावक का जो अतुल्य और तीक्ष्ण वेग था वह सहसा ही हयमान होगया था ॥१३॥१४॥

तत्रस्थश्चिन्तयामास पश्यामीति कथं हरम् ।
 नन्दिना द्वारसस्थेन पुमाश्च प्रविशेद्गृहम् ॥१५॥
 पश्यमानस्य शैलादे प्रविशे यद्यहं गृहम् ।
 फलसिद्धिं न गच्छेय नन्दिना कुपितेन च ॥१६॥
 एव चिन्तानवे मग्नो यावत्तिष्ठत्यसौ कवि ।
 द्विजात्मानविधास्तावद्भ्रममाणश्च दृष्टवान् ॥१७॥
 तान्दृष्ट्वा चिन्तयामास हसस्य हरसनिधौ ।
 रूपं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि इत्युपायमचिन्तयत् ॥१८॥
 आदाय हसरूपं तु प्रविष्ट पावकस्तदा ।
 प्र वश्यं शङ्कारहित सूक्ष्मरूपो व्यवस्थित ॥१९॥
 पार्वत्या वाहनं सिंहमपश्यच्च विभावसु ।
 गोक्षीरधवलाभास महालाङ्गूलशोभितम् ॥२०॥

जाज्वल्यमाननयन चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।

प्रसारितच्छटाटोप हुकारकृतभूषणम् ॥२१॥

वहाँ पर खड़े हुए अग्नि ने चिन्ता की थी कि मैं भगवान् शिव को कैसे देखूँगा । द्वार पर सस्थित नन्दी के द्वारा कोई भी पुरुष गृह में प्रवेश नहीं कर सकता है ॥१५॥ इस गैलादि के देखते हुए यदि मैं प्रवेश करता हूँ तो कुपित हुए नन्दी के द्वारा मैं कभी भी फल की सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाऊँगा ॥१६॥ इस प्रकार से चिन्ता से आतुर होकर जब तक यह अग्नि स्थित होता है तभी वहाँ पर अग्नि ने इधर-उधर भ्रमण करते हुए अनेक द्विजों को वहाँ पर देखा था ॥१७॥ हर की सन्निधि में उन द्विजों को देखकर मैं हस का स्वरूप धारण करके प्रवेश करूँगा—यही उपाय उसने सोचा था ॥१८॥ उस समय में हस के रूप को ग्रहण करके पावक ने प्रवेश किया था । प्रवेश करके वह शङ्का से रहित होगया था और सूक्ष्म रूप वाला होकर व्यवस्थित होगया था ॥१९॥ विभावसु ने पार्वती देवी के वाहन सिंह को वहाँ पर देखा था जो कि जी के दूध के समान घबल आभास वाला था और बहुत बड़ी पूछ से शोभित था ॥२०॥ उस सिंह के जाज्वल्यमान नेत्र थे और बरोडो चन्द्रों के समान प्रभा वाला था । उस सिंह ने सटाओं के आटोप को प्रसारित कर रक्खा था और हुकारों के भूषण से समुत था ॥२१॥

दानवाना क्षयकर देवानामभयप्रदम् ।

हृकारेण ततस्तस्य ज्वलनो बधिरिकृत ॥२२॥

अहो दुःखमिदं प्राप्तमिति सचिन्त्य चेतसा ।

यदि जीवन्गमिष्यामि सिंहादस्मादहं तदा ॥२३॥

तेन पर्याप्तकामोऽहमिति सचिन्त्य निर्गतः ।

यत्र देवा महेन्द्राद्याः सस्थिता मेरुमूर्धनि ॥

देवाः सर्वे सुसहृष्टा ऊचस्त जातवेदसम् ॥२४॥

अस्मत्कार्यं त्वया ब्रह्मे गत्वा तत्र यथा कृतम् ।
 तत्सर्वं ब्रूहि न क्षिप्रं शर्मास्माव यथा भवेत् ॥२५॥
 गतोऽहं तस्य भवनं देवदेवस्य शूलिन ।
 मया नन्दीश्वरो दृष्टो द्वारदेश उपस्थित ॥२६॥
 हं स्वरूपं तत् कृत्वा प्रविश्यान्तपुरं सुरा ।
 तत्र सूक्ष्मवपुर्भूत्वा यावत्क्षणमहं स्थित ॥२७॥
 तावत्पञ्चाननो दृष्टो गिरिजायास्तु वाहनम् ।
 अतिरोद्रो महाकायं प्रलयान्तकसन्निभ ॥२८॥

वह सिंह दानवों के क्षय का करने वाला और देवों को अभय का प्रदान करने वाला था । इसके पश्चात् उस सिंह की हुंकार से वह अग्नि बहिरा सा होगया था ॥२२॥ अहो ! यह दुःख मुझे प्राप्त होगया है—ऐसा चित्त से उसने विस्तृत विषा था । उस समय में इस सिंह से यदि मैं जीवन बचाना चाहता हूँ तो मैं इससे पर्याप्त काम वाला हूँ—ऐसा सोचकर वह वहाँ से निकल कर खला गया था । जहाँ पर महेश्वर आदि देव सुमेरु पर्वत के मस्तक पर सन्स्थित हो रहे थे । समस्त देवगण परम प्रसन्न हुए थे और उन्होंने अग्निदेव से कहा था ॥२३॥२४॥ देवों ने कहा—हे अग्ने ! आपने हमारा वहाँ पर जाकर जिस प्रकार से किया था वह सभी हमको आप बतलाइये जिससे हम सबका कल्याण होवे ॥२५॥ अग्निदेव ने कहा—मैं उन देवों के देव शूली के भवन में गया था वहाँ पर द्वारदेश में स्थित नन्दीश्वर को मैंने देखा था ॥२६॥ हे सुरो ! इसके अनन्तर मैंने हंस का रूप धारण किया था और फिर मैंने अन्तपुर में प्रवेश किया था । फिर बहुत ही अधिक सूक्ष्म स्वरूप बना कर जब तक मैं क्षण भर वहाँ पर स्थित रहा था ॥२७॥ तब तक गिरिजा का वाहन पञ्चानन (सिंह) मैंने देखा था । वह अत्यधिक रोद्र, महात् वपु वाला और प्रलयान्तक के तुल्य था ॥२८॥

भीतोऽहं निर्गंतरतस्मादहृष्टैव पिनाकिनम् ।
 युष्मत्कार्यमकृत्वैव संप्राप्त इह भो सुरा ॥२९॥

पुनर्विचिन्त्यता कार्यं सर्वेषां वो यथा सुखम् ।
 एव बह्नेर्वच. श्रुत्वा देवा विष्णुपुरोगमाः ॥३०॥
 यधुर्मुनिगणैः सार्धं मन्दर चारुन्दरम् ।
 तमामाद्य गिरिश्रेष्ठ प्रिय देवस्य दूलिन ॥३१॥
 कृताञ्जनिपुटा. सर्वे ह्यस्तुवन्वृषभध्वजम् ॥३२॥
 ॐ नमः परमेशाय त्रिनेत्राय त्रिशूलिने ।
 विरूपाय सुरूपाय पञ्चास्याय त्रिमूर्तये ॥३३॥
 वरदाय वराहाय कूर्माय च मृगाय च ।
 नीलालकशिखण्डाय मण्डलेशाय ते नमः ॥३४॥
 विश्वमानाय विश्वाय विश्वेशायाऽऽत्मरूपिणे ।
 कालधनाय मलधनाय अन्धकधनाय वै नमः ॥३५॥

मैं तो अत्यन्त ही भीत होगया था और भगवान् पिताजी को न देखकर ही मैं उस स्थान से निर्गन्त होगया था । हे सुरगणों ! आप लोगों का कार्य न करके ही मैं यहाँ पर प्राप्त हो गया हूँ ॥३६॥ पुनः आप विचार कीजिये जिससे आप लोगों को सुख समुत्पन्न होवे । इस प्रकार से अग्नि व वचन को ध्यान करते विष्णु जिनमें प्रमुख थे ऐसे समस्त देवता सुन्दर कन्दराओं वाले मन्दराचल पर मुनिगणों के साथ गये थे । देवेंद्वर भगवान् दूली के परम प्रिय उस श्रेष्ठ गिरि पर पहुँच कर सब हाथों को जोड़ कर वृषभध्वज प्रभु का स्तवन करने लग गये थे ॥३०॥३१॥३२॥ देवों ने कहा—परमेश, त्रिनेत्र, त्रिशूली प्रभु के लिये हमारा नमस्कार अर्पित है । विरूप, सुरूप, पञ्चमुखी, त्रिमूर्ति, वराह, कूर्म, भृग, नीले धनकी वाले शिखण्ड और मण्डलेश आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है ॥३३॥३४॥ विश्वमान, विश्व, विश्वेश, आत्मरूपी, कालधन, मलका हनन करने वाले तथा अन्धकामुर के मारने वाले आपके लिये हम सबका प्रणाम है ॥३५॥

नमो मन्त्राय जप्याय कोटिजाप्याय ते नमः ।

ध्यानाय ध्येयरूपाय ध्येयध्यानात्मने नमः ॥३६॥

ईशोऽनीशस्तमेवेश अन्तोऽनन्तस्त्वमेव च ।

अव्ययस्त्व व्ययश्चैव जन्माजन्म त्वमेव च ॥३७॥

नित्यानित्यस्त्वमेवेश धर्माधर्मस्त्वमेव च ।

गुरुस्त्वमगुरुर्देव बीज वाऽबीजमेव च ॥३८॥

कालस्त्वमसि लोकानामकालः परिगीयसे ।

बलस्त्वमवलश्च त्र प्राणश्चाप्राण एव च ॥३९॥

साक्षी त्व कर्मणा देव तथाऽसाक्षी महेश्वर ।

शास्ताऽशास्ता विरूपाक्ष ध्रुवश्चाध्रुव एव च ॥४०॥

ससारी त्व हि जन्तूनामसारी त्वमेव च ।

गोप्ता त्व सर्वभूताना नास्ति गोप्ता त्वेश्वर ॥४१॥

जीवस्त्व जीवलोकस्य जीवस्तेऽन्यो न विद्यते ।

न्यूनातिरिक्तभावेन त्वमायुश्च शरीरिणाम् ॥४२॥

मन्त्ररूप, जप्यस्वरूप और कोटि जाप्य के लिये नमस्कार है ॥३६॥
हे ईश ! आप ईश और अनिश है । और आप ही अन्त तक अनन्त है ।
आप अव्यय हैं और व्यय हैं । और आप ही जन्म तथा अजन्म है ॥३७॥
हे ईश ! आप ही नित्य तथा अनित्य भी है । आप धर्म तथा अधर्म हैं ।
आप गुरु और अगुरु हैं आप सबके बीज हैं और अबीज भी हैं ॥३८॥
आप लोको के काल हैं और आप अकाल भी गये जाते हैं । आप बल
है और अवल भी हैं । आप प्राण और अप्राण हैं ॥३९॥ हे भगवन् !
आप साक्षी हैं जोकि सब लोग कर्म करते हैं उनको देखने वाले हैं ।
हे देव महेश्वर ! आप असाक्षी हैं । आप शास्त्रा, अशास्त्रा, हे विरूपाक्ष !
आप ध्रुव तथा अध्रुव हैं । आप जन्तुओं के ससारी है और आप ही
अससारी हैं । आप समस्त भूतो के गोप्ता है और आपका गोप्ता ईश्वर
नहीं है । आप इस जीव लोक के जीव हैं और आपका जीव अन्य कोई
भी विद्यमान नहीं है । न्यून तथा अतिरिक्त भाव से शरीर धारियों के
आप ही आयु है ॥४०-४२॥

देहिना शकरस्त्व हि न चान्यस्तव शकर ।
 अरुद्रस्त्व महादेव रुद्रस्त्व धोरकर्मणाम् ॥४३॥
 देवाना च महादेवो महास्त्वत्तो न विद्यते ।
 कामस्त्व भविना सर्वकामदस्त्व जगत्पते ॥४४॥
 अजेयो जयिना श्रेष्ठो जयरूपस्तमेव हि ।
 पुराणपुरुषस्त्व हि पुराणोऽन्यो न विद्यते ॥४५॥
 व्यालयज्ञोपवीताय सरोजाङ्गाय ते नमः ।
 नमोऽस्तु नीलग्रीवाय शितिकण्ठाय मीढुषे ॥४६॥
 नमः कपालहस्ताय पाशहस्ताय दण्डिन ।
 नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय च ॥४७॥
 ऊर्ध्वभागप्रणेने च नमस्ते ह्यूर्ध्वरेतसे ।
 क्रोधिने कीतरागाय गजचर्मावगुण्ठिने ॥४८॥
 नमो ब्रह्मशिरोघ्नाय नमस्ते रुक्मरेतसे ।
 नमश्चण्डाय धीराय कमण्डलुनिपङ्क्तिने ॥४९॥

आप देहधारियों के शकर अर्थात् कल्याण करने वाले हैं और अन्य कोई भी आपके कल्याण करने वाला शकर नहीं है । हे महादेव । आप ही अरुद्र हैं और जो घोर कर्मों के करने वाले प्राणी हैं उनके लिये आप ही रुद्र होते हैं । आप मय देवो म महान् देव हैं और आपसे महान् अन्य कोई भी नहीं है । आप भावियों के काम हैं । हे जगत्पते । आप सब कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं ॥४३॥॥४४॥ आप स्वयं अजेय हैं और आप जय वाला मैं परम श्रेष्ठ हैं । आप स्वयं ही जय स्वरूप वाले हैं । आप परम पुराण पुरुष हैं । आपसे पुराण अन्य कोई भी नहीं है ॥४५॥ व्याल (सर्प) का यज्ञोपवीत धारण करने वाले और सरोजाङ्ग आपके लिये हम सबका प्रणाम है । नीलग्रीव, शितिकण्ठ, मीढुष आपके लिये नमस्कार है ॥४६॥ कपाल हाथ में रखने वाले, पाशहस्त, दण्डी, देवों के अधिदेव आपको नमस्कार है । नारायण आपको प्रणाम है ॥४७॥ ऊर्ध्व भाग के प्रणेता, ऊर्ध्वरेता आपके लिये नमस्कार है ।

क्रोधी, बीतराग, गज के चर्मन का अगुछन करने वाले, ब्रह्मा के शिर का हनन करने वाले और स्वमरेता आपकी सेवा में हम सब का प्रणाम समर्पित है। चण्ड, धीर, कमण्डलुनिपङ्गी आपके लिये नमस्कार है ॥४८॥४९॥

नमः प्रचण्डवेगाय क्रोधचण्डाय ते नमः ।

वरेण्याय शरण्याय ब्रह्मण्यायाम्बिकापते ॥५०॥

सर्वानुग्रहकर्ता त्वं धनदाय नमो नमः ।

नमः ससारपोताय अणिमादिप्रदायिने ॥५१॥

ज्येष्ठसामादिसस्थाय रथतराय ते नमः ।

त्रिगाथाय त्रिमात्राय त्रिमूर्ते त्रिगुणात्मने । ५२॥

त्रिवेदिने त्रिसंध्याय त्रिशून्याय त्रिवर्मणे ।

त्रिवेहाय त्रिकालाय त्रिशक्तिव्यापिने नमः ॥५३॥

शक्तित्रयविर्हनाय शक्तित्रययुताय च ।

शक्तित्रयात्मरूपाय शक्तित्रयधराय च ॥५४॥

योगीशाय विपद्नाय विजयाय नमो नमः ।

नमस्ते हरिकेशाय लोकपालाय दण्डिने ॥५५॥

हलीशाय प्रमेयाय कुलीशाय तु चक्रिणे ।

नमो बिन्दुविसर्गाय नादायानादधारिणे ॥५६॥

प्रचण्ड वेग वाले को नमस्कार है तथा प्रचण्ड क्रोध वाले को प्रणाम है। वरेण्य, शरण्य और ब्रह्मन् आपके लिये हे चण्डिकापते ! नमस्कार है ॥५०॥ आप सभी पर अनुग्रह करने वाले हैं, धनद आपकी सेवा में नमस्कार है तथा बारम्बार प्रणाम है। इस मवार रूपी सागर के तरण करने के लिये पोत स्वरूप आपकी सेवा में प्रणाम हैं तथा अणिमा आदि सिद्धियों के प्रदाना आपको मेरा नमस्कार है ॥५१॥ ज्येष्ठ सामादि सस्थ और रथन्तर के लिये नमस्कार है। त्रिगाथ, त्रिमात्र, त्रिमूर्ति और त्रिगुणात्मा आपकी सेवा में नमस्कार है ॥५२॥ त्रिवेदी, त्रिमन्ध्य, त्रिशून्य, त्रिवर्मा, त्रिवेह, त्रिकाल और त्रिशक्ति व्यापी आपके लिये

नमस्कार है ॥५३॥ तीन शक्तियों से विहीन तथा शक्तित्रय से युक्त अर्थात् तीन शक्तियों के धारण करने वाले, योगीश, विष्णु का हनन करने वाले, विजय आपके लिये बारम्बार प्रणाम अर्पित है । हरिकेश, लोकपाल, दण्डी, हतीश, प्रमेय, कुलीश, चक्री, विन्दुविसर्ग, नादरूप और अनादधारी आपको नमस्कार है ॥५४-५६॥

नाडीस्थाय च नाड्याय नाडीवाहाय वै नमः ।

नमो गायत्रीनाथाय गायत्रीहृदयाय ते ॥५७

नमो गायत्रीगोप्त्रे च गायत्र्याय नमो नमः ।

य इदं पठते स्तोत्रं गीर्वाणैः समुदीरितम् ॥५८

यावज्जीवकृतं पापं मुक्तो याति परां गतिम् ।

एवं स्तुतः सुरैः शम्भुः प्रसन्नो वरदोऽभवत् ॥५९

वरं वृणीष्व हे देवा इत्युवाच महेश्वरः ।

अथ तं वरदं ज्ञात्वा शम्भुमग्निमुखा सुराः ॥६०

ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे भयं त्यक्त्वा द्विजोत्तमाः ।

यदि तुष्टोऽसि विद्महे देहीम वरमुत्तमम् । ६१

गिरिजाकुक्षिसंभूतं पुत्रो मा भूत्तवानघ ।

एवमस्तिवत्यसौ शम्भुः पुनरुक्त्वा ततो वचः ॥६२

नाहं रेतो वृथा स्कन्दे त्रैलोक्यक्षयकारकम् ।

वृथा शुक्रं मदीये तु त्रैलोक्यं भस्मसाद्भवेत् ॥६३

नाडीस्थ, नाड्य, नाडीवाद को नमस्कार है । गायत्री के नाथ,

गायत्री के हृदय, गायत्री के गोप्ता और गायत्र्य आपके लिये बार-बार नमस्कार है । जो कोई इस स्तोत्र को जो कि देवों के द्वारा समुदीरित है पढ़ता है वह जब तक जीवन में किये हुए पाप होते हैं उन सबसे विमुक्त होकर परमगति को प्राप्त किया करता है । इस प्रकार से देवों के द्वारा स्तुति किये गये भगवान् शम्भु परम प्रसन्न होगये थे और वरदान प्रदान करने वाले होगये थे ॥५७-५९॥ महादेव जी ने कहा— हे देवगणों ! वरदान का वरण करलो । इसके अनन्तर अग्निमुख सुरों

ने भगवान् शम्भु को वरदाता जानकर हाथों को जोड़ते हुए सब देवगण हे द्विजोत्तमो ! भय छोड़कर बोले ॥६०॥६१॥ देवगणों ने कहा—हे विश्वेश ! यदि आप परम तुष्ट होगये हैं तो आप इस उत्तम वरदान को प्रदान कीजिए ॥६२॥ हे अनन्य ! गिरिजा के कुक्षि से समुत्पन्न आपका पुत्र न होवे । ऐसा ही होवेगा—यह शम्भु ने यह कहकर फिर यह वचन कहा—॥६२॥ मैं अपना रत्न (वीर्य) वृथा स्कन्दित नहीं करता हूँ क्योंकि यह त्रैलोक्य के शाय का करने वाला है । मेरे मुक्त के वृथा होने पर तो यह त्रैलोक्य ही भस्मसात हो जायगा ॥६३॥

हिताय तस्माल्लोकाना मम रेतो दिवौकसः ।
 शान्तप्रथं चैव युष्माभिः शीघ्रमेव प्रगुज्यताम् ॥६४॥
 एवं शभोर्वचः श्रुत्वा देवाग्ने भयविह्वलाः ।
 सलोकेशाः सगोविन्दा न किञ्चिदग्र वृन्दिजाः ॥६५॥
 अथ देवेषु सीदत्सु वह्निर्गौरिव कर्दमे ।
 प्रसार्य स्वाञ्जलिं शम्भुं रेतो मुञ्चेति चाग्रवीत् ॥६६॥
 देवदेवामृत दिव्य हस्ताभ्या मम संकर ।
 शीघ्रमेव प्रयच्छस्व निबन्तु सुरपुंगवाः ॥६७॥
 ततो लिङ्गाद्विनिष्क्रान्त चन्द्रधिम्वात्सुनिर्मलम् ।
 जातीनीलोत्पलामोद पाणौ वह्नेर्ददौ शिवः ॥६८॥
 कराभ्यां पतित रेतस्तदाऽभूत्पावकस्य वै ।
 पपौ वह्निस्ततः शुक्रं ज्वलत्तद्भास्करप्रभम् ॥६९॥
 सुधेति मनसा मत्वा हृष्टात्मा मृदयाऽन्वितः ।
 अथ पीते तदा शुक्रं वह्निना मुनिपुंगवा ॥७०॥

इस कारण मे लोको के हित के लिये ही हे देवगणो ! मेरे रेत को आप भोग शक्ति के लिये शीघ्र ही प्रयोग में लाइये ॥६४॥ इस प्रकार के शम्भु के वचन को सुनकर वे सब देवगण भय से विह्वल होगये थे । हे द्विजो ! लोकपालों के सहित और गोविन्द के सहित देवों ने कुछ भी नहीं कहा था ॥६५॥ इसके अनन्तर देवों के दुःखित होने पर अग्नि

कीच मे फँसी हुई थी की तरह से अपनी अञ्जलि को फँकाकर शम्भु के समक्ष मे कहा था कि आप रेत का मुञ्जन कीजिए ॥६६॥ हे शंकर ! मुझे दिव्य आप देव देवामृत हाथों से शीघ्र ही प्रदान कीजिये जिसको सुरश्रेष्ठ पान करें ॥६७॥ इसके पश्चात् भगवान् शिव ने लिङ्ग से त्रिनिष्क्रान्त चन्द्रबिम्ब से सुनिर्मल-जातीफल नीलोत्पल के समान आमोद अग्नि के हाथ मे दिया था ॥६८॥ करो से गिरा हुआ रेत उस समय मे पावक का होगया था । इसके अनन्तर बह्मि ने जलते हुए भास्कर की प्रभा के तुल्य प्रभा वाला वह शुक्र पावक ने पी लिया था ॥६९॥ यह सुधा है—ऐसा मन से मानकर बहुत प्रहृष्ट आत्मा वाला और आनन्द से युक्त होगया । हे मुनि श्रेष्ठो ! इसके अनन्तर बह्मि के द्वारा उस समय मे शुक्र के पान किये जाने पर परम प्रसन्नता हुई थी ॥७०॥

रेत पातेन सतप्यं स देवास्त्रपूजितः ।

विसृज्य तास्तु भगवास्तत्रैवान्तरधीयत ॥७१॥

तदा हविर्भुज देव सेन्द्रा ब्रह्मपुरोगमाः ।

यथाऽऽगता ययुस्तत्र नूजयित्वा दिवोकस ॥७२॥

रेतसा ब्रह्ममानोऽग्निः पातालात्सुतल गतः ।

ततो विवेश गिरिशो यत्राऽऽस्ते पार्वती शिवा ॥७३॥

उवाच पार्वती क्षभुः प्रहमन्कमलेक्षणाम् ।

क्षुण्ण देवि महाभागे यद्वृत्तं तल्लक्ष्मीम्यहम् ॥७४॥

स्वतन्त्रकामाऽसि शिवे यथाऽहं वरवर्णिनि ।

देवा मच्छरणं प्राप्ता न चाहं शरणं त्यजे ॥७५॥

गोप्या मया सदा कान्ते महादेवो मतः स्मृतः ।

भविष्यति महाभागे पुत्रस्तव पदानन ॥७६॥

किं त्वीरमस्तु सुश्रोणि देवैर्नष्टस्तवांसतः ।

तस्माच्छुद्धं (स्निग्धं) मया रेतो मुखे वै जातगेदसः ॥७७॥

उन देवों और अमुरों के द्वारा पूजित प्रभु ने रेतम् के पात के द्वारा भस्मीभाँसि तप्यं कर और उनकी विद्या करके भगवान् वहीं पर

अन्तर्हित होगये थे ॥७१॥ उस समय में इन्द्र के सहित दह्याजी जिनमें अग्रगामी थे सब देवों ने हविर्भुज देव का पूजन किया था तथा फिर जैत आये थे वैसे ही सब चने गये थे ॥७२॥ उस दुष्ट के पीने से अग्नि दह्यमान होगया था और वह पाताल से गुप्तलोक को गया था । इसके पश्चात् विरीश प्रभु ने अन्दर प्रवेश किया था । जहाँ पर शिवा पार्वती विराजमान थीं । उन वामन के समान खोबनी वाली पार्वती जी से भगवान् गम्भु ने हँसते हुए कहा था—ईश्वर ने कहा—हे महाभागे । हे देवि ! आप मुनि—जो कुछ घटित हुआ है उसको मैं आपकी बोलता हूँ ॥७३॥७४॥ हे शिवे ! आप अनन्त काम वाली हो हे वर यणिनि ! जिस प्रकार से मैं हूँ । देवगण मेरी धारण में प्राप्त हुए थे और जो मेरी धारण में आजावे उसका मैं रक्षण नहीं किया करता हूँ ॥७५॥ हे काम्ते ! ये धारणागत देव मेरे द्वारा सदा ही रक्षा करने के योग्य होते हैं और महादेव रत कहे गये हैं । हे महाभागे ! आपका पुत्र पङ्कजन होगा ॥७६॥ विष्णु हे मुधोणि ! आपका और सपुत्र देवों के द्वारा आपके अक्ष से अभीष्ट नहीं था । इससे मैंने शुद्ध वीर्य अग्नि के मुख में डाल दिया है ॥७७॥

वह्निष्कुक्षिगत रेतो गत देवान्विभागदा ।
यच्छेषमुदरे वह्निस्नग्दङ्गाया प्रदास्यति ॥७८॥
तत साऽपि विदह्यन्ती मम तेजः पतापवत् ।
कृत्तिका घट समाख्याता गङ्गाया स्नातुमागता ॥७९॥
तासु गङ्गाविनिक्षिप्त मम रेतस्तदद्भुतम् ।
ततस्ता कृत्तिका स्तब्धा देवि मा शरणं गता ॥८०॥
अनुग्रहान्मम तासामिदमुक्त तदा शिवे ।
ममाऽऽदेशान्दता सर्वा अरधानवनं शुभम् ॥८१॥
मोचयिष्यन्ति ता गभं देवाश्च कमनेक्षणे ।
वचनान्मम सुश्रोणि भंशत्य वरानने ॥८२॥

ततस्ते भविता पुत्र एकीभूत्वा स्वतेजस ।

बालसूर्यायुतप्रस्थो बालेन्दुभूलताङ्कित ॥८३॥

आग्नेयो वह्निजो गाङ्गाय कृत्तिकासुत ।

स्कन्दो गुहस्तथा पुत्रो नामभिरस्ते भविष्यति ॥८४॥

अग्नि की कुक्षि में प्राप्त हुआ रेत विभागदा देवा को गया था । जो कुछ उदर में शेष रह जायगा उसको वह अग्नि गङ्गा में प्रदानकर देगा ॥७८॥ वह भी हमके अनन्तर विहाय होती हुई मेरे प्रताप वाले तेज को उम गङ्गा ने उन कृत्तिकाओं में पिनिमित्त कर दिया था । जो छै कृत्तिकाएँ समाख्यात की गयी हैं और जो गङ्गा में स्नान करने के लिये ही वहाँ पर समागत हुई थी किन्तु मेरा शत्रु बहुत ही अद्भुत था । हे देवि ! हमके अनन्तर वे कृत्तिकाएँ स्तब्ध हो गयी थी और मेरी शरण में समागत हों गयी थी ॥७९॥ हे शिवे ! उनके उपर अनुग्रह करके मैंने उम समय में उनसे यह कहा था कि तुम शुभ शरणान वन में चली जाओ और मेरे आदेश से वहाँ पर चली गयी थी ॥८०॥ हे कमलेश्वरे ! वे वहाँ पर गर्भ का मोचन करेगी । देव रानने ! और देवगण हे सुयोनि ! मेरे वचन से वह गर्भ शल्य हो गया था । इसके पश्चात् वह तेरा पुत्र होगा जो अपन तेज को एकीभूत होकर ही होगा । वह बाल सूर्य जो दस हजार हा उनक समान मुख्य होगा और बालेन्दु के समान भूलताओं से अङ्कित है । उसक बहुत से नाम भी होंगे—केनाम गाङ्गाय—वह्निज—देव—आग्नेय—कृत्तिका सुत—स्कन्द—गुह वे सनी उसके हाथे ॥८२॥८३॥८४॥

एव शभोर्वच श्रुत्वा प्राह देवी गिरीन्द्रजा ।

मम कुक्षिसमुत्पन्न यतो नेच्छन्ति पुत्रवम् ॥८५॥

अतः पुनर्विहीवारस्ते भविष्यन्ति सुरादयः ।

यो हि नन्दी महावीर्यः सुरासुरमहोरगैः ॥८६॥

दुर्जयः सर्वभूतानां योगी योगबलान्वितः ।

प्रविश्यान्तःपुरे वह्निर्दृष्ट्वा मा वस्त्रवर्जिताम् ॥८७॥

यस्मादुपेक्षितस्तस्मात् मनुष्यत्व प्रयातु स ।

शाप श्रुत्वाऽथ शैलादिवेच्छेत्तेव हतो गिरि ॥८८

न्यपतद्योगिनामग्यो ज्ञानमूर्तिधरो द्विजा ।

पुनश्च शभोर्वचनाच्छैलादिमनुगृह्य च ॥

समालिङ्ग्य महादेव स्थितिं देवीति न श्रुतम् ॥८९

इस रीति से वर्यित भगवान् शम्भु के वचन को सुनकर गिरीन्द्रजा ने कहा—मेरी कुक्षि से साक्षात् समुत्पन्न होने वाले पुत्र को जिस कारण से भी देवगण नहीं चाहते हैं अतएव वे समस्त सुरगण आदि देव यानि वाले पुत्रो से विहीन ही हो जायेंगे । अर्थात् उनके किसी के भी पुत्र नहीं होंगे । हमरो का जो अहित चाहते हैं उनको यही परिणाम होना ही चाहिए । जो महान्दी है और ऐसा महान् वीर्य वारा है जिसको सुर-असुर और महेश्वर भी नहीं जीत सकते हैं वह समस्त भूतो मे योगी और योग के बल से समन्वित है उसके द्वारा जिस कारण से उपेक्षित ब्रह्मको कर दिया गया था और उस ब्रह्मिन् ने मुझको ब्रह्म से रहित देखा था इस कारण से वह मनुष्यत्व को प्राप्त करेगा । इस शाप का श्रवण करके शैलादि वक्ष से हत गिरि के ही समान हत होकर हे द्विजो ! वह ज्ञान मूर्तिधारी और योगियो से अग्रणी गिर गया था । फिर शम्भु देव के वचन से शैलादि पर अनुग्रह किया गया था । इसके पश्चात् वह देवी महादेव जी का समालिङ्गन करके स्थित हो गयी थी—ऐसा ही हमने सुना है । ८५।८६।

॥ परमेश्वर-सुर सम्वादादि कथन ॥

बह्नी संतपिते सूत रेतसा त्रिदिवीकसः ।
 सगर्भाः खलु संजाता देवदेवेन शंभुना ॥१
 सौख्यं कथमवापुस्त उदरस्थेन रेतना ।
 किमकुर्वंस्तदा सर्वे नारायणपुरोगमाः ॥२
 गर्भनिष्क्रमण तेषामुत्पन्नेन च किं कृतम् ।
 एतत्सर्वं समासेन ब्रूहि नः सूत पृच्छताम् ॥३
 बह्नी संतपितास्तेन रेतसा त्रिदिवीकसः ।
 रेतसा चोदरस्थेन संतप्तास्ते सुरादयः ॥४
 दशपञ्चसहस्राणामतीतेषु द्विजोत्तमाः ।
 वर्षाणां च तथाऽष्टौ च गूढगर्भा दिवौकसः ॥५
 दुःखिताः पार्वतीकान्तं दाफर शरणं ययुः ।
 ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥६

ऋषियो ने कहा—हे श्री सूतजी । बह्नि के संतपित होने पर देव देव शम्भु के द्वारा वीर्य से समस्त देवगण गर्भ हो गये हैं तो उन्होंने फिर उदर में स्थित शूक्र से किस प्रकार में मुक्ति की प्राप्ति की थी । फिर उन समस्त देवगणों ने जिनमें साक्षात् नारायण अवतार भी पुरोगामी थे क्या किया था । १।२। उनके गर्भों का निष्क्रमण कैसे हुआ और उत्पन्न उसने क्या किया था—यह सम्पूर्ण वृत्तान्त शेष से हे सूत जी ! हमारे सामने वर्णित कीजिए क्योंकि हम इस समय में सभी यह पूछ रहे हैं । ३। श्री महा मुनीन्द्र सूतजी ने कहा—उन वीर्य से जो बह्नि में विधिपूर्वक किया गया था सभी देवगण संतपित हो गये थे किन्तु यह अवश्य ही हुआ कि उस उदर में स्थित वीर्य से वे सभी सुरादि गण सन्त हो गये थे । ४। हे द्विजोत्तमो ! पन्द्रह हजार वर्षों के व्यतीत हो जाने पर और आठ वर्ष ऊपर होने पर गर्भों को गूढ़ रखने वाले देवगण परम दुःखित होकर पार्वती के स्वामी शंकर की शरण में प्राण

हुए थे । सबने दोनों हाथों को जोड़कर करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा-
वाले भगवान् शंकरजी से प्रायना की थी । १५६।

भगवत्यदिदं दुःखं गर्भजं देहशोषणम् ।

यथा नश्यति देवेश तदुपायं कुरु प्रभो ॥७

बहिर्ना पीतमात्रेण रेतसा तव शंकर ।

वयं भगर्भा स जाता गर्भकाले च तोयदा ॥८

उपहास्यमिदं देव पुंसां यद्गर्भसंभव ।

सर्वे वै भूशमुद्विग्नास्तव तेजोवशाद्विभो ॥९

बह्यमाना महादेव नरके पापिनो यथा ।

शरणं भव देवानां करालम्बं ददस्व न ॥१०

दुःखोदघौ प्रदुस्तारे प्रणतार्तिविनाशन ।

एव श्रुत्वा तु वचनं देवानां पार्वतीर्पति ॥११

ईषद्विहस्य भगवानुवाचेदं सुरेश्वर ।

भवद्भिरीदृशं कार्यमिष्टं मे सुरपुंगवा ॥१२

नेष्टं देव्यो(व्यु)दरस्थं हि तस्मान्दर्भदशां गता ॥१३

इदानीं यत्प्रकर्तव्यं शृणुध्वं तत्सुरोत्तमा ।

बहिर्न यूयं पुरस्कृत्य मेरुं व्रजत मन्दरात् ॥१४

देवो ने कहा—हे भगवन् ! जो यह गर्भ से समुत्पन्न देह के शोषण

करने वाला दुःख है हे देवेश ! हे प्रभो ! यह जैसे भी विनष्ट हो जाये
यही अब उपाय कीजिए । ७। हे शंकर ! बहिर्न वे द्वारा पीत मात्र
आपके दीर्घ से हम सभी गर्भ ने समश्रित हो गये हैं और गर्भ के
समय में तो यह हो गये हैं । ८। हे देव ! यह एक बहुत ही उपहास
योग्य बात हुई है कि पुरुषों में उदर में गर्भ हो जाये ? हे
विभो ! आपने तेज के वश से हम लोग अत्यन्त अधिक उद्विग्न हो रहे
हैं । हे महादेव जी ! जैसे नरकों में पड़े हुए महा पापी
होते हैं वैसे ही हम सब दह्यमान हो रहे हैं । अब आप हम समस्त देवों
के शरण (रक्षा) का जादय और हम सबको अपना वराचक्ष्म प्रदान

कीजिए । १११०। हे प्रणत भक्तों की आत्ति के विनाश करने वाले प्रभो ! इस बहुत ही अधिक बड़े हुए दुःखों के सागर में हम विमग्न हैं । पार्वती देवी के स्वामी दाम्भु ने इस प्रकार के देवों के वचन श्रवण करके भगवान् मुरेश्वर ने थोड़ा सा हँसकर यह वचन कहा था—ईश्वर ने कहा—हे मुर थोड़ो ! आपके द्वारा ही ऐसा कार्य अभीष्ट हुआ था । ११११२। आप लोग स्वयं ही देवी के उदर में रहने वाले गर्भ को नहीं चाहते थे । इसीलिये आप लोग इस तरह की गर्भ की दशा को प्राप्त हुए हैं । १३। हे मुरोत्तमो ! इस समय में जो भी आप भक्तों करना चाहिए उनके विषय में आप श्रवण कीजिए । अब आप सब लोग अग्नि को अपने आगे करके इस मन्दर पर्वत से सुमेरु पर्वत पर चले जाइए ॥१४॥

शरधानवने यूय हृदोत्सङ्गं प्रसूयत(?) ।

नि सरिप्यत्यस देह तत सौम्यमवाप्स्यथ ॥१५

तत शमोर्वच श्रुत्वा नारायणपुरोगमा ।

अग्निमन्विष्य च ययुर्मह गिरिवरोत्तमम् ॥१६

तस्य चोत्तरदिग्भागे शरधानवने शुभे ।

उपविश्य महात्मानो मध्ये स म्याप्य वेधसम् ॥१७

नारामण पुरस्कृत्य प्रमूता सर्वदेवता ।

गर्भं शल्यविनिमुक्ता जातारते मुखिनो द्विजा ॥१८

शार्ङ्गेण तेजसा तेन रक्षितो मेरुपर्वत ।

तत वाञ्छनता प्राप्त मञ्जीवनवनानन ॥१९

शार्ङ्गं तेजो धृत यस्माद्देवीर्वाहिनपुरोगमं ।

तस्माज्जरादिभिमुक्ता अमराश्च मुरोत्तमा ॥२०

सिद्धाश्च मुनयश्चैव ये केचित्तात्र म स्थिता ।

तृणगुम्फनाश्चैव जलस्यनरहाश्च ये ॥२१

यहाँ पर शरधान वन में जो हरे हैं उमम उताङ्ग म आप गर्भ का प्रसन्न करिये । यह गर्भ बड़ा पर निमदेह रूप म निवन जायेगा और

उसके पश्चात् आप लोग सुख की प्राप्ति कर लेंगे । १५। इसके पश्चात् भगवान् शम्भु ने वचन सुनकर नारायण प्रसेगम समस्त देवगण मेरु में चले गये हैं जो गिरिवरो में बहुत ही उत्तम थे । १६। उस पर्वत के उत्तर के भाग में शुभ शरधान वन था उसमें सभी महान् आत्मा वाले उपविष्ट हो गये थे और मध्य में देवा को स स्थापित कर लिया था । १७। भगवान् नारायण को आगे करके सब देवों ने प्रसव किया था । हे द्विजो ! फिर वे देवगण गर्भ के क्षल्प से विनियुक्त होकर वे सब सुखी हो गये थे । १८। उस क्षर्व के तेज से वह सम्पूर्ण मेरु पर्वत रज्जित हो गया था । इसमें पश्चात् वह सम्पूर्ण पर्वत और उसका वन एव वानन सुख को प्राप्त हो गया था । १९। अग्नि जिनमें प्रमुख था ऐसे सब देवों ने भगवान् शम्भु का तेज धारण किया था इसी कारण से सब जरा आदि से तुरोत्तम विमुक्त होकर अमर हो गये थे । २०। सिद्ध-मुनि और जो भी कोई वहाँ पर स स्थित थे —तह—गुल्म—लताएँ—जन और स्थल म समुत्पन्न सब जो भी वे सभी सुवर्ण स्वरूप हो गये थे ॥२१॥

सर्वे काश्चनसकाशा सजातास्तत्प्रभाक्त ।
 पाश्वं मेरोर्विनिभिद्य शभोस्तेजो विनिर्गत्तम् ॥२२॥
 गङ्गाया निहित यच्च तदेकम्यमभूद्विजा ।
 अथ देवो महादेवस्तेजोराशिर्मापति ॥२३॥
 गोपयामास तत्तेज पिङ्गल प्रेक्ष्य शक्र ।
 गोप्यमाने तु तस्मिन् मेरी सूर्यायुतप्रभ ॥२४॥
 वर्षाणा च सहस्रेण कठिन म्यन्दता गत ।
 स्पन्द इत्युच्यते तेन तदाप्रभृति मुव्रता ॥२५॥
 हराज्जातो यतस्तेन कुमार इति वध्यते ।
 स्पन्द कुमार पङ्क्वग्रस्तमा द्वादशलोचन ॥२६॥
 भुजैर्द्वादशभिर्ध्वज शोभमानोऽभवत्तदा ।
 ईशादेशात्पुन स्नातु कृत्वा परमोज्ज्वला ॥२७॥

ताभि क्षीर यतो दत्ता कार्तिकेय इति स्मृत ।

गर्भपङ्कविलिप्ताङ्गो गङ्गाया स्नापित प्रभु ॥२८॥

उम धीर्य के प्रबल प्रभाव से सभी पाञ्चन के सहस्र हो गये थे । मेरु पर्वत के पार्श्व भाग का विनिर्भेदन करके भगवान् शम्भु का तेज निर्गत हो गया था ॥२२॥ हे द्विजो ! जो भी गङ्गा में निहित तेज था वह सब मित्रवर एक में ही स्थित हो गया था । इसके अनन्तर देव उमा के पति तेज के राशि महादेव श कर ने उस तेज को पिङ्गल वर्ण वाला देखकर गोपित कर लिया था । उसके गोप्यमान होने पर उस मेरु पर्वत में वह अयुत सूर्य की प्रभा के समान हो गया था । एक सहस्र वर्षों के समय व्यतीत होने पर वह कठिन होकर स्कन्दता को प्राप्त हुआ था । इसी कारण से हे मुव्रतो ! तभी से लेकर वह स्कन्द इस नाम से कहे जाते हैं ॥२३॥२४॥२५॥ क्योंकि भगवान् हर से समुत्पन्न हुए हैं अतएव कुमार इस नाम से कहे जाते हैं । स्कन्द—कुमार—पङ्क-वक्त—द्वादशनोचन ये उनके नाम हैं और वे द्वादश भुजाओं से उस समय में परम शोभमान हुए थे । ईश के आदेश स सृष्टि का पुन स्मान करने के निमित्त प्रस्तुत हुई और परम उज्ज्वल हो गयी थी ॥२६॥२७॥ उनके द्वारा ही उनको दूध पिनाया गया था । इसी कारण से वे कार्ति-केय इस नाम से कहे गये हैं । गर्भ के पङ्क से विवर्तित हुए अङ्गो धाने में प्रभु गङ्गा में स्नापित हुए थे ॥२८॥

तप्तचामोदराभाम शरधानयने तदा ।

नाम्ना सहस्रेण तदा कुमारो वेधसा स्तुत ॥२९॥

मुमोच नादमृत्याय सर्वभूतभयवरम् ।

पाताल भेदयित्वा तु तच्छृङ्ग शतधा वृतम् ॥३०॥

सिंहादयोऽपि तत्रम्यास्तेन नादेन मूर्दिता ।

ततस्त श्रीऽमान तु हृष्टा देव शिवात्मजम् ॥३१॥

पिङ्गलो देवदेवेश ज्ञापयामाग शवरम् ।

पदय त्व देवदेवेश श्रीऽमान कुमारवम् ॥३२॥

सूर्यायुतप्रतीकाशमात्मसूनु पडाननम् ।

ज्ञापित पिङ्गलेनेशो वाक्य देव्यै मुदावहम् ।

वरो वरेण्यो वरदो विश्वाकार उवाच ह ॥३२॥

गच्छाव एहि देवेशि मेरी यत्र सुतस्तव ।

पश्यावस्त वराराहे कुमार तु पडाननम् ॥३४॥

पुरा त्वयेष्ट वनकावभास प्रश्याद्रिजे मानसराजहसम् ।

प्रधावमान शतसूर्यकल्प पडानन कार्मुकपाणिमग्न ॥३५॥

उस समय मे तपाये हुए सुवर्ण के समान आभास वाले शरधान वन मे उस समय मे सहस्र नामो के द्वारा कुमार का स्तवन ब्रह्माजी ने किया था ॥३६॥ समस्त प्राणियो को भय करने वाले नाद को उठाकर छोड़ दिया था । पाताल का भेदन करके उस भूङ्ग के सँकड़ा टकड़े हो गये थे ॥३७॥ वहाँ पर स्थित सिंह आदि भी उस नाद से सूदित हो गये थे । इसके अनंतर शिव के पुत्र देव गो भी क्रीड़ा करते हुए देलकर पिङ्गल ने देवदेवेश भगवान् शङ्कर को विज्ञामित किया था—हे देव देवेश्वर ! आप क्रीड़ा करते हुए कुमार को देखिए ॥३९॥४०॥ अयुत (दश सहस्र) सूर्यो के सदृश अपने पुत्र कुमार पडानन के विषय मे पिङ्गल के द्वारा भगवान् ईश ज्ञापित किये गये थे । यह वाक्य देवी के लिये आनन्द के प्रदान करने वाला था । वर—वरोग्य—वरद वीर विश्वाकर्म ने कहा—॥३३॥ ईश्वर ने कहा—हे देवेशि ! आइये, चलें, मेघ पर्वत पर जहाँ आपका पुत्र है । हे वरासे हे ! उस पडानन कुमार को देखें ॥३४॥ हे अद्रिजे ! जैसा कि पहले आपका वनर के समान आभास था ना मानस राजहस आपको बहुत ही प्रिय था उसको अब आप देख लो । शत सूर्य के सदृश दौड़ नगाने वाला और हाथ मे घनुष धारण किए हुए आगे गो ओर देख लीजिए ॥३५॥

समागती स ज्वलनोज्ज्व दृष्ट्वा त्रिलोचनायो जगत् प्रदीपी ।

उवाच वह्निर्वरद कुमार हराम्बिवे दो पितरो तमनी ॥३६॥

त्वामागती द्रष्टुमनन्तवीर्यं व्रजाश्रयेति प्रमयाधिनाथो ।
 गतोऽयं बह्वैर्वचनं निशम्य ततः सुतत्वाग्निरिजाङ्गोऽभूत् ॥३७॥
 त सा पिबन्तः सहुरङ्गसस्थमतृप्यमानः कलहसनादिनी ।
 उमाङ्गमार्थो मदनारिसूनुः करेण तस्मास्तिलवालको तु ॥३८॥
 ममदं शमोश्च भुजङ्गहारजग्राह चन्द्रसः कपर्दसस्थम् ॥३९॥
 पञ्चम्या स्थापितः सोऽयं पट्ट्या पष्ठीप्रियो गृहः ।
 चतुष्पादवती त्यक्त्वा त्रैलोक्यं हन्तुमुद्यतः ॥४०॥
 अवोधयत्तदा बालो जन्तून्स्थावरजङ्गमान् ।
 ववच्छिद्वाङ्गं गिरे शौर्यान्नयत्याशु समानताम् ॥४१॥
 ववर्चित्सिंहान्समाकृष्य पातयामास भूतले ।
 आरुह्याभ्यहनत्पृष्ठे (?) तानेव भ्रामयन्पुनः ॥४२॥

वह ज्वलन समागत हो गया था । जगन् के प्रवीण तीनों लोका के नाथ दोनों को देखकर अग्नि ने बरद कुमार से कहा था—हर और अम्बिका ये दोनों तुम्हारे माता पिता हैं । ३६। अनन्त वीर्य वाले आपको ही अवलोकन करने के लिये ये यहाँ पर समागत हुए हैं आप जाइए और इन दोनों प्रमया के अधिनाथ का समाधाय ग्रहण कीजिए । इसके अनन्तर बह्मि दे बचा का शरण मग्न वह इसके उररान्त गिरिजा के अङ्गगत हो गये थे । ३७। इमं पदचार कल्प हम के समान नाद करने वाली वह देवी ने गोद में बँधे हुए और बार-बार दूध का पान करके भी तृप्ति को न प्राप्त होकर बाले कुमार को देखा था और उमा देवी के गोद में समस्थिता मदनारि के पुत्र कुमार ने उन अपनी माता अम्बिका के तिलक और अलका का मर्दन कर रहे थे । ३८। उम कुमार ने सम्भु प्रभु के भुजङ्गों के हार को ले लिया था और कपर्द में संस्थित चन्द्र को ग्रहण कर लिया था । ३९। वह पञ्चमी में स्थापित हुए थे और पट्टी में गङ्गा पट्टी प्रिय हुए । चतुष्पादवती तो त्याग करके त्रैलोक्य का हनन करने को समुद्यत हो गये थे । ४०। उम भ्रमण में बाध ने स्वाका-जन्म जगत्प्रभो बोधित करता दिया था । वही पञ्चमी शौर्य में वीरि के मङ्गल

को डीघ्र ही समानता को ले आया करते थे । ४१। और कही पर किसी समय में सिंहों को खींचकर भूतल में गिरा दिया करते थे । उनकी पीठ पर आरोहण करके फिर उनको ही श्रामित करा दिया करते थे । ४२।

क्वचिन्नागौ गृहीत्वा तु कराम्या समुखावुभौ ।
 आस्फोटयत्तादाऽत्योन्यं कुम्भाम्या स च लीलया ॥४३॥
 समुत्पत्य समादाय खेचराणामुमासुत ।
 चिक्षेप सहसा बालो विमानान्यवनीतले ॥४४॥
 पुनरुत्पत्य वेगेन प्रेक्ष्यमाणं खमण्डले ।
 मार्गं ररोध सूर्येन्दोर्ग्रहाणां च तथैव स ॥४५॥
 उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि इतश्चेतश्च सोऽक्षिपत् ।
 पर्वताश्च विशेपेण नदीश्चोन्मार्गतोऽनपत् ॥४६॥
 प्रासितं तु जगत्सर्वं दामोदरपदनये ।
 ततस्ते भृशमुद्विग्ना शक्र शत्रुप्रतापनम् ॥४७॥
 ऊर्ध्वगत्वा द्विजश्रेष्ठा भृता वाक्यमिदं तदा ।
 अयमकायुतप्रह्यो बालो नो हन्ति वृनहन् ॥४८॥
 तवैष राज्यहर्ता वै भविष्यति न संशयः ।
 पराक्रमाद्वलाच्छक्रं तथोत्साहान्च तेजस ॥४९॥

वही पर दो नागों को अपने सामने दोनों को स्थित करके हाथों से एक दूसरे से आस्फोटित कर दिया करते थे अर्थात् दोनों की टक्कर बिला दिया करते थे । दोनों को भिड़ाकर स्फोटित कर देना उनकी एक लीला मात्र ही थी । ४३। वह उमा सुत ऊपर को उछल कर खेचरों को पकड़ लाते थे और वह बालक कुमार सहसा ही विमानों को भूतल पर प्रक्षिप्त कर दिया करते थे । ४४। फिर एक उछाल मारकर वे वेग के साथ आकाश गण्डल में दृष्टिपात करते हुए सूर्य और चन्द्र का तथा अन्य ग्रहों के भागों को रुद्ध कर दिया करते थे । ४५। मेघ पर्वत के शिखरों को उखाड़कर इधर-उधर वह कुमार फेंक दिया करते थे ।

विशेष रूप से पाँतो की और नदियों को उन मार्गों में डालकर ला दिया करते थे । ४६। दामोदर के पत्रत्रय में अर्थात् त्रिलोकी में सम्पूर्ण जगत् को उन्होंने आसित कर दिया था । इसके अनन्तर सभी बहुत ही उद्विग्न हो उठे थे और सन्तुओं को प्रतापन देने वाले इन्द्रदेव के समीप में पहुँच गये थे और उनसे हे द्विज थोड़ो ! उस समय में यह वाक्य बोले—हे वृत्रहन् ! यह अयुत अर्कों से तुल्य बालक हमको हनन करता है । ४७। ४८। यह आपके राज्य का भी हरण कर्त्ता होगा—इसमें कुछ भी शंका नहीं है । यह अपने पराक्रम से—अपने बल से तथा तेज के समुत्साह से आपके राज्यासन का भी कर्त्ता होगा । ४९।

नून शतगुणेनायमधिकश्चेह दृश्यते ।

यदि सूदयसे नाय तत्त्व सुखमवाप्स्यसि । ५०।

करिष्यसि वचोऽस्माकं तव राज्यं भविष्यति ।

उपेक्षा नैव कर्तव्या शिशुं मत्वा पुरंदर । ५१।

एतद्विचाम यत्नेन ततो बालं निपूदय ।

एवमुक्तस्तत्तरतस्तु भूतव्रतं पुरंदर ॥

उवाच वचनं दलक्षणं तथा धर्मपरायणम् । ५२।

कथमुक्तमिदं भूना बालस्य हननं प्रति ।

धर्मघ्नं पापसंपातं कीर्तिघ्नं चैव चराचरे । ५३।

अथ यत्तामभिधास्यामि धर्मशास्त्रस्य निश्चितम् ।

अपिनिश्च पुराऽऽख्यातं पुराणेषु चराचरा । ५४।

आतुरं भीरुमुद्विग्नमेकस्य शरणागतम् ।

स्त्रियमाप्यथवा बालमन्धं पङ्गुं तपस्विनम् । ५५।

लिजपन्तं तयोन्मत्तं विश्वन्तं ब्राह्मणं तथा ।

पतितं प्रपलायन्तं वामामक्तं निरायुधम् । ५६।

यह बालक तो निश्चिन्त रूप में भी गुने से भी बड़ों अधिक है—
ऐसा यहाँ पर दिखनाई देना है । हे नाय ! यदि आप मूर्खित करते हैं

को ढीछ ही समानता को ले आया करते थे । ४१। और कही पर किसी समय में सिंहों को खींचकर भूतल में गिरा दिया करते थे । उनकी पीठ पर आरोहण करके फिर उनको ही श्रामित करा दिया करते थे । ४२।

क्वचिन्नागौ गृहीत्वा तु कराम्या समुखावुमौ ।
 आस्फोटयत्तादाऽत्योन्य कुम्भाम्या स च लीलया ॥४३॥
 समुत्पत्य समादाय खेचराणामुमासुत ।
 चिक्षेप सहसा बालो विमानान्यवनीतले ॥४४॥
 पुनस्तपस्य वेगेन प्रेक्ष्यमाण खमण्डले ।
 मार्गं रुरोध सूर्येन्दोर्ग्रहाणा च तथैव स ॥४५॥
 उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि इतश्चेतश्च सोऽक्षिपत् ।
 पर्वताश्च विशेषेण नदीञ्चोन्मागतोऽनपत् ॥४६॥
 प्रासित तु जगत्सर्वं दामोदरपदत्रये ।
 ततस्ते भृशमृद्विग्ना शक्र शत्रुप्रतापनम् ॥४७॥
 ऊचुर्गत्वा द्विजश्रेष्ठा भृता वाक्यमिदं तदा ।
 अयमकायुतप्रलयो बालो नो हन्ति वृनहन् ॥४८॥
 तवैष राज्यहर्ता वै भविष्यति न सशय ।
 पराक्रमाद्विलाच्छक्र तथोत्साहान्च तेजस ॥४९॥

पही पर दो नागों को अपने सामने दोनों को स्थित करके हाथों से एक दूसरे से आस्फोटित कर दिया करते थे अर्थात् दोनों की टक्कर खिला दिया करते थे । दोनों को मिटाकर स्फोटित कर देना उनकी एक लीला मात्र ही थी । ४३। वह उमा सुत ऊपर को उछल कर खेचरों को पकड़ लाते थे और वह बालक कुमार सहसा ही विमानों को भूतल पर प्रक्षिप्त कर दिया करते थे । ४४। फिर एक उद्धाल मारकर वे वेग में साथ आकाश मण्डल में दृष्टिपान करते हुए सूर्य और चन्द्र का तथा अन्य ग्रहों के मार्गों को रुद्ध कर दिया करते थे । ४५। मेघ पर्वत के शिखरों को उखाटकर इधर-उधर वह कुमार फेंक दिया करते थे ।

विशेष रूप से पाँतो को और नदियों को उन मार्गों में डालकर ला दिया करते थे ४६। दामोदर के पत्रत्रय में अर्थात् त्रिलोकी में सम्पूर्ण जगत् को उन्होंने आसित कर दिया था । इसके अनन्तर सभी बहुत ही उद्विग्न हो उठे थे और शत्रुओं को प्रतापन देने वाले इन्द्रदेव के समीप में पहुँच गये थे और उनसे हे द्विज थोड़ो ! उस समय में यह वाक्य बोले—हे धृतराष्ट्र ! यह अयुक्त अर्थों से तुल्य बालक हमको हनन करता है । ४७। ४८। यह आपके राज्य का भी हरण कर्त्ता होगा—इतम कुछ भी संशय नहीं है । यह अपने पराक्रम से—अपने बल से तथा तेज के समुत्साह से आपके राज्यासन का भी कर्त्ता होगा । ४९।

नून शतगुणेनायमधिकश्चेह दृश्यते ।

यदि सूदयसे नाथ तत्त्व सुखमवाप्स्यसि । ५०।

करिष्यसि वचोऽस्माक तव राज्य भविष्यति ।

उपेक्षा नैव कर्तव्या शिशु मत्वा पुरंदर । ५१।

एतद्विचाराय यत्नेन ततो बाल निपूदय ।

एवमुक्तस्ततस्तेस्तु भूतव्रतं पुरंदर ॥

उवाच वचनं दलक्षणं तेषां धर्मपरायणम् । ५२।

कथमुक्तमिदं भूता बालस्य हननं प्रति ।

धर्मघ्नं पापसघातं कीर्तिघ्नं वै चराचरे । ५३।

अथ तामभिधास्यामि धर्मशास्त्रस्य निश्चितम् ।

अपि मिदं च पुराऽऽख्यातं पुराणेषु चराचरा । ५४।

आतुरं भीरुमुद्विग्नमेकस्थं शरणागतम् ।

स्त्रियमाप्यथवा बालमन्धं पङ्गुं तपस्विनम् । ५५।

लिजपन्तं तथोन्मत्तं विश्वन्तं ब्राह्मणं तथा ।

पतितं प्रपलायन्तं कामासक्तं निरायुधम् । ५६।

यह बालक तो निश्चित रूप से सौ गुने से भी बड़ी अधिक है—
ऐसा यहाँ पर दिखाताई देता है । हे नाथ ! यदि आप सूचित करते हैं

ता तभी आप सुख प्राप्त करेंगे । ५०। आप यदि हमारे द्वारा कथित वचन को करेंगे तभी आपका राज्य रहेगा । हे पुरन्दर ! इसको बहुत छोटा सा शिशु समझ कर इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । ५१। यह विचार करके यत्नपूर्वक इस बालक का निपूदन कर दीजिये । इस प्रकार से इसके पश्चात् उन भूतो के समुदायो के द्वारा कहे गये पुरन्दर ने उनसे धर्म परायण और परम इलक्षण वचन कहा था । ५२। इन्द्र देव ने कहा—हे भूतो ! बालक के हनन करने के विषय में यह आपने कैसे कहा है ? इसका हनन करना तो धर्म का घातक—पापों का सघात और चराचर के कीर्ति का नाशक ही है । ५३। आप लोग श्रवण कीजिएगा, मैं आपको धर्मशास्त्र का जो निश्चित सिद्धान्त है उसको बतलाऊँगा । चराचर श्रुतियों ने पहिले पुराणों में कहा है । ५४। वे मनुष्य महाभूत ही होते हैं जो किसी भी आतुर को—भीरु को—उद्विग्न को—एक स्थान पर स्थित को—शरण में समागत हुए को—स्त्री—बालक—अन्धा—पगला—तपस्वी—विलाप करने वाले को—उन्मत्त—विश्वास में स्थित—ब्राह्मण—पतित—पलायमान—काम में समा सक्त—बिना हथियार वाले को मारेंगे वे नरक के सागर से ही गर्त में स्थित हाथी के तरह से ही अम्युस्थित होंगे । ५५। ५६।

नग्न दीन तथा वृद्ध नखरोमसममन्वितम् ।
 मुषनवेश तथा मत्त सुप्त च भुवनीकसः । ५७।
 मूढविष्यन्ति ये नून मूढास्ते नरकाणवात् ।
 अनुत्थाना भविष्यन्ति गर्तस्थ कुक्षरो यथा । ५८।
 तस्माद्द्व्यजध्व शरणयस क्षमुमुतो गुह ।
 नाह बालवध कर्तुं मुत्सहे सचराचरे । ५९।
 एवमुक्ते तु क्षणेन भूतास्ते भृशदुःखिताः ।
 श्लोथशदीपन चानय पुनरुपुशचराचराः । ६०।
 गर्भो दितेर्यथा क्षक सरम्भात्पूदितस्त्वया ।
 तदा नीतिगता कुत्र दारुणे गर्भघातने । ६१।

अशक्यामिति मत्वेव नीतिमानसि मानद ।

अशक्यकर्मणि विभो नीतिमान्युरूपो भवेत् । ६२।

कश्च नाय नर शूरो यो बाल योचयेद्रसो ।

अरि शक्रशतैस्तस्य वज्रकोटिनिगतनै । ६३।

जो नग्न—दीन—वृद्ध—नख और रोमों में समन्वित को—मुक्त केशों वालों को—यज्ञ—सुष्म को भुवनौक्य मारेंगे वे नारकीय प्राणी ही होंगे । इस कारण से आप लोग उन्हीं की क्षरणागति में जाइये जहाँ पर यह भगवान् क्षम्भु के पुत्र गुह विराजमान हैं । मैं तो इस क्षराचर में बालक के वध करने का उत्साह ही नहीं करता हूँ । १५७। ६८। ५९। इस प्रकार से इन्द्र देव के द्वारा कहे जाने पर वे समस्त भूत अत्यन्ताधिक दुःखित हो गये थे । वे क्षराचर पुत्र क्रोध के सदीप्त करने वाला वाक्य बोले थे । ६०। भूता ने कहा—हे शक्र ? आपने सरम्भ में आकर दिती के गर्भ को जिस तरह से सूक्ष्म विद्या था उस समय मैं आपकी यह घमं नीति उस दारुण गर्भ को परतन करने के समय में कहा खली गयी थी अर्थात् उस समय मैं आपने इस घमं शास्त्र के सिद्धान्त पर आपने क्यों नहीं विचार किया था जो अत्र हमको बता रहे हैं । ६१। यह आपके द्वारा किया ही नहीं जा सकता है—यह मानकर ही इस समय में आप घमं नीति के मानने वाले बने रहे हैं । हे मानद ! जो कर्म शक्ति क बाहिर होता है हे विभा ! उसी क विषय में पुरुष नीति के मानने वाला बना करता है । ६२। कौन मनुष्य शूरवीर है जो रण में उस बालक के साथ युद्ध करेगा आप तो हैं ही क्या ? संजडा इन्द्र भी बरोडो बच्चों के नियान्तों से भी उस बालक के एक भी रोम का निपटान नहीं कर सकते । ६३।

अप्येकमपि रोमाग्र पातिनु नैव शक्यते ।

एवमुक्तस्ततस्तस्तु भूतव्रात पुरंदर । ६४।

आज्यधाराभिपिक्तोऽग्नियथैव प्रज्वलस्तथा ।

उवाचेद वचस्तान्स क्रोयन्नाह्निप्रदोपिन । ६५।

वज्रमुद्यम्य हस्तेन वृत्रहा कुलिशायुध ।६६।
 पूरा मया यथा गर्भो धानितश्च चराचरा ।
 दिते काय समाविश्य तथेदानीं निहन्यते ।६७।
 अथ गत्वा हनिष्यामि पतङ्गमिव वह्निना ।
 वज्र हस्ते समादाय आहवे प्रसहेत क ।६८।
 एवमुक्त्वा ततः शक्र कोधानलसमीरित ।
 आज्ञापयत्तदा विप्रः साध्यान्देवान्दिवाकरान् ।६९।
 शरधानं गमिष्यामि वधार्थं बालकस्य च ।
 हसकुन्देन्दुवर्णाभं चतुर्दन्तं महागजम् ।७०।

यह पुरन्दर जब उन मृतों के समुदाय के द्वारा इस प्रकार से कहा गया था तो घृत की धाराओं से अभिषिक्त अग्नि के ही समान प्रज्वलित होते हुए क्रोध की अग्नि से दीपित होकर उनसे यह वचन बोले—उस समय मे वृत्रहा ने कुलिश के आयुध को धारण करते हुए हाथ मे वज्र को उठाकर ही वचन कहा था—इन्द्र देव ने कहा—पूर्व मे मैंने हे चराचरो ! जिस प्रकार से गर्भ का धात किया था और दिति के शरीर मे मैंने समावेश किया था उसी प्रकार से इस समय मैं भी निहनन किया जाता है ।६४।६७। अग्नि के द्वारा पतङ्ग के ही समान जाकर मार दूंगा । वज्र हाथ मे ग्रहण करके जब मैं सम्मुख खड़ा होऊंगा तो मेरे प्रहार को कौन सहन कर सकता है ? अर्थात् किसी मे भी वज्र के प्रहार को सहन करने की शक्ति नहीं है ।६८। इस प्रकार से कहकर वह महेंद्र क्रोध की अग्नि से समीरित हो गये थे । हे विप्रो ! उसी समय मे उसने साध्यों को—देवों को और दिवाकर आदि को आज्ञा दी थी ।६९। मैं अब शरधान वन मे उस बालक के वध करके लिये गमन करूंगा जो हस्त—कुन्द और चन्द्रमा के तुल्य वर्ण की आभा वाला है—चार दान्तों वाला है और महान् वज्र के समान है ।७०।

आनयध्वं ममाग्रे तु करीन्द्रं मम बल्लभम् ।

जलधे (धि) रिव गम्भीर दीर्घहस्तं घनस्वनम् ।७१।

दैत्यदानवरवक्तेन किलन्नदपट्ट भयावहम् ।

तदादेशात्सुरैस्तूर्ण सर्वायुधसमन्वित ॥७२॥

निवेदित स शक्राय तमारुह्य पुरदर ।

विश्वदैवैश्च साध्यैश्च वसुभिश्च मरुन्दणै ॥७३॥

आदित्यैरश्विनीभ्या च ययौ स्कन्दवचाय सः ।

वियन्मण्डलमास्थाय स्तूयमानश्चराचरै ॥७४॥

नृत्यमानाप्सरोभिश्च वाशमानैश्च किनरै ।

गीयमानश्च गन्धर्वैः सुगीतं गीतशालिभि ॥७५॥

नदद्भिश्च महासिंहैर्गर्जाद्भिश्च गजस्रमै ।

हरिभिर्होपमाणैश्च वायुवेगमहारथै ॥७६॥

पताकाभिर्जयन्तीभिर्घ्वंजैश्छत्रैश्च चामरै ।

एवमाद्यैरनेकैश्च नन्दीश्वर इवापर ॥७७॥

दोघूयमानश्चमरैश्च दिव्यैर्जंगीयमान सुरकिनरीभि ।

पेपीयमान सुरमुन्दरीभि कामातुराभिर्नयनैरजस्रम् ॥७८॥

सपूज्यमानो मुनिसिद्धिसन्नेमुं दाऽन्वितो वज्रधर किरीटी ।

कुमारमुद्दिश्य गतोऽय देगाद्धरिहरिर्वै म(८)नुजान्यथेव ॥७९॥

अब मेरे सामने मेरा प्रिय जो सब है उसको मैं आजो जिस पर मैं समाप्त होऊँगा वह मेरा प्रिय सब जलधि के समान गम्भीर—दीर्घ भूँड वाला और घनेस्वम (ध्वनि) वाला है ॥७१॥ दैत्यो जोर दानवा के रघिर से उसकी डाढ़ विपन्न हो रही है और बहुत ही भणायू है । उसने आदेश से मुरगण से सुरन्त ही सब तैयारी कर दी थी और इन्द्र सभी आयुधों से समन्वित हो गया था ॥७१॥७२॥ उसको लाकर इन्द्र देव के लिये निवेदित कर दिया था और फिर पुरन्दर देव ने उस पर तमारोहण किया था तथा विश्वदेवता—साध्य—वसुगण—मरुद्गण—आदित्य और अश्विनी कुमारों के साथ स्कन्द देव के यथ करने के लिये गया था । यह जब विगन्मण्डल पर मग्न स्थित हुआ था तो सब पराचरों के द्वारा स्तुति दिया गया था । ॥७३॥७४॥ नृत्य करनी हुई अप्सराओं के द्वारा—यादों के—यजाने वाले विष्णुओं के द्वारा गन्धर्वों के द्वारा गीयमान होने हुए तथा दान करने वालों के मुन्दर गीतों के द्वारा गान लिये गये

थे । महासिंहों की गर्जनों से युक्त और गर्जना करने वाले महागर्जों के साथ समन्वित होकर । वह ह्येषमाण अश्वों से युक्त तथा वायु के समान वेग वाले महारथों से सयुक्त था । जयन्ती पताकाओं के द्वारा—ध्वज और चामरों से समन्वित होकर इस प्रकार से अनेकों से युक्त होकर वह दूमरे मन्दीश्वर के ही तुल्य हो गये थे । चमर उस समय में उसके ऊपर धुराये जा रहे थे और किन्नरियाँ सुरों का गान कर रही थीं । जो काम से आतुर सुरसुन्दरियाँ थी उनके नेत्रों के द्वारा निरन्तर पान किये गये थे । ७५ । ७८ । मुनि और सिद्धों के समुदाया के द्वारा वह भली भाँति पूज्यमान हो रहे थे—वस्त्र कें धारण करने वाले—किरीटधारी आनन्द से समन्वित हो रहे थे । वह हरि हरि के ही ममान जैसे मनुष्य के ऊपर चढ़ाई कर रहे हो उसी तरह में कुमार का उद्देश्य लेकर वह इन्द्रदेव गये थे । ७६ ।

॥ नारद-इन्द्र संवादादि कथन ॥

एव गत्वा सहस्राक्षो यत्राऽऽस्ते पार्वतीमुत ।
 बाल सूर्यामुतप्रभ्य तमपश्यच्छचीपति ॥
 प्रलयान्निजयाकार दृष्ट्वा नारदमब्रवीत् ॥१॥
 इदं किं भाति देवपे मेरो दत्तगुणोच्छ्रयम् ।
 तेजसा व्याप्तभुवन सर्वभूतभयङ्करम् ॥२॥
 एव शक्रवच श्रुत्वा भगवान्पद्मभूमुत ।
 ऐरावतगजाह्व दक्षीणतिमथान्नवीत् ॥३॥
 योऽसौ देव त्वया न्यस्ती गर्भश्चैव सहामरं ।
 तस्यैवैष प्रभावोऽयं नून देव शतक्रतो ।४।
 भाम्बाराणां न पुञ्जोऽयं नैव पर्वतमचय ।
 चालेनोत्पाद्यमानेन सह दीप्य रञ्जित ।५।

अधो योजनसस्याभि सहस्राण्येव षोडश ।
चनुरशोतिस्तेघो द्वाविंशाद्विस्तर स्मृत ।६।
यगिर्दि र सकलोऽय तु मेर काञ्चनता गत ।
तत्तीज स्वन्दना यात सहस्राद्वैर्गर्तस्तथा ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा था—इस प्रकार से सहस्रांश इन्द्र जाकर वहाँ पर पहुँचे जहाँ पर पावती व सुत कुमार विद्यमान थे शची पति ने उस भयुत सूर्यों के समान प्रख्य उस बालक को रखा था । प्रलय काल की अग्नि व समुदाय क समान आकार वाले उसको देखकर वह महेंद्रदेव नारदजी बोल ।१। इन्द्रदेव न कहा—हे देवर्षे ! यह मरु पर्वत की ऊँचाई से भी शतगुण ऊँचाई वाला क्या आनासित हो रहा है ? जिसके तेज से समस्त भुवन व्याप्त हो रहा है और जो सब भूता के लिये महाद् भयङ्कर है ।२। इस प्रकार के इन्द्र के वचन का श्रवण करके ब्रह्माजी के पुत्र भगवान् नारदजी न ऐरावत हाथी पर बैठे हुए शचीपति न कहा था ।३। श्री दक्षर्षि नारदजी न कहा—हे देव ! अमरा के साथ गर्भों से जो यह न्यस्त किया गया था ह शतक्रतो ! उसी का यह निश्चित प्रभाव है ।४। यह भास्करा का समुदाय है और पर्वता का सचय नहीं है । देवा क साथ उत्तमधमान बालक के द्वारा यह रजित हो गया है ।५। नीचे की बार सानह सहस्र योजना की सस्या से युक्त है और चौरासी योजना की ऊँचाई है तथा बत्तीस याजना का विस्तार है ।६। यह सम्पूर्ण पर्वत काञ्चनता को प्राप्त हो गया है । वह तन स्कन्दता को एक सहस्र अस्या क समाप्त होने पर प्राप्त हुए ह ।७।

चतुर्थ्या साकृतिर्देव पञ्चम्यामङ्गवाँस्तत ।
पष्ठ्या पद्म्या यथा नेप त्रैलोक्य विजयप्यति ।८।
त्वया सहाय सप्तम्या पालयिष्यति वा पुन ।
त्व तु नून न शक्तोऽसि जेतु वर्षशतैरपि ॥९॥
कुमार वरद देव पार्णत्यानन्दवर्जनम् ।
नानाप्रहरणोपेत नानाभरणभूषितम् ॥१०॥

मातृभिर्गणवृन्दैश्च सेव्यमानमुमासुतम् ।
 एव सजलमानोऽसौ जम्भारिर्बालक प्रति ।११।
 वज्र मुमोच वृत्रारि स्फुलिङ्गोद्गारिभीषणम् ।
 तृणवन्मन्यमानोऽसौ वज्र तत्पार्श्वतीगुत ।१२।
 शरेणैकेन विव्याध पपात च स मूर्च्छित ।
 पुनरन्य समादाय शरं ज्वलनमानभम् ।१३।
 छत्र ध्वज पताकाश्च हरेश्चिच्छेद पणमुख ।
 बिभेदान्मन तीक्ष्णेन हस्तौ वै वज्रिणो गुह ॥१४॥

हे देव ! चतुर्थी में आकृति से युक्त हुए थे और पंचमी में वह फिर अङ्गो वाला हो गया था । पष्ठी में पदों से युक्त हो गया था—जैसे कि यह त्रैलोक्य पर विजय को प्राप्त करेगा । ८। सप्तमी में फिर आपके साथ सहाय का पालन करे मे । आप चढ़ाई करने के लिये तैयार होकर जो यहाँ पर आये है सो आप तो सी वर्षों में भी इनको जीत नहीं सकते हैं । ९। कुमार वरदान देने वाले देव पार्वती के आनन्द के वर्धन करने वाले हैं । ये अनेक प्रहरणों से समन्वित हैं तथा अनेक आमरणों से भी विभूषित हैं । यह उमा के सुत माताओं और गण वृन्दा के द्वारा सेव्यमान हैं । इस प्रकार से अच्छी तरह से बहा गया भी उस जम्भारि ने उस बालक के प्रति धृत्रादि ने वज्र का मोचन किया था जो स्फुलिङ्गों के उद्धरण करने वाला और महान् भीषण था । उस पार्वती के सुत ने उस वज्र को एक तिनके के ही 'समान मान लिया था । १०। ११। १२। उस कुमार ने एक ही शर से विद्ध कर दिया था और वह इन्द्र मूर्च्छित होकर गिर गया था । फिर दूसरे अग्नि के समान शर को लेकर पणमुख ने इन्द्र के छत्र-ध्वज और पताकाओं का छेदन कर दिया था । फिर गुह ने अन्य एक तीक्ष्ण शर से इन्द्र के हाथ का भेदन कर दिया था । १३। १४।

शरेणाऽऽदित्यतुल्येन रघु शम्भुर्याञ्जहो ।

पुनर्गण समादाय त जघान शतक्रुम् ।१५।

अपरेण तु तीक्ष्णेन मुकुटं तु तथा हरे ।
 शरेण वह्नितुल्येन निच्छेद च स लीलया ॥१६॥
 यम च पञ्चभिर्वाणैर्निहति दशभिर्गुह ।
 दशपञ्चशरैराशु वरुण च विभेद स ॥१७॥
 विंशत्या वायुदेव च रवि च दशपञ्चभि ।
 त्रिंशद्भिः सोमराजान ताडयित्वा रणे पुन ॥१८॥
 शक्र पञ्चशरैराशु शरैश्च प्राणहारिभि ।
 अन्यानापि सुरास्स्कन्दत्रिभिर्द्विपञ्चभि शरै ॥१९॥
 शूरो नाद प्रमुञ्चन् शक्र दूत्राय शम्भुज ।
 वसुभिश्च तथाऽऽदित्यैर्मरुद्भिश्च महाबलै ॥२०॥
 पृत शस्त्रकरैर्बाल सिंहै शरभराडिब ।
 ततस्तानागतान्दृष्ट्वा देवाञ्छङ्करवल्गव ॥२१॥

आदित्य के तुल्य शर से जैसे युद्ध में रुद्र को भगवान् शम्भु हनन किया करते हैं वैसे ही पुन वाण ग्रहण करके उस शतक्रतु का विह्वल कर दिया था । १५। दूसरे तीक्ष्ण वाण से जो अग्नि के ही समान शर था उन्होंने ने लीला ही से हरि के मुकुट का छेदन कर दिया था । १६। गुह ने पाँच बाणों से यमराज का—दम सरो से निहर्तृति को और पन्द्रह शरों से वरुण का भेदन कर दिया था । १७। बीस शरों से वायु देव और पन्द्रह से रविदेव—तीस बाणों से सोम राजा का रणस्थल में तारण किया था । १८। फिर बहुत ही शीघ्र पाँच सौ बाणों से जो कि प्राणों के हरण करने वाले थे इन्द्रदेव को तथा अन्य सुरों को भी तीन-सौ पाँच शरों से स्कन्द देव ने आघात किया था । शम्भु के आत्मज शूर ने नाद को छोड़ते हुए शक्र को विद्रुत कर दिया था । वसुगण—आदित्य—महाबलशाली मरुद्गणों से परिकृत बालक ने हाथों में शस्त्र ग्रहण करने वाले सिंहों के सहित शरभराट् की ही भाँति फिर आगत हुए देवों को देखकर शङ्कर भगवान् का बल्गव ने धुद्र मृगों को बँसरी ही के समान दिवौकरी (देवा) को वहाँ से भगा दिया था यदेव

कर आमद्रुत कर दिया था । पुन इन्द्र ने वज्र के द्वारा स्कन्द के ऊपर प्रहार किया था । १६।२०।२१।

केसरीव मृगान्सुद्रान्दुद्राव च दिवौकस ।

पुन. स्कन्द सहस्राक्षो वज्रेण तमताडयत् ॥२२

ताडिते तु ततस्तस्मादुत्पन्नाश्चारुभूर्तयः ।

प्रयो देवाश्च वेदाश्च लोकाश्चाग्निदिवाकराः ॥२३

ततश्चेव सहस्राक्षं बृहद्गुरुबृहस्पति (?) ।

देवमन्त्री महाप्राज्ञो बृहस्पतिरथान्नवीत् ॥२४

अल युद्धेन देवेश महादेवस्य सूनुना ।

हित तवोपदेक्ष्येऽहं सहस्राक्षं शृणुष्व तत् ॥२५

यदीप्ससि मुखं भोक्तुं कुरुष्व वचनं मम ।

अनेन सह संप्रीतिं कृत्वा राज्यमकण्ठकम् ॥२६

भुङ्क्ष्व त्वं निश्चलं कृत्वा दानवाश्च निपूदय ।

यस्य वज्राभिघातेन नार्तिः स्वल्पाऽपि जायते ॥२७

हन्तव्यः स कथं शक्रं शतसहस्रैर्भवादृशः ॥२८

उसके ताड़ित होने पर उनसे सुन्दर आत्ममूर्तियाँ समुत्पन्न होगयी थी । तीनदेव वेद, लोक, अग्नि और दिवाकर हुए थे । इसके अनन्तर बृहद् गुरु बृहस्पति जी ने जो देवों के मन्त्री, महान् पण्डित थे, इन्द्रदेव से बोले ॥२२-२४॥ बृहस्पति जी ने कहा—हे देवेश्वर ! महादेवजी के पुत्र के साथ युद्ध मत करो । मैं आपके हित की उपेक्षा करूँगा । हे सहस्राक्ष ! आग इसका श्रवण कीजिए ॥२५॥ यदि आप मुझ का उपभोग करना चाहते हैं तो मेरे वचन वचन का पूर्णतया आप पालन कीजिए । हम स्कन्ददेव के साथ अच्छी प्रीति करके ही आपका राज्य कण्ठक रहित रहेगा । और उस राज्य का उपभोग करिए । आप अपने राज्यासन के निश्चल करके ही दानवों का विपूदन कर डालिए । जिसका ऐसे अमोघ वज्र के आघात से भी निश्चिन्मात्र दुःख नहीं होगा है हे शक्र ! वह कैसे मारे जाने के योग्य हो सकता है । आप अकेले की घन

हो क्या सकती है आप जैसे सौ भी हो तो भी इनको नहीं मार सकते हैं ॥२५-२८॥

श्रुत्वा तस्य वचः अक्रस्तदा सुरगुरोर्द्विजाः ।

तमेव शरणं प्रायात्कुमारं पार्वतीसुतम् ॥२९

प्रसीद मे त्वं शरणगतस्य पादौ तवाहं शिरसा वहामि ।

मुराधिरस्त्वं भव शर्वसूनो गृहाण राज्यं मम शम्भुकल्प ॥३०

एषोऽञ्जलिः पद्भ्योऽङ्गुलीनां कृतोत्तमाङ्गः (?) जहि मम्युमुग्र ।

सता हि कोपः प्रणतेषु नित्यं विनाशमेत्यायमनः सुसिद्धम् ॥३१

अथेन्द्रवचनं श्रुत्वा भगवान्पञ्चमुखस्तदा ।

अब्रवीत्करणविष्टः शक्रं प्रति मुनीश्वराः ॥३२

करोमि किमहं राज्यं भोगैश्च प्राकृतं रत्नम् ।

अपर्याप्तं न मे किञ्चिदस्ति पित्रोः प्रसादतः ॥३३

निष्कण्ठकं त्वमेवेहं राज्यं कुरु शचीपते ।

मम सख्येन मकलाञ्छन्नं स्रष्टुं हि पुरंदर ॥३४

एवं स्कन्दवचः श्रुत्वा पुनराहं शचीपतिः ।

भगवन्तापरः कश्चिद्देवानां विदितो बली ॥३५

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजो ! उस समय में महेश्वर देव ने उन गृहस्पति जी के वचन को सुनकर जोकि सभी सुरों के गुरु थे तुरन्त ही पार्वती के सुत कुमार स्कन्द की शरण में चला गया था ॥२९॥ इन्द्रदेव ने कहा—हे भगवन् ! आप मुझ शरण में आये हुए प्रसन्न हो जाइये । मैं आपके चरणों की शिर के बल वहन करता हूँ हे शर्वसूनो ! आप सब सुरों के अधिप हो जाइए । हे शम्भुदेव के महेश ! आप मेरे राज्य को भी ग्रहण कीजिए ॥३०॥ हे पद्भ्यो के तुल्य सुन्दर नेत्रों वाले ! मैं यह आप को हाथ जोड़ रहा हूँ । इस वृत्त उत्तमाङ्ग में उपमन्यु को (क्रोध को) त्याग दीजिए । श्रेष्ठ मन वालों की यह बात परम प्रसिद्ध है कि सज्जनों का क्रोध प्रणत भक्तों के ऊपर नित्य ही विनाश को प्राप्त हो जाया करता है ॥३१॥ इसके अनन्तर इन्द्र के इन वचनों का श्रवण

करके उस समय मे भगवान् पण्मुख करुणा से आविष्ट होते हुए हे मुनी
 श्वरो ! कहने लगे ॥३२॥ स्कन्ददेव ने कहा—मैं आपके राज्य को
 ग्रहण करके क्या करूंगा मैं इन प्राकृत भोगों को नहीं चाहता हूँ । मेरे
 माता पिता के प्रमाद से कुछ भी पदार्थ मेरे लिये अपर्याप्त नहीं है ।
 हे शशीपते ! आप ही अपने राज्य का सुख निष्कटक रूप से भोगिये ।
 हे पुरन्दर ! मेरे साथ सख्यमान रखने से आप अपने समस्त शत्रुओं
 को मार भगायेंगे ॥३३॥३४॥ इस प्रकार से कथित भगवान् स्कन्ददेव
 के वचन का श्रवण करके इन्द्र ने पुनः कहा—हे भगवन् ! दूसरा कोई
 बलशाली देवों को विदित नहीं है ॥३५॥

तस्मात्कुरु त्वमेयेह राज्यमीश्वरनन्दन ।

क्व बाल क्व च सग्रामः क्व नीतिः क्व पराक्रम ॥३६॥

क्व ज्ञानमतुल देव क्व मतिः क्व च सौम्यता ।

क्व माया क्व च दाक्षिण्य क्व शान्तिः क्व प्रसादता ॥३७॥

अल त्वमेव राज्यस्य गुणैरेभिरुदीरित ।

स्वरूपं स्वगुणैस्त्व हि वन्दिभिश्चारणस्तथा ॥३८॥

विद्याघरैश्च यक्षैश्च विविधैर्गुणकोटिभिः ।

स्तूयमानोऽमरैः सिद्धैर्मन्धर्वाप्सरसा गणैः ॥३९॥

अहं सेनापतिर्देव भवामि भवनन्दन ।

तिष्ठस्वोपरि कृत्स्नस्य सैलोक्य भुङ्क्स्व पण्मुख ॥४०॥

सर्वग सर्वभूतस्त्व यथा देवो महेश्वर ।

एव शक्रवच्च श्रुत्वा पुनः प्राहाम्बिकासुत ॥४१॥

हे ईश्वरनन्दन ! इस कारण से यहाँ पर आप ही राज्य शासन कीजिए ।
 यहाँ तो बालक और कहा सग्राम—वहाँ नीति और यहाँ पराक्रम है । कहीं पर
 अतुल ज्ञान हे देव ! कहीं पर मति और कहीं पर सौम्यता, कहीं माया और
 यहीं दाक्षिण्य, शान्ति तथा प्रसादता है । इन उत्तम गुणों के द्वारा तो
 आप ही राज्य के करने के लिये पूर्णतया उद्धारित होते हैं । आप अपने
 स्वरूपों से, अपने सद्गुणों से राज्य करने के योग्य हैं । बन्दी, चारण,

विद्याधर, यक्ष और विविध गुण कोटियों के द्वारा स्तूयमान हैं तथा
अमर, सिद्ध, गन्धर्व और [अप्सराओं] के गणा के स्तुत हैं । हे देव । हे
भवनन्दन । मैं आपका सेनापति हो जाऊँगा । हे पण्णमुख । सबके
ऊपर आप स्थित हो जाइये और इस धौलोक्य का उपभोग करिए ।
आप तो सर्वत्र गमन कर्त्तृवाण, सर्वभूत स्वरूप हैं जैसे देव महेश्वर हैं ।
ऐसे महेश्वर के वचन का ध्वनि करके पुनः अश्विना सुत बोले
॥३७-४१॥

अभय शक्र मा भैषी कुरु राज्यमकण्टकम् ।
इन्द्रस्त्व देवराजस्तव त्वमेव जगत् प्रभु ॥४२
दपंगर्वलोदीर्णा दानवा ये च तास्तदा ।
यै पराजीयसेऽप्यर्थं सूदयेऽहं त्वया स्मृत ॥४३
बह्मालापरेण शक्र गदितेन पुन पुन ।
निश्छयेन सखाऽहं ते भवाम्यमुरसूदन ॥४४
अथोवाच महादेवपुनः सर्वोक्ष्य नि स्पृहम् ।
नेष्ट त्वयाऽपि हीन्द्रत्वं भव सेनापतिगुहं ॥४५
एवमस्तिवति तं प्राह कार्तिकेय शचीपतिम् ।
ततः सर्वं सुरैर्विप्रा आदेशात्परमेष्ठिन ॥४६
अभिपिक्तोऽथ विधिना सेनापत्ये तदा गुह ।
यावदत्तं कुमाराय सेनापत्यं हराज्ञया ॥४७
हन्तुमभ्यागतस्तूर्णं कुमार तारकस्तदा ।
आगतं तं तदा वीक्ष्य लीलया यावतोसुत ।
ददाहाऽऽशु महादेत्य तूलं बह्निर्विवाऽहवे ॥४८
दग्ध्वा तु तारकं घोरं पतङ्गमिव पावक ।
ततः प्रीतमना स्कन्दो मातुरङ्गमुपाविशत् ॥४९
महादेवोऽपि भगवान्वेधादीन्विष्णुना सह ।
विमृज्य गणपे सार्धं दण्डादन्तर्हितोऽभवत् ॥५०
भगवान् स्कन्ददेव ने कहा—हे युक्त । आपनी मैं अभय का वरदान

करके उस समय मे भगवान् पण्मुख वरुणा से आविष्ट होते हुए हे मुनी-
श्वरो ! कहने लगे ॥३२॥ स्कन्ददेव ने कहा—मे आपके राज्य को
ग्रहण करके क्या करूँगा मैं इन प्राच्य भोगों को नहीं चाहता हूँ । मेरे
माता पिता के प्रसाद से कुछ भी पदार्थ मेरे लिये अपर्याप्त नहीं है ।
हे दासीपते ! आप ही अपने राज्य का सुख निष्कटक रूप से भोगिये ।
हे पुरन्दर ! मेरे साथ सख्यमान रखने से आप अपने समस्त शत्रुओं
को मार भगायेंगे ॥३३॥३४॥ इस प्रकार से कथित भगवान् स्कन्ददेव
के वचन का श्रवण करके इन्द्र ने पुनः कहा—हे भगवन् ! दूसरा कोई
बलशाली देवों को विदित नहीं है ॥३५॥

तस्मात्कुर्व स्वमेवेह राज्यमीश्वरनन्दन ।

क्व बाल क्व च सग्रामः क्व नीतिः क्व पराक्रमः ॥३६

क्व ज्ञानमतुल देव क्व मतिः क्व च सौम्यता ।

क्व माया क्व च दाक्षिण्य क्व शान्तिः क्व प्रसादता ॥३७

अल त्वमेव राज्यस्य गुणैरेभिरुदीरितः ।

स्वरूपैः स्वगुणैस्त्व हि वन्दिभिश्चारणस्तथा ॥३८

विद्याधरैश्च यक्षैश्च विविधैर्गुणकोटिभिः ।

स्तूयमानोऽमरै सिद्धैर्गन्धर्वाप्सरसा गणैः ॥३९

अहं सेनापतिर्देव भवामि भवनन्दन ।

तिष्ठस्वोपरि कृत्स्नस्य सै लोक्य भुङ्क्व पण्मुख ॥४०

सर्वगः सर्वभूतस्त्व यथा देवो महेश्वर ।

एव शक्रवचः श्रुत्वा पुनः प्राहाम्बिकासुतः ॥४१

हे ईश्वरनन्दन ! इस वारण से यहाँ पर आप ही राज्य शासन कीजिए ।
यहाँ तो बालक और कहा सग्राम—यहाँ नीति और कहा पराक्रम है । यहाँ पर
अतुल ज्ञान हे देव ! यहाँ पर मति और यहाँ पर सौम्यता, यहाँ गाया और
यहाँ दाक्षिण्य, शान्ति तथा प्रसादता है । इन उत्तम गुणों के द्वारा तो
आप ही राज्य के करने के लिये पूर्णतया उदात्तरित होते हैं । आप अपने
स्वरूपों से, अपने सद्गुणों से राज्य करने के योग्य हैं । वन्दी, चारण,

विद्याधर, यज्ञ और विविध गुण कोटिभो के द्वारा स्तूयमान है तथा
अमर, सिद्ध, मन्धर्व और [अम्भराजो के गणों के स्तुत हैं । हे देव ! हे
भवनन्दन ! मैं आपका सेनापति हो जाऊँगा । हे पण्णमुख ! सबके
ऊपर आप स्थित हो जाइये और इस भूलोक्य का उपभोग करिए ।
आप तो सबसे गमन करन वाले, सर्वभूत स्वरूप हैं जैसे देव महेश्वर हैं ।
ऐसे महेश्वर के वचन का श्रवण करके पुनः अम्बिका सुत बोले
॥३७-४१॥

अभय शक्र मा भैषी. कुरु राज्यमकण्टकम् ।
इन्द्रस्त्व देवराजस्तव त्वमेव जगत प्रभु ॥४२
दर्पगर्ववलोदीर्णा दानवा ये च तास्तदा ।
यै पराजीयसेऽत्यर्थं मूढयेऽहं त्वया स्मृत ॥४३
बह्मालापरेण शक्र गदितेन पुन पुन ।
निश्छयेन सखाऽहं ते भवान्मसुरसूदन ॥४४
अथोवाच महादेवपुन सवीक्ष्य नि स्पृहम् ।
नेष्ट त्वयाऽपि हीन्द्रत्व भव सेनापतिर्गुहं ॥४५
एवमस्त्विति त प्रह कार्तिकेय शचीपतिम् ।
तत सर्वे सुरेविप्रा आदेशात्परमेष्ठिन ॥४६
अभिपिक्तोऽयं विधिना सेनापत्ये तदा गुह ।
यावदत्तं कुमाराय सेनापत्यं हराज्ञया ॥४७
हन्तुमभ्यागतस्तूर्णं कुमार तारकस्तदा ।
आगत त तदा वीक्ष्य लीलया पार्वतीमुत ।
ददाहाऽऽशु महादेत्य तूलं वह्निरिवाऽऽहवे ॥४८
दग्ध्वा तु तारकं घोरं पतङ्गमिव पावक ।
तत प्रीतमना स्कन्दो मातुरङ्कमुपाविशत् ॥४९
महादेवोऽपि भगवान्वेधादीन्विष्णुना सह ।
विसृज्य गणपै सार्धं क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥५०

भगवान् स्कन्ददेव ने कहा—हे शुक ! आपको मैं अभय का वरदान

देता है । उग्रे मत अकष्टक राज्य का उपभोग करो । आप देवों के राजा हैं—आप इन्द्रदेव हैं और आप ही इस जगत् के प्रभु हैं ॥४२॥
 हर्ष गर्व और बल से उदीर्ण जो ये दानव हैं जिन्हों के द्वारा आप पराजित हो जाते हैं उनको मैं जब भी आपके द्वारा याद किया जाऊँगा सबको मार डालूँगा ॥४३॥ हे शक्र ! बहुत अधिक बातें करना तो व्यर्थ है और बार-बार वही कथन भी नहीं करना चाहिए । यह निश्चित है कि मैं आपका सखा हूँ और हे अरिसूदन ! मैं सखा ही रहूँगा ॥४४॥
 इसके उपरान्त महादेव जी के पुत्रों को सर्वथा स्पृहा से घृण्य देखकर इन्द्र ने कहा कि यदि आपको इन्द्र का पद अभीष्ट नहीं है तो हे गुह ! मेरे सेनापति हो जाइये । तब कार्तिकेय प्रभु ने शचीपति से कहा था—
 अच्छा, ऐसा ही होगा । इसके अनन्तर हे विप्रो ! परमेष्ठी के आदेश से सब सुरों के द्वारा अभिषिक्त हो गये थे और विधि के द्वारा गुहदेव सेनापति के पद पर स्थापित किये गये थे । जब तक कुमार के लिये भगवान् हर की आज्ञा से सेनापत्य का पद प्रदान किया किया था ॥४७॥
 उसी समय मे तारक दैत्य शीघ्र ही कुमार को मारने के लिये वहाँ आगया था । उस समय मे पार्वती मुन ने समामत हुए उसको देखकर उस महादैत्य को सीला ही से बलि जैसे तूतको भस्म कर दिया करती है उसी भाँति युद्ध मे शीघ्र ही दग्ध कर दिया था । पावक जैसे पतङ्ग को भस्म कर दिया करता है वैसे ही उस महान् घोर तारक को दग्ध करने फिर प्रसन्न मन पाते स्वन्देय अपनी माता की गोद में आकर बैठ गये थे । भगवान् महादेव भी विष्णु भगवान् के सहित प्रह्ला आदि देवों को विदा करने अपने गणों के साथ एक ही क्षण में अन्तर्धान हो गये थे ॥४८-५०॥

॥ ब्रह्म-नारद संवादादि कथन ॥

कथितो भवता सून विवाहः परमेष्ठिनः ।
 उत्पत्तिः कान्तिकेयस्य तस्य चैव पराक्रमः ॥१॥
 सेनापत्यं यथा दत्तं श्रुतं सर्वमशेषतः ।
 भक्तियोगमयेदानीं वद सून महामते ॥२॥
 तृप्तिर्नाद्याप्यभूद्यस्माच्छ्रुत्वा चैव पुनः पुनः ।
 जानासि त्वां भगवतो माहात्म्यं त्रिपुरद्विपः ॥३॥
 उपासितो यतः सम्पद्भगवान्वादरायणिः ।
 तत्प्रसादात्स्वयां लब्धं ज्ञानं तदगारमेश्वरम् ॥४॥
 दुर्लभं मर्षाणां त्रेषु मुनीनां च महारमणम् ॥५॥
 यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं नारदाय महारमणे ।
 प्रीतेन मनसा तेन तच्छृणुष्व द्विजोत्तमाः ॥६॥
 सत्यलोके सुखामीनं ब्रह्माणं तेजसा निधिम् ।
 श्रुत्वापिभिर्मृनिभिर्मिदं गेहं साङ्गैरुपासितम् ॥७॥

श्रुतिगणों ने कहा—हे मूत्रजी ! आपने कृपा करके परमेष्ठी प्रभु के विवाह का वर्णन करके सुना दिया है और आपने कुमार कास्तिकेय की उत्पत्ति बतलवाई और उनसे कितना अनुन पराक्रम था यह भी सुना दिया है ॥१॥ जिस प्रकार से उनकी सेनापत्य वद प्रदान किया गया था वह भी सब हमने पूर्णतया श्रवण कर लिया है । हे मूत्रजी ! अब तो आप भक्तियोग के विषय में हमसे बतलाइये क्योंकि आप तो यह महती विद्वान् मनि से गुह्यतम महापुरुष हैं ॥२॥ यद्यपि हम लोगो ने बार-बार आपसे सुनारविन्द से सुना तो भी हमारे मन की तृप्ति अभी तक भी नहीं हुई है आप तो त्रिपुरद्विप भगवान् के माहात्म्य को अच्छी तरह से जानते हैं क्योंकि आपने भगवान् वादरायणि की अच्छी तरह से उपासना की है । उक्त प्रसाद से ही आपने उन परमेश्वर से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त किया है ॥३॥ ॥४॥ यह ज्ञान जो आरती प्राप्त है वह बड़े-

बड़े महात्मा और मुनियों को भी परम दुर्लभ होता है । तथा यह समस्त शास्त्रों में भी दुर्लभ है ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—पहिले समय में ब्रह्माजी ने महान् आत्मा बाने नारदजी को यह बतलाया था और उन्होंने परम प्रसन्न मन से ही इसका उद्देश किया था । ह द्विजोत्तमो ! उसी को मैं बतलाता हूँ आप लोग ध्यान करिय ॥६॥ सत्यलोक में तेज की निशि ब्रह्माजी मुख पूर्वक बैठे हुए थे और उस समय में ऋषि-मुनि, सिद्ध देव अपने अङ्ग शास्त्रों के सहित चाक्री उपामना कर रहे थे ॥७॥

सगीयमान गन्धर्वे स्तूयमान मरुद्गणै ।
 दृष्ट्वा प्रणम्य विधिवन्नारदस्नमयान्नवीत् ॥८॥
 देवदेव जगन्नाथ चतुर्मुख सुरोत्तम ।
 भक्तियोगस्य माहात्म्यं देवदेवस्य शूलिन ॥९॥
 प्रणम्य शरुत शान्तमप्रमेयमनामयम् ।
 परं ज्योतिरनाद्यन्न निर्गुणं तमस परम् ॥१०॥
 भक्तियोगं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद सुव्रत ।
 भक्तियोगस्य माहात्म्यं यथा शोभमया श्रुतम् ॥११॥
 भक्तिर्भगवत् शोभोर्दुर्लभा खलु देहिनाम् ।
 कथंचिद्यदि सा लब्धा तेषां नैवास्ति दुर्लभम् ॥१२॥
 भक्त्यैव प्राप्यते राज्ञश्च भिद्वत्स्य मत्पदं च यत् ।
 विष्णुत्वमपि मुक्तिं च नूनं प्राप्नोति नारद ॥१३॥
 शुभानामशुभानां च कर्मणा राजसवयम् ।
 करोति भस्ममाद्भक्तिर्भक्त्यापि यथेन्द्रियम् ॥१४॥

गन्धर्व गण उनका मान कर रहे थे तथा मरुद्गण स्तवन कर रहे थे । देवर्षि नारद जी ने उनका दर्शन किया था और फिर उनके उत्तरों प्रणाम किया था । विधि विधान पूर्वक प्रणाम करके नारद जी ने उनसे कहा था ॥८॥ श्री नारदजी ने कहा—हृदयों में भी देख । जार जगत् के नाथ हैं । ह चतुर्मुख । जार समस्त गुणगणों में अत्युत्तम हैं ।

आप देवदेव भगवान् धूनी के भक्तियोग माहात्म्य को बतलाने वृषा कीजिए ॥९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—मैं सर्वप्रथम परम शान्त स्वरूप वाले प्रभा के विषय के अयोग्य-आभय से रहित परम ज्योति—आदि और अन्त दोनों से रहित-निर्गुण और तम से परे रहने वाले भगवान् साङ्कर को प्रणाम करके उनके भक्तियोग को बतलाता हूँ । हे मुद्गल ! हे नारद ! आप सुनिये । भगवान् शम्भु के भक्तियोग का माहात्म्य जैसा भी मैंने सुना है भगवान् शम्भु की भक्ति का योग देहवारियों के लिये घट्ट ही दुर्लभ है । यदि किसी भी प्रकार से वह भक्ति प्राप्त करली गयी हो तो फिर उनको कुछ भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहा करता है ॥१०-१२॥ भक्ति ही के द्वारा राज्य प्राप्त किया जाया करता है—इन्द्र का यह और जो मेरा पद है वह प्राप्त कर लिया जाता है । हे नारद ! विष्णुस्व और मुक्ति भी निश्चय ही प्राप्त किया जाता है ॥१३॥ जिस लक्ष्मी से अग्नि के द्वारा दग्धन की भस्म हो जाती है उसी भाँति शुभ और अशुभ कर्मों की राशि का मज्जम होता है उसको भगवान् भव की भक्ति भस्म कर दिया करती है ॥१४॥

स्लेच्छोऽपि वा यदि भवेद्भुवभविः समन्वितः ।
न तत्सममश्रुर्वै ती नाग्निदोभादिपञ्चकृत् ॥१५॥
अपि पापानि घोरानि सदा कुर्वन्मगो यदि ।
निप्यते नैव पापंस्तु भक्तो भवति चेच्छिवे ॥१६॥
शिवभक्ता महात्मानो मुच्यन्ते ते न सशयः ।
अपि दुष्कृतकर्मणि प्रमादाचट्टलिनो मुने ॥१७॥
गृह्णन्त्ययते यस्तु भगवन्तमुपापतिम् ।
अप्यद्वयमेधादधिक फल भवति नारद ॥१८॥
जोषितं च भ्रष्टं ज्ञात्वा पद्मपत्र इवोदकम् ।
मृतेर्दुःखताम्ररसास्वतः पुर्याच्छिवे मतिम् ॥१९॥
क्षिप्ते मणि प्रतुर्गणः गम्यादनिमीयणात् ।
मुच्यते मुनिर्नार्द्धन मतिः शयैर्नितुलभा ॥२०॥

भवव्यालमुक्षस्याना भोरूणां देहिना मुने ।

तस्माद्वमोचकस्तेषां महादेव इति श्रुतिः ॥२१॥

कोई स्लेच्छ भी क्यों न हो यदि वह भगवान् की भक्ति से सम-
न्वित होता हो तो उसकी समानता रखने वाला चारों वेदों का ज्ञाता
भी न होता है और न अग्निष्टोम आदि यज्ञों के करने वाला ही हुआ
करता है ॥११॥ यद्यपि सदा महान् घोर पापों को भी मनुष्य कर रहा
हो और वह भगवान् शिव का परम भक्त हो तो वह पापों से भी लिप्त
नहीं हुआ करता है ॥१६॥ भगवान् शिव के भक्त महान् आत्मा वाले
होते हैं और निश्चित रूप से मुक्त हुआ करते हैं—इसमें संशय नहीं
है । हे मुने ! चाहे दुष्कृत कर्मों के भी वे क्यों न करने वाले हो भगवान्
शूलि के प्रसाद से विमुक्त हो जाया करते हैं ॥१७॥ जो एकबार भी
भगवान् उमापति की पूजा किया करता है । हे नारद ! उसका पुण्य
फल अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक हुआ करता है ॥१८॥ पद्म के पत्र
पर हृदय की तरह ही इस जीवित को चञ्चल समझकर मृत्यु और
दुर्गन्त नरकों से बचने के लिये शिव के चरणों में अपनी भक्ति करनी
चाहिए ॥१९॥ भगवान् शिव के चरणों में अपनी मति करने वाला इस
अत्यनात्मिक भीषण ससार से है मुनि शार्ङ्ग ! मुक्त हो जाया करता
है किन्तु शिव में मति होना अत्यन्त दुर्लभ है ॥२०॥ हे मुने ! इस
समार कपी सर्प के भुल में स्थित-डरपोक देहधारियों को उससे विमो-
चन कराने वाले महादेव ही है—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ॥२१॥

भक्तिः शिवे यदि भवेन्न कस्मात्कस्यचिद्भयम् ।

भवार्णवं तरत्येव प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥२२॥

स्वर्गायिना मुमुक्षूणा ब्रह्मात्ममपि काङ्क्षिणाम् ।

भक्तिरेव विरूपाक्षे नान्यः पन्था इति श्रुतिः ॥२३॥

आदिमध्यान्तरहिते पिनाकिनि जगत्पती ।

सदा मनीषिभिः कार्या भक्तिरेव हि नारद ॥२४॥

सर्वमन्यत्परित्यज्य भक्तो भव हरे मुने ।

मुक्तो भविष्यसि क्षिप्रं तस्य शैभोरनुग्रहात् ॥२५॥

यस्य प्रसादलेशेन ब्रह्मत्व प्राप्तवानहम् ।

विष्णुत्वमपि विष्णुश्च स शिव कर्नं सेव्यते ॥२६॥

शिवे दानं शिवे होमः शिवे स्नानं शिवे जपः ।

अक्षयानि फलान्तेषामित्याह भगवाञ्छिव ॥२७॥

कुरुक्षेत्रे निवसता यत्फलं नैमिषे तथा ।

प्रयागे च प्रभासे च गङ्गासागरसंगमे ॥२८॥

यदि भगवान् शिव मे भक्ति हो तो फिर उसको किसी से भी किसी का भय नहीं होता है और वह हम समार सागर को परमेष्ठी के प्रसाद से तैर कर पार हो ही जाया करता है । २२। स्वर्ग का निवास चाहने वाले मुक्ति की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले तथा ब्रह्मत्व के पद को भी चाहने वाले मनुष्यों को विष्णुश्च प्रभु मे भक्ति का करना ही परमोत्तम साधन है तथा अन्य मार्ग नहीं हैं—ऐसा भी श्रुति के द्वारा प्रतिपादित है । २३। हे नारद ! आदि-मध्य और अन्त से रहित जगत के पति पिताजी मे मनीषियों को सर्वदा भक्ति ही करनी चाहिये । २४। हे मुने ! अन्य सभी साधनों के समुदाय का त्याग करके भगवान् हर के भक्त हो जाओ । उन परम वाग्विच शम्भु के अनुग्रह से बहुत शीघ्र ही मुक्ति की प्राप्ति हो जायगी ऐसे ही आप शीघ्र मुक्त हो जायगे । २५। जिनके लेश मात्र प्रसाद मे मैंने ब्रह्मा का पद प्राप्त कर लिया है और भगवान् विष्णु ने विष्णुत्व को प्राप्त किया है । वह ऐसे दयालु शिव भगवान् जिनके द्वारा नहीं मेव न किये जाते हैं अर्थात् दयालु देव का कौन मेव न नहीं करेगा । २६। भगवान् शिव ने स्वयं ही अपने मुख से कहा है—जि जा कुछ भी दान दिया जावे वह दान—होम—स्नान और आप सब भगवान् शिव की सेवा मे समर्पित कर देना चाहिए । ऐसा करने वालों के फल अक्षय होते हैं । २७। कुरु क्षेत्र धाम मे तथा नैमिष क्षेत्र मे जो निराम करने वाले हैं उनको जो भी पुण्य-पत्र मिलता है तथा

प्रयाग म—प्रभास मे और गङ्गासागर से सङ्गम स्थल मे निवास से फल होता है । वह सब शिव के केवल अर्चन से ही हो जाया करता है । २८।

रद्रकोट्यां गयायां च शालिग्रामेऽमरेश्वरे ।
 पुष्करे भारभूतेशे गोवर्णे मण्डलेश्वरे ॥२९॥
 तत्फलं दिवसेनैव भक्त्या भर्गाचिंतादभवेत् ।
 नास्ति लिङ्गाचिंतात्पुण्यमधिकं भुवनत्रये ॥३०॥
 लिङ्गेऽर्चितेऽखिलं विश्वमर्चितं स्यान्न सशयः ।
 मायया मोहितात्मानो न जानन्ति महेश्वरम् ॥३१॥
 अनुग्रहाद्भगवतो जानन्त्येव हि नारद ।
 यः पूजितं शिवं दृष्ट्वा प्रणमेद्भक्तिभावनतः ॥३२॥
 पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं भवति निश्चितम् ।
 ये पुनः शान्तमनसा शिवभक्ता जितेन्द्रिया ॥३३॥
 मर्त्यं (यम)स्य वदनं तेऽपि नैव पश्यन्ति नारद ।
 पृथिव्या यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥३४॥
 शिवलिङ्गे वसन्त्येव तानि सर्वाणि नारद ।
 तस्माल्लिङ्गं सदा पूज्य भक्तिभावेन नित्यम् ॥३५॥

रद्र कोटि मे—गया मे—शालिग्राम मे—अमरेश्वर म—पुष्कर मे
 —भार भूतेश मे—गोवर्ण म—मण्डलेश्वर म निवास मे जो भी फल
 प्राप्त होता है वह सम्पूर्ण प्रण्य—एक दिवस के समय म ही भक्ति
 साय मार्ग के अभ्यर्चन ही प्राप्त हो जाया करता है । इन तीनों ही
 भुवना मे भगवान शिव के लिङ्ग के अभ्यर्चन मे अधिक पुण्य किसी से
 भी नहीं होता है । ३०। एर लिङ्ग के अर्चन करने मे सम्पूर्ण विश्व सम-
 पित हो जाया करता है—इसमे तनिक भी सशय नहीं है । माया से
 जिनकी आत्मा मोहित है वे महेश्वर प्रभु को नहीं जानते है अर्थात्
 महादेवजी के महत्व का ज्ञान ही नहीं हुआ करता है । ३१। है नारद ।
 यह भी भगवान ने अनुग्रह होने पर मनुष्य जाना करते हैं । जो कोई

भगवान् शिव को पूजित हुए देव नेता है और भक्ति भाव से दशरुत के पञ्चान् उनको प्रणिपात किया करता है उस प्राणी को प्रण्डरीक नाम जाने यज्ञ करने का पुण्य फल निश्चित रूप में प्राप्त हो जाया करता है । जो योग शान्त मन जाने और जिनेन्दीय पुष्प शिव के भक्त होते हैं हे नारद ! वे भी यमराज का मुक्त नहीं देना करते हैं अर्थात् नमों के फल में विमुक्त होकर मुक्त हो जाया करते हैं । इस पृथ्वी में जो भी तीर्थ हैं और पुण्य स्थान हैं हे नारद ! वे शिव के निष्कल में निवास किया करते हैं । अनन्य शिवलिङ्ग का सदा पूजन करना चाहिए और नित्य ही भक्ति की भावना में करना चाहिए ॥३२॥३५॥

म स्नात सर्वतीर्थेषु सर्वम्मादधिकश्च स ।
यन्नु लिङ्गाचनं त्यक्त्वा देवानन्याश्च पुजयेत् ॥३६॥
रत्न विहाय महात्मा यथा वाचमपेशते ।
चतुर्दश्यामघाट्या पीर्णमास्या तथैव च ॥३७॥
अमावास्या (या वा) त्रयोदश्या पूजयेदिन्दुशेखरम् ।
स स्नात सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षित इव
शिवलोकमवाप्नोति देहान्ते दुर्लभ मुने ।
शिवार्चनरतो नित्य महापातकमभवे ॥३८॥
दोषं कृतैर्न लिप्सेत पद्मवन्नमिवाभ्रसा ।
दर्शनाच्छिवभक्ताना सकृत्समापणादपि ॥३९॥
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फल भवति नारद ।
ब्राह्मण क्षत्रिया वीर्य शूद्रो वाऽन्त्यजजातिल ॥४०॥
शिवभक्त सदा पूज्य सर्वविस्था गतोऽपि वा । . . .
नाम्नाऽऽचार परीक्षेत न कुल न व्रत तथा ॥४१॥

उसन सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है और वह सबमें अधिक है । जो लिङ्ग का अर्चन त्यागकर अन्य देवों का भजन किया करता है उसका यज्ञ अन्य देव का अर्चन इसी प्रकार से है जैसे कोई मूढ़ आत्मा वायु रत्न का परित्याग करके वाच की अपेक्षा करता है । चतुर्दशी —

अष्टमी—त्रयोदशी—पौर्णमासी और अमावस्या तिथिमें मे इन्दु
 शेखर का अर्चन करना चाहिए । ऐसा जो करता है वह सभी तीर्थों में
 स्नान कर चुका है और सभी यज्ञों में दीक्षित भी हो चुका है । ३६।
 ३७। ३८। हे मुने ! वह प्राणी देह के अन्त होने पर सीधा शिवलोक को
 प्राप्त हुआ करता है जोकि उसका प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ होता है । शिव
 के अर्चन में रत रहने वाला पुरुष महा पातकों के द्वारा होने वाले दोषों
 के किये जाने पर भी जल से पत्र पत्र के ही समान लिप्त नहीं हुआ
 करता है । शिव के भक्तों की भी बड़ी महिमा है इनके दर्शन करने से
 तथा इनके साथ एक बार सम्भाषण करने से भी हे नारद ! अतिरात्र
 यज्ञ का फल मनुष्य प्राप्त कर लेता है । चाहे कोई ब्राह्मण हो—क्षत्रिय
 —शूद्र—वैश्य—अथवा अश्वज जाति में समुत्पन्न मनुष्य हो और भले
 ही सभी अवस्थाओं में भी वह वर्तमान क्यों न हो यदि वह शिव वा
 त्त है तो सदा ही पूज्य होता है । शिव भक्त के आचार यत्न की
 और कृत्त की कभी परीक्षा नहीं करनी चाहिए । ३९। ४०।

त्रिपुण्ड्राङ्कितभालेन पूज्य एव हि नारद ।

कर्मणा मनसा वाचा यस्तु भक्तान्वनिन्दति ॥४३

निरयान्निष्कृतिर्नास्ति तस्य मूढात्मनो मुने ।

शिवभक्तान्वर्जयित्वा सर्वेषां शासको यम ॥४४

य पुन शिवभक्तानां शिव एव न चापर ।

न शिवाश्रयिणो भौञ्जी न दण्डो न च कुण्डले ॥४५

नैव कापायवासासि भक्तिरेवात्र वारणम् ।

यदि भक्ता पशुपतौ पापकर्मसु ये रता ॥४६

यमस्य वदनं तेऽपि नैव पश्यन्ति नारद ।

ये पुन शान्तमनस शिवभक्ता जितेन्द्रिया ॥४७

मर्त्यधर्मं समासाद्य विज्ञेयास्ते गणेश्वरा ।

मृतस्य जीवतो वाऽपि शिवभक्तस्य नारद ॥४८

यमाद्भयं न तम्यारितं राजर्चय तु वा कथा ।

आदर्यं कथयिष्यामि शृणु नारद यत्पुरा ॥४९

हे नारद ! निपुण्ड के द्वारा अङ्कित भान के द्वारा ही वह शिव का भक्त पूजने के ही योग्य हो जाया करता है । कर्म-भन और वचन से जो मनुष्य शिव भक्तों की निन्दा किया करता है हे मुने ! उस मनुष्य की नरक से कभी भी निष्कृति नहीं हुआ करती है और वह मूढ आत्मा वाला प्राणी है । शिव के भक्तों को छोड़कर ही अन्यो पर यमराज का शासन हुआ करता है । ४३।४४। जो शिव के भक्तों को ऐसा ही मानता है कि यह तो साक्षात् ही शिव है और अन्य कोई नहीं है । शिव के समाध्य ग्रहण करने वाले पुरुष के किसी भी चिह्न की आवश्यकता नहीं है । न उसे मोड़ी होने की जरूरत है—न दण्ड और कुण्ठों की ही उसे आवश्यकता होती है । कापान वस्त्रों के धारण करने का भी कोई आवश्यकता नहीं है शिव भक्त का कारण तो केवल उनके चरणों में भक्ति रखना ही हुआ करता है । यदि कोई पशुपति में भक्ति रखता है और पापकर्मों में भी रत रहता है तो वह हे नारद ! यमराज के सदन को नहीं देखा करता है । जो पुण्य परमशान्त मन वाले हैं और इन्द्रियो को जीतकर शिव के भक्त होते हैं उनको साक्षात् गणेश्वर ही समझना चाहिए उन्होंने मनुष्य धर्म को देखने में ही प्राप्त कर रखा है । हे नारद ! चाहे वह जीवित रहेगा मृत हो जावे जो शिव का भक्त है उसको यमराज का, कभी भय नहीं रहा करता है फिर साधारण राजा में भय की तो बात ही क्या है । हे नारद ! मैं एक परम आश्चर्य की बात बतलाऊंगा जो पहिले घटित हो चुकी है । उसका आप इस समय में श्रवण कीजिए । ४५।४६।

उज्जयिन्या नृपो ह्यासीन्नाम्ना सत्यध्वजो मुने ।

धर्मात्मा सत्यसक्त्प प्रजापालनतत्पर । १५०।

भुक्त्वा समस्तामवनि कालेनाथ दिव गत ।

वसुश्रुत इति ख्यात पुनस्तस्य महात्मन । १५१।

महाकालार्चनतस्तन्निष्ठस्तत्परायण ।

न धर्मेण प्रजा शाम्ति राजधर्मवहिष्कृत । १५२।

असाधून्समरित्यज्य साधून्वै हन्त्यसौ नृप ।
 प्रजानां कुशल नास्ति सर्वत्र परिपन्थिन ॥५३॥
 यज्ञाश्च यज्वना दृष्ट्वा म्लेच्छा विध्यसयन्ति तान् ।
 गते वर्षसहस्रे तु राज्ये तस्मिन्वसुश्रुते ॥५४॥
 मृत्युकालोऽथ सप्राप्तो देहिनामतिभीषण ।
 पापिष्ठ इति त मत्वा सप्राप्ता यमकिंकरा ॥५५॥
 शिवभक्त इति प्राप्तास्त्रिनेत्रा शूलधारिण ।
 शिवदूतं समानीत विमान सावंकामिकम् ॥५६॥

हे मुने ! उज्जयिनी पुरी में एक सत्यध्वज नाम वाला राजा हुआ था । वह राजा परम धर्मिन्मा था तथा सत्य सङ्कल्प वाला और अपनी प्रजा के परिपालन करने में सदा परायण रहा करता था ॥५३॥ उसने सम्पूर्ण भूमि के शासन करने का सुख भोगा था और जब उसका समय हो गया तो वह देवलोक को चला गया था । उस महात्मा आत्मा वाले नृप का पुत्र वसुश्रुत इन्द्र नाम से विख्यात हुआ था । यह वसुश्रुत महाकाल के अर्चन रत्न तथा उम्मी की निष्ठा रखने वाला और उसी में तत्पर रहा करता था । यह कभी भी अपने धर्म के अनुसार प्रजा का शासन नहीं किया करता था तथा राजा के धर्म से वहिष्कृत रहता था ॥५४॥५५॥ यह नृप जो असाधु लोग थे उनको तो त्याग दिया करता था और सदा साधुओं का ही हनन किया करता था । उनके शासन काल में प्रजाओं का कुशल नहीं था । सभी जगहों पर परिपथी लोग थे ॥५६॥ म्लेच्छ लोग ऐसे बढ़ गये थे कि यज्ञों को और यजन करने वालों का विभ्रम कर दिया करते थे । उस राजा वसुश्रुत के एक महत् वर्ष राज्य शासन कर लेने पर उसके मृत्यु का काय सम्प्राप्त हो गया था जो कि देहचारियों के त्रिये अत्यन्त भीषण हुआ करता है । वह परमाधिक पापिष्ठ है—ऐसा मानकर यमराज के बिछूर उमे यमपुरी ले जाने के लिये वही पर धातर प्राप्त हो गये थे । वह शिव का परम भक्त है—ऐसा समझकर शिवदूत तीन नेत्रों वाले और मृत-

घारी भी वहाँ पर समागत हो गये थे । शिव के दूतों के द्वारा सब मनोरथों से पूर्ण एक विमान वहाँ पर लाया गया था । १५४।१५५।१५६।

यमदूतास्त्वतिक्रूरा पाशदण्डामिषाणय ।
 जाह्नवमुद्यता सर्वे नृप त यमकिन्नरा ॥१५७॥
 गरुडैश्चराम्नात क्रुद्धा हृष्टा तान्यमर्किन्नरान् ।
 निहूतैर्भुग्दरैश्चक्रैर्मंदाभिर्भुग्नैस्तथा ॥१५८॥
 ताडयित्वा भृश दूतात्यमशामनपालकान् ।
 नीत शिवपुर दिव्य पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१५९॥
 अथ ते किन्नरा भवन् यम गन्वेदमद्रुचन् ।
 शृणु धर्म यथा वृत्तमोश्चरम्य गरुडैश्चरैः ॥
 सर्वानरमान्ताडयित्वा नीत पापो वमुत्सृतः ॥१६०॥
 न यज्ञं यंजते देवान्न विप्रान्नातिथीनपि ।
 न धर्मोऽपि प्रजा पाति कथं शिवपुर गतः ॥१६१॥
 गत्वा धर्मं विजानामि धर्मदण्डधरो भवान् ।
 तस्मात्प्रवीहि (!) भगवन्तस्मात्प्राप्तारिणो वयम् ॥१६२॥
 एव तेषां वच श्रुत्वा धर्मराट् गूर्मनन्दन ।
 वच प्रोवाच गम्भीर निरगन्प्रति नारद ॥१६३॥

ने जो कुछ किया है उस धर्म को आप सुनिए । उन्होंने हम सबको भारपीट कर महान् पापी जी बहुश्रुत नृप था वह छीनकर ले गये हैं । वह तो ऐसा दुष्टात्मा था कि न तो कभी यज्ञ किया करता था—न देवों का भी भजन किया करता था—न विप्रों और अतिथियों का सत्कार करता था और धर्म के द्वारा अपनी प्रजा के जनो का भी पालन नहीं किया करता था फिर भला बताइये वह शिवतोत्र में कैसे चला गया है ? १६०।६१। सो आप तो धर्म की भली भाँति जानते ही हैं क्योंकि आप तो धर्मदण्ड के घारी हैं । इससे हे भगवान् ! आप हमको बतलाइये क्योंकि हम सब तो आपके ही आदेश के पालन करने वाले रहते हैं । ६२। धर्मराज ने जो सूर्य का पुत्र था उन किङ्करो के वचन का श्रवण करके हे नारदजी ! वह किङ्करो के प्रति परम गम्भीर वचन बोला—१६३।

देवामुरमनुष्याणा सर्वेषा प्राणिनामपि ।

शारताऽह नास्ति सदेह शिवभक्तमृते किल । ६४।

माहात्म्य शिवभक्ताना को वा विन्दति तत्त्वत ।

तेषा नियन्ता भगवान्महादेवो च चापर । ६५।

शिवभक्ता महात्मान सदा शर्वार्चने रता ।

अप्याश्रमाचारहीनास्त्यजध्व तान्प्रयत्नत । ६६।

वर्णाश्रमाणामाचारा अपि नेन विवर्जिता ।

शक्ने यदि भक्त स्यान् शम्य पूज्य एव हि । ६७।

भवद्भि परिहर्तव्या शिवभक्ता प्रयत्नत ।

पापवर्त्मस्यपि रतारतेषामेनो न विद्यते । ६८।

विभेमि शिवभक्तेभ्य सिंहादिव यथा मृगा ।

श्वेतस्याऽऽहरणे पूर्वमह देवेन घातित । ६९।

तत प्रभृत्यह शारता तद्भक्ताना न विवरा ।

याज्मी वमुश्रुतो राजा न प्रजा पानयन् यदि । ७०।

यमराज ने कहा—मैं सभी देवामुर मनुष्यों का और प्राणियों का भी भारता हूँ—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। किन्तु शिवभक्त को छोड़कर ही मैं सबका शासक हूँ। १६४। कौन पुरुष है जो भगवान् शिव के भक्तों की निन्दा करने वाले हैं क्योंकि सात्त्विक रूप से उनका नियन्ता भगवान् महादेव ही होने हैं अन्य दूसरा कोई भी नहीं है। १६५। भगवान् शिव के भक्त सदा ही शिव के अभ्यर्चन में निरत रहा करते हैं। चाहे वे आश्रमों के आचार से हीन ही क्यों न होवे उनको प्रयत्न-पूर्वक त्याग दिया करो। १६६। वपों और आश्रमों का आचार वाले ही होवे और शिवार्चन से रहित हो तो उनको पकड़ सामा करो। यदि भगवान् शङ्कर के चरणों में भक्ति करने वाला हो तो वह शासन करने के योग्य नहीं होता है और वह पूज्य ही हुआ करता है। १६७। आप लोगो को प्रयत्नपूर्वक शिव के भक्तों को परित्याग ही कर देना चाहिए। चाहे वे पापकर्मों में निरत भी क्यों न होवे किन्तु उनको पाप नहीं लगा करता है। १६८। जैसे मृग सिंह से भयभीत रहा करते हैं उसी भाँति मैं शिव के भक्तों से डरता रहा करता हूँ। पूर्व में मैं श्वेत के आहरण में देव के द्वारा घानित हो गया था। १६९। तभी से लेकर हे किङ्करो ! मैं शिव भक्तों के शानक नहीं हूँ। हे किङ्करो ! जो यह राजा बहुश्रुत है वह यदि प्रजा का पालन नहीं भी कर रहा था तो भी मन-वाणी और शरीर से भगवान् शङ्कर का भक्त था। १७०।

तथापि शङ्करे भक्तो मनोवाक्यकर्मभिः ।

प्रमादात्तस्य देवस्य पाप स्पृशति त कथम् । ७१।

सृष्टृत्पदयनि यो देव महाबाल त्रिलोचनम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैव परपदम् । ७२।

य मदाज्जीयते देव महाबा । तमीश्वरम् ।

गणेश्वर म मन्त्रव्यो भवद्भिरिति किवरा । ७३।

एव यमस्य वचन श्रुत्वा ते (तु) यमकिंवराः ।

तूष्णीमःसाद्य ते सर्वो यभूवुविगतज्वरा । ७४।

तरमात्पूज्यो महादेवस्तद्भक्तश्च विशेषतः ।

भक्तानां पूजनाच्छुभं प्रीतो भवति नारद ॥७१॥

शिवस्य नित्यतृप्तस्य किं नाम क्रियते जनैः ।

यत्कृत्वा शिवभक्तानां तेन प्रीतो भवेच्छिव ॥७२॥

देवान्सर्वान्पितृन्पितृभ्यः भज नारद शक्रम् ॥७३॥

उन देव शम्भु के प्रसाद से उसको पाप कैसे स्पर्श कर सगता है ॥७१॥ जो एक बार भी महाकाल भगवान् शिवोचन का दर्शन कर लिया करता है वह सभी प्रकार के महापातको से विमुक्त होकर अन्त में भगवान् शिव के परम पद को प्राप्त हुआ करता है ॥७२॥ जो उस महाकाल ईश्वर का मन्त्र ही अभ्यर्चन किया करता है हे किकरो ! उसे आप लोग माघारण प्राणी न मानकर भगवान् शिव का गणेश्वर ही समझना चाहिए ॥७३॥ उन यमराज के किकरो ने इस प्रकार के यमराज के वचन का श्रवण करके वे सब चुपचाप होकर विगत ज्वर हो गये थे ॥७४॥ इसी कारण से भगवान् शिव के भक्त या सदा ही पूजन करना चाहिए और जो शिव के भक्त हो उनका विशेष रूप से अर्चन करना चाहिए । हे नारद ! अपने भक्तों के पूजन से शम्भु परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥७५॥ नित्य ही तृप्त भगवान् शिव के लिये मनुष्यों के द्वारा क्या किया जाता है । शिव के भक्तों के लिये जो भी दिया जाता है भगवान् शिव उसी से परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥७६॥ अतएव हे नारद ! अन्य सब देवों का परित्याग करके केवल एक भगवान् शिव का ही भजन करो ॥७७॥

॥ पंचाक्षर मंत्र प्रभावादि कथन ॥

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पत्र पुष्पमयापि वा ।

यः प्रयच्छति शर्वाय तदनन्तफलं सकृत् ॥१॥

सप्तशोडशमन्त्राः शिववक्त्राद्विनिर्गताः ।

पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥२॥

दोक्षितोऽदोक्षितो वाऽपि विवानादन्यथाऽपि वा ।

पञ्चाक्षर जपेद्यन्तु शिवाम्यानुचरो भवेत् ॥३॥

अपिकृत्वा भ्रूणहृत्या पापानि सुवहून्वपि ।

पञ्चाक्षरजपात्मघो मुच्यते नात्र संशयः ॥४॥

न हि पञ्चाक्षरजपात्कुत्रे योऽस्ति भुवनत्रये ।

एव ज्ञात्वा जपेद्विद्वान्विद्या पञ्चाक्षरी शुभाम् ॥५॥

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण विल्वपत्रं शिवार्चनम् ।

करोति श्रद्धया यस्तु म गच्छेदंश्वर पदम् ॥६॥

दर्शनाद्विलम्बक्ष्म्य स्पर्शनाद्वन्दनादपि ।

अहोरात्रकृता पाप नश्यते श्रुतिमत्तम ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—पांच अक्षरी के मन्त्र से अर्थात् “ॐ नमः शिवाय” —इस मन्त्र के द्वारा जो कोई पत्र-पुष्प और जल का समर्पण भगवान् शिव के लिये किया करता है उस एक बार के करने ही से उसका अन्तः पत्र हुआ करता है । १। भगवान् शिव के मुखारविन्द से गान करोड़ मन्त्र विनिर्गम हुए थे किन्तु वे सभी मन्त्र मित्राक्षर भी इस पंचाक्षरी मन्त्र की मोमहर्षी बना के समान भी नहीं होते हैं । २। विद्वान् से दीक्षित हो अथवा अदीक्षित हो वैसा भी क्यों न हो जो प्राणी इस पंचाक्षरी वाक् मन्त्र का जाप किया करता है वह अक्षय श्री शिव का अनुपर हो जाया करता है । ३। भ्रूण हत्या करने भी तथा वृद्ध से अन्य वृद्धों को भी बच्चे भी इस पांच अक्षरी वाक् मन्त्र को जपना है उस जाप से पुण्य ही मुक्त हो जाया करता है —दशमं बुद्ध

लेश मात्र भी सन्देह नहीं है । १४। इन तीनों भुवनों में इस पाँच अक्षरों वाले मन्त्र से अधिक कुछ भी श्रेय नहीं है । इस प्रकार से समझ कर ही विद्वान् पुरुष को इस परम शुभा पञ्चाक्षरी विद्या का जाप करना चाहिए । १५। इस पञ्चाक्षरी मन्त्र के द्वारा बिल्व के पत्रों से जो भगवान् शिव का समर्चन किया करता है और परम श्रद्धा की तो भावना से जो करता है वह ईश्वरीय पद को प्राप्त किया करता है । १६। हे ऋषि सनातन ! बिल्व वृक्ष की बड़ी महिमा है क्योंकि यह भगवान् शिव का परम प्रिय वृक्ष है । इसके दर्शन से — इसके स्पर्श करने से और इसकी वन्दना करने से भी एक अहोरात्र का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता करता है । १७।

अन्तकाले नरो यस्तु बिल्वमूलस्य मृत्तिकाम् ।
 आलिम्पेत्सर्वगात्राणि मृतो याति परा गतिम् ॥८
 बिल्ववृक्षं समाश्रित्य द्वादशः।हमभोजनम् ।
 यः कुर्वाद्भ्रूणहा पापान्मुक्ता भवति नारद ॥९
 बिल्ववृक्षं समाश्रित्य त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ।
 हरनाम जपल्लक्षं भ्रूणहत्या व्यपोहति ॥१०
 बिल्ववृक्षं दध्वा स्वपण्डितं पूजयेदिन्दुशेखरम् ।
 माघे कृष्णचतुर्दश्या पूजयेदिन्दुशेखरम् ॥११
 भक्त्या बिल्वदले मौनी हरनाम जपत्रिशि ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम् । १२
 शुष्कैः पशुपितैः पत्रैरपि बिल्वस्य नारद ।
 पूजयेद्विरिजानाथं गुच्यते सर्वपातकं ॥१३
 अर्घ्यं पुष्पफलोपेतं यः शिवाय निवेदयेत् ।
 युगानामयुतं सायं शिवलोके वसेन्नरः ॥१४

जो मनुष्य अन्त काल में बिल्व वृक्ष के मूल की मृत्तिका से अपने समस्त अङ्गों का विनोदन किया करता है वह मृत होकर परागति को प्राप्त किया करता है ॥८॥ बिल्व वृक्ष को समाश्रय करके जो द्वादश

दिन तक भोजन नहीं किया करता है हे नारद । वह भ्रूणहा पाप से मुक्त हो जाया करता है ॥६॥ वित्त्व वृक्ष का समाधाय ग्रहण करके जो तीन रात्रि पर्यन्त शुचि होकर उपवास किया करता है और एक लक्ष भगवान् हर के नाम का जाप किया करता है वह भ्रूण हत्या के पाप को विनष्ट कर दिया करता है ॥१०॥ वित्त्वपत्रों से तथा उनके खण्डों से इन्दुजेश्वर भगवान् शिव का माघ मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में पूजन करना चाहिए ॥११॥ भक्ति की भावना से वित्त्व दलों के द्वारा मोती होकर रात्रि में हर का नाम का जाप करना चाहिए । वह समस्त पापों से निर्मुक्त होकर अन्तकाल में भगवान् शिव के परमपद को प्राप्त हो जाया करता है ॥१२॥ हे नारद । शुष्क, पर्युषित विन्व के पत्रों से भी यदि गिरिजा के नाथ का पूजन किया करता है तो मनुष्य सभी पातकों से मुक्त हो जाया करता है ॥१३॥ पुष्प और फलों से युक्त अर्घ्य को जो भगवान् शिव के लिये निवेदित किया करता है वह मनुष्य उड़ अयुत युगों तक निवलोक में निवास किया करता है ॥१४॥

आप क्षीर कुशाग्राणि सघृन दधि सण्डुला ।

तिलैश्च तपपै सार्धमर्घ्योऽष्टाङ्ग इति स्मृत ॥१५॥

फलकोटि मुवर्णस्य यो दद्योद्देदपारमे ।

शिवाय रत्निकामात्र प्रदत्त्वा (?) वाऽधिक भवेत् ॥१६॥

तस्मात्पत्रं फलं पुष्पैस्तोयैरपि यजेच्छिवम् ।

तदनन्तफलं प्रोक्तं भक्तिरेनाथ कारणम् ॥१७॥

लिङ्गस्य लेपनं कुर्याद्द्विगुणं चन्दनमनोरमं ।

वर्षकोटिशतं दिव्यं शिवलोके महीयते ॥१८॥

सुगन्धालेपनात्पुष्पं द्विगुणं चन्दनस्य तु ।

चन्दनाच्चागराजं य पुण्यमष्टगुणाधिकम् ॥१९॥

कृष्णागरोविशेषेण द्विगुणं फलमिष्यते ।

तस्माच्चतुर्गुणं पुण्यं कुङ्कुमस्य विधीयते ॥२०॥

चन्दनागररूपं रत्नैर्नामिरोचनकुङ्कुमं ।

लिङ्गमेतैः समालिप्य गाणपत्यमनाज्ज्यात् ॥२१॥

जल, दूध, कुशा के अग्रभाग, घृत, दधि चावल, तिल, सरसो इन सबका अर्घ्य आठ अङ्गुली वाला होता है—ऐसा कहा गया है ॥१५॥ जो मनुष्य सुवर्ण की पलकोटि को किसी वेदो के पारगामी को देता है । शिव के लिये एक रत्तीमात्र ही अथवा अधिक दिया करता है ॥१६॥ इस कारण से पद्म, फल, पुष्प और अस से ही भगवान् शिव का भजन करना चाहिये । उसका अनन्त फल बतलाया गया है किन्तु इसमें भी एकमात्र भक्ति ही कारण होता है ॥१७॥ भगवान् के लिङ्ग का लेपन दिव्य गन्धों से जो बहुत ही मनोरम हो करना चाहिए । वह मनुष्य जो ऐसा किया करता है सौ करोड़ दिव्य वर्षों तक शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥१८॥ चन्दन के लेपन से सुगन्धित पदार्थ के लेपन से द्विगुण पुण्य हुआ करता है । चन्दन से भी आठ गुना अधिक पुण्य अमर के लेपन से हुआ करता है—ऐसा ही जानना चाहिए ॥१९॥ जो कण अमर होता है उसके लेपन से विशेष रूप से दुगुना फल हुआ करता है । उससे भी सौगुना फल पुष्प कुकुम का होता है ॥२०॥ चन्दन, अमर, कर्पूर, नाभिरोचन, कुमकुम इन सबके द्वारा शिव लिङ्ग का विलेपन करके मनुष्य गणपत्य पद की प्राप्ति किया करता है ॥२१॥

सवीज्य तालवृन्तेन लिङ्गं गन्धैः सुलोपितम् ।

दशवर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥२२॥

मयूरव्यजन दद्यान्निष्ठायातीव शोभनम् ।

यपकोटिशत दिव्य शिवलोके महीयते ॥२३॥

चामर यः शिवे दद्यान्मणिरत्नविभूषितम् ।

हेमरूप्यादिदण्ड वा तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२४॥

चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीपरिवारितः ।

विमान वरमारुह्य गणैर्यानि शिव पदम् ॥२५॥

अरण्यसन्धेः पुष्पैः पल्लवैः स्मरिस्तृणैः ।

अपयुपितनिश्चिद्रैरवतैर्जन्तुवर्जितैः ॥२६॥

आत्मारामोद्भवैर्वापि पुण्यं संपूजयेच्छिवम् ।

पुण्यजातिविशेषेण भवेत्पुण्यमथोत्तरम् ॥२७॥

तपःशीलगुणाढ्याय वेदवेदाङ्गामिने ।

दश दत्त्वा सुवर्णस्य फलं हि तदवाप्नुयात् ॥२८॥

सातवृन्त से सवीजन करके शिव भगवान् के लिङ्ग को गन्ध वाले पदार्थों से लेपन करे ऐसा करने से मनुष्य दश महत्त्व वर्ण पर्यन्त शिव लोका में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥२२॥ मयूर का वृजन शिव के लिये देना चाहिये यह अतीव शोभन हुआ करता है । वह मनुष्य सी करीब वर्ष तक जोकि दिव्य वर्ण होते हैं शिवलोक में प्रतिष्ठित रहा करता है ॥२३॥ जो कोई शिव का भक्त मणि और रत्नों से विभूषित चमर उन पर दुआया करता है जिसका दण्ड हेमवा रूप आदि का हो उसका जो पुण्य-फल होता है उसे भी सुन लो ॥२४॥ चमरो में समा-सप्तन हाथों वाली दिव्य स्त्रियों के द्वारा परिवारित होता हुआ गणों के साथ परम श्रेष्ठ विमान पर समाहृत होकर वह मनुष्य अन्त में भगवान् शिव के पदों में प्राप्त किया करता है ॥२५॥ जगत्सो में समुत्पन्न पुण्यो से, पशुओं में जो पर्वतों में समुत्पन्न हुए हैं और वे अर्घ्यपूजित, निदिद्यद् अरक्त और जन्तुओं से यजित होने चाहिए अथवा आत्मारामोद्भव हो अर्थात् अपने धाम में पैदा हुए हों ऐसे पुण्यो में भगवान् शिव का पूजन करना चाहिए । पुण्य जाति विशेष में उत्तर पुण्य होता है । तपः शील और गुणाढ्य तथा वेद वेदाङ्गों का ज्ञान ब्रह्मण के निम्ने दश सुवर्ण के फल दान देकर वही पुण्य फल प्राप्त होता है ॥२६-२८॥

अकंपुण्यं क्त्वा पूजा यदि देवाय संभवै ।

अकंपुण्यमहस्येभ्यः करवीर प्रशस्यते ॥२९॥

करवीरमहस्येभ्यो विन्वपत्रं विनिष्यते ।

विन्वपत्रमहस्येभ्यः समीपत्रं विनिष्यते ॥३०॥

समीपुण्यमहस्येभ्यः समीपुण्यं विनिष्यते ।

समीपुण्यमहस्येभ्यः सुसुपुण्यं विनिष्यते ॥३१॥

पुण्यपुष्पजहस्त्रेभ्योः पद्मपुष्पं विशिष्यते ।

पद्मपुष्पमहस्त्रेभ्यो वक्रपुष्पं विशिष्यते ॥३२

वक्रपुष्पमहस्त्रेभ्यो एक घत्त रक्तं तथा ।

धत्तूरयमहस्त्रेभ्यो बृहत्पुष्पं विशिष्यते ॥३३

बृहत्पुष्पमहस्त्रेभ्यो द्रोणपुष्पं विशिष्यते ।

द्रोणपुष्पसहस्त्रेभ्यः अ(भ्यो ह्य)पामार्गं विशिष्यते ॥३४

अपामार्गसहस्त्रेण श्रीमन्नीलोत्पलं वरम् ।

नीलोत्पलसहस्त्रेभ्यः यो मालां संप्रयच्छति ॥३५

आज के पुष्पों से देव सम्भु के लिये की हुई पूजा यदि होवे तो उत्तम होती है और गरवीर के पुष्प एक सहस्र आज के पुष्पों से भी प्रशस्त मानी गयी है ॥३६॥ एक सहस्र गरवीर के पुष्पों से भी अधिक प्रशस्त विल्वपत्र माना गया है । एक सहस्र विल्व पत्रों में भी प्रशस्त लाल के पुष्प माने गए हैं । एक लाल के पुष्पों से भी अधिक प्रशस्त कुश के पुष्प माने गये हैं कुश के सहस्र पुष्पों से अधिक प्रशस्त पद्म पुष्प होते हैं और पद्म के सहस्र पुष्पों से अधिक प्रशस्त वक्र पुष्प माने गये हैं । एक सहस्र वक्र पुष्पों में भी अधिक प्रशस्त घत्तरे के पुष्प माने गये हैं घत्तरे के सहस्र पुष्पों में भी अधिक प्रशस्त बृहत्पुष्प माना गया है । बृहत्पुष्प सहस्र में अधिक प्रशस्त द्रोण पुष्प होता है और एक सहस्र द्रोण पुष्पों में अधिक प्रशस्त अपामार्ग का पुष्प माना गया है । अपामार्ग के सहस्र पुष्पों में अधिक प्रशस्त श्रीमन्नीलोत्पल श्रेष्ठ होता है । नीलोत्पल के एक सहस्र पुष्पों से भी अधिक प्रशस्त वक्र है जो एक माला समवित्त किया जाता है ॥३०-३५॥

निशाम त्रिदिव्यदुर्बला मन्त्र पुष्पफलान्नु ।

बलशरीरिमहस्तालि पद्मपुष्पैश्चनानि च ॥३६

गर्भच्छिष्टपुत्रे श्रीमन्निशामन्त्रपुष्पफलान्नु ।

गरवीरममा ज्ञेया जाती निशामपाटना ॥३७

दशमनन्त्रपुष्पममिदं न मन्त्रमम् ।

नामनन्त्रपुष्पानां धत्तूरकण्ठमाः स्मृता ॥३८

वन्द्युक्त वेतकीपुष्प कुन्दयूथीमदन्तिका ।

शिरीष चार्जुन पुष्प प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३६॥

कनकानि वदम्बानि रात्री देयानि शक्रे ।

दिवा शेषाणि पुष्पाणि दिवा रात्री च मल्लिका ॥४०॥

प्रहर तिष्ठते जाती करवीरमहनिशम् ।

केश कीटावविद्धानि शीर्णैर्युपितानि च ॥४१॥

स्वयं पतितपुष्पाणि स्येज्जदुपहतानि च ।

मुकुलैर्नाचयेद्दीप्तं यस्य कस्यापि नारद ॥४२॥

भगवान् शिव के लिये भक्ति से विधिपूर्वक जो अर्पण करता है उसका पुष्प फल अथवा कीजिए । एक सहस्र करोड़ कलों तक और सौ करोड़ कल्प पर्यन्त वह श्रीमान् शिव के तुल्य पराक्रमवाना होकर शिवपुर में निवास किया करता है । करवीर के ही समान जाती और विजय पाटला का समझना चाहिए ॥३६॥३७॥ इवेतमन्दार, कुमुद और तिन पक्ष भी उसी के समान होता है । नाग, चम्बक और पुत्राग घतूरे के पुष्प के ही तुल्य माने गये हैं ॥३८॥ शिव के समर्पण में प्रयत्नपूर्वक वन्द्युक्त पुष्प, वेतकी पुष्प, कुन्द, यूथिका, मदन्तिका, शिरीष और अर्जुन के पुष्पों का वर्जित रखना चाहिए । अर्थात् इन उपर्युक्त वृक्षा एव सताओं के पुष्प शिव के यजन में ग्रहण नहीं करने चाहिए ॥३६॥ कनक और वदम्ब के पुष्प शम्भु के ऊपर रात्रि में ही देने चाहिए । शेष पुष्पों का दिन में अर्पित कर तथा मल्लिका के पुष्प दिन में और रात्रि में दोनों में ही अर्पित बिन्दे जा सकते हैं । जाती का पुष्प एक ही प्रहर तक टहरता है और करवीर का पुष्प अत्रिनिश तक टहरा करता है । जो पुष्प केश और शीर्ष से व्यभिचर हों, शीर्ष हों, उपर्युक्त हों तथा स्वयं ही गिरे हुए हो एव उदहन हो उनका त्याग करना चाहिए अर्थात् ऐसे पुष्पों में पूजन नहीं करे । हे नारद ! जिस स्त्री भी वृक्षा की मुकुटों से अर्थात् कनिका में कभी भी शिव का अर्पण नहीं करना चाहिए ॥४०॥ ४२॥

कलिकैनर्चयेद्देव चम्पकैर्जलजैर्विना ।
 न पयुं पितदोषोऽरस्ति जलजोऽलचम्पकं ॥४३॥
 पुष्पाणामप्यलाभे तु पत्राण्यपि निवेदयेत् ।
 फलानामप्यलाभे तु तृणगुल्मोपधैरवि ॥४४॥
 औषधानामभावे तु भक्त्या भवति पूजितः ।
 दिव्यपद्मैरखण्डैस्तु सकृत्पूजयते शिवम् ॥४५॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ।
 घत्तूरकैस्तु या लिङ्गं सकृत्पूजयते नरः ॥४६॥
 गोलक्षस्य फलं प्राप्य शिवलोके महीयते ।
 बृहतीकुसुमैर्भक्त्या यो लिङ्गं सकृदर्चयेत् ॥४७॥
 गवामधृतदानस्य फलं प्राप्नोति शिवं व्रजेत् ।
 मल्लिकोत्पलपुष्पाणि नागपु नागचम्पकं ॥४८॥
 अशोकश्वेतमन्दारकर्णिकारवकानि च ।
 करवीराकंमन्दारशमीतगरवेमरम् ॥४९॥
 कुशापामार्गवमुदकदम्बकुरवरपि ।
 पुष्पैरेतैर्यथालाभं यो नरः पूजयेच्छिवम् ॥
 ॥ यत्फलमवाप्नोति तदेकाग्रमना धृणु ॥५०॥

चम्पक और जलज के बिना कलियो से कभी मूलकर भी देव की
 अर्चना नहीं करनी चाहिये । जलज, उत्पल और चम्पको में कभी पयुं-
 पित होने का दोष नहीं हुआ करता है ॥४३॥ यदि पुष्पो का लाभ
 नहीं तो ऐसी वधा में पत्रों को ही भगवान् को निवेदित कर देवे ।
 पत्रों के लाभ न होने पर भी तुण, गुल्म और औषधियों से समर्पण करे
 और औषधों के भी अभाव में भक्ति से ही शिव पूजित हो जाया करने
 है । अखण्ड वित्त्व पत्रों से एक बार ही शिव का पूजन करना चाहिये ।
 वह आदमी सब पापों से विनोद रूप में निर्मुक्त होकर रुद्रलोक में
 प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । जो मनुष्य एक बार लिङ्ग की पूजा
 घत्तूरे के पुष्पो और पत्रों से किया करता है वह एक मास मोक्षों के दान

का फल प्राप्त करके शिवलोक में ही प्रतिष्ठित हुआ करता है । जो कोई मनुष्य भक्ति से बृहन्नी के पुण्यो के द्वारा एकवार शिवनिष्क की पूजा करता है वह अयुन गौत्रो के दान कर फल प्राप्त करके शिव की सन्निधि में प्राप्त हुआ करता है । जो मनुष्य, मल्लिका, उत्पल, नाग, पुत्राग, क्षम्पक, अशोक, श्वेत मन्दार, शमी, तगर, केसर, कर्णिकाट, वक, करवीर, अर्क, कुश अपामार्ग, कुमुद, कदम्ब कुरव इन पुण्यो से जो भी यथा समय प्राप्त होवें उनसे भगवान् शिव का जो मनुष्य पूजन किया करता है उसको जो भी पुण्य प्राप्त होता उसही एकाग्र मन बाला होकर श्रवण करो ॥५४-५०॥

सूर्यकोटिप्रनीकाशैर्विमानैः सार्वभौमिकैः ॥५१॥

पुष्पमालापरिक्षिप्तैर्गीतवादित्रनिस्वनैः ।

तन्त्रीमधुरनादैश्च स्वच्छन्दगमनैस्तथा ॥५२॥

रुद्रकन्यासमाकीर्णैः समन्तादुपशोभितैः ।

दाधूयमानश्चमरं शिवलोके महीयन् ॥५३॥

अनेकावारविन्यासैः कुमुदैश्च शिवगृहम् ।

यः कुर्यात्पर्वकालेषु विचित्रकुमुदोज्ज्वलम् ॥५४॥

स पुष्पकविमानेन सहस्रपरिवारितः ।

दिव्यक्षीमुखसौभाग्यक्रीडारतिममन्वितः ॥५५॥

अक्षयाल्लभते लोकानतिरस्यूनशासनः ।

शिवादिसर्वलोकेषु यथेष्टं तत्र याति स ॥५६॥

सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले और करोड़ सूर्यों के समान दीप्यमान विमानों के द्वारा जाति पुण्या की मालाओं से परिक्षिप्त होने हैं तथा गीत-वाहिनी की ध्वनि से परिपूर्ण होते हैं एवं तन्त्री के मधुर नादा से युक्त होते हैं और स्वच्छन्द गमन करने वाले हैं । रुद्रा की विन्यासों से समशीर्ण और चारों ओर से सुगोमिन विमान होने हैं— उनके ऊपर चमर डुनाये जाया करने हैं ऐसे विमानों से वे निवारण गमन कर, शिव सोन को गमन किया करते हैं और वहाँ पर प्रतिष्ठित

रहते हैं। जो अनेक आकार वाले विन्यासों से और कुमुदों में पर्वकालों में भगवान् शिव के आयतन को विचित्र कुमुदा से उज्ज्वल किया करता है वह पुष्पक विमान के द्वारा महसों में परिवारित होकर दिव्य स्त्रियों के सुख सोभाग्य की क्रीड़ा रति से मग्न होना हुआ अक्षय लोको को प्राप्त किया करता है और उसका शासन वही पर भी तिरस्कृत नहीं होता है। वह शिवादि समस्त लोको में अपनी इच्छा के अनुसार ही गमन किया करता है ॥५१-५६॥

पूजादिभक्ति विन्यासैरर्चनादिषु सर्वतः ।
 फलमेकं समं ज्ञेयं फलं वित्तानुसारतः ॥५७॥
 स्वयमुत्पाद्य पुष्पाणि यः स्वयं पूजयेच्छिवम् ।
 तानि साक्षात्प्रगृह्णाति देवदेवो महेश्वरः ॥५८॥
 कृष्णागरो सत्पूरघुपं दद्याच्छिवाय वै ।
 नैरन्तर्येण मासार्धं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥५९॥
 कल्पकोटिशतस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
 भुक्त्वा शिवपुरे भोगास्तदन्ते पृथिवीपति ॥६०॥
 गुग्गुलुं धृतसयुक्तं साक्षाद्गृह्णानि शकरः ।
 मासार्धं धूपदानेन शिवलोके महीयते ॥६१॥
 कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां यः माज्यं गुग्गुलुं दहेत् ।
 स याति परमं स्थानं यत्र देवः पिनाकधृत् ॥६२॥
 श्रीफलं चाऽऽज्यसमिश्रं दत्त्वाऽऽप्नोति परां गतिम् ।
 एभिः सुगन्धितो घूपं पट्टं सहस्रगुणोत्तरः ॥६३॥
 यस्त्वर्कं सपुटे कृत्वा मधुं चार्घ्यस्य मन्यत ।
 निवेदयति क्षर्वाय सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥६४॥

पूजा आदि-भक्ति विन्यासों के द्वारा अर्चना आदि में सब ओर से सबका समान एव ही फल होता है—ऐसा समझ लेना चाहिए। फल वित्त के ही अनुसार हुआ करना है ॥५७॥ जो स्वयं पुष्पों का उत्पादन करके और स्वयं ही भगवान् शिव का अर्चना किया करता है उनका

साक्षात् देवी के भी देव महेश्वर ग्रहण किया करते हैं ॥५८॥ शिव के लिये कपूर के साथ कृष्ण अमर की धूप देनी चाहिये । इस तरह निरन्तरता से जो एक मास के अर्चमाण तक किया करता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसे भी सुनसो ॥५९॥ एक सहस्र और सौ करोड़ कल्पों तक दिव्य भोगों का शिव के पुर में उपभोग करके उसके अन्त में वहाँ मत्सर में आकर पृथिवी पति राजा होगा है ॥६०॥ पृथ से समुक्त गूमल की धूपको मगवान् शङ्कर साक्षात् ही ग्रहण किया करते हैं मास के अर्च भाग तक ऐसा करने से अर्घ्य धूपदान से मनुष्य शिपलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥६१॥ मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि में घृत के सहित गूमल का दाह करना चाहिए । वह मनुष्य उसी परम स्थान को चला जाया करता है जहाँ पर पिताकपारी देव विराजमान रहने हैं ॥६२॥ घृत से मिश्रित धीकन को ममवित करके मनुष्य पराणति को प्राप्त हुआ करता है । इन पदार्थों से सुगन्धित धूप छै सहस्र उत्तर गुणों वाली होनी है ॥६३॥ जो आदमी भाक के पन का सम्मुख बनाकर गन्ध के द्वारा अर्पण मधु शिव को निवेदन किया करता है वह अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का फल प्राप्त कर लिया करता है ॥६४॥

शालितण्डुलप्रस्थेन कुर्यादग्नौ मुसम्भृतम् ।

शिवाय तच्चरु दत्त्वा चतुर्दश्या विशेषतः ॥६५॥

यावन्तस्तण्डुलास्तस्मिन्निवेद्ये परिसम्यया ।

तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥६६॥

गुडसण्डघृतानां च भक्ष्याणां च निवेदनात् ।

घृतेन पाचिनामा तु दत्त्वा शतगुण भवेत् ॥ ६७ ॥

पृतदीपप्रदानेन शिवाय शतयोजनम् ।

विमान तभते दिव्य गूर्यकोटिसमप्रभम् ॥६८॥

यः कुर्यात्कार्तिके मासि शोभना दीपमानिकाम् ।

घृतेन च चतुर्दश्याममावास्या (यां वा) विशेषतः ॥६९॥

सूर्यायुतप्रतीकाशस्तेजसा भासयन्दिशः ।

तेजोराशिर्विमानस्थ सूर्यवद्द्योतते सदा ॥७०॥

शिरसा धारयेद्दीप सर्वरात्र्या विशेषतः ।

ललाटे वाऽथ हस्ताभ्यां शिरसा वाऽथ नारद ॥७१॥

सूर्यायुतप्रतीकाशैर्विमानं सार्वकामिकं ।

कल्पायुतशतं दिव्यं शिवलोके महीयते ॥७२॥

शालि-तण्डुल प्रस्थ से अन्न को सुसंस्कृत करना चाहिए । उसका चरु भगवान् शिव के लिये विशेष रूप से चतुर्दशी में देवे । उस मैत्रेय में परिसंख्या में जितने भी चावल होंगे उतने ही सहस्र वर्षों तक वह शिव लोक में प्रतिष्ठित रहा करता है ॥६५॥६६॥ गुड, खंड और घृतो के भक्ष्य पदार्थों के निवेदन करने से जो केवल घृा में पाचित पदार्थ है उनको समर्पित करके सीगुना पुण्य फल प्राप्ति किया करता है ॥६७॥ भगवान् शिवजी की सेवा में घृत के दीपक दान से शतयोजन वाला विमान प्राप्ति करता है जो परम दिव्य और करोड सूर्यों के समान दीप्ति वाला होता है । ६८॥ जो आदमी वास्तिक मास में परम शोभन दीपो की मानिदा किया करता है । चतुर्दशी में घृत से दीपक जलाता है तथा विशेष रूप से अमावस्या में दीप दान करता है वह अयुत सूर्यों के प्रतिक्लेश वाले विमानों के द्वारा जिनमें सभी कामनाओं की पूर्ति के माघन विद्यमान थे ममन किया करते हैं और सो अयुत कल्पों तक दिव्य शिव लोक में प्रतिष्ठित हुआ करते हैं ॥६९-७२॥

शिवस्य पुरतो दत्त्वा दर्पणं च सुनिर्मलम् ।

चन्द्रानुनिर्मलः श्रीमान्गुभगः कामरूपधृत् ॥७३॥

कल्पयुतसहस्रं तु शिवलोके महीयते ।

कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या शिवस्याऽऽयतनं नरः ॥७४॥

अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति नारदः ।

कृत्वा रामप्रार्थंस्तु शिवायतनकर्मणि ॥७५॥

उपयुक्तानि भूतानि खननोत्पातनादिषु ।

कामतोऽकामतो वाऽपि स्यावराणि चराणि च ॥७६॥

शिव यान्ति न सदेह प्रसादात्परमेष्ठिन ।

क्रोशमात्र शिवक्षेत्र समन्तात्परमेष्ठिन ॥७७॥

भगवान् शिव के आगे मुनिर्मन दर्पण को समर्पित करके जो अर्चन करता है यह स्वयं चन्द्र विरण के समान निर्मल होकर कामदेव के मुख्य सुन्दर स्वरूप को धारण करने वाला श्रीमान् मुमग सहस्र आपृत रूप पर्यन्त शिव लोक में प्रनिष्ठा प्राप्त किया करता है । मनुष्य भक्ति भावना से शिव के आगतन की प्रदक्षिणा करके हे नारद ! एक सहस्र अश्वमेध यज्ञों के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है । शिव के आगतन कर्म में वृष-आराम और प्रसा (प्याऊ) आदि से खनन और उत्पत्ति आदि में जो भूत उपयुक्त होते हैं, चाहे इच्छा में और भले ही बिना ही इच्छा के स्यावर और चर सब परमेष्ठी के प्रसाद से शिवकी सतिधि को प्राप्त किया करते हैं—इसमें लेशमात्र की मन्देह नहीं है । परमेष्ठी प्रभु के गमी और एव कोश भर तर शिव का क्षेत्र होता है । तात्पर्य यह है कि शिवालय के चारों ओर एव कोश तत्र शिव का ही क्षेत्र माना जाता है ॥७३-७७॥

देहिना तत्र पञ्चत्व शिवमायुग्यारणम् ।

मनुष्यस्यापिते लिङ्गे क्षेत्रमन्मिदं स्मृतम् ॥७८॥

स्नायमुक्ते मोजने स्नादापि चैव तदधाम् ।

पापाचारोऽपि यस्मिन् पञ्चय याति नारद ॥७९॥

मोऽपि याति शिवस्थानं यद्देवैरपि दुर्लभम् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नानादिकं चरेत् ॥८०॥

तस्मादावस्य कुर्याच्छिवक्षेत्रमभीषतः ।

शिवलिङ्गसमीपस्थ यत्तोय पुरतः स्थितम् ॥८१॥

शिवगङ्गे नि मज्जेय तत्र स्नानादिना व्रजेत् ।

तु कुर्याद्दीर्घं वाऽपि ब्रूय वाऽपि शिवार्थमे ॥

शिवगङ्गुसमयुक्त शिवशोके महीपते ॥८२॥

इस शिव के क्षेत्र में देहधारियों की मृत्यु यदि हो जाती है तो वह शिव के सायुज्य प्राप्त कराने का कारण हुआ करता है। मनुष्य के द्वारा स्थापित किये हुए शिव लिङ्ग का यह क्षेत्रमात्र बताया गया है। स्वायम्भुव में एक योजन (योजन ४ कोस का होता है) और ऋषियों के द्वारा यदि स्थापित शिव लिङ्ग हो तो उनका क्षेत्र स्वायम्भुव से आया हुआ करता है। हे नारद ! कंसा ही पाप पूर्ण आचार वाला भी कोई वहाँ पर मृत हो जावे तो वह भी शिव के स्थान को गमन किया करता है जो कि देशों के द्वारा भी प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ हुआ करता है। इसीलिये सभी प्रयत्नों से वहाँ पर स्नात आदि करना चाहिये और इसी कारण में शिव के क्षेत्र के समीप ही अपना निवास रखना चाहिये। शिव के लिङ्ग के समीप में जो जल आगे स्थित है वह शिवगङ्गा इस सजा वाली है। वहाँ पर स्नानादि करके ही गमन करे। जो कोई शिवाश्रय में कुशा या दीधिका (शवडी) बनवाता है वह अपने इक्कीस कुलों के महित जिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥७८-८२॥



॥ शिवार्चन माहत्म्यादि कथन ॥

पुष्पं वा यदि वा पत्रं सकृदलिङ्गं समर्पितम् ।

तदनन्तफलं प्रोक्तं हेतुर्भवति मुक्तये ॥१॥

तुष्टे शिवे पदार्थः को दुर्लभो हि नृणां प्रभो ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवप्रीत्यर्थमाचरेत् ॥२॥

तावददातुं शिवः शक्तस्तथावच्छिन्तयितुं प्रभुः ।

तत्सर्वं न नरः सौम्यं शिवप्रीत्यर्थमाचरेत् ॥३॥

ऋद्धिसिद्धौ न दूरस्थे शिवप्रीत्यर्थकर्मणाम् ।

नराणां नरनाथे किं प्रीते तु दुर्लभं भवेत् ॥४॥

शिरसा शिवनिर्माल्यं भक्त्या यो धारयिष्यति ।
 अशुचिभिन्नमर्यादः सर्वावस्था गतोऽपि वा ॥६
 स्वैरी चैवाप्रयुक्तात्मा नियमैश्च वहिष्कृतः ।
 तस्य पापानि नश्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥१०
 मोहान्त धारयेच्छंभोर्निर्माल्यं न च भक्षयेत् ।
 न स्पृशेदपि पादेन लङ्घयेन्नापि नारद ॥११
 निर्माल्यलङ्घनाच्छंभोश्चाण्डालः सोऽभिजायते ।
 पृथूदक महतीर्थं गङ्गा च यमुना तथा ॥१२
 नर्मदा सरयूः क्षिप्रा तथा गोदावरी नदी ।
 सदा सन्निहितास्त्वेवं शंभोः स्नानोदके मुने ॥१३
 शंभोः स्नानोदकं सेव्य सर्वतीर्थमयं हि तत् ।
 धारणात्पापसंघातैस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥१४

पार्वती पति के निर्माल्य को जो भक्ति भाव से शिर पर धारण करता है वह राजसूय यज्ञ के भजन करने का ही उत्तम पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है । ॥६॥ शिर से भक्ति भावना के साथ जो शिव के निर्माल्य को धारण करेगा चाहे वह अशुचि हो अथवा मर्यादा का भेदन करने वाला सभी अवस्थाओं में रहने वाला भी क्यों न हो । स्वैरता से समा-चरण करने वाला—अप्रयुक्त आत्मा वाला और नियमों से वहिष्कृत हो उसके सभी पाप विनिष्ट हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है । ॥१०॥ जो मोह से शिव के निर्माल्य को धारण नहीं किया करता है अथवा उसका भक्षण नहीं करता है । हे नारद! उस शिव निर्माल्य को पैर से कभी स्पर्श नहीं करे और न उसका कभी उल्लङ्घन ही करना चाहिए । ११॥ दाम्भ्य के निर्माल्य के भक्षण करने से वह मनुष्य चाण्डाल होकर उत्पन्न हुआ करता है । हे मुने ! पृथू-दक यह तीर्थ-गङ्गा-यमुना-नर्मदा-सरयू-क्षिप्रा तथा गोदावरी नदी दाम्भ्य के स्नानोदक ने सदा सन्निहित रहा करती है । १२॥१३॥ दाम्भ्य के स्नान । जल सदा ही सेवन करना चाहिए क्योंकि यह सभी तीर्थों से परिपूर्ण

हैं । उससे केवल धारण करने ही से समस्त पापों के सघातों से मनुष्य उसी क्षण में मुक्त हो जाया करता है । ११४।

लिङ्गे म्वायं भुवे वारणे रत्नजे रसनिर्मिते ।
 सिद्धप्रतिष्ठिते लिङ्गे न चण्डोऽघिकृतो भवेत् ॥१५॥
 पादोदकं च निर्मात्य भक्तैर्धार्यं प्रयत्नतः ।
 न तान्मृशन्ति पापानि मनोवाकायजान्यपि ॥१६॥
 किं लिङ्गं प्रोच्यते तात केन वा तदधिष्ठितम् ।
 भगवन्ब्रूहि मे सर्वमाश्चर्यं ह्येतदुत्तमम् ॥१७॥
 अव्यक्तं लिङ्गमित्युक्तमानन्दतमसपरम् ।
 महादेवस्य यत्नेन लिङ्गो स्यात्तेन शकर ॥१८॥
 एकार्णवे पुरा घोरे नष्टे म्यावरजङ्गमे ।
 मम विष्णो प्रबोधार्थमाविर्भूतं शिवात्मकम् ॥१९॥
 तदाप्रभृत्यहं विष्णुर्भक्त्या परमया मुदा ।
 लिङ्गमूर्तिधरं शान्तं पूजयावो वृषध्वजम् ॥२०॥

स्वायम्भुव लिङ्ग मे—वाण मे—रत्नों से निर्मित मे—रस के द्वारा (पारे से) निर्मित मे—मिठों के द्वारा प्रतिष्ठित मे कभी चण्ड अघिकृत नहीं हुआ करता है । ११५। शिव का पादोदक निर्मात्र भक्तों को मदा ही धारण करना चाहिए और प्रयत्न पूर्वक धारण करे । उन मनुष्यों को मन वाणी और शरीर से कभी भी पाप स्पर्श नहीं किया करते हैं । ११६। श्री नारद जी ने कहा—हे तात ! लिङ्ग किसको कहा जाता है और किसके द्वारा वह अधिष्ठित होता है । हे भगवान् ! यह सभी आप हमारे सामने बतलाइये । यह एक उत्तम आश्चर्य ही है । ११७। श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो अव्यक्त है वही लिङ्ग कहा गया है । वह आनन्द स्वरूप होता है और तय से परे है । यत्न से महादेव का लिङ्ग होता चाहिए उससे शकर होना है । ११८। प्राचीन समय में पहिले त्रिग समय में परम घोर एक अर्ण वही था और सभी म्हावट या जगत् भ्रष्ट हो गये थे तो मेरे विष्णु के प्रबोध प्रदान करने के लिए शिवात्मक

आविर्भूत हुए थे । तभी स नेवर मैं और विष्णु देव भविष्य से परमानन्द के साथ लिङ्ग मूर्ति के धारण करने वाले एवं परम शान्त वृषभ ध्वज भगवान् का पूजन किया करते हैं । १२३॥

लिङ्ग कथमभूत्पूर्वमानन्दमजर ध्रुवम् ।

प्रबोधार्थं च युवयोर्वैक्तुमर्हंसि पद्यज ॥२१॥

आसीदेकाणवे घोरे निर्विभागे तमोमये ।

शेते च भगवान्विष्णुस्तप्तजाम्बूनदप्रभ ॥२२॥

तत्समीपमहं गत्वा सरस्मादिदमुक्तवान् ।

कस्त्व किमर्थं वा शेषे शीघ्रमृत्तिष्ठ दुर्मते ॥२३॥

बुद्धं युद्धं मया साधंमहमेव जगत्पति ।

अथ वा भज मा देव त्रैलोक्यस्याभयप्रदम् ॥२४॥

एव गदघ्नं श्रुत्वा ग्रहसन्मधुसूदन ।

सामग्रवीदभेयात्मा कथं गर्वायसे मुधा । २५॥

कर्ताऽहं सर्वलोकानां पालकोऽहं न ससय

सहर्ताऽहं पुत्रश्चान्ते तान्योऽस्ति सहस्रो मया । २६॥

एव विवादे सजाते मम देवेन शार्ङ्गिणा ।

प्रादुर्भूत तदा लिङ्गमावयोर्द्विर्पहारि तत् । २७॥

कालाग्निप्रपुतप्रस्म ज्वालामालासमाकुलम् ।

आदिमस्यान्तरहित क्षयवृद्धिविर्वाचितम् । २८॥

श्री नारदजी ने कहा—यह लिङ्ग पूर्व से आनन्द स्वरूप और ध्रुव एवं अजद कैस हुआ था जो कि दोनों पुरुषों के प्रबोधार्थ कराने के लिए ही हुआ था । हे पद्यमन्त्र ! यह सब आप बताने के लिये परम सुयोग्य हैं । १२१॥ श्रीब्रह्माजी ने कहा—जिम समय मैं यहाँ पर एक सान सवय वर्णन ही था और यह स्थल परम घोर एवं तमोमय था उस समय मैं तपाये हुए सुवर्ण के समान प्रभा वाले भगवान् विष्णु उत्तम शयन किया करते हैं । उनका ममीष में मैंने जाकर सरम्भ से इस प्रकार से कहा था—हे दुर्मते ! आप कौन हैं और क्यों शयन कर रहे हैं । शीघ्र ही

उठिये । मेरे साथ युद्ध करो क्योंकि मैं ही प्रजापति हूँ । अबवा देव मेरा
यजन करो क्योंकि मैं जलोक्य को अमय प्रदान करने वाला हूँ । २२-२४।
इस तरह के वचना का श्रवण करके भृगुमूदन हसते हुए मुझसे कहने
लगे क्योंकि वे तो अमेवात्मा थे । उन्होंने कहा — क्यों वृथा गर्व कर रहे
हो ? २५। इन समस्त लोकों का मैं कर्त्ता हूँ और मैं ही इनके पालन
करने वाला भी हूँ — इसमें कुछ भी सशय नहीं है । अन्त काल में मैं ही
इनके सहार का भी करने वाला हूँ और मेरे सहस्र अन्य कोई भी नहीं
है । २६। इस तरह से विवाद के हो जाने पर जो कि मेरा देव शाङ्गी
के साथ हो गया था । उसी समय मे हम दोनों के दर्प को हरने वाला
लिङ्ग प्रादुर्भूत हो गया था जो कालाग्नि प्रद्युतप्रत्य था और ज्वालाओं
की मालाओं से समाकुल था । वह आदि-मध्य और अन्त से भी रहित
तथा क्षय एव वृद्धि से वर्जित था । २७-२८।

तस्मिन्लिङ्गे महादेव स्वयज्योति सनातन ।

सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपाद् । २९।

अर्धनारीश्वरोऽनन्तमतेजोराशिर्दुःसासद ।

ज्येष्ठत्व युवयोस्तावदास्ता किञ्चिद्भवीम्यहम् । ३०।

मूल ममास्य लिङ्गस्य यदि पश्यति माधव ।

नून भविष्यति ज्येष्ठ इति देवेन भाषितम् । ३१।

मूर्धानमस्य लिङ्गस्य यदि पश्यति पञ्चज ।

भविष्यति ततो ज्येष्ठ इति देवेन भाषितम् । ३२।

एव शर्मोनिगदितमुररीकृत्य नारद ।

गतोऽस्मि भस्तक द्रष्टु तस्य लिङ्गस्य पुत्रक । ३३।

आवयोर्नर्पमाहस्य गच्छोर्मोहितात्मनो ।

गत देवशृपे नून विस्मयाविष्टचित्तयो । ३४।

हरिर्मूलमहृष्टं त देव पुनरागत ।

यथा हरिस्तयैवाहमागतो वै मूने तदा । ३५।

तमेव शरणं गत्वा संस्तूय विविधैः स्तवीः ।

प्रीतो भूत्या महादेवो वाक्यमेतदुवाच ह ।३६।

उस लिङ्ग में स्वयं ज्योति—सनातन महादेव ही थे जो सहस्र शीशों वाले—सहस्राक्ष और सहस्रपात् पुष्प थे । वे अर्धनारीश्वर—अनन्त—तेज की राशि—दुरामद थे । तुम दोनों का ज्येष्ठत्व तब तक ही जब तक मैं कुछ बोलता हूँ । हे माधव ! मेरे इस लिङ्ग का मूल बेलें तो आप निश्चय ही ज्येष्ठत्व को प्राप्त हो जायेंगे—यह देव ने उस समय में कहा था । २६। ३०। ३१। परान (ग्रहण) यदि इस लिङ्ग के मूर्धा को देख लेते हैं तो वह ज्येष्ठ हो जायेंगे—यह भी देव ने कहा था । ३२। हे नारद ! इस प्रकार के शम्भु के कथन को स्वीकार करके मैं मस्तक को देखने से लिये गया था जो कि हे पुत्र ! उस लिङ्ग का था । ३३। हे देवधरे ! मोहित आत्मा वाले तथा विस्मय से आविष्ट चित्त वाले हम दोनों को इस तरह से एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे । ३४। श्री हरि ने उस लिङ्ग के मूल को नहीं देखा था और वे यो ही पुनः समागत हो गये थे । उस समय में जैसे हरि आये थे वैसे ही मैं भी आ गया था । उन्हीं की शरण में जाकर विविध स्तवों से उनकी स्तुति की थी तब महादेवजी परम प्रसन्न होकर यह वाक्य बोले थे । ३५। ३६।

मत्प्रसादेन सर्वस्मादधिको भव माधव ।

मद्भक्तानां त्वमेवाग्यः पूज्यो मान्यस्त्वमेव हि ।३७।

लिङ्गे मा पूजय हरे लिङ्गमूर्तिधरो ह्यहम् ।

अत ऊर्ध्वं न संदेहः सर्वे चान्ये दिवौकसः ।३८।

लिङ्गाराधनतः क्षिप्रमज्ञानं नाशयाम्यहम् ।

लिङ्गार्चनस्तानां च नास्ति ससारजं भयम् ।३९।

एव हरेर्नर दत्त्वा मामुवाच महेश्वरः ।

विरञ्चं तव दास्यामि गृहाण वरमुत्तमम् ।४०।

चराचरस्य जगतो मान्यो भव पितामह ।

गृहाण चतुरो वेदाश्चतुर्भिर्गदनीविधे ।४१।

इत्यावाभ्या वर दत्त्वा देवदेव पिनाकघृत् ।

विश्वेश्वर स्वयम्योति क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥४२॥

ईश्वर ने कहा था—३ माघव ! अब आप मेरे प्रमाद से आप सत्रस अधिक हो जाइय ! मेरे भक्तों के लिये भी आप ही अग्र में रहने वाले होंगे और आप ही पूज्य एवं मान्य होंगे । ह हरे ! मेरा पूजन लिङ्ग में ही करिए क्योंकि अब मैं लिङ्ग की मूर्ति का धारण करने वाला हो गया हूँ । इसके आगे सभी अन्य दशगण भी लिङ्ग के ही आराधना करने में रति जाने लागे । जो मेरी आराधना करने वाले हैं उनके अज्ञान को मैं क्षीघ्र ही विनष्ट कर देता हूँ । जो लिङ्ग के अर्चन में निरत रहा करते हैं उनको कभी भी ससार से समुत्पन्नमय नहीं हुआ करता है । ३७।३८।३९। इस प्रकार से हरि को वरदान प्रदान करके महेश्वर ने मुझसे कहा था—ह विरुज्जे । मैं तुमको भी उत्तम वरदान दूंगा । आप उसको ग्रहण कीजिए ॥४०॥ हे पितामह ! आप इस चराचर जगत् के मान्य हो जाइए । देखिये ! आप अपने चार मुखों से चारा वेदों को ग्रहण कीजिए ॥४१॥ इस तरह से हम दोनों को वरदान देकर देवों व भी देव पिनाकधारी प्रभु विश्वेश्वर स्वयं ज्योति एवं ही क्षण में वहीं पर अन्तर्धान हो गये ॥४२॥

तत प्रभृति विष्ण्वाद्या देवा देत्याश्च दानवा ।

गन्धर्वा मुनय सिद्धा यक्षा नागाश्च विनरा ॥४३॥

संपूज्य परम लिङ्ग परा सिद्धि गता मुने ।

नास्ति लिङ्गार्चनादान्यच्छ्रयोऽस्मिन्भुवनत्रये ॥४४॥

ज्ञात्वा त्वमेव देवयै लिङ्गार्चनरतो भव ।

क्षेत्रेषु चैव तीर्थेषु वनेषूपवनेषु च ॥४५॥

यानि लिङ्गानि दिव्यानि स्यापितानि गुरामुरे ।

द्रष्टव्यानि पुर्वंस्तानि श्रद्धयैव हि नारद ॥४६॥

मुक्तिभाजो भवन्त्येव तेऽपि शम्भोरनुग्रहान् ॥४७॥

कानि स्थानानि दिव्यानि येषु सनिहित. शिव. ।

आचक्ष्व तानि मे ब्रह्मन्याहात्म्य चापि कृत्स्नशः ।४८।

माहात्म्य दिव्यलिङ्गानां तीर्थानामपि नारद ।

अत्र ते कथयिष्यामि श्रूयतामघशास (नाश) नम् ।४९।

हे मुने ! तभी से लेकर विष्णु आदि देवगण—दैत्य—दानव—
गन्धर्व—मुनि—सिद्ध—यक्ष—नाग—किन्नर इन सबने परम लिङ्ग
की पूजा करके परासिद्धि को प्राप्त हो गये थे । इन तीनों भुवनो में
लिङ्ग के अर्चन से अन्य कोई भी श्रेय नहीं है । हे देवर्षे ! आप भी
इसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करके लिङ्ग के अर्चन में निरत हो जाइये ।
क्षेत्रो मे—वनो मे—उपवनो मे—तीर्थो मे जी दिव्य लिङ्ग गुरामुरो ने
स्थापित किये हैं । ब्रह्मपुरषो को उनका दर्शन करना ही चाहिए और
हे नारद ! बहुत ही श्रद्धा की भावना से ही उनका दर्शन करे । वे लोग
जो दर्शन किया करते हैं मुक्ति को प्राप्त करने वाले हो जाया करते हैं ।
यह भवगात्र सम्भु का ही परम अनुग्रह उा पर हुआ करता है । श्री
नारदजी ने कहा—वे दिव्य स्थान कौन से हैं जिनमें भगवान् शिव
नित्य सनिहित रहा करते हैं । हे ब्रह्मन् ! उनको आप मुझे बतला
दीजिए और पूर्ण रूप में उनका माहात्म्य भी बतला दीजिए । श्री ब्रह्मा
जी ने कहा—हे नारद ! दिव्य लिङ्गों का माहात्म्य और उन तीर्थों का
भी माहात्म्य यहाँ पर मैं आपको बतला दूँगा उसका श्रवण आप साव-
धान होकर श्रवण करिये क्योंकि यह समस्त अघो का विनाश करने
वाला है ।४२-४९।

या गा शैवी परा भूतिः शिवभक्त्या ह्यपा पतिः ।

नारामण. स्वय साक्षादहं चान्यादश्च देवताः ।५०।

यसन्ति सागरे नूनं तीर्थराजेति स स्मृतः ।

जम्बूद्वीपं महापुण्यं तत्रापि लवणोदधिः ।५१।

अहोरात्रतृप्त पापं दर्शनादेव नश्यति ।

स्पृष्टा त्रिरात्रश्च पापं नाशयत्येव सागरः ।५२।

सप्तरात्रकृत पापं प्रोक्षणादेव नश्यति ।

पानेन पक्षजनित स्नानात्पक्षद्वयस्य च । १५३।

ऋतुद्वये तथाऽष्टम्या पूर्णस्नानं च वार्षिकम् ।

भानावनुदिते नित्यं यः स्नाति लवणोदधौ । १५४।

कपिलाया फल तस्य दत्ताया श्रोत्रिये ध्रुवम् ।

उपोष्य रजनीमेका रविसक्रमणं प्रति । १५५।

स्नात्वा शतसुवर्णस्य दत्तास्य फलमाप्नुयात् ।

व्यतीपाते दिनच्छिद्रे अ (ह्य) यने विपुत्रेषु च । १५६।

जो भगवान् शिव की परामूर्ति है वह शिव की भक्ति से वरुण-
नारायण और स्वयं साक्षात् में तथा अन्य देवगण उम सागर में निवास
करते हैं और वह तीर्थंराज इस नाम से कहा गया है । जम्बूद्वी महात्
पुण्य से परिपूर्ण है । वहाँ पर भी शीर सागर है । अहरीत्र शृत पाप उसके
दर्शन से ही नष्ट हो जाया करता है । स्पर्श करने पर वह सागर तीन
रात्रियो में बिये हुए पाप का विनाश कर दिया करता है । सात रात्रि
में किया हुआ पाप प्रोक्षण करने ही से नष्ट हो जाता है । पान करने
से एक पक्ष में किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है और स्नान करने से
एक मास में किया हुआ पाप नष्ट होता है । दोनों ऋतुओं में—अष्टमी
तिथि और वार्षिक पर्वों में स्नान सूर्य के उदित न होने पर ब्रह्म मुहूर्त
में जो नित्य ही इस लवणोदधि में स्नान किया करता है उताका फल
वैसा ही होता है जैसा कि किसी श्रोत्रिय त्रिप्र को बधिता गी के दान
देने में पुण्यफल हुआ करता है । सूर्य के सक्रमण करने के समय में
एक रात्रि तक उपवास करके और स्नान करने जो शत सुवर्ण के दान
या फल होता है वैसा ही पुण्य हुआ करता है । व्यतीपस्त में—दिन के
छिद्र में—अयन में और विपुत्रेषु में स्नान करने का बड़ा महत्त्व है ।
। १५०-१६।

युगादौ च नरः स्नात्वा विधिवत् लवणोदधौ ।

गोमहस्यस्य दत्तास्य पुच्छेत्रे फलं हि यत् । १५७।

तत्फलं लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवम् ।
 दानानि यानि लोकेषु विख्यातानि मनीषिभिः । १५८।
 तेषां फलमवाप्नोति ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
 वडवानलमुक्तोऽसौ पूतो भवति नारदः । १५९।
 अतोऽस्माद्धि परं नास्ति मुतीर्थमवनीतले ।
 गङ्गा गोदावरी रेवा चन्द्रभागा च वेदिना । १६०।
 एतासां सगमो यत्र स्नानं कुर्यान्महोदधौ ।
 यानि पापानि घोरानि भ्रूणहत्यादिकानि च । १६१।
 नाशयान्ति क्षणादेव सगमस्य प्रभावतः ।
 अश्वमेधसहस्रस्य फलं च भवति ध्रुवम् । १६२।
 समुद्रतीरे परमं तेजोलिङ्गं दुरासदम् ।
 यत्र सिद्धा पुरा वत्स मुनयः सप्तकोटयः । १६३।

युग के आदि दिन में विधिपूर्वक मनुष्य स्नान लवणोपधि में करके
 कुरक्षेत्र में एक सहस्र गौओं के दान देने में जो फल होता है वही पुण्य
 पत्र मनुष्य प्राप्त किया करता है और भूमि के दान का पुण्य—फल भी
 प्राप्त हो जाता है । मनीषियों के द्वारा लोगों में जो भी दान विख्यात
 किये गये हैं उन सबका फल चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में प्राप्त होता है ।
 हे नारद ! वह मनुष्य वडवानल से मुक्त होकर पूत हो जाता करता
 है । १५७। १५८। १५९। इसीलिये इस तीर्थ में परमतीर्थ इस अवनीतल में
 दूसरा कोई भी नहीं है । गङ्गा—गोदावरी—रेवा—चन्द्रभागा—
 वेदिना इन नदियों का जहाँ पर सङ्गम होता है वही पर महोदधि
 में स्नान करना चाहिए । गङ्गामें स्नान का बड़ा भारी अधिप प्रभाव
 होता है । उगमें जो भी महात् पौर भ्रूण हत्या आदि पाप होने हैं वे
 सब एक ही क्षण में नाश हो प्राप्त हो जाया करते हैं । एत सहस्र
 अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का फल भी निम्नित रूप में हुआ करता
 है । समुद्र के तट पर परम दुरासद तेजोनिद्रा विराजमान हैं ।
 हे वत्स ! जहाँ पर पहिले सिद्ध और सात करोड़ मुनिगण निवास किया
 करते थे । १६०—१६३।

सप्तकोटीश्वर नाम तत्र प्रभृति नारद ।
 तस्य लिङ्गस्य माहात्म्य मया चकतु न शक्यते ॥६४॥
 स्मरणादस्य लिङ्गस्य गोसहस्राफल लभेत् ।
 समुद्रे विधिवत्स्नात्वा सप्तकीरिश्वर शिवम् ॥६५॥
 ये द्रक्ष्यन्ति महात्मानो मुक्तिभाजो भवन्ति ते ।
 राजसूयस्य यज्ञस्य सहस्रगुणित फलम् ॥६६॥
 तथा गोमेधयज्ञस्य दर्शनात्तत्फल त्विह ।
 सप्तकोटीश्वरो देवो दृष्टश्चेद्भुवि मानवं ॥६७॥
 धन्यास्ते ये च लोकेऽस्मिन्स्तेषां मुक्तिं करे स्थिता ।
 तत्र स्नानं जपो होमो दानं च पितृतर्पणम् ॥६८॥
 सर्वं तदक्षयं प्रोक्तं सप्तकोटीश्वरे शिवे ।
 सप्तकोटीश्वरं प्राप्य वयं शोचन्ति जन्तव ॥६९॥

हे नारद ! तभी से लेकर उस लिङ्ग का नाम सप्त कोटीश्वर पढ़ गया था । उस लिङ्ग का माहात्म्य मेरे द्वारा तो वर्णित नहीं किया जा सकता है ॥६४॥ इस लिङ्ग के केवल स्मरण से ही एष सहस्र गोओं के दान का फल प्राप्त हो जाता करता है । उस समुद्र में विधि-पूर्वक स्नान करके सप्तकोटीश्वर शिव का जो दर्शन करेंगे वे महान् आत्मा वाले मनुष्य मुक्ति के भागी हुआ करते हैं और उनको राजसूय यज्ञ का जो फल होता है उसमें सहस्र गुना पुण्य जन हुआ करता है ॥६५॥६६॥ तथा गोमेध यज्ञ का फल यहाँ पर दर्शन न हो हो जाता करता है । यदि मानको के द्वारा सप्त कोटीश्वर देव का भूमण्डल में दर्शन कर लिया गया है तो परम सीनाम्य की बात है । वे पुण्य इस लोक में परम धन्य हैं और मुक्ति तो उनके हाथों में स्थिर रहा करती है । यहाँ पर स्नान, जप, होम, दान और शिव तर्पण ये सभी सप्त कोटीश्वर शिव के स्थान में अर्पण किये गये हैं । यह आश्चर्य की बात है कि सप्त कोटीश्वर लिङ्ग को प्राप्त करने ज-गुण के न दोष दिया करते हैं ॥६७॥६८॥

सर्वानुग्राहको रुद्रस्तस्मिन्लिङ्गे व्यवस्थितः ।
 न तच्छैलमय लिङ्गं न तद्धैम न राजतम् ॥७६॥
 न तद्रत्नमय लिङ्गं ज्ञातव्यं मिति नारद ।
 किं तज्ज्योतिर्मय लिङ्गं शंख पदमनामयम् ॥७७॥
 सप्तकोटीश्वर लिङ्गं प्राहूर्वेदविदो बुधाः ।
 अहं नारायणो देवः शक्रश्चन्द्रो दिवाकरः ॥७८॥
 मरुतो मुनयः सिद्धाः खेचरा भूचराश्च ये ।
 अर्चयित्वा परं लिङ्गं सप्तकोटीश्वरं शिवम् ॥
 प्राप्तवन्तः परां सिद्धिं तस्मिन्लिङ्गे च नारद ॥७९॥

उस लिङ्ग में व्यवस्थित रुद्र सब पर अनुग्रह करने वाले हैं । वह
 शैलमय, हैम, राजत, रत्नमय लिङ्ग नहीं है हे नारद ! ऐसा ही जान
 लेना चाहिए किन्तु वह ज्योतिर्मय लिङ्ग है जो भगवान् शिव का अना-
 मय पद है ॥७७॥७८॥ वेदों के ज्ञाता बुध पुरुष इसको सप्त कोटीश्वर
 लिङ्ग ही कहा करते हैं । मैं, नारायण देव, इन्द्र, चन्द्र, दिवाकर, मरुद्-
 गण, मुनि, सिद्ध, खेचर और जो भूचर है वे सब सप्तकोटीश्वर शिव
 लिङ्ग का अभ्यर्चन करके उस लिङ्ग में हे नारद ! परम सिद्धि को प्राप्त
 हुए हैं ॥७९॥७९॥

॥ महाकाल माहात्म्य कथन ॥

सञ्जयिण्यां महाकाल ये वै पश्यन्ति मानवाः ।
 अवाप्नुयुः परं लोकं यत्र गत्वा न शोचति ॥१॥
 महाकालस्य लिङ्गस्य दिव्यलिङ्गं तदुच्यते ।
 स्पर्शनात्तस्य लिङ्गस्य सशरीराः शिवं ययुः ॥२॥
 तज्ज्ञात्वा च मया तत्र पापाणः पुक्कुटाकृतिः ।
 निक्षिप्तश्च महाकाले ततोऽमृतमुक्कटदेवरः ॥३॥

तत्रैव नगरे रम्ये शूलेश्वर इति स्मृतः ।

तस्य दर्शनमात्रेण हृद्यमेघफल लभेत् ॥४॥

शूलेश्वरस्य पूर्वं तु अकार लिङ्गमुत्तमम् ।

तत्र कुण्ड महादिव्य पूरितं पुण्यवारिणा ॥५॥

स्नान समाचरस्तत्र प्रयतात्मा समाहितः ।

द्वितीयेऽह्नि तृतीयेऽह्नि दशमे वाऽपि नारद ॥६॥

पक्षे मासेऽथ पण्मासे स्वप्ने पश्यति शकरम् ।

दिव्य ज्ञानमवाप्नोति देवानामपि दुर्लभम् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उज्जयिनी पुरी में महाकाल शिव है । जो मनुष्य उनका दर्शन किया करत है वे परमोत्कृष्ट लोक की प्राप्ति किया करते हैं जहाँ पर पहुँच कर फिर कुछ भी चिन्ता नहो किया करते हैं । १। महाकालेश्वर का जो लिङ्ग है वह दिव्य लिङ्ग कहा जाता है उस लिंग के केवल स्मरण करने ही से मनुष्य शरीर के सहित ही शिव को प्राप्त होगये है ॥२॥ यह जानकर मैंने एक कुक्कुट की आकृति वाला पापाय महाकाल में निक्षिप्त कर दिया था तभी से वह कुक्कुटेश्वर हो गये हैं । ३॥ उसी परम रम्य नगर में शूलेश्वर रहे गये हैं । उनके दर्शन मात्र से ही हृद्यमेघ यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है ॥४॥ इन शूलेश्वर के पूर्व ग अकारेश्वर नामक उत्तम शिवलिङ्ग है । वहाँ पर एक महान् दिव्य कुण्ड है जो परम पुण्य जल से भरा हुआ है ॥५॥ वहाँ पर स्नान का समाचरण करता हुआ प्रयत आस्था वाला समाहित होकर द्वितीय दिन में, तीसरे दिन में, दसवें दिन में हे नारद । पक्ष में, मास में अथवा पण्मास में या स्वप्न में शङ्कर को देखा करता है । वह फिर परम दिव्य ज्ञान की प्राप्ति किया करता है जो कि ज्ञान देवगणों को भी अत्यन्त दुर्लभ हुआ करता है ॥६॥७॥

य पश्येत्लिङ्गमोकार स्नात्वा कुण्डे समाहितः ।

दीक्षासहस्रस्य फल प्राप्य याति परा गतिम् ॥८॥

तत्र वागस्त्यमुनिना तपसाऽऽराधित शिव ।

प्रादुर्भूतश्च भगवानगस्त्येश्वरनामत ॥९

प्रसिद्धो दशनात्तस्य ब्रह्महत्या व्यपोहति ।

तत्रैव शक्तिभेदाख्य तीर्थं मुनिविषेवितम् ॥१०

तत्र स्नात्वा भद्रवट यस्तु पश्यति मानव ।

सर्वपापविनिर्मुक्त स्कन्दलोके महीयते ॥११

तीर्थानि कोटिश मन्ति उज्जयिन्या समन्तत ।

तेषा माहात्म्यमखिल स्कान्दे स्कन्देन भाषितम् । १२

कुरुक्षेत्रे तु देवर्षे स्थाणुर्नाम महेश्वर ।

तपस्तपसा मया तत्र प्राप्त ब्रह्मत्वमुत्तमम् ॥१३

बालखिल्यादयस्तत्र सिद्धि प्राप्ता परा द्विजा ।

तत्राऽऽसीत्पुलह पूर्व मक्षक स्थाणुमन्दिरे ॥१४

जो पुरुष समाहित होकर कुण्ड में स्नान करके अकार लिङ्ग का दशन किया करता है वह एक सहस्र दीक्षाओं का पुण्य, फल प्राप्त करके परागति को प्राप्त किया करता है ॥८॥ वहाँ पर ही अगस्त्य मुनि ने तप के द्वारा भगवान् शिव की आराधना की थी और अगस्त्येश्वर के नाम से भगवान् प्रादुर्भूत हुए थे । वे इसी नाम से ही फिर प्रसिद्ध होगये थे । उनके दशन में मनुष्य ब्रह्महत्या का व्यपोह कर दिया करता है । वहाँ पर ही मुनियों के द्वारा निषेवित शक्ति भेद नाम वाला तीर्थ है ॥९॥१०॥ वहाँ पर स्नान करके जो मनुष्य भद्रवट को देखना है वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर स्कन्द लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥११॥ उज्जयिनीपुत्री में चारों ओर करोड़ों ही तीर्थ विद्यमान हैं । उनका सम्पूर्ण माहात्म्य स्कन्द भगवान् ने स्वयं ही स्कन्द पुराण में भाषित किया है । हे देवर्षे ! कुरुक्षेत्र में स्थाणु नाम वाले महेश्वर हैं । वहाँ पर मैंने तपश्चर्या का तारा करके ही यह उत्तम ब्रह्मत्व पद प्राप्त किया है । बालखिल्य आदि द्विजा ने वहाँ पर परा-

सिद्धि प्राप्ति की थी । वहाँ पर पूर्व में स्थाणु मन्दिर में पुतह मशक था ॥१२-१४॥

मृतस्तु विविधान्भोगान्भुक्त्वा दिव्यमनोरथान् ।

तदन्ते मत्सुतो जातः स्थाणुपुढ(नि)प्रभावतः ॥१५॥

सर्वदेवमयो यत्र स्थाणुर्नाम महेश्वरः ।

इष्ट सकृच्च मनुज शैव पदमावाप्नुयात् ॥१६॥

तीर्थंराज इति ख्यातः प्रयागो मनिमत्तमाः ।

गङ्गायामुनयोस्तत्र भगवो लोकविश्रुतः ॥१७॥

ताम्र स्नात्वा दिव गत्वा भोगान्भुक्त्वा यथेप्सया ।

आप्ते महेश्वरो यत्र सर्वानुग्राहकः परः ॥१८॥

दर्शनादक्षयाल्लोकान्प्राप्नोति मनुजोत्तमः ।

अन्यत्तीर्थं परं गुह्यं गयातीर्थमिति स्मृतम् ॥१९॥

यत्र शमोभवत्तश्चरणौ सुप्रतिष्ठितौ ।

पितृगामक्षया तृप्तिस्तत्र पिण्डप्रदानतः ॥२०॥

मृत होकर उसमें विविध भोगों का उपभोग करके और दिव्य मनोरथों को प्राप्त करके उसके अन्त में वह स्थाणु मूर्ति के प्रभाव से मेरा पुत्र हुआ था ॥१५॥ जहाँ पर सर्व देवमय स्थाणु नाम वाले महेश्वर विराजमान हैं । मनुष्य एकवार भी उनका आराधन करके इष्ट बना नेता है तो वह शिव के पद की प्राप्ति किया करता है ॥१६॥ हे मुनि-श्रेष्ठो ! प्रयाग तीर्थंराज इस नाम से विख्यात हुआ था । वहाँ पर गङ्गा और यमुना इन दोनों परम पवित्र नदियों का संगम मे प्रतिष्ठित सङ्गम हुआ था ॥१७॥ वहाँ पर स्नान करके दिवलोक में गमन करके और यथेप्सा में भोगों का उपभोग करके मनुष्य सद्गति को प्राप्त करता है । जहाँ पद पर और सभी पर अनुग्रह करने वाले महेश्वर विराजमान हैं ॥१८॥ उत्तम मनुज उनके दर्शन करने से अक्षय सोचों की प्राप्ति किया करता है । अन्य तीर्थ परम गुह्य हैं गया तीर्थ इस नाम से कहा गया है । जहाँ पर भगवान् शम्भु ने चरण सुप्रतिष्ठित रखा करते हैं । वहाँ

लिङ्गे स्वायम्भुवे वाणे रत्ने च रत्ननिमित्ते ।
 मिद्वप्रतिष्ठिते लिङ्गे न चण्डस्याधिकारत ॥५॥
 वाणलिङ्ग स्वय भूमिश्चन्द्रकान्तिस्त्रयैव च ।
 चान्द्रायणसम पुण्य क्षमोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥६॥
 वृष चण्ड वृष चैव सोमसूत्र पुनर्वृषम् ।
 चण्ड च सोमसूत्र च पुनश्चण्ड पुनर्वृषम् ॥७॥

उन तीर्थ में देवराज की इच्छा करने वालों के द्वारा प्रायः प्राप्त
 उपोष्य होता है । मून पित्रु तृष्टि के लिये है और महर्षियों ने उसे विन्य
 कहा है ॥१॥ जिसको प्राप्त करके सूर्य अस्तता को प्राप्त होता है यदि
 वह त्रिमुहूर्तिका होवे तो समस्त धर्म कृत्यों में उसको सम्पूर्ण नियम
 जाननी चाहिए ॥२॥ अष्टमी, एकादशी, पक्षी, तृतीया, चतुर्दशी में
 त्रिदिवी पर मयुक्त ही ग्रहण करनी चाहिए । दूसरी त्रिदिवी पूर्व त्रिदिवी
 से मिश्रित ही ग्रहण करे ॥३॥ बृहत्तया, रम्भा, सावित्री, बट पंचमी,
 वृष्णाष्टमी तमूनी नियम समूहा ही करनी चाहिए ॥४॥ वाणलिङ्ग में,
 स्वायम्भुव म, रत्न में, रत्न निमित्त में और मिद्व के द्वारा प्रतिष्ठित
 लिङ्ग में चण्डका अधिकार से नहीं है । वाणलिङ्ग स्वय भूमि तथा
 चन्द्रकान्ति है । भगवान् दाम्भु के नैवेद्य के भक्षण में चान्द्रायण के ही
 समान पुण्य होता ॥५॥६॥ वृषचण्ड और वृषही सोमसूत्र है तथा पुन
 वृष है चण्ड और सोम सूत्र-पुन. चण्ड और पुन वृष है ॥७॥

आर च आरनाल च बाम्शपात्र ममूरिका ।
 चणरास्तिनतैल च मन्त्रवीर्यहराणि षट् ॥८॥
 वामपादके विनिशप्य गृहीत्वा वामपाणिना ।
 धृत्या च दक्षिणे पाणी तैले दद्यान्मलाञ्जनिम् ॥९॥
 गुग्गुलुदन्धवन्धवारदच रत्नद्वन्द्व निरोधक ।
 अन्धकार निरोधत्वागदुरागन्धा निगद्यते ॥१०॥
 गुग्गुली लभेन्मृचु मन्त्रत्यागी दग्धिनाम् ।
 गुग्गुलुगतिपाणिसिद्धोर्जिष नरक श्रेयत् ॥११॥

एकमध्यं प्रदातव्यं मध्याह्ने भास्वरं प्रति ।

उभयोः सध्वयोरपस्वि क्षिपेदसुरक्षयात् । १२।

भ्रातृद्वयं न कुर्वीत न कतव्यं पितासुतम् ।

अनग्निकं न कर्तव्यं न कुर्याद्गर्भिणीपतिम् । १३।

निरग्निकं स्मृतस्तावद्यावद्भार्या न विन्दति ।

साग्निको भार्या युक्त इत्यथ मनुरग्रवीत् । १४।

आर—आरनाल—वास्यपान—ममूत्रिका—घणकतिल तैल ये छै मन्त्र के धीर्य के हरण करने वाले होते हैं ॥८॥ वाम पार्श्व में विधेय रूप से निक्षिप्त करके वाम हाथ में ग्रहण करे । फिर दक्षिण हाथ में धरकर तैल में जलावलि देनी चाहिए । ११। 'गु' यह शब्द अन्धकार वाचक है अर्थात् अन्धकार को बनलाता है और 'ह' यह शब्द निरोध करने वाले अथ का वाचक है । क्योंकि अज्ञान रूपी अन्धकार के निरोधक होने से ही गुरु शब्द कहा जाता है । १०। गुरु के त्याग करने वाला मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और मन्त्र का त्याग करने वाला दरिद्रता को प्राप्त किया करता है । गुरु और मन्त्र को परित्याग करने से सिद्ध पुरुष भी नरक का गमन करने वाला हुआ करता है । ११। मध्याह्न में भास्वर देव को एक ही बार अर्घ्य देना चाहिए । दोनों सध्व्याओं में असुरा केक्षय होने से तीन बार जल की अजलि का प्रक्षेप करना चाहिए । १२। दो भाइयों को नहीं करना चाहिए और पितासुत को नहीं करना चाहिये । अनग्निक को न करे और गर्भिणी के पति को न करे । १३। निरग्निक तभी तक कहा गया है जब तक भार्या को प्राप्त नहीं करता है । जो भार्या से युक्त होता है वह साग्निक होता है—ऐसा मनुमहर्षि ने कहा है । १४।

प्रणाममेकहस्तेन एकं चाऽपि प्रदक्षिणम् ।

कालसेवा तथाऽजाने अब्दपुण्यं विनश्यति । १५।

सभाया यज्ञशालाया देवतायतने गुरौ ।

प्रत्येकं च नमस्कारो हन्ति पुण्यं पुराकृतम् । १६।

गोक्षीर गोघृत चैव मुग्धधान्य तिला यवा ।
एते चैवाक्षारगणा अन्ये क्षारगणा स्मृता ॥७॥
मक्षिका मशका वेश्या याचकाश्चैव मूपका ।
गणका ग्रामणीश्चैव सप्तैते परभक्षका ॥८॥

एक हाथ से प्रणाम करना और एक प्रदाक्षिणा तथा अकाल म
काल सेवा—इनमे एक वर्ष का पुण्य विनष्ट हो जाया करता है ॥५॥
सभा म—गणशाना म—देवतायतन म—गुरु म प्रत्येक को नमस्कार
करना पुराकृत पुण्य का हनन किया करता है ॥६॥ गौ का का दूध—
गाय का धन—मुग्धधान्य यव—तिन—य सब अक्षारगण बहे गये
हैं अन्य क्षारगण होते हैं । मक्षिका—मशक—वेश्या—याचक—मूपक—गणक
—ग्रामणी—ये सात पर भक्षक होते हैं ॥७॥ १८॥

॥ देवेन्द्र चरित कथन ॥

मन्वन्तराणि वदयामि शृणुध्व मुनिपु गवा ।
मनस्य पडतीतास्ते सप्तमो वर्तते किल ॥१॥
तेषा स्वायभुवस्त्वाद्यस्तत स्वारोचिष स्मृत ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाष्टुगस्तथा ॥२॥
स्वायभुव तु कल्पादावन्तर वयित मया ।
स्वारोचिषेज्जरे देवान्पुपिता नाम ते स्मृता ॥३॥
विषादिचन्नाम देवेन्द्र ऋषीन्वदयामि साप्रतम् ।
उज्जम्बस्तमस्तथा प्राणो दान्तोज्य ऋषमस्तथा ॥४॥
तिमिर शार्ङ्गरीयाश्च सप्तैत ऋषय स्मृता ।
उत्तरे त्वन्तरे देवा मुघामानो द्विजोत्तमा ॥५॥
प्रतदंता णिवा मत्यामन्ताश्च वशवतिन ।
एतेषा न गणा प्रोक्ता भवद्वादशमिर्गणै ॥६॥

सुदान्तिर्नाम देवेन्द्रो महाबलपराक्रमः ।

रजो गोत्रोऽर्धवाहश्च सवनश्चानघस्तथा ।७।

हे मुनि पुङ्गवो ! अब आप लोग मन्वन्तरो को श्रवण कीजिए । अब तक छै मनु व्यतीत हो गये हैं । इस समय मे सातवा मनु वर्त्तमान है । १। उन सब मन्वन्तरो मे स्वायम्भुव मनु सबसे प्रथम मनु हुए थे । इसके पश्चात् स्वारोचिष मनु हुए थे । इनके पश्चात् उत्तम—तामस—रैवत और चाक्षुष हुए थे । २। कल्पादि मे स्वायम्भुव अन्तर मैंने कह दिया है । स्वारोचिष अन्तर मे तुषिता देव हुए थे ऐसा कहा गया है । ३। विजाश्रित नाम वाला देवेन्द्र हुए थे । अब मैं ऋषियो को बतलाऊंगा । उस समय में ऊर्जं स्तम्भ—प्राण—दान्त—ऋषभ—तिमिर और शबरीबाद्—ये सात (मत्स्यि) ऋषि कहे गये है । हे द्विजोत्तमो ! उत्तर अन्तर मे सुधामान देव हुए थे पुतर्दन—शिव—सरय और इसके पश्चात् बभ्रवर्त्ती हुए थे । इनके गण भी कहे गये हैं जो आपके द्वादश गणों से । मुक्त थे । ४। ५। ६। सुदान्ति नाम वाला देवेन्द्रया जो महान् बल और पराक्रम से समन्वित था । रज—गोत्र—अर्धवाहु—सवन—अनघ—सुतया—शुक्र—इन नाम नामो वाले सात ऋषि हुए थे—ऐसा बतलाया गया है । ७।

सुतपाः शुक्रनामाऽथ सप्तैत ऋषयः स्मृताः ।

मर्त्याश्च मुधियश्चैव तामसस्यान्तरे सुराः ।

ज्योतिर्धर्मः पृथुः कल्पश्चैत्राग्निः सवनस्तथा ।८।

पीवरश्च समाख्याताः सप्तैत ऋषयो मताः ।

स्याच्छिविर्नाम देवेन्द्रः सिद्धचारणसेवितः ।९।

देवराज्यं परित्यज्य परं वैराग्यमाश्रितः ।

ज्ञात्वाशाश्वतो सर्वं बृहस्पतिमथाब्रवीत् ।१०।

भगवन्कि करोमीदं राज्यं तुच्छस्त्रुखं यतः ।

कंवल्यं लभते केन तन्मे ब्रूहि गुरो स्फुटम् ।११।

अमृत्यनन्तगुणावाम परानन्दैकविग्रह ।

ध्यात कैवल्यपद पु सा महादेवो न चापर । १२।

मोहपाशनिबद्ध ना महामोहान्मता हरेत् ।

स्मरणान्मोचकस्तेषामुमापतिरिति श्रुति । १३।

यद्ब्रह्म परम ज्योति प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम् ।

सर्वानुग्राहिण शम्भु तमाशु शरण व्रज । १४।

तामस मन्वन्तर मे मनुष्य और सुधागण मुर हुए थे । ज्योति-धर्म—पृथु—कल्प—चैत्राग्नि—सवन और पीवर ये मात ऋषि माने गये हैं । शिविनाम वाला देवन्द्र था जो मिद्ध और चारणों के द्वारा सेवित था । १८। वह देवराज्य का परित्याग करके परमाधिक वैराग्य के आश्रय लेने वाला हो गया था । इस सबको अज्ञाश्रित समझ कर ही बृहस्पति जी से कहा था । १०। हे मुख्य्य ! हे भगवान् ! इस परम तुच्छ सुख वाले राज्य से मैं करूंगा । अब आप मुझे यही बताने की कोशिश कीजिए कि कैवल्य की प्राप्ति किससे हो जाता है । ११। देवगुरु बृहस्पति जी ने कहा—अनन्त गुणों का निवास—परानन्द ही जिनका एक विग्रह है अर्थात् आनन्दमय स्वरूप वाल महादेवजी का ध्यान किया जावे तो वे ही कैवल्य के प्रदान करने वाले हैं अन्य कोई भी नहीं है । १२। वह देवेन्दर मोह के पास मे बचे हुएों की जो महामोहात्मा है उसका हरण कर दिया करते हैं । श्रुति के द्वारा प्रतिपादन किया जाता है कि उमापति के बल स्मरण से ही उन पाशों से मोचक हो जाया करते हैं । १३। जो ब्रह्म पर ज्योति—प्रतिष्ठाक्षर और अव्यय हैं तथा सभी पर अनुग्रह करने वाल है उन्होंने भगवान् शम्भु के तुम शरण में चले जाओ । १४।

स ज्योतिषा पर ज्योनिरानन्द तमस परम् ।

न यस्मादधिक किञ्चित्तत्त्व विद्धि साकरम् । १५।

त जानीहि पर ब्रह्म विश्वात्मान महेश्वरम् ।

तदात्मकतया सर्व जानीह्यसुरमूदन । १६।

आत्मान ये हि मत्पन्ते विभिन्न त्रिपुरद्विप ।
 ते पश्यन्तेव त देव नाऽऽवर्तन्ते पुन पुन ।१७।
 सर्वास्मादधिक् शम्भु परमात्मा महेश्वर ।
 इति ये निश्चितधिय कृतार्थास्ते सुराधिप ।१८।
 दर्शनं तस्य काङ्क्षन्ते हरिब्रह्मादय सुरा ।
 योगिनो नियतात्मानस्तमीश शरण व्रज ।१९।
 महदादिविशेषान्त जगद्यस्मिर्ल्लेय व्रजेत् ।
 पुनरुत्पद्यते यस्मात्ता जानीहि पिनाकिनम् ।२०।
 लीलाविलसिता यस्य विश्वमेतच्चराचरम् ।
 तदभावाच्च विलयस्त जानीहि महेश्वरम् ।२१।

वे ज्योतियो के भी परम ज्योति हैं तम से परे और आनन्द स्वरूप हैं । उनसे अधिक कुछ भी तत्त्व है ही नहीं । वह इसी शाङ्कर तत्व का समझो जो सर्वोपरि विराजमान है ।१५। उनको आप परम ब्रह्म—विद्यात्मा महेश्वर ही जान लो । यह जो भी कुछ दृश्य है वह सभी उनकी आत्मा का ही स्वरूप है—ऐसा ही हे अरिमूदन ! आप जान लो । १६। जो लोम त्रिपुरद्विक् श्री शिव से अपन आपको भिन्न मानता है वे उस देव को देखते हैं अर्थात् दशन प्राप्त कर लिया करते हैं तो वे फिर बारम्बार इस ससार में जन्म लिया करते हैं ।१७। शम्भु, परमात्मा महेश्वर सभी ही अग्निक हैं । हे सुराधिप ! ऐसी जिनकी निश्चित बुद्धि है वे समझ लो कि पूर्णतया कृतार्थ ही हो गये हैं ।१८। हरि—ब्रह्मा आदि मुरगण भी जिनके दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं तथा योगिगण भी नियतात्मा को देखना चाहते हैं तो आप भी उसी ईश की शरणागति में चने जाओ ।१९। जिसमें महत् आरम्भ करके विशेष पर्यन्त समय को जगत् प्राप्त होता है और फिर भी उसी स इसकी उत्पत्ति हुआ करती है उन भगवान् का ही ज्ञान प्राप्त करे अर्थात् शरण में जाओ । यह सम्पूर्ण स्यावर और जन्म जगत् जिसकी एक तीना

का विनाश जैसा है और उनके अभाव से विलय को प्राप्त होता है
उन्हीं महेश्वर प्रभु की शरण में जाओ । १२०। १२१।

यस्याऽऽज्ञया स्थितो ब्रह्मा जगज्जननकर्माणि ।

हरिश्च पालने रुद्र सहारे च म शूलभृत् । १२२।

यस्य प्रसादलेशेन मर्त्या मरणधमिण ।

भवन्त्येव हि तेऽमर्त्या भजन्ते वृषभध्वजनम् । १२३।

क्षण मुहूर्त्तमियवा ध्यात संपूजित स्मृत ।

प्रददात्याशु कैवल्य यस्त भज महेश्वरम् । १२४।

यस्यैव मूर्तीयन्ति स्रो ब्रह्मविष्णु हरा इति ।

सर्गरक्षागुणलयेस्तमीश शरण व्रज । १२५।

यस्यान्त स्यानि भूतानि येनेद भ्राम्यते जगत् ।

ब्रह्मेति च जगुर्बदास्ता रुद्र शरण व्रज । १२६।

यज्ञैर्न इज्यते दवो मुक्तये वेदवादिभि ।

कर्मणा फलस्तेषा शरण व्रज तं हरम् । १२७।

ये विनिद्रा जिनश्वासा ध्यायन्ति क्षीणकर्मिण ।

तेषा प्रजायते यत्तत्तत्त्व विधि च शाकरम् । १२८।

जिन महेश्वर भगवान् की आज्ञा से ही इस जगत् के जनन करने के कर्म से स्थित रहा करते हैं । श्री हरि भी उ ही की आज्ञा से परिपालन करने के कर्म से जुटे रहा करते हैं एवं रुद्र इसके सहार का कर्म किया करते हैं और सर्वदा सलग्न हैं वही भगवान् शूलधारी प्रभु हैं । १२२। जिन के प्रवाद के लेश मात्र से मरण के धम वाले मनुष्य जो वृषभध्वज का भजन किया करते हैं वे अमर्त्य हो जाया करते हैं । १२३। एक क्षणभर या एक मुहूर्त्त भर जो बयान किये जान पर या सम्पूजित होने पर तथा स्मृत होने पर जो शीघ्र ही कैवल्य पद को दे दिया करते हैं उन्हीं भगवान् महेश्वर का भजन करो । १२४। उन्हीं की ये तीन ब्रह्मा—विष्णु और मूर्तियाँ हैं और सर्ग—रक्षा तथा लय करने के गुणों के ही कारण हैं तो उसी ईश की शरण में गमन करो । १२५। जिनके

अन्तःकरण में समस्त भूत हैं और जिसने द्वारा यह जगत् भ्रमाया जाया करता है—वेद जिसको ब्रह्म कहकर गान करते हैं उन्हीं भगवान् रुद्रदेव की शरण में जाओ । २६। जो देवयज्ञों के द्वारा यजन किया जाता है और वेदवादियों के द्वारा मुक्ति प्राप्त करने को जिनका भजन किया जाता है और जो उनके कर्मों का फल प्रदान करने वाला है उन्हीं भगवान् हर की शरण में चले जाइये । २७। जो निद्रा या त्याग करने वाले तथा श्वासों पर विजय पाने वाले क्षीण कर्मों वाले जिनका ध्यान किया करते हैं और उनको वही तत्त्व उत्पन्न हो जाया करता है वही तत्त्व शाङ्कुर तत्त्व है—यह समझ लेना चाहिए । २८।

अज्ञानरज्जवा बद्धाना मनुष्यदिशरीरिणाम् ।

महादेवाहते नान्य शक्र पश्यामि मोचकम् । २९।

तस्मात्त्वा तपसा शक्र समाराधय शक्रम् ।

प्रसन्नो दास्यति पद तव कैवल्यमुत्तमम् । ३०।

एव गुरोर्निगदिता श्रुत्वा सुरपतिस्तदा ।

समाराधयितुं देव ययौ वदरिकाश्रमम् । ३१।

तत्र गत्वा जटी भूत्वा भस्मनिष्ठो जितेन्द्रिय ।

मन्दाकिनीजले स्नात्वा भस्म चैवभिमत्त्र्य च । ३२।

अग्निरित्यादि मन्त्रं च समुद्धृत्य च विग्रहम् ।

पूजायामास देवेश पुष्पैः पत्रैर्मनोहरैः । ३३।

शंखी विद्या जपन्नास्ते शिवध्यानैरुत्तमम् ।

एव गतानि वर्षाणि सहस्राणि चतुर्दश । ३४।

तपसा देवराजस्य प्रसन्नोऽभूत्ततः शिव ।

प्राह त्रिपुरहा शक्र वर ब्रूहि शतक्रतो । ३५।

अज्ञान की डोरी से बंधे हुए मनुष्य आदि शरीरधारियों को मोचन करने वाला श्रीमहादेव जो से अन्य किसी को भी नहीं देखता है । २९। इस कारण से हे इन्द्रदेव ! आप प्रयश्चर्या के द्वारा भगवान् शक्र की ही समाराधना करिए । वह प्रसन्न होकर आपको उत्तम पद को प्रदान

कर देंगे । उस समय में इस प्रकार के श्री गुरुदेव के भजन का श्रवण करके सुरपति महादेवजी की समाराधना करने के लिये वह एकाग्रमन से चले गये थे । ३०।३१। वहाँ पहुँचकर सुरपति जटापारी हो गया था । केवल भस्म में ही निष्ठा रखने वाले और जितेन्द्रिय हो गये थे । वहाँ पर मन्दाकिनी यज्ञा के जल में स्नान करके उठोवे उस भस्म को अभिमन्त्रित किया था । ३२। “अग्नि” — इत्यादि मन्त्रों से अपने शरीर को उद्बलित किया था । फिर उनका पत्रा और मनोहर पुष्पों से दशेश्वर का पूजन किया था । ३३। वे वहाँ पर दैवी विद्या का जाप करते हुए केवल भगवान् शिव के ही ध्यान में परायण होकर स्थित रहे थे । इस प्रकार से करते हुए सुरपति श्री श्रीदह महस्र रूप ध्यानीत हो गये थे । ३४। इसके अनन्तर देवराज की उस तपस्या से भगवान् शिव प्रमत्त हो गये थे । तब त्रिपुर के शत्रु भगवान् शम्भु ने इन्द्र से कहा था — हे शतक्रतो ! वरदान माँग लो । ३५।

तपसाऽनेन तीव्रेण प्रसन्नोऽहं तवानघ ।
 ईप्सितं ते प्रदाम्यामि तव यद्यपि दुर्लभम् । ३६।
 मयि प्रसन्ने तु हरे न किञ्चिदपि दुर्लभम् । ३७।
 एवाग्रभोर्वाच श्रुत्वा स्तुत्वा तं विविधं स्तवैः ।
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणम्याऽहं महेश्वरम् । ३८।
 भगवन्कृतवृत्त्योऽस्मि भवतो दर्शनाच्छिव ।
 अलमन्यैर्वरं शभो भक्तिर्भवतु मे त्वयि । ३९।
 तव भवयमृताम्वादपरानन्दस्य देहिन ।
 भवेत्त्वष्टं कुत क्षमा पूजनामो यता हि म । ४०।
 तावदेवास्थिर चेत् परिभ्रमति वस्तुषु ।
 न यावत्त्वयि देवेश भक्तिर्भवति देहिन । ४१।
 तावदेव मयाम्भोधिर्दुस्तरौ देहिन हरा ।
 तव पादाम्बुजे भक्तिं परा यावन्न तन्यते । ४२।

कर देग । उस समय में इस प्रकार के थोड़े मूर्खदेव के कथन का श्रवण करके सुरपति महादेवजी की समाराधना करने के लिये वह एकाग्रमन में चले गये थे । ३०।३१। वहाँ पहुँचकर सुरपति जटाशरी हो गया था । केवल भस्म में ही निष्ठा रखने वाले और जितन्द्रिय हो गये थे । वहाँ पर मन्दाकिनी यज्ञा के जल में स्नान करके उन्होंने उस भस्म को अभिमन्त्रित किया था । ३२। "अग्नि"—इत्यादि मन्त्रों से अपने शरीर को उद्बलित किया था । फिर उनके पत्रों और मनाहर पुष्पों से दवेश्वर का पूजन किया था । ३३। वे वहाँ पर मैत्री शिवा का जाप करते हुए केवल भगवान् शिव के ही ध्यान में परायण होकर स्थित रहे थे । इस प्रकार से करते हुए सुरपति को चौदह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे । ३४। इसके अनन्तर दक्षराज की उक्त तपस्या से भगवान् शिव प्रसन्न हो गये थे । तब त्रिपुर के शत्रु भगवान् शम्भु ने इन्द्र से कहा था—
हे शतक्रतो ! वरदान माँग लो । ३५।

तपसाग्नेन तीव्रण प्रमन्नोऽहं तयानय ।
ईप्सितं ते प्रदास्यामि तत्र यद्यपि दुर्लभम् । ३६।
मयि प्रमन्ने तु हरे न किञ्चिदपि दुर्लभम् । ३७।
एवाऽभोर्धनं श्रुत्वा स्तुत्वा तं विविधं स्तवी ।
तृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणम्याऽहं महेश्वरम् । ३८।
भगवन्मृततृप्त्योऽस्मि भवतो दयानाच्छिव ।
अलमन्यैर्वरं यन्नो भक्तिर्नयतु मे त्वयि । ३९।
तत्र भात्यमृताम्बादपरानन्दस्य देहि न ।
भवेत्तष्ट पुनः शभा पूणरामो यता हि म । ४०।
तावदयाम्बुवरं चेतः परिभ्रमति वन्तुषु ।
न यावत्तत्र देवेश भक्तिमयति देहि न । ४१।
नान्यदेव यथाप्नोषिर्दुस्तरो देहि न हरा ।
तथैवादाप्नुजे भक्तिं परा यावन्न तन्मते । ४२।

हे अनन्व ! तुम्हारी इस तीव्र तपस्या से मैं परम प्रसन्न हो गया हूँ । अब मैं यद्यपि कुछ परम दुर्लभ भी होगा उम भी आपके अभीष्ट को प्रदान कर दूँगा । १३६। मुझ हर के प्रसन्न हो जाने पर आपको अब कुछ भी दुर्लभ नहीं है । १३७। इस प्रकार के भगवान् शम्भु के वचनों का ध्वनि करके सुरपति ने सर्व प्रथम अनेक स्तवों के द्वारा उन का स्तवन किया था और फिर दोनों हाथों को जोड़कर उनको प्रणाम किया था और फिर भगवान् महेश्वर से कहा था । १३८। इन्द्रदेव ने कहा—हे शिव ! हे भगवन् ! मैं आपके दर्शन प्राप्त करके आज कृत्य-कृत्य हो गया हूँ । क्योंकि मैंने साक्षात् आपके दर्शन प्राप्त कर लिये हैं । अन्य वरदानों की अब कोई भी आवश्यकता नहीं है केवल आपके चरणों में मेरी भक्ति बनी रहे । १३९। आपकी भक्ति के भ्रमृत का आस्वादन से देहधारी को परम आनन्द प्राप्त होता है । फिर कष्ट तो उसको हो ही नहीं सकता है क्योंकि आप तो पूर्ण काम प्रभु है । १४०। तब तक ही यह अस्थिर विज्ञ सासारिक भोग्य वस्तुओं में धमता रहता है । हे देवेश ! जब तक इस देहधारी की आपके चरणों में भक्ति नहीं हुआ करती है । १४१। हे हर ! देहधारियों को यह ससार रूपी सागर भी तभी तक दुस्तर हुआ करता है जब तक आपके पदाम्बुज में इसको पराभक्ति प्राप्त नहीं हुआ करती है । १४२।

तावत्पतति ससारगते जन्तुः पुनः पुनः ।

यावन्न तव कारुण्यलेशो भवति शंकर । १४३।

ससारविपवृक्षो यः सर्वतोऽर्तिभयंकरः ।

तव भक्तिकुठारेण न्छिद्यते नान्यथा शिव । १४४।

इति शक्रवचः श्रुत्वा कारुण्यादवलोक्य तम् ।

समुत्पृश्य तु पाणिभ्या गाणपत्य ददौ शिवः । १४५।

विरश्चिप्रमुखा देवा जायन्ते कर्मगौरवात् ।

प्रलये च विनश्यन्ति भवन्ति च पुनः पुनः । १४६।

स्वर्गं गत्वा गता श्वभ्र तिर्येक्त्व च मनुष्यताम् ।

पुनर्विरञ्ज्यादि पदमेव चक्ररम्परा १४७।

शमोगंशेद्वरा ये च चाऽऽवतान्ते भवे प न ।

भोगान्यथेप्सितान्भुक्त्वा शमो सायुज्यमाप्नुयु १४८।

स्वेच्छाविग्रहण मर्गे स्वेच्छाचारा गणेश्वरा ।

शिगेन सह ते भोगाभुक्त्वा यान्ति शिव पदम् १४९ ।

यह जन्तु इस समार के गर्त में तभी एक बारम्बार गिरा करता है । हे शङ्कर ! जब तक आपकी कृपा का फल हमें प्राप्त नहीं होता है १४३। सतार का यह विष वृक्ष जो सभी आर से महान् भयकर होता है । हे शिव ! आपकी भक्ति रूची कुठार से इसका छेदन किया जाया करता है । अन्य किसी भी प्रकार से इसका छेदन होता ही नहीं है १४४। दत्त प्रकार के दद्र के बचना का श्रवण करते वही ही कृपा से उसकी ओर भगवान् शिव ने अपनी दृष्टि डाली थी और दोना अपने हाथों से उसके अङ्गा का नष्टार्ग किया था शिव ने उस अपना गणपत्य पद प्रदान कर दिया था १४५। विरञ्जि प्रमुख देवता बर्मा के गौरव से जन्म ग्रहण किया करते हैं और जब प्रलय काव होता तो ये सब विनष्ट हो जाया करते हैं । इसी प्रकार से ये सब बारम्बार हुआ करते हैं । ये स्वर्ग में जाकर श्वभ्र वायु धारण करते हैं — तिर्यक्त्व को भी प्राप्त किया करने हैं और मनुष्यता प्राप्त करते हैं । ये फिर विरञ्जि आदि के पद का प्राप्त किया करते हैं । इसी प्रकार से यह चक्र भी परम्परा चला करती है १४७। भगवान् गम्भु के जो गणेश्वर होत हैं वे इस तरह से इस समार में फिर आवृत्ति नहीं हुआ करते हैं । वे तो यथेष्टित भोगों का उपभोग करके भगवान् शम्भु के सायुज्य को ही प्राप्त किया करते हैं १४८। गणेश्वर सब अपनी इच्छा से ही विग्रह धारण करने वाले हुआ करते हैं और स्वेच्छा से ही आचार करने वाले होते हैं । वे तो भगवान् शिव के ही साथ भोगों को ओम्कार अन्त में शिव के पद को प्राप्त कर लिया करते हैं १४९।

एव दत्त्वा वर शुभुर्गाणस्त्य मुदुर्लभम् ।

सुरराजाय शिवये तत्रैवान्तहिताऽभवत् ॥५०॥

गाणपत्य वरं लब्ध्वा शिविर्भगवतो द्विजाः ।

भान्नाया तस्य देवस्य जगाम स्वपुरी ततः ॥५१॥

महादेवाचंनरतो महादेवकथारतः ।

स्थित्वा मन्वन्तर तत्र चण्डो नाम गणोऽभवत् । ५२

वृषध्वजस्त्रिनेत्रश्च जटाजूटेन्दुमण्डितः ।

शुद्धस्फटिकसकाशश्चतुर्बाहुस्त्रिशूलभृत् ॥५३॥

अक्षमालाधरः खड्गो मर्वेणामभयप्रदः ।

द्वीपिषमाम्बरधरः सर्वाभरणभूषितः ॥

रराज क्षाकरपदे नन्दीश्वर इवापरः ॥५४॥

एतद्भः कथितं सर्वं शिवेस्तु चरितं द्विजाः ।

सर्वपापक्षयकरं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥५५॥

श्रद्धया ये पठन्तीदं शिवेस्तु चरितं द्विजाः ।

प्राप्नुवन्त्यश्वमेधस्य फलमित्यश्ववीद्विभिः ॥५६॥

इस प्रकार से भगवान् शम्भु ने वरदान करके और परम दुर्लभ गणि पश्य पद प्रदान करके सुरराज के कल्याण के लिये वही वर अन्त-हित हो गये थे ॥५०॥ हे द्विजो ! शिवि गणपत्य पद का वरदान प्राप्त करके जो भगवान् से मिला था उन्हीं देवदेवर की आज्ञा से वह फिर अपनी पुरी को चला गया था ॥५१॥ वह फिर महादेव जी की अर्चना में ही निरत हो गया था और मर्वेदा महादेवजी की कथा में रत हो गया था । एक मन्वन्तर तक यहाँ रह करके वह फिर चण्ड नाम वाला शिव का गण बन गया था ॥५२॥ उगहा स्वस्त्र फिर वृषध्वज—त्रिनेत्र जटाजूट से घन्टधारण कर परम मण्डित—शुद्ध स्फटिक मणि के सटप—पार मुज्राओं वाला और त्रिशूल के धारण करने वाला हो गया था ॥५३॥ वह अक्षो भी वाला भी धारण करने वाला—सकाशपाश भी और सभी को अभय के प्रदान करने वाला हो गया था । हाथों के धर्म

के द्वारा अङ्गों को ढाकने वाले—समस्त आभूषणों से भूषित शीकर पद दूसरे नन्दीश्वर के ही समान शोभित हो गये थे । १५४। हे द्विजो ! यह सम्पूर्ण शिविका चरित्र मैं आप लोगों को बता दिया है । यह सभी पापा का क्षय करने वाला है और मनुष्य को सभी सिद्धियाँ के देने वाला है । १५५। आ इस शिवि के चरित्र को मध्व यज्ञ के भजन करने का पुण्य—फल प्राप्त कर लिया करते हैं—ऐसा रवि देव ने कहा था । १५६।

॥ नित्यादि प्रति संचर कथन ॥

विभुर्नामा भवेद्दिन्द्रो रैवतस्यान्तरे द्विजा ।

वैकुण्ठाद्या देवा गणाश्चत्वार ईरिता ॥१॥

हिरण्यरोमा विश्वश्रीरुध्वंवाहुस्तथै च ।

ऐन्द्रवाहु सुवाहुश्च पर्जन्यश्च महामुनिः ॥२॥

मर्त्यैत ऋषय प्रोक्ता प्रियव्रतकुलोद्भवा ।

मनोजय सुरेन्द्रोऽभूच्चाक्षुषेऽप्यन्तरे द्विजाः ॥३॥

आयोः प्रसूता भावाद्या कथिता देवतागणा ।

सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो बुधः ॥४॥

अत्रिनामा सहिष्णुश्च सत्यैत ऋषय स्मृताः

पुत्रो विवस्वतो विप्रा मनुर्वैश्वत स्मृत ॥५॥

साप्रत वर्तन्ते योऽसौ तत्र देवान्ब्रवीम्यहम् ।

मरुद्भूणास्तथाऽदित्या रुद्राश्च वसव स्मृता ॥६॥

पुरंदरस्तु देवेन्द्रो बभूवासुरदर्पहा ।

वसिष्ठ कश्यपश्चात्रिर्जमदग्निश्च गौतम ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजो ! रैवत मन्वन्तर में त्रिभुनाम वाला इन्द्र हुआ था । वैकुण्ठ आदि देवता हुए ये जो चार गण ही कहे गये हैं

११। हिरण्य सेमा-विश्वस्यो-ऐन्द्र बाहु-ऊर्ध्व बाहु-मुवाहु-पञ्चग्य और महा-
मुनि—मेरी सात ऋषि बताये गये हैं जो प्रिय ब्रह्म राजा के कुल में
प्रसूत होने वाले थे ! हे द्विजो ! चाक्षुष मन्वन्तर में, मनोजव सुरेन्द्र
हुआ था । १२। आयु से भावाद्य प्रसू से हुए थे जो देवगण कहे गये हैं ।
सुमेधा-विरजा-हविष्तार उत्ताम-बुध-अत्रिनाम वाला सहिष्णु-ये सात ऋषि
कहे गये हैं ? हे विजो ! विवस्वान् का पुत्र वैवस्वत मनु कहा गया है ।
१४। इस समय में जो वर्तमान है । उसमें जो देवगण हैं उनको भी
बतलाता हूँ । मरुद्गण—आदित्यगण—रुद्रगण—वसुगण—ये सब देवता
बताये गये हैं । १६। असुरों के हर्ष का हनन करने वाला पुरन्दर देवेन्द्र
है । वसिष्ठ—कश्यप—अत्रि—जमदग्नि—गौतम—विश्वामित्र—भरद्वाज—
पेसे ऋषि गण हैं । ७।

विश्वामित्रो भरद्वाजः सप्तैत ऋषयः मताः ।

मन्वान्तराण्यतीतानि वर्तमान मया द्विजाः ॥८॥

कथितान्यथ वक्ष्यामि शृणुष्व' प्रतिसंचरम् ।

चतुर्धा कथितं सोऽपि पुराणोऽस्मिन्द्विजोत्तमाः ॥९॥

निराः नैमित्तिकश्चैव प्राकृतास्त्यन्तिकौ तथा ।

योऽयं भूतक्षयो लोके नित्यं नित्यस्तु स स्मृतः ॥१०॥

कल्पान्ते यस्तु सहारो नैमित्तिक इहोभ्यते ।

महदाद्य विशेषान्तं स यदा याति सक्षयम् ॥११॥

प्राकृतः प्रतिसर्गोऽयं कथ्यते भूनिभिर्द्विजाः ।

आत्यन्तिकस्तु प्रलयो ज्ञानादेव स जायते ॥१२॥

तच्च ज्ञानं महेशस्यभक्तिलभ्यमिति धृतिः ।

चतुर्धुं गतहन्त्रान्ते संप्राप्ते भूतगक्षये ॥१३॥

अनावृष्टिस्तत्तस्तीव्रा जायते शतवर्षिणी ।

पृथगुल्मलताः सर्वाः पृथिव्या यान्ति सक्षयम् ॥१४॥

हे द्विजो ! मैंने अतीत और वर्तमान मन्वन्तर बतला दिये हैं इसके
पश्चात् मैं प्रति सञ्चर को बतनाऊँगा । उसका आप मोक्ष थपण करिये ।

हे द्विजोत्तमो ! इस पुराण में वह भी चार प्रकार का बताया गया है । १८।६। नित्ये—नैमित्तिक—प्राकृत और आत्यन्तिक ये उसके चार भेद हैं । जो लोक में भूतों का क्षय होता है वही नित्य कहा गया है । १९०। कल्प के अन्त में जो सहार होता है वही नैमित्तिक कहा जाता है । महत् से आदि लेकर विषेय के अन्त तक वह सब क्षय को प्राप्त होता है वही प्राकृत प्रतिसर्ग हे द्विजो ! मुनियों के द्वारा कहा गया है । अत्यन्तिक प्रलय जो होता है वह ज्ञान से ही हुआ करता है । ११।१२। और वह ज्ञान भगवान् महेश के भक्ति से तन्य हुआ करता है—वही श्रुति है । चारों युगों के एक सहस्र के अन्त के प्राप्त होने पर जो भूतों का सक्षय होता है । उसमें बहुत तीव्र अनाहा होती है जो एक सौ वर्ष तक चला करती है । इस पृथ्वी में वृक्ष गुम्फ और लता आदि सभी सक्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं । १३।१४।

गभस्तिमाली भगवानथ सप्तरथोऽभवत् ।

रश्चिभिः सागराम्भासि तदा पिवति भास्करः ॥१५

दीप्ताश्च रश्मयतेन भवन्ति मुनिपु गवाः ।

भवन्ति सूर्याः सप्तैते सर्वतो रश्मिसकुलाः ॥१६

तेषां रश्मिप्रतापेन दग्धा भवन्ति मेदिनी ।

द्वीपंश्च पर्वतैः सार्धं सागरैश्च द्विजोत्तमाः ॥१७

सूर्यतेजोऽग्निदधाना भूताना च परस्परम् ।

एकत्वमुपजातानामग्निरेकस्ततोऽभवत् ॥१८

ज्वालाभिरखिल विश्वं निर्दहत्वाशु पावकः ।

स दग्ध्वा पृथिवी सर्वा रुद्धतेजोविजृम्भितः ॥१९

दिव दग्ध्वाऽथ पाताल दन्दहीति द्विजोत्तमाः ।

उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्य शतयोजनमायताः ॥२०

तेजसा तस्य कालाग्नेरग्निः सवर्तकः स्वयम् ।

दग्ध्वा स चतुरो लोकान्सयक्षोरगराक्षसन् ॥२१

इसके पश्चात् भगवान् गमस्ति माली अर्थात् सूर्य सात रथो वाले हो जाया करते हैं । उस समय मे भगवान् भास्करसागर के जलो को पीजाया करते हैं । १५। हे मुनि पुङ्गवो ! उससे उसकी किरणें बहुत ही क्षीप्त हो जाया करती है । मे सात सूर्य सभी ओर से रश्मियों से सकुल हो जाया करते हैं । १६। उनकी किरणों के प्रताप से यह सम्पूर्ण पृथ्वी दग्ध हो जाती है । हे द्विजोत्तमो ! सभी पर्वत—द्वीप और सागरों के सहित पृथ्वी जली हुई सी हो जाया करती है । १७। सूर्य की अग्नि में दग्ध हुए भूतो का परस्पर मे एम्बु को प्राप्त हो जाने वाले होने से एक ही अग्नि हो जाया करती है । १८। यह पावक अपनी ज्वालाओं से सम्पूर्ण विश्व को निर्दग्ध कर दिया करता है । रुद्र के तेज से विजृम्भित यह समस्त पृथ्वी को दाघ करके फिर दिग् लोक को जलाकर हे द्विजोत्तमो ! इसके पश्चात् वह पाताल लोक को जला दिया करता है उस अग्नि की शिखार्यें सी योजन तक ऊँची उठाकरती हैं । १९। २०। उस कालाग्नि के तेज से सम्बर्त्तक स्वयं चारों लोको को दाघ करके यक्ष—उरग और राक्षसों को जला देता है ।

तप्तायः पिण्डवत्सर्वं जगदेतत्प्रकाशते ।

उत्तिष्ठन्ते ततो मेघास्तडिद्भश्च समन्ततः ॥२२

सर्वर्तकोपमाः सर्वे नानावर्णा भयकराः ।

जायन्ते भास्कराद्घोरा राविणो मुनिपुङ्गवाः ॥२३

ततो वर्षं प्रमुखन्ति विन्दुभिर्गजसन्निभैः ।

ग्रहमणा प्रेरिता वृष्टिर्जायते शतवापिकी ॥२४

जलोर्ध्वनाशमाशान्ति तदा कल्पान्तपावकाः ।

द्वीपेद्वच पर्वतयुक्ता पृथिवी पूर्यते जलैः ॥२५

विलीयते धरा चैव सर्वा एव द्विजोत्तमाः ।

तस्मिन्नेकाण्येव घोरे देवदेवः प्रजापतिः ॥२६

योगनिद्रा समास्थाय शेते ध्यायन्महेश्वरम् ।

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो मुनिपुङ्गवाः ॥२७

अतः शृणुष्व वक्ष्यामि प्राकृतः प्रलयो यथा ।

कालाग्निरुद्रो भगवान्पराध्वद्वितये गते ॥२८

यह सम्पूर्ण जगत् उस समय में एक तपे हुए लोहे के गोले के ही समान प्रकाशित हुआ करता है । इसके पश्चात् फिर मेघ उठते हैं जिनमें सभी ओर विद्युत् चमका करती है । २२। सभी मेघ साम्बत्त के ही समान होते हैं जिनके विभिन्न और विविध तो वर्ण होते हैं और बहुत अधिक भयङ्कर हुआ करते हैं । हे मुनि थोड़ो ! वे भास्करा से अधिक घोर ध्वनि करने वाले हुआ करते हैं । २३। इसके पश्चात् वे मेघ गजों के समान विनाल बूंदों से वर्षा किया करते हैं । यह वृष्टि ब्रह्मा जी के द्वारा प्रेरित होनी है और ३० वर्ष तक निरन्तर हुआ करती है । २४। वे कल्प के अन्त की पावक उस समय में जलों के समुदायों से नाश को प्राप्त हो जाया करती हैं । द्वीपों और पर्वतों से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी जल से परिपूर्ण होकर भर जाया करती है । २५। हे द्विजोत्तमो ! उस समय में यह समस्त पृथ्वी जल में विलीन-सी हो जाया करती है । वह तो ऐसा समय होता है कि सर्वत्र एक मान सागर ही दिखलाई दिया करता है और वह परम घोर होता है । उसमें देवों के देव प्रजापति योग निद्रा में शयन करते हुए महेश्वर भगवान् का ध्यान किया करते हैं । इसीको नैमित्तिक प्रलय कहा गया है हे मुनि थोड़ो ! यह भी उन चारों में से एक प्रलय है । २६। २७। अब इससे आगे मैं यह बतलाऊंगा कि प्राकृत प्रलय कैसे होता है । परार्ध द्वितय के समाप्त होने पर भगवान् कालाग्नि रुद्र इस ब्रह्माण्ड को भस्मसप्त करके ताण्डव नृत्य करने के लिये समास्थित हो गये थे । २८

॥ शिव तीर्थ कथन ॥

हेतुना केन भगवान्कालकालो महेश्वरः ।
 श्रोतुमिच्छामि भगवन्ब्रूहि मे कमलोद्भव ॥१॥
 आसीन्मुनिवरः पूर्वं नाम्ना श्वेत इति स्मृतः ।
 तीर्थोदकानि सेवेत यमाश्च नियमास्तथा ॥२॥
 माहेश्वराग्रणीः शान्तो महादेवार्चने रतः ।
 तं नेतुमागतः कालो दण्डहस्तो भयंकरः ॥३॥
 दृष्ट्वा कालं स विप्रेन्द्रो भयव्याकुलितेन्द्रियः ।
 स्पृष्ट्वा कराभ्यां तल्लिङ्गं ध्यायमानो महेश्वरम् ॥४॥
 प्रहसन्नग्रवीत्कालः श्वेतं मुनिवरं मुने ।
 प्राप्ते मयि कथं ब्रह्मन्स्वस्थास्तिष्ठन्ति जन्तवः ॥५॥
 चरन्ति मद्भयात्सर्वे ब्रह्मचर्यं तपांसि च ।
 तीर्थं दानं प्रशसन्ति निरताः स्वेषु कर्मसु ॥६॥
 यजन्ति मद्भयाद्देवान्यज्ञाश्च विविधास्तथा ।
 तस्मादुत्तिष्ठ नेष्यामि मम पाशवशं गतः ॥७॥

श्री नारदजी ने कहा—किस हेतु से कालकाल महेश्वर भगवान् हैं । हे भगवान् ! हे कमलोद्भव ! यह मे श्रवण करना चाहता हूँ । आप मुझे बतला दीजिए । १। श्री ब्रह्माजी ने कहा—पुराने समय में एक महान् श्रेष्ठ मुनि वर थे जिसका नाम श्वेत कहा गया था । वह सदा तीर्थों के ही जलों का सेवन किया करने थे तथा यमों के नियमों का भी पूर्ण पालन किया करते थे । संन्यास में वे मुक्तियां थे और महादेव जी की अर्चना में रति रखने वाले परम शान्त भूति थे । उनको लेने के लिए हाथ में दण्ड धारण कर महान् भयङ्कर काल जाया था । उस काल को देखकर वह विप्रेन्द्र भय से ध्यानुत्त इन्द्रियों बाना हो गया था । उनने अपने दोनों कर्णों में भगवान् महेश्वर का ध्यान करते हुए उनके लिङ्ग का स्पर्श कर लिया था । उस गमय में दृग्गते हुए वाच ने

श्वेत मुनि वर से कहा था—हे मुने ! हे ब्रह्मन् ! मेरे आ जान पर जन्तु गण कैम स्वस्थ रह सकते हैं ? १२।३।४।५। मेरे ही भय के कारण स सब ब्रह्मचर्य और तप का समाचरण किया करते हैं । मेरे ही डर से लोग तीर्थरत्न दान की प्रशंसा किया करते हैं और अपन बर्मा में निरत रहते हैं । मेरे ही भय होने से दवा का—यज्ञा का जोषि अनेक प्रकार से होत है भजन किया करते हैं । अतएव अब उठिय मैं आपको ले जाऊँगा । अब तों आप मेरे पास में प्राप्त हो गये हैं अत चलना ही पड़ेगा १६।७।

दा(त्रा)तार नैव पश्यन्ति(श्यामि) तवाद्य मुनिपु गवा (य)।

एव निशम्य वचन स वं कालस्य नारद । ८

अथाग्रवीक्ष्य भूत पाशहरत करालिनम् ।

कथमीशाचनरत त्व मा नतुमिहाहमि ॥९

शियाच नरताना च त्वत्त कम्पाद्भय वद ।

एवमुक्तो यम कोपादुद्विग्न मु(दभान्त्सीन्मु)निपु गवम् ॥१०

पाशैर्दृढतरै शीघ्र घ्रायमान महेश्वरम् ।

अथ देवो महादेव प्रादुर्भूतखिनोक्भृत् ॥११

त दृष्ट्वा दयदवश प्रहृष्टोऽभूत्तदा मुनि ।

क्ष क्राज्याग्रवीत्काल मम भक्त विमाचय ॥१२

स्वतन्त्र एव मदभक्त स कथ नीयत त्वया ।

यदुक्त दयदेवन तदतिक्रम्य मूर्यज ॥१३

पुनर्वचन्य नृपति म्वपुरीगमनाद्यत ।

अथ दया महादेवा विदवस्वर उमापति ॥१४

हे मुनि पुत्रवा ! आज जायक जाता का नहा दयत है । हे नारद !

इस तरह के काल के वचन को सुनकर इसक अब तर नयनीय मुनि ने हाथा में पाश ग्रहण करने का महान करार काल में बारा— ईश्वर अर्चन में निरत मुनिको आज कैम से जीयत गायन रह है कि पुत्रारत का नीत वचन की शक्ति जायक अन्दर बँट हा मरती है ? १५।१। या

शिवाचन में निरत है उनको किमसे भय हो सकता है—आप ही इसे बतलाइये । इस प्रकार से कहे गये यमराज ने क्रोध से उस मुनि पुङ्गव को बाँध लिया था और महेश्वर को ध्यान में भी वह निरत था तो भी मजबूत पाशों से यम ने जीघ्र ही पकड़कर बद्ध कर दिया था । इसके अनन्तर त्रिलोकी को धारण करने वाले देव प्रादुर्भूत हो गये थे । और भगवान् शंकर को देखकर जो स्तब्धात् देवों के भी देव थे वह मुनि परम प्रहृष्ट हुए थे । इसके पश्चात् शङ्कर भगवान् उस काल से बोले —मेरे भक्त को छोड़ दो । मेरा भक्त तो सदा स्वतन्त्र होता है उसको सुम कैसे ले जा रहे हो ? देवदेव ने जो भी कहा था उसका भी अति-क्रमण करके यमराज ने उस नृपति को पुनः बाँध लिया था और वह अपनी पुरी को गमन करने के लिये सप्रघट हो गया था । इसके उपरान्त यह हुआ था कि देवेस्वर महादेव जी ने जो विश्व के ईश्वर और उमा के पति हैं उन्होंने उस काल को भस्म सात् कर दिया था और श्वेत मुनि को पाशों में विभोचित कर दिया था । ८।१४।

अकरोद्भस्मसात्काल श्वेतः । पाशैर्विमोचितः ।

दत्तं भुवता तस्मै गाणपत्यं च शाश्वतम् ॥१५॥

देव्या सह महादेवः क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ।

अनेन हेतुना शम्भुः कालकाल इति स्मृतः ॥१६॥

अहं च विष्णुना सार्धं स्तुत्वा देव महेश्वरम् ।

प्रसाद्याथ पुनर्जातः कालः शम्भोरनुग्रहात् ॥१७॥

अन्यतीर्थं पुण्यतमं ज्वालेश्वरमिति स्मृतम् ।

रेवातीरे मुनिश्रेष्ठ महापातकनाशनम् ॥१८॥

कोटिदाः सन्ति तीर्थानि तस्मिञ्ज्वालेश्वरे शिवे ।

तत्र स्नात्वा देवशृङ्गे दृष्ट्वा ज्वालेश्वर शिवम् ॥१९॥

कुलेकाविशमुद्धृत्य (?) शिवलोके महीयते ।

अन्य श्रीपर्वत श्रेष्ठं सिद्धानामालयं शुभम् ॥२०॥

तत्र सिद्धाश्च मुनयो दृश्यन्ते सर्वतो गिरी ।

सदा तनिहितः शंभुर्लिङ्गे श्रीमल्लिकार्जुने ॥२१॥

भगवान् शिव ने उस राजा को शाश्वत गाणपत्य पद प्रदान कर दिया था । १५। फिर देवी के ही साथ महादेव जी क्षण भर में ही अन्तर्हित हो गये थे । इसी हेतु से भगवान् शम्भु काल क भी काल कह गये हैं । १६। मैंने विष्णु भगवान् क ही साथ ही महेश्वर देव की स्तुति करके उनको प्रसन्न करके सन्तुष्ट किया था । इसके पश्चात् पुनः शम्भु के अनुग्रह से ही काल समुत्पन्न हुआ अर्थात् सजीव हुआ था । १७। एक परम पुण्यतम तीर्थ है जो जालेश्वर इस नाम से कहा गया है । हे मुनि श्रेष्ठ ! यह तीर्थ रेवा नदी के तट पर है और महान् से भी महान् पातका का विनाश कर देने वाला है । १८। उन जालेश्वर शिव के समीप में करोड़ा अन्य तीर्थ भी हैं । हे देवर्ष ! उनमें स्नान करके और जालेश्वर देव का दशन करके इक्कीस अपने कुलो का उद्धार करके स्वयं शिव लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है । एक अन्य परम श्रेष्ठ श्री पर्वत है जो परम शुभ और सिद्धों का आलय है । १९। २०। वहाँ पर सभी आर गिरि में सिद्ध और मुनिगण दिखलाई दिया करते हैं । श्री मन्त्रिकार्जुन में भगवान् शम्भु सदा ही सन्निहित रहते करते हैं वह लिङ्ग ऐसा ही शिवलिङ्ग है । २१।

दृष्टे तस्मिन्परे लिङ्गे जीवन्मुक्तो नरो भवेत् ।
मनुष्या पशव कोटिमृगाश्वमशकादयः ॥२२॥
श्रीपर्वते मृता सर्वे यान्ति श भो पर पदम् ।
केदारो परम तीर्थ प्रिय देवस्य शूलिनः ॥२३॥
तत्र स्नात्वा दक पीत्वा संपूज्य च पिनाकिनम् ।
गाणपत्यमवाप्नोति देवानामपि दुर्लभम् ॥२४॥
वृषध्वजे पर तीर्थ देविकायास्तटे मुने ।
यत्र स्नात्वा शिव दृष्ट्वा ब्रह्माहत्या ध्यपोहति ॥२५॥
गादावरी नदी यत्र निर्गता पापहारिणी ।
तत्र देवाधिदेवोऽस्त्रियम्ब ॥ इति स्मृत ॥२६॥

तत्र स्नान जपो दान ब्रह्मयज्ञमख कृत ।

सर्वं तदक्षय प्रोक्त नून ब्रह्मगिरी मुने ॥२७

तत्र स्नात्वा शिव दृष्ट्वा देवदेव त्रियम्बकम् ।

स्कन्दनन्दिसमो भूत्वा क्रीडते शिवसन्निधौ ॥२८

उम पर लिङ्ग के दर्शन कर लेने पर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाया करता है । श्री पर्वत की बहुत बड़ी महिमा है वहा पर मनुष्य हो या पशु हा तथा तोटि कीटि मृग—अश्व जोर मशक आदि प्राणी है वे सब वहाँ पर मृत्युगते होकर भगवान् शम्भु के परम पद को ही प्राप्त कर लिया करते हैं । वैशार भी एक परमोत्तम तीर्थ है जो देवेश्वर का अत्यधिक प्रिय है । वहा पर स्नान करके तथा वहाँ का जल पान करके और पिनायी प्रभु का अभ्यर्चन करके मनुष्य गाणपत्य पद की प्राप्ति कर लिया करता है जोकि परम पद देवगणों को प्राप्त करना परम दुर्लभ हुआ करता है । २२। २३। २४। हे मुने ! देविका नदी के तट पर वृषध्वज म एव परमोत्तम तीर्थ है जहाँ पर स्नान करके और भगवान् शिव का दर्शन करके मनुष्य ब्रह्म हत्या के महा पाप का भी व्यपोह कर दिया करता है । २५। जहाँ पर गोदावरी नदी निकली है जोकि सभ पाप का हरण कर देने वाली है वहाँ पर जो दवाधिदेव विराजमान हैं वे त्रियम्बक इस नाम से बहे गये हैं । २६। हे मुने ! वहाँ पर जो किया गया स्नान—दान—तपश्चर्या जोर ब्रह्म यज्ञ मन्त्र है वे सब ब्रह्म गिरि में निश्चय ही अक्षय बहे गये हैं । २७। वहा पर स्नान करके और भगवान् शम्भु का दर्शन करके जो देवा के देव त्रियम्बक हैं वह स्कन्द तथा नन्दी से ही समान होकर भगवान् शम्भु देव की सन्निधि में ही क्रीणा किया करता है । २८।

रवाया नातिदूरे तु गोकर्णं इति विश्रुत ।

अनुग्रहार्थं लोचाना तत्र सनिहित शिव ॥२९

नियतोऽनियतो वाऽपि यो वा को वाऽपि मानय ।

यस्तु पश्यति गाण रद्रस्यानुचरो भवत् ॥३०

देवस्य वायुदिग्भाग दशो भद्रकालिका ।
 यासिद्धिप्रदा नित्य दशं नात्राणिना मुन ॥३१॥
 महाबलश्च भगवान्यत्राऽस्त गिरिनापति ।
 तस्य दश नमाम्येव गोमहस्यफन लभेत् ॥३२॥
 अथ दक्षिणाकण्ठे सिन्धुतीर्थे मन्दर ।
 तस्य दर्शनमात्रेण राजमूयफन नभन् ॥३३॥
 अन्यद्दक्षिणपुष्पे शङ्करस्यातिवल्लभम् ।
 गिरिजारतिना यत्र मोहिता मुनिपत्नय ॥३४॥

शृणु नारद वक्ष्यामि भवस्य चरितं शुभम् ।
 श्रवणादेव मनुज शिवस्य दयितो भवेत् । ६।
 मृगुरत्रिंशद्विंशच पुलस्त्य पुलह क्रतु ।
 जमदग्निर्भरद्वाजो गौतमो भागुरिस्तथा । ३७।
 वामदेवोऽङ्गिरा शङ्खो लिखितश्च बृहच्छ्रवा ।
 विश्वामित्रोऽप्य जाबालिरन्यं च मनयस्तथा । ३८।
 यज्ञैर्यजन्ति देवेश तपन्ति च तपस्तथा ।
 अज्ञात्वेव पर भाव देवदेवस्य शूलिन । ३९।
 तेषा मूर्धोत्थितो धूमस्तपसा क्लेशितात्मनाम् ।
 तेन धूमेन महता व्याप्तो ब्रह्माण्डमण्डप । ४०।
 दामोदरसङ्गगा देवी धूमव्याप्त जगन्नयम् ।
 दृष्ट्वा पप्रच्छ विश्वेश कोतुकादीश्वरेश्वरी । ४१।

श्री नारदजी ने कहा था—हे तात ! भगवान् शम्भु के द्वारा मुनियों की पत्नियाँ कैसे मोहित करदी गयी थी । इस वृत्तान्त को आप सक्षेप से ही मुझको बतलाने की कृपा कीजिए । मेरे हृदय में इसके श्रवण करने का बड़ा भारी वीतुक हो रहा है । ३५। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! आप श्रवण कीजिए । मैं भगवान् भव का शुभ चरित बतलाऊँगा । एक ही क्षण में मनुष्य भगवान् शिव का प्रिय हो जाता करता है । वह ऐसे ही । परम दयालु हैं । ३६। भृगु—अग्नि—वक्षिष्ठ—पुलस्त्य—पुलह—ऋतु—जमदग्नि—भरद्वाज—गौतम—भागुरि—वामदेव—अङ्गिरा—शङ्ख—लिखित—बृहच्छ्रवा—विश्वामित्र—जाबालि और अन्य मुनिगण उस समय में देवदेव या यजन यज्ञों के द्वारा किया करते थे और तपस्या का भी तपन करते थे । किन्तु वे देवदेव शूली के भाव को न जानकर ऐसा किया करते थे । तप से बनेजित आत्मा बाने उनके मूर्धा में धूम उत्थित हुआ था । वह इतना महार धूम था जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डप व्याप्त हो गया था । ३७। ३८। ३९। ४०। भगवान् शम्भु की गोद में बैठी हुई देवी ने तीनों भुवनों को धूम से व्याप्त देखकर उस ईश्वर की देवी न वीतुक से ही विदेवदेव से पूछा था । ४१।

आश्चर्यमिव मे भाति धूमव्याप्तमिदं जगत् ।
 धूमस्य कारणं ब्रूहि देवदेव महेश्वर । ४२।
 यत्र दारुवनं पुण्यं मम चातीव बल्लभम् ।
 तत्र तिष्ठन्ति मुनयस्तपोनिष्ठा जितेन्द्रियाः । ४३।
 अविदित्वैव या देवि शरीरं क्लेशकारिणि (शाम्) ।
 तेषां मूर्ध्नि स्थितो धूमो त्याप्योति सचराचरम् । ४४।
 कर्माणि यानि लोकेषु पुष्कलानि बहूनि च ।
 सर्वाणि निष्फलान्येव मामज्ञात्वं पार्वति । ४५।
 एव देवम्य वचनं श्रुत्वा शिवमयाब्रवीत् । ४६।

देवी ने कहा—मुझे बहुत ही आश्चर्य सा प्रतीत हो रहा है कि यह सम्पूर्ण जगत् धूम से व्याप्त हो रहा है । हे देवी के भी देव ! हे महेश्वर ! इसका कारण क्या है—यह मुझे आप बतलाने की कृपा कीजिए ४२। ईश्वर ने कहा—जहाँ पर पुण्यमय दारुवन है वह मुझको अत्यधिक प्रिय है । वहाँ पर मुनिगण स्थित रह कर रहे हैं जो कि तप में निष्ठा रखने वाले हैं और इन्द्रियों को जीत लेने वाले हैं । हे देवि ! ये लोग मुझको न जानकर ही अपने शरीर को क्लेश करने वाले हैं । उनके मस्तक में स्थित धूम ही इन सम्पूर्ण सचराचर जगत् को व्याप्त कर रहा है । ४३। ४४। हे पार्वति ! मेरा ज्ञान प्राप्त न करके जो भी कर्म है और लोकों में ऐसे बहुत से कर्म हुआ करते हैं वे सब के सब निष्फल ही हुआ करते हैं क्योंकि उन कर्म करने वालों को मेरा बिल्कुल भी ज्ञान नहीं हुआ करता है । इस प्रकार के देवदेव के वचन का श्रवण करके ही देवी ने भगवान् शम्भु से कहा । ४५। ४६।

देवदेव महादेव मुनीनां भावितात्मनाम् ।
 ज्ञानान्मयं यथा व्याप्तितामहं द्रष्टुमृत्सहं । ४७।
 एव देव्या वचं श्रुत्वा भगवान्नीललोहिता ।
 विटपेपमथाऽऽस्थाय ययौ दारुवनं प्रति । ४८।

स्त्रीरूपधारी विष्णुश्च शकरेण समागतः ।

विष्णुना सह विश्वेशो देवदारुवनोक्तसः । ४६।

मोहयन्मायया यंभुर्विवचार वने तदा ।

मुनिस्त्रियः शिवं दृष्ट्वा मदनानलदीपिताः । ५०।

त्यक्तलज्जा विवस्त्राश्च ययुस्ता अनु शकरम् ।

स्त्रीरूपधारिणं विष्णु सर्वे मुनिकुमारकाः । ५१।

अन्वगच्छन्त देवर्षे कामवाणप्रपीडिताः ।

तदद्भुत तदा ज्ञात्वा कुपिता मुनयस्तदा । ५२।

लिङ्गहीन हर कृत्वा यो (चक्रुर्गो) पणोपधर हरिम् ।

तदा प्रभृति त्रिपेन्द्र शिवा मेखलसज्जिता । ५३।

उभयोश्चैव सयोगः सर्व पापहरः शिवः ।

इति श्रुत्वा तु देवपित्रह्मणो वचन तदा ।

जगाम कर्तुं तीर्थानि शिवभक्तिपुरस्कृतः । ५४।

देवी ने कहा—हे देवों के भी देव महादेव ! भावित आत्मा वाले मुनियों को अज्ञान की जो व्याप्ति हो गई थी उसको मैं देखने की अभिलाषिणी हूँ कि कैसा अज्ञान उन्हें है । ४७। इस प्रकार के देवी जगदम्बा के वचन को सुनकर नील लोहित भगवान् ने एक विरका वेष धारण करके वे फिर उस दारुवन में चले गये थे । ४८। सती का स्वरूप धारण करने वाले विष्णु भगवान् भी शङ्कर के ही साथ में वहाँ पर समागत हो गये थे । विष्णु भगवान् के साथ विश्वेश्वर ने सब देवों को जो दारुवन में निवास करते थे मोहित कर दिया था । जब वे सब माया से मोहित हो गये तो भगवान् शम्भु ने उस समय में वन में विचार किया था । जितनी भी वहाँ पर मुनियों की स्त्रियाँ थीं उन्होंने जब शिव को देखा था तो वे मदन की अग्नि से दीपित हो गयी थीं । ४९। ५०। वे सब मुनि पत्नियाँ लज्जा का परित्याग करके नग्न होकर भगवान् शङ्कर के ही पीछे चली गयी थीं । हे देवर्षे ! स्त्री के रूप को धारण करने वाले विष्णु को देखकर सभी मुनियों के कुमार भी कामवाण से पीड़ित होकर उनके ही पीछे

चलने लग गये थे । उस समय म उस अद्भुत घटना को देखकर मुनि-
गण बहुत ही कुपित हो गये थे । ५१।५२। हर को लिङ्गहीन करके गाप
वेपधारी हरि को करके तभी से लेकर हे विपेन्द्र । शिवा मेखल सज्जिता
हो गयी थी । ५३। दोना का सयोग सब पापों के हरण करन वाले शिव
हैं । उस समय म देवर्षि ने ब्रह्माजी के इस वचन को मुनकर शिव
की भक्ति स वह पुरस्कृत होकर तीर्थों को करने के लिय चले गये थे ।
॥५४॥

एतत्सौर पुराण ते यथावत्समुदीरितम् । ५५।
यच्छ्रुत्वा मनुज सम्यगोसहस्रफल लभेत् ।
किं तीर्थेस्तु प्रयागाद्यै किं यज्ञैर्भूरिदक्षिणं । ५६।
यदि श्रुत श्रद्धधानै पुराणमिदमुत्तमम् ।
यत्र देवाधिदेवस्य माहात्म्यं कथ्यते विभो । ५७।
गिरीशस्य तु योगीन्द्रा किं तन सदृश भवेत् ।
श्रद्धावान् शिवे भक्तो नियत शृणुयादिदम् । ५८।
ब्राह्मणाञ्छिवभक्ताश्च पुरस्कृत्य समाहित ।
समाप्य सकल वेद पूजयद्वाचक नर । ५९।
वनकेन मुशुद्धेन तथा चन्दनखण्डकै ।
विश्वेश्वरो महादेव प्रीयतामिति भावत । ६०।
दद्यात्स्वर्गं यथादाति वाचकाय सचन्दनम् ।
यद्येकक्षी (श) रमात्राऽपि दत्ता भूमि शिवाधिना । ६१।
सा तारयति दातुर्हि पूर्वजान्सकलानपि ।
श्रुत्वा ग्रन्थमिमं सम्यग्दद्याद्दानानि शक्तित् । ६२।
तान्यक्षयफलाग्याहुर्मुनया वदवादिन । ६३।

यह मूल पुराण जैसा नी धा वैसा ठीक-ठीक हमने मुना दिया है ।
। ५५। जिसका श्रवण करके मनुष्य एव सहस्र गौत्रा व दान करन का
पुण्य-फल प्राप्त किया करता है । फिर प्रयाग आदि तीर्थों व करने स
तथा बहुत अवि दक्षिणा या वचना के करन स क्या लाभ है । ५६।

इस उत्तम पुराण को यदि थडालु पुरुषों ने सुन लिया है जिसमें देवाधि-
 देव विभु का माहात्म्य कहा जाता है ।१७। हे योगीन्द्रो ! इसमें गिरिषा
 की महिमा भरी हुई है उसके सदृश अन्य क्या हो सकता है ? शिव म
 भक्ति रखने वाला श्रद्धालु नियत होकर इसका श्रवण करे और शिव के
 भक्त ब्राह्मणों को समाहित होकर आगे कर लेवे । सम्पूर्ण वेद को
 समाप्त करके जो वाचक मनुष्य हो उसकी पूजा करनी चाहिए ।५८।५९।
 विष्णु कनक से तया चन्दन के पण्डो से भाव से विश्वेश्वर महादेव
 प्रसन्न होवें ।६०। जो वाचन करने वाला हो उसको यथाशक्ति चन्दन
 के सहित स्वर्ण का दान करे । यदि शिवार्थी के द्वारा एक शीर मात्र
 भी भूमि दी गयी है ।६१। वह दाता को तार देती है और सब पूर्वजों
 को भी तार दिया करती है । इस ग्रन्थरत्न का श्रवण कर शक्ति से
 अच्छी तरह दान देने चाहिए । वेदवादी मुनिगण उन दानों को अक्षय
 फलों वाले कहते हैं ।६२।६३।

॥ सूर्य पुराण समाप्त ॥